पंचम गणधर भगवत् सुधर्मा स्वामि-प्रणीत : अष्टम अंग आगम

सचित्र अन्तकृद्दशा सूत्र

[मूल पाठ : हिन्दी-अंग्रेजी भावानुवाद तथा विवेचन सहित]

(विशेष परिशिष्ट : अन्तकृद्दशा महिमा)

प्रधान सम्पादक

उत्तर भारतीय प्रवर्त्तक भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी म. के सुशिष्य

उपप्रवर्त्तक श्री अमर मुनि जी

सम्पादक

श्रीचन्द सुराना 'सरस'

प्रकाशक

पद्म प्रकाशन

नरेला मंडी, दिल्ली-११० ०४०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगम रत्नाकर आचार्यसम्राट् पूज्य श्री आत्माराम जी म. के दीक्षा शताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य पर प्रकाशित
सचित्र आगम माला का द्वितीय पुष्प

सचित्र अन्तकृद्दशा सूत्र

प्रधान सम्पादक :
उपप्रवर्त्तक श्री अमर मुनि

सम्पादक :
श्रीचन्द सुराना 'सरस'

अंग्रेजी अनुवाद सम्पादन :
श्री राजकुमार जैन

चित्रकार :
सरदार पुरुषोत्तमसिंह

प्रकाशक एवं प्राप्ति-स्थान :

- **श्री महेन्द्रकुमार जैन (अध्यक्ष)**
  पद्म प्रकाशन
  पद्मधाम, नरेला मण्डी, दिल्ली-११० ०४०
- **दिवाकर प्रकाशन**
  ए-७, अवागढ़ हाउस, एम. जी. रोड, आगरा-२८२ ००२
  फोन : (०५६२) ३५११६५

प्रथमावृत्ति :
वि. सं. २०५० विजयादशमी
(आश्विन शुक्ला १०) अक्टूबर १९९३

द्वितीयावृत्ति :
वि. सं. २०५५ माघ, जनवरी १९९९

मूल्य :
पाँच सौ रुपया मात्र (रु. ५००.००)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

The Eighth Agam–By the Fifth Ganadhar Anga–BHAGAWAT SUDHARMĀ SWĀMĪ

ILLUSTRATED ANTAKRIDDAŚĀ SŪTRA

[Original Text with Hindi and English Translations and Elaborations]
(Special Appendix : Antakriddasha Mahima)

EDITOR-IN-CHIEF

Uttar Bhāratīya Up-Pravarttaka Bhaṇḍārī Śrī Padmacandra jī Mahāraja's disciple

Up-Pravarttaka Śrī Amar Muni jī

EDITOR

Śrīcand Surānā 'Saras'

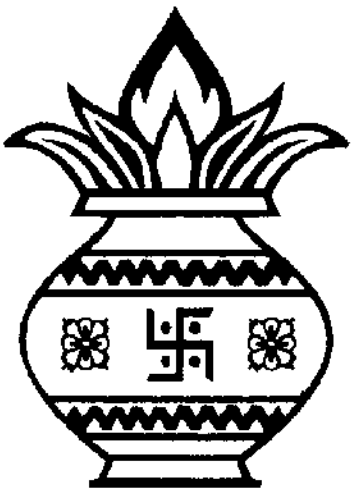

PUBLISHERS

PADMA PRAKASHAN
Narela Mandi, Delhi–110 040

卐 ३ 卐

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Published on the auspicious occasion of Diksha Centenary of Agam Ratnakar
Acharya Samrat Pujya Shri Atmarama ji M.
The Second Number of the Illustrated Agam Series

Illustrated Antakṛiddaśā Sūtra

Editor-in-chief :
Up-Pravarttaka Shri Amar Muni ji

Editor :
Srichand Surana 'Saras'

English Translation Editor :
Shri Rajkumar Jain

Illustrations :
Sardar Purusottam Singh

Publishers :

- **Shri Mahendra Kumara Jain (*Chief*)**
  Padma Prakashan
  Padma Dham, Narela Mandi, Delhi-110 040

- **Diwakar Prakashan**
  A-7, Awagarh House, M.G. Road, Agra-282 002
  Phone : (0562) 351165

First Edition :
V. Samvat 2050 Vijaya Dashami,
October 1993

Second Edition :
V. Samvat 2055, January 1999

Price :
Rupees Five Hundred Only (Rs. 500.00)

卐 ❀ 卐

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय : प्रथम संस्करण

आगम रत्नाकर आचार्यसम्राट् श्री आत्माराम जी म. ने जैन आगमों के प्रचार/प्रसार एवं अध्ययन-अध्यापन की दृष्टि से जो अविस्मरणीय कार्य सम्पादन किया, वह जैन आगम साहित्य के इतिहास में सदा अमर रहेगा। उनकी प्रेरणा से तथा उन्हीं के कृत कार्य को आगे बढ़ाने में उनकी सुविज्ञ शिष्य-परम्परा सदा अग्रणी रही है। उनके आगम रहस्यवेत्ता विद्वान् शिष्यों ने जिनवाणी के अध्यात्म ज्ञान को जनव्यापी बनाने में अपने जीवन का बहुत बड़ा योगदान किया है। इसी पावन परम्परा में आचार्यसम्राट् के विद्वान् शिष्य पंडितरत्न श्री हेमचन्द्र जी महाराज के सुशिष्य उत्तर भारतीय प्रवर्त्तक गुरुदेव भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी महाराज का नाम भी सदा स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा।

प्रवर्त्तक गुरुदेव श्री भण्डारी जी म. की प्रेरणा एवं आपश्री के विद्वान् शिष्य उपप्रवर्त्तक श्री अमर मुनि जी म. के सम्पादन में सूत्रकृतांग, प्रश्नव्याकरण, भगवतीसूत्र (चार भाग) आदि विशाल आगमों का हिन्दी व्याख्या के साथ जो सुन्दर जनोपयोगी प्रकाशन करवाया है वह सर्वत्र समादृत हुआ है। आगम पाठकों को उससे बहुत लाभ मिला है। आगम प्रकाशन की इसी महान् शृंखला में प्रवर्त्तक गुरुदेव श्री भण्डारी जी म. की भावना के अनुरूप उपप्रवर्त्तक श्री अमर मुनि जी म. ने जैन आगमों का चित्रमय प्रकाशन करने की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा सर्वथा अभिनव योजना का प्रारंभ किया है।

चित्र-दर्शन से विषय-वस्तु का बोध शीघ्र हो जाता है। इसलिए ज्ञान-वृद्धि में चित्रों का एक अलग महत्त्व है। आगमों का सचित्र प्रकाशन जहाँ एक बहुत विशाल और व्यय-साध्य कार्य है, वहाँ इसका ऐतिहासिक महत्त्व भी है। आने वाले युगों में तथा जहाँ पर जैन श्रमण-श्रमणियाँ नहीं पहुँचते हैं, वहाँ पर इन चित्रमय आगमों से जनता जैनधर्म, संस्कृति, परम्परा और तत्त्वस्वरूप को बहुत ही आसानी से समझ सकेगी—यह निस्संदेह कहा जा सकता है। इसी दूरदृष्टि को और भविष्य के सुन्दर परिणाम को ध्यान में रखकर गुरुदेवश्री की कृपा से हमने जैन आगम शास्त्रों का चित्रमय प्रकाशन प्रारंभ किया है।

कुछ समय पूर्व हमने भगवान महावीर की अन्तिम देशना श्री उत्तराध्ययनसूत्र का चित्रमय भव्य प्रकाशन किया। इस प्रकाशन को सभी ने बहुत पसन्द किया, मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा भी की है। अब अपेक्षा है कि इस प्रकार का श्रेष्ठ और मूल्यवान साहित्य प्रत्येक पुस्तकालय, स्थानक, उपाश्रय और मन्दिर में पहुँचे, लोग इसे अपनी अलमारी में सजाकर भी रखें और समय-समय पर स्वाध्याय करके लाभान्वित भी हों। आज नहीं तो कल ऐसा समय आयेगा, जब शास्त्र-प्रेमी साधु-साध्वी तथा श्रावक इस प्रकार के भव्य मनोरम साहित्य को पढ़ने के लिए मँगाने की प्रेरणा देंगे और इसके व्यापक प्रचार में सहयोगी बनेंगे।

हम इस वर्ष अष्टम अंग श्री अन्तकृद्दशासूत्र का चित्रमय प्रकाशन कर रहे हैं। सामान्य प्रकाशन से चित्रमय प्रकाशन लगभग दस गुना अधिक महँगा पड़ता है। इस कारण प्रकाशन में लागत बहुत अधिक आती है और उसका मूल्य भी अधिक रखना पड़ता है। किन्तु फिर भी हम लागत मूल्य पर ही इसे घर-घर पहुँचाने का प्रयास करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस आगम सम्पादन में श्रद्धेय उपप्रवर्त्तक श्री अमर मुनि जी म. ने बहुत ही श्रम किया है । उन्हीं के निर्देशन में प्रसिद्ध विद्वान् तथा जैन चित्रमय साहित्य के मर्मज्ञ श्रीचन्द जी सुराना 'सरस' ने एक वर्ष के सुदीर्घ परिश्रमपूर्वक इस भव्य कृति को परिपूर्ण किया है ।

द्वितीयावृत्ति

श्री अन्तकृद्दशासूत्र का प्रथम संस्करण पाठकों तथा स्वाध्याय-प्रेमियों ने बहुत पसन्द किया। इसके साथ अन्तकृद्दशा महिमा की भी अच्छी माँग थी। अब द्वितीय संस्करण में अन्तकृद्दशा महिमा भी अंग्रेजी अनुवाद के साथ इसी में सम्मिलित कर दी गई है। अन्तकृद्दशासूत्र महिमा के अंग्रेजी अनुवाद में श्री सुरेन्द्र बोथरा का सहयोग प्राप्त हुआ। तदर्थ आपको हार्दिक धन्यवाद ।

चित्रकार सरदार पुरुषोत्तमसिंह का भी धन्यवाद करते हैं जिनका सहयोग हमें प्राप्त होता रहा है । इस प्रकाशन में तपाचार्या उपप्रवर्तिनी श्री मोहनमाला जी म. तथा श्रमणी सूर्या उपप्रवर्तिनी श्री सरिता जी म. की सत्प्रेरणा से सहयोग प्राप्त हुआ है । बालयोगी श्री तरुण मुनि जी म. का भी इसके संशोधन संपादन में सराहनीय योगदान रहा । पुराने संस्करण की अंग्रेजी भाषा का संपादन संशोधन आदि में श्री राजकुमार जी जैन दिल्ली ने हार्दिक सहयोग प्रदान किया है ।

आशा है सचित्र आगम प्रकाशन की योजना का समाज में, देश व विदेश में स्वागत होगा और यह आगम अपने आप ही अपनी उपयोगिता से जनग्राह्य बनेगा ।

—महेन्द्रकुमार जैन (अध्यक्ष)

पद्म प्रकाशन
नरेला मण्डी,
दिल्ली-११० ०४०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

PUBLISHER'S NOTE

(from First Edition)

The unforgettable work done by Agam Ratnakar Acharya Samrat Shri Atmaram ji M. in the fields of study, teaching, popularizing and spread of Jain Agams occupies an everlasting place in the history of Jain Agamic literature. Driven by his inspiration, the lineage of his scholarly disciples continues to play a leading role in furthering the work he started. His disciples, with in-depth knowledge of Agams, have spent major parts of their lives to accomplish the task of spreading the spiritual knowledge contained within the tenets of the Jina in the masses. In this pious tradition the name of Uttar Bharatiya Pravartak Gurudev Bhandari Shri Padmachandra ji. M., the able disciple of Acharya Samrat's scholarly disciple Pandit-ratna Shri Hem Chandra ji M., will ever remain written in golden letters.

The beautiful editions of the voluminous Agams including Sutrakritanga, Prashna Vyakaran and Bhagavati Sutra (in four parts) with Hindi commentary, inspired by Gurudev Shri Bhandari ji M., edited by his scholarly disciple Up-Pravartak Shri Amar Muni ji M., and published for the benefit of masses, have been widely admired. These have been immensely useful for the readers of Agams. Continuing this great chain of Agam publications and in accordance with the wishes of Pravartak Gurudev Shri Bhandari ji M., Up-Pravartak Shri Amar Muni ji M. has launched a very important and unique scheme of publishing illustrated Agams.

Illustrations are effective means of easily understanding the content of a text; as such, the visual media occupies an important place in the field of knowledge and education. Although it is a cost intensive project, publication of illustrated Agam literature has a historical value. The future generations as well as the masses who do not come in contact with Jain ascetics, will undoubtedly be able to know and understand with ease the essentials of Jain tenets and the connected rich religious and cultural tradition. With the blessings of our Gurudev and keeping in view these far reaching goals, we have launched this project of publishing illustrated Agam literature.

Earlier, we had published the grand illustrated edition of Shri Uttaradhyayan Sutra, the last sermon of Bhagavan Mahavir. It was widely appreciated and profusely acclaimed by all. It is our wish now that such grand and valuable literature reaches every library, sthanak, upashraya and temple; people carefully keep these volumes in their shelves and benefit by studying them from time to time. If not today, tomorrow will come a time when scripture loving shravaks and ascetics will inspire others to acquire these for study and be instrumental in widely popularizing the Agam literature.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

This year we are publishing the illustrated edition of the eighth Anga, Shri Antakriddasha Sutra. As compared to a simple edition, an illustrated edition is ten times costly. The basic cost of such publications is very high and therefore the printed price has also to be kept high. But, for a wider distribution, we still try to make it available at cost price.

Revered Up-Pravartak Shri Amar Muni ji M. has put in a lot of labour in editing this Agam. Under his direction Srichand ji Surana 'Saras', a renowned scholar and expert of illustrated literature, has completed this grand edition after a continued hard labour of one year.

(the Second Edition)

The first edition of Shri Antakriddasha Sutra was very much appreciated by readers and devout ruminators. With this there also was a good demand of the book Antakriddasha Mahima. Now in this second edition Antakriddasha Mahima has also been included with its English translation.

With the efforts of and inspiration by Tapacharya Up-Pravartini Shri Mohan Mala ji M. and Shramani Surya Shri Sarita ji M., ample assistance has poured in for this publication. Bal-yogi Shri Tarun Muni ji M. also provided commendable assistance in its editing and copy reading.

Shri Rajkumar ji Jain extended his wholehearted contribution in re-editing and correcting the English translation from the first edition. The English translation of Antakrit-dasha Mahima has been done by Shri Surendra Bothara. We express our thanks to them all.

Our thanks also to Sardar Purushottam Singh, who has done the illustrations and has been ever co-operative.

We hope this project of publishing illustrated Agam literature will be received well in the country as well as abroad and this particular work will become popular on its own merit and for its usefulness.

–Mahendra Kumar Jain (President)

Padma Prakashan
Narela Mandi,
Delhi-110 040

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राक्कथन : प्रथम संस्करण

संसार में आज धर्म, आत्मा और परमात्मा विषयक जो भी चिन्तन, मनन एवं प्रवचन उपलब्ध है, उसका सर्वप्रथम प्रादुर्भाव भारत की तपोभूमि पर ही हुआ था। प्रागैतिहासिक काल से ही इस भारत भूमि पर दो प्रकार की विचारधाराएँ, दो संस्कृतियाँ गंगा-यमुना की भाँति प्रवाहशील रही हैं । एक है–श्रमण संस्कृति और दूसरी ब्राह्मण संस्कृति । दोनों ही संस्कृतियों का लक्ष्य है–जीवन का चरम विकास, आत्मा का कल्याण । यद्यपि जीवन के अन्तिम ध्येय-निर्वाण या परम आत्म-सुख के विषय में दोनों संस्कृतियों के चिन्तन में पर्याप्त अन्तर है । इसी अन्तर के कारण तो दोनों संस्कृतियाँ दो धाराओं में प्रवाहित हैं । श्रमण संस्कृति निर्वाणवादी संस्कृति रही है, जबकि ब्राह्मण संस्कृति के समस्त क्रियाकांड स्वर्ग के आसपास ही परिक्रमा करते हैं । इसी कारण आचार एवं विचार सम्बन्धी प्रक्रिया में भी अन्तर रहा है । श्रमण संस्कृति त्याग एवं तप-प्रधान रही है । ब्राह्मण संस्कृति कर्म एवं योग-प्रधान रही है । श्रमण संस्कृति के चिन्तन का आधार है–आगम; जिन्हें 'श्रुत' कहा जाता है । ब्राह्मण संस्कृति का आधार है–वेद, जिन्हें 'श्रुति' कहा गया है ।

ब्राह्मण संस्कृति ईश्वरवादी संस्कृति रही है, वहाँ निर्वाण का अर्थ है–जीव का ईश्वर में विलय और अद्वैतवाद की दृष्टि में ब्रह्म में विलय हो जाना ही निर्वाण है ।

श्रमण संस्कृति की एक धारा–बौद्ध संस्कृति भी निर्वाण में विश्वास अवश्य करती है, परन्तु उसके निर्वाण की परिभाषा है–बुझ जाना । जो संतति चल रही है उसका समाप्त हो जाना–"दीपो यथा निर्वृति मभ्युपेतः।"–जैसे दीपक जलता-जलता बुझ जाता है, वैसे ही जीव, आत्मा, पुद्गल, वासना आदि के संतान प्रवाह का समाप्त हो जाना निर्वाण है । इस प्रकार एक में मोक्ष का अर्थ है–विलय, तो दूसरी में मोक्ष का अर्थ है–समाप्त हो जाना ।

श्रमण संस्कृति अर्थात् जैन संस्कृति प्रारंभ से ही निर्वाणवादी या मोक्षवादी रही है । यहाँ माना गया है–"निव्वाणसेट्ठा जह सव्व धम्मा।"–समस्त धर्मों में निर्वाण ही परम श्रेष्ठ धर्म है । भगवान महावीर निर्वाणवादियों में सर्वश्रेष्ठ माने गये हैं–

"णिव्वाणवादीणिह णायपुत्ते।"

जैनधर्म में निर्वाण का अर्थ बड़ा तर्कसंगत और वैज्ञानिक है। भगवान महावीर की दृष्टि से–

"निव्वाणं ति अबाहं ति, सिद्धी लोगस्समेव य,
खेमं सिवं अणाबाहं, तं चरंति महेसिणो ॥" (उत्तराध्ययन ३२/८३)

निर्वाण का अर्थ है–सर्व बाधाओं से रहित, अव्याबाध सुख, सर्वकर्म आवरणों से रहित–चिन्मय चिदानन्दस्वरूप का प्रकट हो जाना ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनन्त ज्ञानमय, अनन्त आनन्दमय आत्म-स्वरूप की उपलब्धि निर्वाण है । ऐसा निर्वाण ही प्रत्येक आत्मा का चरम लक्ष्य है । इसी निर्वाण के लिए आत्मा त्याग, तप, ध्यान आदि का आचरण करता है, साधना करता है । साधना का सफल या कृतार्थ हो जाना ही सिद्धि है । सिद्धि प्राप्त करना ही प्रत्येक आत्मा का उद्देश्य है ।

निर्वाण या सिद्धि प्राप्त करने के लिए त्याग, तप एवं ध्यान का मार्ग बताया गया है । विहंगम दृष्टि से देखने पर पता चलता है, ब्राह्मण संस्कृति में ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिए 'योग' मार्ग का विधान किया गया है, बौद्धदर्शन में 'ध्यान' मार्ग पर बल दिया गया है और श्रमण या जैन संस्कृति में 'तप' मार्ग का निरूपण है । 'तप' में योग एवं ध्यान दोनों ही समाहित हैं । तप के बारह भेदों में काय-क्लेश तप योग-मार्ग की साधना का रूप है तो ध्यान तप ध्यान-मार्ग का स्वरूप बताता है । 'तप' में योग भी है और ध्यान भी है । इसलिए श्रमण संस्कृति तपस्वियों की संस्कृति रही है । तपःसाधना ही श्रमण संस्कृति का सार है । 'तप' श्रमण संस्कृति की पहचान है । जैनधर्म की आत्मा है–तप ।

अन्तकृद्दशा सूत्र

परिचय–तपःसाधना के विशिष्ट रूप और स्वरूप पर प्रकाश डालने वाले जैन आगमों में अन्तकृद्दशा सूत्र का अपना विशेष महत्त्व है । इसका नाम ही 'तप' की फलश्रुति का सूचक है। 'तप' शरीर को सुखाने के लिए नहीं किया जाता । तप का उद्देश्य है–आत्मा के साथ लगे हुए कर्म आवरणों को तपाकर/जलाकर भस्म कर देना । जैसे–सोने के साथ लिपटी हुई मिट्टी आदि अन्य रसायन, अग्नि में तपाने से भस्म हो जाते हैं और सोना 'कुन्दन' या शुद्ध स्वर्ण बन जाता है, इसी प्रकार तप से संपूर्ण कर्मों की निर्जरा हो जाने पर आत्म-स्वरूप की उपलब्धि हो जाती है । इस प्रकार तपःसाधना से समस्त कर्मों का अन्त–नाश किया जाता है । कर्मों का नाश हो जाने से जन्म-मरण की भव-परम्परा का भी नाश हो जाता है–**"कम्मं च जाई मरणस्स मूलं।"**–जन्म और मरण का मूल कर्म है । कर्म-नाश होने पर जन्म और मृत्यु के बंधन स्वयं टूट जाते हैं । भव-परम्परा का अन्त हो जाता है ।

'अन्तकृद्दशा सूत्र' का शब्दार्थ भी यही है कि भव-परम्परा का अन्त करने वाली आत्माओं की दशा, स्थिति, अवस्था तथा उनकी साधना का वर्णन करने वाला आगम है–अन्तकृद्दशा सूत्र । अन्तकृद्दशा सूत्र में भव-परम्परा का उच्छेद करके निर्वाण प्राप्त करने वाले ९० साधकों की कठोर साधना, तपश्चर्या और ध्यान-योग की साधना का रोमांचक वर्णन है ।

अन्तकृद्दशा सूत्र आगमों में आठवाँ अंग है । इस सूत्र के आठ वर्ग हैं और इसमें वर्णित सभी पात्र–आठ कर्मों का क्षय करके निर्वाणगामी हुए हैं इसलिए जैन-शासन में पर्युषण के आठ दिनों में इस शास्त्र के वाचन की प्राचीन परम्परा प्रचलित है ।

भाषा–इस आगम की भाषा अर्ध-मागधी है । शास्त्रों में बताया है–तीर्थंकर देव, गणधरों तथा देवताओं की प्रिय भाषा अर्ध-मागधी है । इसलिए यह सर्वप्रिय भाषा है । सभी जैन सूत्रों की भाषा अर्ध-मागधी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शैली–जैन सूत्रों में जिन सूत्रों में आत्मा कर्म आदि तात्विक विषयों की प्रधानता है, वे द्रव्यानुयोग विषयक कहे जाते हैं । जिनमें आचार, समाचारी आदि का वर्णन है, वे आगम चरणानुयोग-प्रधान हैं । जिनमें गणित, लोक, भूगोल, खगोल, नदी, पर्वत आदि का वर्णन है, गणितानुयोग में उनका समावेश हो जाता है तथा जिन आगमों में चरित या कथा-शैली की प्रधानता है, वे कथानुयोग-प्रधान आगम माने गये हैं ।

ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा, अनुत्तरौपपातिकदशा, विपाक, निरयावलिका तथा अन्तकृद्दशा सूत्र आदि कथा या चरित्र-प्रधान आगम होने से इनकी गणना कथानुयोग में की जाती है ।

वर्ण्य-विषय–प्रस्तुत आगम में नब्बे (९०) साधक आत्माओं की साधना का रोचक वर्णन है । सामान्य रूप में यह तपःप्रधान आगम माना जाता है, परन्तु सम्पूर्ण आगम के विषय पर चिन्तन करने से तप, ध्यान, ज्ञानार्जन, क्षमा आदि सभी को मोक्ष मार्ग मानते हुए सबका समन्वय है। इसमें–

● गौतमकुमार आदि १८ मुनियों ने १२ भिक्षु प्रतिमा तथा गुणरत्नसंवत्सर तप करके मुक्ति प्राप्त की ।

● अनीकसेनकुमार आदि १४ मुनि १४ पूर्व का ज्ञान प्राप्त कर बेले-बेले के सामान्य तप द्वारा ही कर्मक्षय कर मुक्ति के अधिकारी बने हैं ।

● अर्जुनमाली जैसे साधक सिर्फ छह महीने तक बेले-बेले तप करके, उत्कृष्ट उपशम भाव-क्षमा-सहिष्णुता-तितिक्षा की आराधना द्वारा सिद्धगति प्राप्त करते हैं ।

● अतिमुक्तकुमार जैसे बाल ऋषि ज्ञानार्जन करके गुणरत्नसंवत्सर तप की आराधना करते हुए दीर्घकालीन संयम-पर्याय का पालन कर मोक्ष पधारते हैं ।

● गजसुकुमाल मुनि बिना शास्त्र पढ़े, सिर्फ एक अहोरात्र की अल्पकालीन संयम-पर्याय में ही परम तितिक्षा भावपूर्वक समता भाव में रमण करते हुए शुक्लध्यान के साथ मोक्ष प्राप्त करते हैं ।

● नन्दा, काली आदि रानियों ने कठोर तपःसाधना एवं दीर्घकालीन संयम-पर्याय का पालन कर कर्मों का नाश किया है ।

इस प्रकार तप, संयम, शम, क्षमा, ध्यान आदि मोक्ष के सभी अंगों की सर्वांग साधना का सुन्दर समन्वय इस आगम में प्राप्त होता है ।

प्रस्तुत सूत्र का आदर्श

इस शास्त्र के परिशीलन से पद-पद पर तप, क्षमा एवं शुद्ध ध्यान की विशेष प्रेरणा स्फुरित होती है । इसके साथ ही कुछ विशिष्ट आदर्श चरित्रों की विशेष प्रेरणाएँ भी हमें जीवन्त आदर्शों की ओर संकेत करती हैं; जैसे–

१. वासुदेव श्रीकृष्ण के समान धर्म में दृढ़ विश्वास और गुणों के आदर की भावना तथा धर्म सहायक बनने की उदात्त वृत्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. भोगों से विरक्त होकर त्याग वृत्ति की प्रेरणा देता है–वासुदेव श्रीकृष्ण की आठ पटरानियों का संयम ग्रहण ।

३. गजसुकुमाल मुनि का उज्ज्वल चरित्र धैर्य, दृढ़ता, कष्ट-सहिष्णुता और परम तितिक्षा भाव का पाठ पढ़ाता है ।

४. सुदर्शन श्रावक का चरित्र, अपने आराध्य देव के प्रति परम समर्पण भाव, आत्म-विश्वास और धर्मतेज का सूचन करता है ।

५. अर्जुनमाली का मुनि जीवन–अद्भुत सहन-शक्ति और उपशम भाव की आराधना की ओर इंगित करता है ।

६. महाराज श्रेणिक की काली आदि रानियों की तपश्चर्या का वर्णन शरीर-ममत्व से मुक्त होकर **"तवसा धुणाइ पाव कम्मं"** का आदर्श उपस्थित करता है ।

७. बाल-मुनि अतिमुक्तकुमार का रोचक वर्णन–जीवन में सरलता, भद्रता और विनयपूर्वक प्रश्नोत्तर शैली का सुन्दर संकेत करता है ।

इस प्रकार प्रस्तुत आगम अनेक प्रकार के जीवन्त आदर्शों को उपस्थित करके निर्वाण की समुज्ज्वल साधना करने का मार्ग प्रशस्त करता है । इसका पठन-श्रवण जीवन में सभी के लिए कल्याणकारी है ।

प्रस्तुत सम्पादन

आज जैन समाज में अन्तकृद्दशा सूत्र का वाचन/पठन भी सबसे अधिक होता है और इस आगम का प्रकाशन भी अनेक संस्थाओं द्वारा अनेक रूपों में हुआ है । इस पर विस्तृत टीकाएँ और व्याख्याएँ भी प्रकाशित हुई हैं तो कहीं-कहीं से मूल पाठ, भावानुवाद और कहीं से सिर्फ मूल पाठ ही । इस प्रकार छोटे-बड़े अनेकों संस्करण प्रकाशित हुए हैं । सभी की अपनी उपयोगिता है । हिन्दी भाषा के अतिरिक्त गुजराती भाषा में अनेक सुन्दर संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं । अंग्रेजी में भी श्री मोदी का प्रकाशित संस्करण मेरे देखने में आया है । पाठक पूछेंगे फिर इस संस्करण की क्या विशेषता है ?

सचित्र आगम प्रकाशन

हमने गतवर्ष श्रद्धेय पूज्य गुरुदेव उत्तर भारतीय प्रवर्त्तक भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी म. के हीरक जयन्ती वर्ष के उपलक्ष्य में सचित्र आगम प्रकाशन का संकल्प किया था । आगमों का सचित्र प्रकाशन अपने आप में एक ऐतिहासिक कार्य है और इसकी अपनी महत्ता भी है । आज प्राचीन हस्तलिखित आगमों में कल्पसूत्र तथा उत्तराध्ययन सूत्र की चित्रमय प्रतियाँ किसी-किसी ज्ञान भण्डार में उपलब्ध हैं, ऐसा सुना जाता है; तथा यह भी सुनने में आता है कि उन चित्रमय आगमों की एक-एक प्रति का मूल्य २०-२५ हजार रुपये से भी अधिक आँका गया है । ऐसे दुर्लभ चित्रित आगम प्राप्त होना तो बड़ी बात है, उनके दर्शन भी अत्यन्त दुर्लभ हैं । फिर भी हर एक आगम जिज्ञासु की भावना होती है कि चित्रमय आगमों के दर्शन हमें भी प्राप्त हों । उनकी उपलब्धि भी हो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह तो सुनिश्चित है कि चित्र से गंभीर से गंभीर विषय भी बड़ी सहजता के साथ समझ में आ सकता है। चित्र अरूप को स्वरूप प्रदान करता है। दुर्बोध को सुबोध बनाता है। एक चित्र हजारों श्लोकों से भी अधिक प्रभावशाली बन जाता है। कुल मिलाकर आज की शिक्षा पद्धति में चित्रों की उपयोगिता और आवश्यकता बढ़ती ही जा रही है।

आगमों का चित्रमय प्रकाशन यद्यपि बहुत महँगा पड़ता है। चित्रों के निर्माण में परम्परा एवं आगम की मर्यादा का भी ध्यान रखा जाता है तथा चित्र-निर्माण से लेकर रंगीन मुद्रण तक की समूची विधि बहुत ही खर्चीली होती है। इस कारण आगमों का सचित्र संस्करण साधारण संस्करण से बहुत अधिक महँगा पड़ जाता है। सामान्य पाठक उसे खरीदने में असमर्थता भी अनुभव करता है। इन सभी कठिनाइयों का समाधान भी हो सकता है और इस पर समाज चिन्तन भी कर रहा है। फिर भी सचित्र प्रकाशन और वह भी हिन्दी एवं अंग्रेजी अनुवाद के साथ अन्य प्रकाशनों से अधिक दर्शनीय, पठनीय एवं भव्य होता है, यह निस्सन्देह माना जायेगा।

सचित्र आगम प्रकाशन की मेरी भावना को मूर्त्तरूप दिया है साहित्यकार प्रबुद्ध चिन्तक श्रीचन्द जीं सुराना ने। उनकी पूज्य गुरुदेव के प्रति भक्ति तथा आगमों के प्रति श्रद्धा और चित्रमय साहित्य प्रकाशन के प्रति अनुराग/लगाव तथा अनुभव सब मिलाकर इस कार्य को सुगम और गतिशील बना सका है।

कुछ समय पूर्व हमने सचित्र उत्तराध्ययन सूत्र का प्रकाशन किया था, अब श्री अन्तकृद्दशा सूत्र चित्रमय प्रस्तुत है।

इस प्रकार सभी के सहयोग से सचित्र आगम प्रकाशन माला का यह द्वितीय ग्रंथरत्न 'सचित्र अन्तकृद्दशा सूत्र' पाठकों के कर-कमलों में समर्पित है। मुझे विश्वास है इस प्रयत्न से देश व विदेश स्थित जैन बन्धुओं में आगम स्वाध्याय के प्रति रुचि बढ़ेगी और वे आत्म-कल्याण के मार्ग पर अग्रसर होंगे, इसी शुभ आशा के साथ–

तपाचार्या श्री उपप्रवर्तिनी श्री मोहनमाला जी म. तथा श्रमणी सूर्या उपप्रवर्तिनी डॉ. श्री सरिता जी म. के सराहनीय सहयोग के लिए मैं किन शब्दों में धन्यवाद करूँ। मेरी आशा के अनुरूप श्री अन्तकृद्दशासूत्र का यह संस्करण पाठकों एवं स्वाध्यायियों ने बहुत पसन्द किया, कुछ ही समय में इसका प्रथम संस्करण समाप्त हो गया। द्वितीय संस्करण की माँग आ रही थी इसलिए अब यह द्वितीय संस्करण पाठकों के हाथों में प्रस्तुत है। श्री सुयश मुनि जी लिखित अन्तकृद्दशा महिमा भी श्री सुरेन्द्र बोथरा के अंग्रेजी अनुवाद के साथ सम्मिलित कर दी गई है।

–अमर मुनि

पद्म जयन्ती (दशहरा)
जैन स्थानक
गांधी मंडी, पानीपत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

FOREWORD

(First Edition)

In the world whatever ideas, thoughts and preaching on religion, soul and god are available today originated first of all in India, the land of austerities. Since pre-historic times two streams of thought and culture have been flowing like the rivers Ganges and Yamuna. One of them is Shraman culture and the other Brahmin culture. The ultimate goal of both these cultures is the well being of soul, the ultimate development of life. However, there is a marked difference between the two about the definition of the ultimate goal of life, nirvana or the ultimate bliss of soul. This difference is the cause that divides the cultures into two streams. The Shraman culture is a culture that believes in nirvana or liberation, whereas all the rituals of the Brahmin culture revolve around the heaven. That is why there are differences also in the process of thought and conduct. The Shraman culture has mainly been detachment and austerity intensive. The Brahmin culture has been action and yoga intensive. The basic scriptures of Shraman thought are Agams that are also called 'Shrut'. The basic scriptures of Brahmin thought are the Vedas that are also called 'Shruti'.

Brahmin culture is a theist culture. There the meaning of nirvana is to merge with the God. The Advait (monotheist) sect believes that nirvana is to merge with Brahma.

A stream of the Shraman culture, the Buddhist culture, also believes in nirvana but there nirvana means extinction. The termination of the flow of life is nirvana. Like a lamp extinguished, the termination of the continuing flow of being, soul, particle, desire and others is nirvana. Thus in one, nirvana means to merge and in the other, it means–to end.

Shraman culture or Jain culture has since its beginning been based on nirvana or liberation. Here it is believed that of all the religions the best is nirvana. Bhagavan Mahavir is believed to be the best among those who believe in nirvana–**"Ṇivvaṇavadiṇiha Ṇāyaputte."**

In Jainism the meaning of nirvana is very scientific and logical. In Bhagavan Mahavir's view–Nirvana means–to acquire unimpeded bliss and to attain the all powerful and ever blissful form that is free of all veils of karma.

Nirvana is to attain the ultimately pure form of soul which is endowed with infinite knowledge and infinite bliss. Such nirvana is the ultimate goal of every soul. To attain such nirvana one indulges in spiritual practices including detachment, austerities and meditation. To get success in practices is siddhi. To attain siddhi is the goal of every soul.

For attaining nirvana or siddhi is prescribed the path of detachment, austerities and meditation. A cursory glance indicates that according to the Brahmin culture yoga is said

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

to be the path of enlightenment or the means of acquiring Brahma-jnana; the Buddhist philosophy lays stress on meditation; and the Shraman or Jain culture prescribes austerities (tap). Austerities envelope both yoga and meditation. Among the twelve categories of austerities, kaya-klesh (rigorous discipline of the body) is a form of yoga practice and dhyan-tap is a form of meditational practice. Within tap there is yoga as well as meditation. That is why the Shraman culture is a culture of ascetics. To indulge in tap-practices is the essence of Shraman culture. Tap is the recognizing factor of Shraman culture. The soul of Jain religion is tap.

Antakriddasha Sutra

Introduction–Antakriddasha Sutra occupies a place of special importance among the Jain Agams that throw light on the concept and form of tap-practices. Its title itself is suggestive of the fruits of tap (austerities). Tap is not done to emaciate the body. The purpose of tap is to temper and reduce to ashes the veils of karma covering the soul. The sand and other impurities of gold evaporate out when heated in fire and it turns into kundan (pure gold). In the same way when all the karmas are destroyed with the help of tap, the true form of soul (purity of soul) is attained. Thus, with the help of tap-practices all karmas are ended or destroyed. With the destruction of karmas the cycles of rebirth are destroyed. The cause of life and death is karma. When karmas are destroyed the ties of life and death are automatically broken. The cycle of rebirth is terminated.

The literal meaning of Antakriddasha Sutra also conforms to this–the Agam that details the conditions, state, status and practices of the souls that have terminated the cycle of rebirth is Antakriddasha Sutra. It contains a sensational description of the rigorous practices, austerities and meditation done by 90 seekers who ended the cycles of rebirth to attain nirvana.

Antakriddasha Sutra is the eighth among the Agams. It has eight sections and all the central characters described in this attained nirvana after shedding all the eight karmas. That is the reason that the tradition of its recital during the eight days of Paryushan, the annual religious festival of the Jain order, has been popular since ancient times.

Language–The language of this Agam is Ardha-Magadhi. In scriptures it is mentioned that the language liked by Tirthankars, Ganadhars and gods is Ardha-Magadhi. Therefore this is the language liked by all. The language of all Jain Sutras is Ardha-Magadhi.

Style–In the Jain Sutra those which contain subjects dealing with fundamentals like soul and karma are classified as those dealing with Dravyanuyoga. Those which contain discussions about conduct, codes of conduct and other related topics are classified as those of Charananuyoga style. The subjects like mathematics, universe, geography, astronomy, rivers and mountains are covered by Ganitanuyoga style. And the Agams that are in biographical and narrative style are said to be mainly of Kathanuyoga style.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jnatadharmakatha, Upasak-dasha, Anuttaraupapatik-dasha, Vipak, Niryavalika and Antakriddasha Sutra fall in the Kathanuyoga category because they abound in stories and biographies.

Subject-matter–This Agam contains interesting description of spiritual practices of 90 pious souls. Generally it is believed to be a tap-intensive Agam. But when we consider this Agam as a whole it becomes evident that it assimilates all such virtues as austerities, meditation, gaining knowledge and clemency while defining the path of liberation. It informs that–

- 18 ascetics including Gautam Kumar attained liberation by practicing 12 Bhikshu Pratimas and Gunaratnasamvatsar tap.

- 14 ascetics including Aneeksen Kumar have qualified for liberation by acquiring the knowledge of 14 Purvas and practicing the simple tap of a series of two day fasts to shed their karmas.

- Seekers like Arjunamali attain liberation just by practicing tap of a series of two day fasts for six months and lofty attitudes of discipline, clemency, tolerance and fortitude.

- Child ascetics like Atimukta Kumar get liberated after leading a long ascetic life acquiring knowledge and practicing Gunaratnasamvatsar tap.

- Ascetic Gajasukumal gets liberated without studying scriptures and attaining the lofty state of shukla dhyana (pure meditation) with extreme endurance and equanimity during his short ascetic life lasting just a day and a night.

- Nanda, Kali and other queens destroyed their karmas by rigorous practices of tap during their long ascetic lives.

Thus an apt assimilation of the combined practices of all branches of spiritual practices, including tap, discipline, self-control, clemency and meditation, leading to liberation can be found in this Agam.

The Ideal of this Sutra

At every step in the study of this Agam springs an intense inspiration to indulge in tap, clemency and pure meditation. Besides this, unique inspirations from some special and ideal characters show us some ideals worth emulating. For example–

1. To have strong faith in religion, attitudes of appreciating virtues and graciously supporting religious activities like Vaasudev Shrikrishna.

2. The initiation of eight principle queens of Vaasudev Shrikrishna gives inspiration to reject mundane indulgences and accept renunciation.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

3. The brilliant character of ascetic Gajasukumal provides lessons in patience, determination, tolerance of pain and extreme endurance.

4. The story of Sudarshan Shravak informs about ultimate submission to one's deity of worship, self confidence and religious aura.

5. The ascetic life of Arjunamali points at astonishing tolerance and practice of attitude of suppression of evil thoughts.

6. The description of the austerities of Kali and other queens of king Shrenik present the ideal of tempering sinful karmas with tap after abandoning fondness for the body.

7. The interesting story of child ascetic Atimukta Kumar eloquently reveals the value of simplicity in life, good behaviour and asking questions with modesty.

Thus, this Agam opens up the path of pursuit of the goal of liberation by presenting a variety of inspiring ideals. Its reading and listening is beneficial to all.

This Edition

Today Antakriddasha Sutra is the most read and recited Agam in Jain society. Numerous institutions have published a variety of editions of this. Detailed commentaries and explanatory works on this have been published as also editions only with original text and translation and some with original text only.

Thus many small and large editions have been published. Each has its own utility. Besides Hindi many beautiful editions in Gujarati have also been published. I have also come across the English edition by Shri Modi. Readers will ask–What is new about this edition ?

Publication of Illustrated Agams

I had decided last year, on the occasion of the diamond jubilee year of the birth of Uttar Bharatiya Pravartak Gurudev Bhandari Shri Padmachandra ji. M., to get illustrated Agams published. Publication of illustrated Agams is a historical work and has its own importance. It is said that a few copies of Kalpa Sutra and Uttaradhyayan Sutra are now the only illustrated works among the ancient manuscripts of Agams available in some Jnana Bhandars. It is also said that these copies of Agams with illustrations are valued at 20 to 25 thousand rupees each. What to say of getting a copy of such rare illustrated Agams when it is difficult even to look at them. Still every curious student of Agams nurtures a desire of seeing illustrated Agams. He also has a desire to possess them.

It is certain that illustrations makes even the most serious and complex subjects easy to understand. An illustration gives form to the formless and turns complex to simple. An illustration can be more effective than a thousand verses. All said and done, the usefulness and necessity of visual presentation finds an ever expanding slot in modern education system.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Publication of illustrated Agams is an expensive affair. While making illustrations it is ensured that they conform to the tradition and are commensurate with the standard of Agams. Also, the whole process starting from painting the illustrations to the final multicolored printing is highly cost intensive. That is the reason that an illustrated edition of Agams is highly expensive as compared with an ordinary edition. It is almost out of reach of the ordinary reader. All these problems can be solved and the society is thinking on those lines as well. Still it is beyond any doubt that an illustrated edition, and that too with Hindi and English translations is more attractive, readable and grand as compared with other editions.

Srichand ji Surana, a profound thinker and literateur has given concrete shape to my idea of publication of illustrated Agams. His devotion for revered Gurudev and the Agams, combined with his mission of publishing illustrated literature and long standing experience in the field, has given impetus to this project and made its execution easy.

Some time back we published Illustrated Uttaradhyayan Sutra and here now is Illustrated Shri Antakriddasha Sutra.

Thus, with co-operation from all sides, this second number of the Illustrated Agam Series–Illustrated Antakriddasha Sutra–is placed in the hands of our readers. I am confident that this effort will inspire Jain brethren in India and abroad to study Agams and they will accept the path of purification of soul; with this hope and wish–

I fail to find words of thanks for Tapacharya Up-Pravartini Shri Moahn Mala ji M. and Shramani Surya Shri Sarita ji M. for their commendable co-operation. As I had hoped, the illustrated Antakriddasha Sutra was very much liked by readers as well as scholars. In short time the first edition was sold out. To cater to the increasing demand, now this second edition is ready. The book Antakriddasha Mahima by Shri Suyash Muni ji has also been included with its English translation by Shri Surendra Bothara.

–Amar Muni

Padma Jayanti (Dashahara)
Jain Sthanaka
Gandhi Mandi, PANIPAT

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रमणिका (Index)

क्रम	विषय	पृष्ठ
	उत्थानिका (Preamble)	१–१६
१.	**प्रथम वर्ग (First Section)**	३–३८
	अध्ययन १ (Chapter 1)	१६–२९
	अध्ययन २-१० (Chapters 2-10)	२९–३८
२.	**द्वितीय वर्ग (Second Section)**	३९–४१
	अध्ययन १-८ (Chapters 1-8)	३९–४१
३.	**तृतीय वर्ग (Third Section)**	४२–१२३
	अध्ययन १ (Chapter 1)	४३–५०
	अध्ययन २-६ (Chapters 2-6)	५०–५१
	अध्ययन ७ (Chapter 7)	५१–५३
	अध्ययन ८ (Chapter 8)	५३–११९
	अध्ययन ९ (Chapter 9)	११९–१२२
	अध्ययन १०-१३ (Chapters 10-13)	१२२–१२३
४.	**चतुर्थ वर्ग (Fourth Section)**	१२४–१२९
	अध्ययन १-१० (Chapters 1-10)	१२५–१२९
५.	**पंचम वर्ग (Fifth Section)**	१३०–१६६
	अध्ययन १ (Chapter 1)	१३१–१६१
	अध्ययन २-८ (Chapters 2-8)	१६१–१६३
	अध्ययन ९ (Chapter 9)	१६३–१६६
	अध्ययन १० (Chapter 10)	१६६–१६६
६.	**षष्ठम वर्ग (Sixth Section)**	१६७–२२९
	अध्ययन १ (Chapter 1)	१६९–१७१
	अध्ययन २ (Chapter 2)	१७१–१७२
	अध्ययन ३ (Chapter 3)	१७२–२०६
	अध्ययन ४ (Chapter 4)	२०६–२०७
	अध्ययन ५ (Chapter 5)	२०७–२०८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्ययन ६ (Chapter 6) २०८–२०८
अध्ययन ७ (Chapter 7) २०८–२०८
अध्ययन ८ (Chapter 8) २०८–२०९
अध्ययन ९ (Chapter 9) २१०–२१०
अध्ययन १० (Chapter 10) २१०–२११
अध्ययन ११ (Chapter 11) २११–२११
अध्ययन १२ (Chapter 12) २१२–२१२
अध्ययन १३ (Chapter 13) २१२–२१३
अध्ययन १४ (Chapter 14) २१३–२१३
अध्ययन १५ (Chapter 15) २१३–२२६
अध्ययन १६ (Chapter 16) २२७–२२९

७. सातवाँ वर्ग (Seventh Section) **२३०–२३३**

अध्ययन १-१३ (Chapters 1-13) २३१–२३३

८. आठवाँ वर्ग (Eighth Section) **२३४–२८९**

अध्ययन १ (Chapter 1) २३५–२५०
अध्ययन २ (Chapter 2) २५०–२५३
अध्ययन ३ (Chapter 3) २५३–२५७
अध्ययन ४ (Chapter 4) २५७–२५८
अध्ययन ५ (Chapter 5) २५९–२६४
अध्ययन ६ (Chapter 6) २६५–२६९
अध्ययन ७ (Chapter 7) २७०–२७५
अध्ययन ८ (Chapter 8) २७५–२७९
अध्ययन ९ (Chapter 9) २७९–२८३
अध्ययन १० (Chapter 10) २८३–२८८
उपसंहार (Conclusion) २८८–२८९

परिशिष्ट (Appendix)

१. तप सम्बन्धी चित्र (Illustrations related to Austerities) २९०
२. अस्वाध्याय काल (Period of non-study) २९१-२९४
३. अन्तकृद्दशा महिमा (Antakriddasha Mahima) २९५-४८८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठमं अंगं

सिरि अन्तगड दसाओ

अष्टम अंग

श्री अन्तकृद्दशा

Eighth Aṇga

Śrī Antakṛiddaśā

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अष्टम अंग श्री अन्तकृद्दशा सूत्र

उत्थानिका

अष्टम अंग अन्तकृद्दशा सूत्र का प्रारंभ प्रश्नोत्तर के रूप में होता है ।

चम्पानगरी के पूर्णभद्र चैत्य में आर्य सुधर्मा स्वामी विराजमान हैं । जम्बूस्वामी विनयपूर्वक उनसे प्रश्न करते हैं कि श्रमण भगवान महावीर ने अष्टम अंग अन्तकृद्दशा सूत्र में किस भाव का कथन किया है ? उत्तर में गणधर सुधर्मा स्वामी अष्टम अंग का वर्णन करते हैं ।

इस अष्टम अंग में आठ वर्ग हैं और उनके नब्बे (९०) अध्ययन हैं । पहले से पांचवें वर्ग तक के इकावन (५१) अध्ययन हैं । जिनमें वासुदेव श्रीकृष्ण के राज परिवार के ४१ राजकुमारों तथा १० रानियों की दीक्षा एवं तपस्या, तप, संयम आराधना आदि का रोमांचक वर्णन है ।

ये सभी साधक भगवान अरिष्टनेमि के शासनकाल में हुए ।

छठे, सातवें, आठवें वर्ग में भगवान महावीर के शासनवर्ती १६ पुरुष साधक तथा २३ नारी साधकों की निर्मल चारित्र-तप-आराधना का लोमहर्षक वर्णन है ।

इस प्रकार आठ वर्ग के नब्बे (९०) अध्ययनों में सत्तावन पुरुष साधक तथा तेतीस नारी साधकों अर्थात् कुल नब्बे (९०) आत्म-साधकों का वर्णन है जिन्होंने ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप की निर्मल साधना करके उसी भव में भव का अन्त करके निर्वाण प्राप्त किया । इसलिए उनको अन्तकृद् (अन्त करने वाले) कहा गया है ।

प्रथम अध्ययन द्वारका नगरी के वर्णन से प्रारंभ होता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Śrī Antakṛd-daśā Sūtra–Eighth Aṅga

Preamble

The Eighth *Aṅga* of *Dwādaśāngī* (twelve parts of Jain holy scriptures and canons) named *Antakṛddaśāṅga sūtra* begins in question-answer style.

Ārya Sudharmā Swāmī is staying in *Pūrṇabhadra* temple of *Campā* city. *Jambū Śwāmī* courteously asks him that *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra* has described what facts and matter in Eighth *Aṅga–Antakṛddaśā Sūtra*. In reply *Gaṇadhara Sudharmā Swāmī* describes the contents of Eighth *aṅga*.

In this Eighth *Aṅga*, there are eight sections or divisions and ninety chapters. From first to fifth sections, there are fiftyone (51) chapters. These chapters contain the description of fortyone (41) princes and ten (10) queens, relating to the royal family of *Vāsudeva Śrīkṛṣṇa*. All this description of consecration, austerities, practising of self-control and restrain is very heart-throbing and titillatory.

All these practisers took place during the period of *Bhagawāna Ariṣṭanemi*.

Sixth, seventh and eighth divisions or sections include titillatory description regarding the propiliation of pure conduct and austerities of sixteen (16) male (men) and twentythree (23) female (women) propiliators during the period of *Bhagawāna Mahāvīra*.

As thus, in the ninety chapters of eight sections or divisions, there is the description of 57 men and 33 women i.e., all ninety self-practisers who attained salvation, by practising pure propiliation of right knowledge, faith, conduct and austerity; so ending the circle of births and deaths, in that very existence–therefore those are called *antakṛd* (end-doers).

The first chapter of first section or division begins with the description of *Dwārakā* city.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम वर्ग

सूत्र १ :

तेणं कालेणं तेणं समएणं चम्पा णामं णयरी होत्था, वण्णओ ।

तत्थ णं चम्पाए नयरीए उत्तर-पुरत्थिमे दिसिभाए एत्थणं पुण्णभद्दे णामं चेइए होत्था । वणसण्डे वण्णओ ।

तीसे णं चम्पाए णयरीए कोणिए णामं राया होत्था । महया हिमवंत जाव वण्णओ ।

सूत्र १ :

उस काल और उस समय में चम्पा नाम की नगरी थी । यह नगरी बहुत ही सुन्दर वर्णन करने योग्य थी ।

चम्पा नगरी के उत्तर और पूर्व दिशा के मध्य (ईशान कोण) में पूर्णभद्र नाम का एक मनोहर रमणीय उद्यान (वन खंड) था । उस उद्यान के ईशान कोण में पूर्णभद्र नान के यक्ष का प्राचीन मन्दिर (आयतन) था ।

चम्पानगरी में उस समय कोणिक नाम का राजा राज्य करता था; जो महान हिमवंत पर्वत के समान अजेय और राष्ट्र का रक्षक था ।

FIRST SECTION

Maxim 1 :

(*Sūtra*) **1**–At that time and at that period there was a city, named *Campā*. That city was very beautiful and so describable.

In the middle of north-eastern direction (*Iśāna koṇa*) of the *Campā* city, there was a garden named *Pūrṇabhadra*, which was very beautiful, heart-attracting and pleasure-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

giving; so it was describable. Amidst that garden in the middle of north-eastern direction, there was a sanctuary (temple) of a *Yakṣa* (deity) named *Pūrṇabhadra.*

In the city *Campā* at that period, a great king named *Koṇika* ruled, who was a very brave and great warrior. He was unconquerable like the great mountain *Himavanta* and saviour of his nation (the territory of which he was ruler).

विवेचन

● यहां पर **'तेणं कालेणं तेणं समएणं'** इस वाक्य में काल और समय का भिन्न अर्थ में प्रयोग हुआ है । 'काल' से अभिप्राय है–काल चक्र का अवसर्पिणी कालखंड और उसका चतुर्थ आरा, तथा 'समय' से अभिप्राय है–जिस समय का यह वर्णन किया जा रहा है अर्थात् जब भगवान महावीर एवं गणधर सुधर्मा आदि विद्यमान/उपस्थित थे । इस प्रकार यहाँ "काल" एवं "समय" के अर्थ में भेद किया गया है ।

● चम्पानगरी भारत की सुन्दरतम नगरियों में एक थी। इसकी सुन्दरता और शोभा का वर्णन औपपातिक सूत्र में विस्तारपूर्वक मिलता है । यह अंग देश की राजधानी थी । परन्तु राजा श्रेणिक की मृत्यु (ईस्वीपूर्व लगभग ५४४) के पश्चात् महाराज कोणिक ने, राजगृह को छोड़कर चम्पानगरी को अपनी राजधानी बना लिया । निरयावलिका सूत्र में इस घटना का वर्णन इस प्रकार है–

मगधपति राजा श्रेणिक बहुत वृद्ध हो चुके थे । उनके पुत्रों में अशोकचन्द्र कोणिक सबसे बड़ा, प्रखर, तेजस्वी और महत्वाकांक्षी था । इसका जन्म नाम अशोकचन्द्र था, परन्तु एक अंगुली खंडित (कूणी) होने से कोणिक नाम प्रसिद्ध हो गया । बौद्ध साहित्य में इसी का "अजातशत्रु" नाम प्रसिद्ध है ।

राजा श्रेणिक ने अपने दो लघु पुत्रों हल्ल-विहल्ल कुमारों को राज्य की दो अमूल्य श्रेष्ठ वस्तुएं दे दीं–देवनामी हार और सिंचानक हाथी । इससे कोणिक का मन जल-भुन गया । फिर राज्य सिंहासन की प्राप्ति की तीव्र अभिलाषा से प्रेरित होकर उसने अपने अन्य दस भाइयों को साथ मिलाकर षड्यंत्र रचा और राजा श्रेणिक को बन्दी बना लिया । स्वयं मगधाधिपति बन गया और दस अन्य भाइयों को राज्य के छोटे-छोटे भाग बाँट दिये ।

राज्याभिषेक कराकर तथा राज-चिन्हों से अलंकृत होकर कोणिक अपनी पूज्य माता चेलना के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चरण-वन्दन करने आया । पुत्र को आता देखकर माता चेलना ने मुँह फेर लिया । कोणिक ने कहा–"हे माता ! क्या तुम अपने पुत्र को राजा के रूप में देखकर प्रसन्न नहीं हो ?"

रानी चेलना ने रोषपूर्वक उत्तर दिया–"जिस परम वत्सल पिता ने अपने प्राणों की परवाह न करके पुत्र-प्रेमवश पुत्र को जीवन दान दिया, वही पुत्र राज्य का लोभी बनकर पिता को बन्दी बनाए, पिंजरे में डाल दे और स्वयं राजा बन बैठे तो कौन माँ ऐसे पितृघाती पुत्र का मुँह देखना चाहेगी ?"

माता के संतप्त हृदय से निकले वचनों से कोणिक का हृदय बहुत दुःखी हो गया । उसने पूछा–"पिताजी ने मुझे किस प्रकार जीवनदान दिया, उनके मन में क्या सचमुच मेरे प्रति प्रेम था ?"

चेलना ने कहा–इतना गहरा पुत्र-प्रेम तो किसी विरले पिता के ही हृदय में होता है ? तू सुनना ही चाहता है, तो सुन । जब तू गर्भ में था, तब मुझे पति के हृदय का माँस खाने का एक अत्यन्त घृणित दोहद उत्पन्न हुआ । इस दोहद की पूर्ति तो दूर, इसके विचार से ही मैं अत्यन्त लज्जित और दुःखी रहने लगी । किसी तरह तुम्हारे पिताजी ने मेरी चिन्ता का कारण पता लगा लिया, और बहुत ही वीरता, साहस एवं चतुराई के साथ मेरा दोहद पूर्ण करवाया ।

तुम्हारा जन्म होते ही मेरे मन में तेरे प्रति अत्यन्त घृणा और दुर्विचार आये, कि ऐसी पितृघातक सन्तान को जन्म देने से ही क्या लाभ है ? मैंने जन्मते ही तुझे नगर के बाहर कूड़े के ढेर (उकरड़ी) में फिंकवा दिया, जहाँ एक मुर्गे ने माँस पिंड समझकर तुम्हारी यह अंगुली नोंच डाली । किन्तु तुम्हारे पिताजी को पता चलते ही उन्होंने मुझे उपालम्भ दिया, स्वयं दौड़कर गये, तुम्हें उठाकर लाये, ममतापूर्वक तुम्हारा लालन-पालन किया । तुम्हारी अंगुली में रस्सी और मवाद पड़ जाने से रात को तुम रोते थे । तब तुम्हारे पिताजी अपने मुँह में तुम्हारी अँगुली का मवाद, पीव चूसकर बाहर फेंकते और तुम्हारी पीडा दूर करते ।

यह सुनाते-सुनाते चेलना का हृदय भर आया । उसकी आँखें भीग गईं ।

माता के मुँह से यह वृत्तांत सुनते ही कोणिक पश्चात्ताप में फूट-फूट कर रो पड़ा । वह पिता के बंधन काटने के लिए कुल्हाड़ी लेकर कारागार की तरफ दौड़ा ।

कारागार में पड़े श्रेणिक ने कोणिक को हाथ में कुल्हाड़ी लिये आते देखकर सोचा–यह राज्य-लोभी दुष्ट पुत्र, अब मुझे जान से मारने के लिए आ रहा है । इस बुरी मौत मरने से तो अच्छा है, मैं स्वयं ही मर जाऊँ । यह विचार कर अंगूठी में जड़ित हीरे की कणी को चूस कर उसने पहले ही अपना प्राणान्त कर लिया ।

पिता की मृत्यु से कोणिक शोकमग्न, विह्वल सा हो उठा । पिता की याद कर वह फूट-फूट कर रो पड़ा । अनेक दिनों तक वह शोक में डूबा रहा । उद्यान आदि में बाहर कहीं घूमने पर कुछ शोक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शांत होता, परन्तु ज्योंही राज सिंहासन पर आकर बैठता, पिता की याद में वह शोकमग्न हो उठता । -(निरयावलिका सूत्र)

इस शोक की निवृत्ति के लिए अन्त में मंत्रिमण्डल की सलाह पर उसने राजगृह को भी छोड़ दिया और चम्पानगरी को अपनी राजधानी बनाया ।

यद्यपि राजा कोणिक ने राज्यलिप्सु बनकर पिता को कारागार में डालकर बहुत ही निन्दनीय कार्य किया, परन्तु बाद में माता के समझाने पर अपने दुष्कृत्य पर अनुताप/पश्चात्ताप करके वह माता-पिता के प्रति अत्यन्त आदर भाव रखने लगा । इसीलिए जैन आगमों में उसे माता-पिता का विनीत कहा है । भगवान महावीर का वह परम भक्त था ।

औपपातिक सूत्र में बताया है-राजा कोणिक ने एक प्रवृत्तिवादुक पुरुष रखा था, जो महान् आजीविका पाता था । उसके अधीन अनेक कर्मकर रहते थे, जिनसे भगवान महावीर के प्रतिदिन के समाचार उसे मिलते थे । और वह प्रवृत्तिवादुक पुरुष भगवान महावीर के प्रतिदिन के समाचार प्रातःकाल राजा कोणिक को अवगत कराता रहता था ।

औपपातिक सूत्र के टीकाकार ने राजा के महान व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए बताया है-राजा में महाहिमवान पर्वत के समान पाँच विशेषताएँ होनी चाहिए ।

१. हिमवान पर्वत जिस प्रकार भरतक्षेत्र की मर्यादा करने वाला है, उसी प्रकार राजा राज्य की मर्यादा का रक्षक होता है ।

२. पर्वत जैसे बाहरी उपद्रवों से क्षेत्र की रक्षा करता है, वैसे ही राजा बाहरी आक्रमणों से राज्य की रक्षा करता है ।

३. पर्वत जिस प्रकार अनेक जड़ी-बूटियों एवं औषधियों का भण्डार होता है, उसी प्रकार राजा क्षमा, शौर्य, गांभीर्य, उदारता, दान आदि गुणों का भंडार होता है ।

४. पर्वत जिस प्रकार तूफानों और झंझावातों में अचल रहता है, उसी प्रकार राजा अपनी नीति एवं नियमों में अचल रहता है ।

५. पर्वत जैसे सभी प्राणियों का आधार होता है, वैसे राजा भी प्रजा का आधार होता है ।

कोणिक अपनी प्रजा का पिता, रक्षक, शान्तिकारक और सर्वदा सबका हित करने वाला था ।

● आर्य जम्बू ने भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् १६ वर्ष की आयु में आर्य सुधर्मा के पास दीक्षा ली थी, वीर निर्वाण के १२ वर्ष पश्चात् आर्य सुधर्मा को केवलज्ञान हुआ । आगमों की वाचना का यह प्रसंग सुधर्मा स्वामी की छद्मस्थ अवस्था का ही है । अतः संभव है यह प्रसंग जम्बू स्वामी की २४-२८ वर्ष की अवस्था के बीच का ही हो ।

● अन्तेवासी का अर्थ है-प्रिय शिष्य, अथवा सदा निकट रहने वाला ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Elucidation

■ Here in the clause '*teṇaṁ kāleṇaṁ teṇaṁ samayeṇaṁ*' the words *kāla* and *samaya* are used in different meanings. The word *kāla* here denotes–the fourth division (*ārā*) of present *avasarpiṇī age*; and word *samaya* is used for the period when the description is taking place. It means when *Bhagawāna Mahāvīra* and *Gaṇadhara Sudharmā* were present or were in existence. Thus the meanings of *kāla* and *samaya* are different.

■ *Campā* city was one of the beautiful cities of India at that time. Beauty and enrichment of this city is vividly described in *Aupapātika sūtra*. It was the capital of *Aṅga deśa*. But after the death of king *Śreṇika*, his son king *Koṇika* made this city his capital, leaving the city *Rājagṛha*. *Nirayāvalikā Sūtra* describes the episode like this–

The ruler of *Magadha* country, king *Śreṇika* became very old. Among all his sons, *Aśokacandra Koṇika*, was eldest, brave and ambitious. His name was *Aśokacandra*; but his small finger was damaged (*Kūṇi*). So his *Koṇika* name became familiar. In Bauddha literature his name *Ajātaśatru* is popular.

King *Śreṇika* gave two invaluable things of kingdom to his two younger sons Halla-Vihalla, one was god-given necklace (*Devanāmī hāra*) and the other was elephant *Sīcānaka*. It angried prince *Koṇika*. Inspired by eager ambition to fetch the throne, he conspired along with his ten other brothers and imprisoned king *Śreṇika*. He himself became the ruler of entire *Magadha* country, and gave small territories to his ten brothers.

Being coronated and adorned with the signs of kingship *Koṇika* came to his adorable mother *Celanā* to bow down at her feet; but seeing the son coming, the mother turned her face to other side. *Koṇika* said–"O mother ! are you not happy seeing your son as a king ?"

Queen *Celanā* angrily rebuked–"The most affectionate father, without caring for his own life, gave the life to his son due to hearty affection; the same son, becoming greedy of kingdom, imprisons his own father, encages him and himself becomes king; which mother will like to see the face of such father-torturing son ?"

Listening the agony-hearted words of mother, the heart of *Koṇika* grieved. He asked with curiosity–"How did father give me life ? Did he really love me ?"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Celanā said–Such a deep affection to a son, can be found in the hearts of some fathers only. If you want to know, then listen. When you were in my womb then a hateful but keen desire engrossed me that I must eat the flesh of the heart of your father. I could not express such a hateful desire; but grief overtook me. Anyhow your father could know the cause of my grief. Then with courage and cleverness he fulfilled my that hateful desire.

At the moment of your birth, I was filled with hateful thoughts about you that what's the use to give birth to a father-torturing son like you ? I had you thrown in a dustbin by my maid slave. There a cock cut your little finger assuming you as a lump of flesh. But as soon as your father became aware of this episode, he rebuked me, went and brought you from the dustbin, and nurtured you with enrormous love. Your damaged finger became septic. Due to pus you bitterly weep in the night. Then your father sucked the pus of your finger by his own mouth and vomitted (threw) it. In this way, he used to subside your pain.

Expressing all this the eyes of *Celanā* became wet.

Hearing such an episode from mother, *Koṇika* wept bitterly due to repentance. He ran to the prison, taking an axe in his hand, to cut the chains and fetters of his father.

Seeing *Koṇika* coming, with an axe in his hand, king *Śreṇika* thought–this kingdom-greedy, stupid son is coming to kill me. So it would be better that I myself die than to die such a cruel death. Thinking thus, he gave up his life by sucking and crushing the diamond studded in his ring.

Due to the death of the father, *Koṇika* was engrossed with great grief. He wept bitterly remembering his father. For many a days he was drowned in sorrow. While walking in park etc., sorrow lessened but as he sat on the throne he became sorrowful in the memory of his late father. (*Nirayāvalikā sūtra*)

For relief of this great sorrow, in the end according to the council of his ministers he left *Rājagṛha* and made *Campā* city as his capital.

Although king *Koṇika*, due to his lustfulness for kingdom, had done a most shameful deed–imprisoning his father; but afterwards by the advice and admonishment of his mother, he repented much and was filled with feelings of respect towards his parents.

Thereby he is called courteous to his parents in *Jain Āgamas*. He was also a great devotee of *Bhagawāna Mahāvīra*.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Aupapātika sūtra describes that king *Koṇika* had appointed a person, entitled *Pravṛtti Vāduka*, on an enormous salary. There were many servants under him, their duty was to collect information about *Bhagawāna Mahāvīra;* and that *Pravṛtti Vāduka* used to give full report about *Bhagawāna Mahāvīra* to king *Koṇika* every morning.

The commentator of *Aupapātika sūtra*, discussing the great personality of king, has described that a king must have five special characterstics like the great mountain *Himavāna*.

1. As mountain *Himavāna* confines the boundary limit of *Bharatakṣetra*, so a ruler saves the boundary of his territory.
2. As the mountain saves the territory from external enemies, so the king saves country from external invasions.
3. As the mountain is the treasure of herbs, roots etc., so the ruler should be full of virtues like–forgiveness, valour, generosity, charity etc.
4. As the mountain remains stable in storms and hurricanes, so the ruler remains steadfast in his policy–rules and regulations.
5. As the mountain is the base or support for all living beings, so is the ruler for his public.

Koṇika was like the father of his subject, saviour, peace-giver and always beneficial for all.

■ *Ārya Jambū* accepted consecration from *Sudharmā Swāmī*, when he *(Jambū)* was of 16 years of age and after the salvation of *Bhagawāna Mahāvīra*. Twelve years after the salvation of *Bhagawāna Mahāvīra*, *Ārya Sudharmā* became omniscient. This episode of teaching the *Āgamas*, should be of the time when the age of *Jambū Swāmī* was between 24-28 years.

■ *Antevāsī*–a disciple who lives always near to his preacher, or a favourite disciple of a teacher..

चम्पानगरी में सुधर्मा स्वामी :

सूत्र २ :

तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्ज सुहम्मे थेरे जाव पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेव चम्पा नयरी जेणेव पुण्णभद्दे चेइए तेणेव समोसरिए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिसा णिग्गया...जाव परिसा पडिगया ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्ज सुहम्मस्स अंतेवासी अज्ज जंबू जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासी–

जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं जाव संपत्तेण सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं अयमट्ठे पण्णत्ते । अट्ठमस्स णं भंते ! अंगस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

सूत्र २ :

उस काल और उस समय में, स्थविर आर्य सुधर्मा स्वामी पाँच सौ अणगार शिष्यों के परिवार सहित श्रमण नियमों के अनुसार विचरते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम सुखपूर्वक विहार करते हुए चम्पानगरी के पूर्णभद्र उद्यान में पधारे ।

गणधर सुधर्मा स्वामी का आगमन सुनकर श्रद्धालु नागरिक दर्शन और प्रवचन सुनने के लिए आये । गणधर सुधर्मा ने उपस्थित परिषद्–जनता को धर्म का उपदेश दिया । धर्मोपदेश सुनकर अनेक लोगों ने त्याग- प्रत्याख्यान, नियम आदि ग्रहण किये और वापस अपने स्थान को लौट गये ।

उस काल उस समय में, आर्य सुधर्मा स्वामी के अन्तेवासी आर्य जम्बू ने (परिषदा जाने के पश्चात्) विनयपूर्वक वन्दन-नमन करके उनकी पर्युपासना करते हुए इस प्रकार पूछा–हे भगवन् (भन्ते) ! (यदि) धर्म की आदि करने वाले श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने सातवें अंग शास्त्र उपासकदशा का यह अर्थ फरमाया है तो, हे भगवन् ! अष्टम अंग अन्तकृद्दशा सूत्र में किस विषय का (भाव या वर्णन) प्रतिपादन किया है ?

Sudharmā Swāmiin Campā City :

Maxim 2 :

At that time and at that period, elder sage (*sthavira*) *Ārya Sudharmā Swāmī* with his five hundred mendicant

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

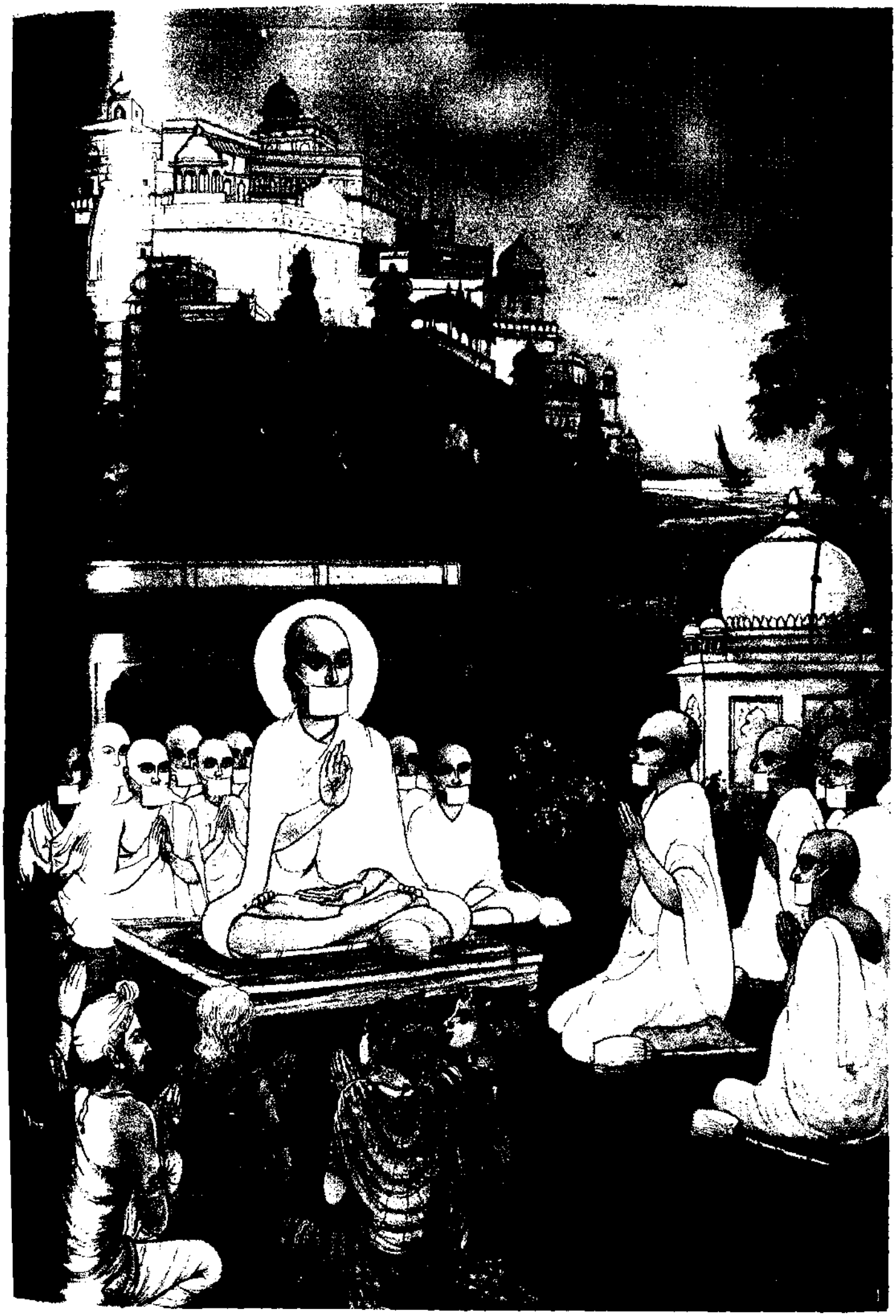

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रक्रम १ :
चम्पा नगरी में सुधर्मा स्वामी

गंगा नदी के तट पर बसी चम्पा नगरी का दृश्य । नगर के बाहर ईशान कोण में पूर्णभद्र चैत्य तथा विविध जाति के वृक्षों से हरा-भरा वनखंड है। एक ओर पूर्णभद्र यक्ष का यक्षायतन है। गणधर सुधर्मा स्वामी इस पूर्णभद्र चैत्य में विराजमान हैं। आर्य जम्बू वन्दना नमस्कार करके पूछते हैं–धर्मतीर्थ की आदि करने वाले श्रमण भगवान महावीर ने अष्टम अंग अन्तकृद्दशा का क्या भाव कहा है?

(वर्ग १/अध्य. १)

Illustration No. 1 :
Sudharmā Swāmī in *Campā city*

Scene of *Cãmpā* city, which is situated at the bank of *Gangā* river. In the middle of North-East direction there is a sanctuary of *Pūrṇabhadra Yakṣa* (deity) and a garden (wood-park) filled with many kinds of trees and greenery. At one side is seen sanctuary of *Pūrṇabhadra Yakṣa* (deity). *Gaṇadhara Sudharmā Swāmī* is sitting in this sanctuary. *Ārya Jambū* asks bowing down to him–What subject matter of eighth *Aṅga–Antakṛddaśā Sūtra* has *Bhagawāna Mahāvīra* expressed in eighth *Aṅga–Antakṛddaśā Sūtra* ?

(Sec. 1/Ch. 1)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

disciples, according to the sage rules, wandering from village to village happily came to *Pūrṇabhadra* garden of *Campā* city.

Knowing about the arrival of *Gaṇadhara Sudharmā Swāmī*, the citizens full of faith came to bow down to him and to listen his religious sermon. *Gaṇadhara Ṣudharmā* gave religious sermon to present congregation. Listening that sermon many persons accepted the vows of renunciation and expiation and afterwards went back to their houses.

At that time and at that period, the favourite or always living near disciple of *Sudharmā Swāmī*, after the departure of the congregation, *Ārya Jambū* courteously bowing down asked–O *Bhagawan (Bhante)* ! The beginner (propagator) of religion *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra Swāmī* described this subject matter of seventh *Aṅgasūtra*, then O *Bhagawan* ! What subject matter he described in the Eighth *Aṅgaśāstra– Anta-kṛiddaśā Sūtra* ?

विवेचन

इन सूत्रों में 'जाव' और 'वण्णओ' इन दो शब्दों का बार-बार प्रयोग हुआ है । आगे भी होगा और अनेक सूत्रों में इनका प्रयोग होता है । दोनों शब्दों का प्रयोजन इस प्रकार है–

जाव–अर्थात्–'यावत्'' यानी जब तक, वहाँ तक । इस शब्द से यह संकेत किया जाता है कि इस विषय का विस्तृत पाठ और विस्तृत वर्णन अन्य स्थान पर किया गया है, उसे यहाँ पर भी प्रसंगानुसार समझ लेना चाहिए ।

वण्णओ–शब्द का प्रयोग उस सम्बन्धित प्रसंग व विषय वस्तु की अनेक विशेषताओं पर प्रकाश डालने के लिए किया जाता है । वर्णनीय वस्तुएँ अनेक हैं, उनके गुण/विशेषताएं भी अनेक हैं । जिस प्रकार नगर, पर्वत, उद्यान, राजा आदि का वर्णन जिस-जिस स्थान पर विस्तारपूर्वक किया गया है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उन पाठों की बार-बार पुनरावृत्ति नहीं हो, इसलिए वहाँ "वण्णओ" (वर्णक या वर्णनीय) शब्द का संकेत प्रसंगानुसार उस सम्पूर्ण भाव को समझने के लिये किया जाता है । चम्पानगरी, पूर्णभद्र चैत्य आदि का विस्तृत वर्णन औपपातिक सूत्र में है ।

परिसा णिग्गया जाव ..... यहाँ पर "जाव" शब्द से परिषद् के अनेक भेद, उनके आने के विविध प्रयोजन, धर्म देशना सुनकर जीवादि तत्त्वों का ज्ञान, दीक्षा, श्रमण अथवा श्रावक व्रत ग्रहण आदि विविध विषयों का वर्णन औपपातिक सूत्र से समझना चाहिए ।

सुहम्मे थेरे जाव ..... इस 'जाव' शब्द में सुधर्मा स्वामी का सम्पूर्ण वर्णन समझ लेने की सूचना की गई है । ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र अध्ययन १ में आर्य सुधर्मा स्वामी के समग्र व्यक्तित्व का सुन्दर यथार्थ परिचय कराया गया है । वह मूल पाठ भावार्थ सहित अन्तकृद्दशा महिमा में दिया गया है । पाठक उससे सुधर्मा स्वामी का सम्पूर्ण वर्णन जानें ।

यहाँ सुधर्मा स्वामी को 'स्थविर' कहा गया है । सुधर्मा स्वामी ने ५० वर्ष की अवस्था में दीक्षा ली थी और ३० वर्ष तक भगवान महावीर की सेवा में रहे । यह घटना-प्रसंग भ. महावीर के निर्वाण के बाद का है । अतः इस समय इनकी अवस्था ८० वर्ष से अधिक की होनी चाहिए ।

'स्थविर' शब्द का अर्थ है–जो स्वयं धर्म एवं आचार-मर्यादा आदि में स्थिर (स्थित) रहकर दूसरों को भी स्थिर करने में समर्थ हो ।

आगमों में स्थविर तीन प्रकार के बताये हैं ।

१. वयःस्थविर--कम से कम ६० वर्ष की आयु का हो ।

२. दीक्षा स्थविर--कम से कम २० वर्ष की दीक्षा पर्याय वाला ।

३. श्रुत स्थविर–जो स्थानांग एवं समवायांग सूत्र के अर्थ का ज्ञाता हो ।

आर्य सुधर्मा तो तीनों ही दृष्टियों से स्थविर थे ।

आर्य–प्राचीन समय में आर्य शब्द एक सम्मानजनक सम्बोधन था । शील एवं ज्ञान सम्पन्न व्यक्ति के लिए 'आर्य' शब्द का अधिक प्रयोग होता था । आगमों में गणधर सुधर्मा एवं जम्बूस्वामी तथा इनके उत्तरवर्ती आचार्यों के लिए भी 'आर्य' (अज्ज) शब्द का प्रयोग आगमों व पश्चातवर्ती स्थविरावली में मिलता है ।

भन्ते–जैन एवं बौद्ध परम्परा में अपने धर्मगुरु, धर्माचार्य तथा परम श्रद्धेय आप्त पुरुषों के लिए भन्ते शब्द का प्रयोग मिलता है । भन्ते के अनेक अर्थ हैं, जैसे–भदन्त । ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि ऐश्वर्यों से युक्त अथवा भवान्त–भव का, संसार परिभ्रमण का अन्त करने वाले । भगवान शब्द से भी यही अर्थ समझना चाहिए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Elucidation

In these maxims the words '*jāva*' and '*vaṇṇao*' are used many times and will be used further. These words are used in many *sūtras*. Meanings of both the words are as follows–

(1) *Jāva* means 'yāvat'–until, upto that definite point. By this word it is pointed out that the detailed reading and vivid description of this very subject has been done elsewhere–the other *sūtra* or *sūtras*, that should also be conceived here, at this very point, according to reference.

(2) The word '*Vaṇṇao*' used for throwing light on various specialities of the related reference and subject matter. There are many describable things, their features and qualities are also many. As the descriptions of city, mountain, garden, park, king etc., are vividly made at some particular places in *sūtra* or *sūtras* that should not be repeated over and again. For this purpose the word *vaṇṇao* (descriptive or describable) is used. It also points out that the reader should conceive all the subject related and referred at the very point. The detailed description of *Campā* city and *Pūrṇabhadra caitya* (temple) we get in *Aupapātika sūtra*.

(3) *Parisā ṇiggayā jāva*.....Here *jāva* word indicates many kinds of congregations, many purposes of their coming, the knowledge of soul etc., elements, consecration, accepting house holder's vows etc., and various subjects like this should be known from *Aupapātika sūtra*.

(4) *Suhamme there jāva*.....Here the word '*jāva*' indicates to conceive all and all about *Sudharmā Swāmī*. In *Jñātādharmakathāṅga Sūtra*, chapter 1, the full and vivid description of the personality and personal traits of *Sudharmā Swāmī* has been given in a very lucid style. That original reading with its version we have given in *Antakṛddaśā Mahimā*. Readers are advised to understand all about *Sudharmā Swāmī* from there.

(5) Here the word *sthavira* (elder sage) is used for *Sudharmā Swāmī*. *Sudharmā Swāmī* accepted consecration when he was 50 years of age, and remained upto 30 years in the service of *Bhagawāna Mahāvīra*. This episode is narrated after the salvation of *Bhagawāna Mahāvīra*. Therefore at this time the age of *Sudharmā Swāmī* should be more than eighty years.

The word *sthavira* (elder sage) means the sage who himself remains stable in religion and religious rites and rules and should be capable to make others also stable in religion and sage activities.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Three types of elder sages are described in *Āgamas*.

(i) *Vayaḥ sthavira* (Elder by age)–He must be at least sixty years of age.

(ii) *Dīkṣā sthavira* (Elder by consecration)–He must have been consecrated at least twenty years before.

(iii) *Śruta sthavira* (Elder by knowledge)–He must know the meaning of *Sthānāṅga* and *Samavāyāṅga*.

Ārya Sudharmā was elder sage by all the aforesaid three points of view.

Ārya–In ancient times the word *Ārya* was an address denoting honourable, superior etc. This address was frequently used for the learned persons and persons opulent with rectitude.

We get the word *Ārya* (*Prākṛta form Ajja*) used for *Gaṇadhara Sudharmā*, *Jambū* and later preachers in *Āgamas* and later literature.

In Jain & Bauddha tradition the word *Bhante* is frequently used for religious teachers, preachers and authentic persons. The word *Bhante* has many renderings, like–opulated with the high virtues of right knowledge, faith, conduct etc., or *Bhavānta*–destructor of the cycle of births and deaths. This meaning should also be conceived by the word *Bhagawāna*.

सूत्र ३ :

एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अट्ठ वग्गा पण्णत्ता ।

जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अट्ठ वग्गा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं कइ अज्झयणा पण्णत्ता ?

एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता तं जहा–

गोयम[१] समुद्द[२] सागर[३] गंभीरे[४] चेव होइ थिमिए[५] य ।
अयले[६] कंपिल्ले[७] खलु, अक्खोभ[८] पसेणई[९] विण्हू[१०] ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र २ :

सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया–(**एवं खलु**–निश्चित रूप में) हे जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर यावत् जो मोक्ष पधार चुके हैं, उन्होंने अन्तकृद्दशा सूत्र के आठ वर्गों का प्रतिपादन किया है ।

जम्बू–हे भगवन् ! यदि श्रमण भगवान ने अन्तकृद्दशा सूत्र के आठ वर्ग कहे हैं तो भगवन् ! अन्तकृद्दशा सूत्र के प्रथम वर्ग में कितने अध्ययन कहे हैं ?

सुधर्मा–हे जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तकृद्दशा सूत्र के प्रथम वर्ग के दश अध्ययन कहे हैं, जो इस प्रकार हैं ।

१. गौतम कुमार, २. समुद्र कुमार, ३. सागर कुमार, ४. गंभीर कुमार, ५. स्तिमित कुमार, ६. अचल कुमार, ७. काम्पिल्य कुमार, ८. अक्षोभ कुमार, ९. प्रसेनजित और १०. विष्णुकुमार ।

Maxim 3 :

Answered *Sudharmā Swāmī.*

Definitely *Jambū ! Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra,* (until) who has attained salvation, described eight sections or divisions of *Antakṛddaśā sūtra.*

Jambū–O *Bhagawan !* If *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra* has described eight sections or divisions of *Antakṛddaśā sūtra,* then how many chapters he has described in first section.

Sudharmā–O *Jambū ! Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra Swāmī* has told ten chapters of first section of *Antakṛddaśā sūtra,* which are as following–

(1) *Gautama Kumāra,* (2) *Samudra Kumāra* (3) *Sāgara Kumāra* (4) *Gambhīra Kumāra,* (5) *Stimita Kumāra* (6) *Acala Kumāra* (7) *Kāmpilya Kumāra,* (8) *Akṣobha Kumāra,* (9) *Prasenajita and* (10) *Viṣṇu Kumāra.*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम अध्ययन

द्वारका वर्णन

सूत्र ४ :

जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता । तं जहा—गोयम जाव विण्हु ।

पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई णामं णयरी होत्था । दुवालस जोयणायामा णव-जोयण वित्थिण्णा धण-वइ-मइ-णिम्मिया चामीगर-पागारा नाणामणि-पंचवण्ण कविसीसग-परिमण्डिया सुरम्मा ! अलकापुरी संकासा पमुइय-पक्कीलिया पच्चक्खं देवलोगभूया पासाइया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा ।

सूत्र ४ :

आर्य जम्बू—हे भगवन् ! यदि श्रमण भगवान महावीर ने आठवें अंग अन्तकृद्दशा सूत्र के प्रथम वर्ग के दस अध्ययन कहे हैं, जैसे गौतम आदि, तो हे भगवन् ! भगवान महावीर स्वामी ने प्रथम अध्ययन में क्या भाव कहा है ? किस प्रकार का वर्णन किया है ?

आर्य सुधर्मा—हे जम्बू ! वह इस प्रकार है ।

उस काल उस समय में द्वारका नाम की एक नगरी थी । वह नगरी बारह योजन लम्बी, नौ योजन चौड़ी थी । धनपति-कुबेर ने अपनी बुद्धि कल्पना से उसका निर्माण किया था । वह सोने के कोट से युक्त, पांच प्रकार की (इन्द्र, नील, वैडूर्य, पद्म एवं राग आदि) मणियों से जटित कंगूरों से सुशोभित थी । कुबेर की नगरी अलकापुरी के समान बड़ी सुरम्य लगती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

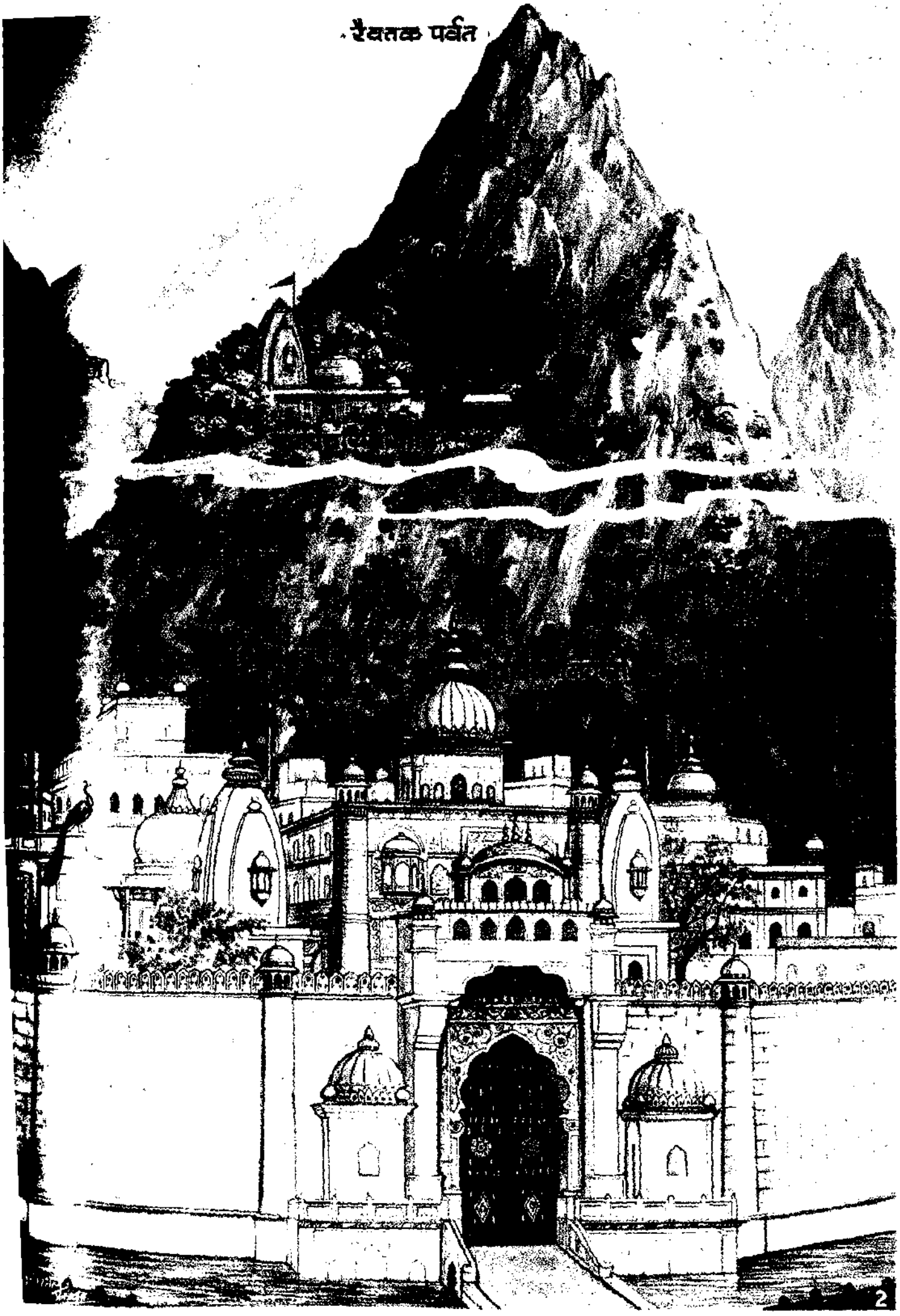

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रक्रम २ :

द्वारका नगरी

सुधर्मा स्वामी ने द्वारका नगरी के विषय में बताया–"कुबेर की नगरी के समान समृद्धि-सम्पन्न द्वारका नगरी के उत्तर-पूर्व दिशा में रैवतक नामक विशाल पर्वत था, रैवतक पर्वत पर नन्दनवन नामक उद्यान तथा सुरप्रिय यक्ष का यक्षायतन था। वनखंड के मध्य में एक विशाल अशोक वृक्ष तथा उसके नीचे पृथ्वी शिलापट्ट था।"

(वर्ग १/अध्य. १)

Illustration No. 2 :

Dwārakā city

Sudharmā Swāmī told about *Dwārakā* city–"*Dwārakā* was a flourishing city, like the city of *Kubera* (god of wealth). In the north-east direction of this city there was a great, high and vast mountain named *Raivataka.* At that mountain, there was a garden–park named *Nandanavana* and sanctuary of *Surapriya Yakṣa* (deity). In the middle of park–garden, there was a huge *Aśoka* tree and under it a large smooth rock."

(Sec. 1/Ch. 1)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थी । प्रमोद (आमोद-प्रमोद) और क्रीड़ा के अनेक स्थान बने हुए थे, जिनसे साक्षात् देवलोक के समान मन को प्रसन्न करने वाली और दर्शनीय थी । वह **अभिरूप**–एक बार देखने पर बार-बार देखने की इच्छा उत्पन्न करने वाली और **प्रतिरूप**–जब भी देखो, तब नई सजी हुई सी प्रतीत होती थी ।

Chapter 1

Description of Dwārakā City

Maxim 4 :

Ārya Jambū–O *Bhagawan* ! If *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra* has expressed ten chapters of first section of eighth *Aṅga Antakṛddaśā sūtra*, like *Gautama* etc., then O *Bhagawan* ! What subject matter has *Bhagawāna Mahāvīra* told in first chapter ? Which type of description has he made ?

Ārya Sudharmā–O *Jambū* ! Definitely that description is like this.

At that time and at that period there was a city named *Dwārakā* (*Bāravaī*). It was twelve *Yojana* long and nine *Yojana* broad. It was built by the imaginative intellect of *Vaiśramaṇa* (*Kubera*–the god of wealth). It had ramparts of gold and adorned by turrets studded by five kinds of gems–*Indra, Nīla, Vaiḍūrya, Padma, Rāga* etc. It was beautiful, as *Alakāpurī*–the city of god of wealth. There were numerous places of sports and pastime, rejoicings, amusements etc. On account of these, it was heart-pleasing like heaven and worth-seeing. It was *abhirūpa*–seeing once inspires the desire of seeing over and again; and *pratirūpa*–whenever visualised seemed newly adorned, that is, it was adorned in such a peculiar style that whenever seen from any corner and any way a new reflection of adornment came into view.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन

जैसा कि पहले बता चुके हैं प्रारंभ के पाँच वर्गों के ५१ अध्ययनों में जिन साधक आत्माओं का वर्णन है उनका सम्बन्ध द्वारका नगरी एवं वासुदेव श्रीकृष्ण के राज परिवार के साथ रहा है। इसलिए सर्वप्रथम द्वारका नगरी आदि का वर्णन किया गया है।

द्वारका–भारतीय साहित्य और इतिहास में अत्यन्त प्रसिद्ध यह नगरी भारत की अतीव समृद्धिशाली और सुन्दरतम नगरियों में थी। इसके निर्माण के विषय में यह घटना प्रसिद्ध है–

मथुरा के अत्याचारी शासक कंस का श्रीकृष्ण के हाथों अन्त हो जाने पर उसकी पत्नी जीवयशा रोती बिलखती अपने पिता प्रतिवासुदेव जरासंध के पास गई। उसका हृदय विदारक विलाप और उत्तेजक वचन सुनकर जरासंध क्रोध में आग बबूला हो उठा। उसने शौरीपुर के राजा समुद्रविजय जी के पास दूत भेजा कि यदि अपना भला चाहते हो तो तुरंत कृष्ण-बलराम को मेरे पास भेज दो, अन्यथा मैं शौरीपुर का सर्वनाश कर डालूँगा।

समुद्रविजय जी ने अपने मंत्रियों एवं निमित्तज्ञों से पूछा–हमें क्या करना चाहिए ? प्रधान निमित्तज्ञ ने बताया–यद्यपि आपके वंश में तीन-तीन महापुरुष पैदा हुए हैं। भावी तीर्थंकर कुमार अरिष्टनेमि, वासुदेव श्रीकृष्ण एवं बलदेव बलभद्र। इनके रहते कोई आपका बाल बांका नहीं कर सकता, परन्तु यह भूमि यादवों के लिए अनुकूल नहीं है। आये दिन के संघर्ष एवं अशान्ति से बचने के लिए आप सपरिवार दक्षिण-पश्चिम दिशा में प्रस्थान कर दीजिए। जाते-जाते जहाँ पर सत्यभामा पुत्र रत्न को जन्म दे, वहीं पर अपना झण्डा गाड़ दें। उसी भूमि पर यादव वंश का अभ्युदय होगा।

समुद्रविजय जी, वसुदेव, श्रीकृष्ण, बलभद्र आदि पूरा यादव कुल चलता-चलता दक्षिण-पश्चिमी समुद्रतट पर पहुँच गया। वहाँ रैवतक गिरि की वायव्य दिशा में छावनी डाली। वहीं पर सत्यभामा ने भानु और भ्रमर–दो पुत्रों को जन्म दिया। निमित्तज्ञ के कहे अनुसार वहीं पर यादवों ने अपनी राजधानी बनाने का निश्चय किया। वासुदेव श्रीकृष्ण ने अष्टम भक्त तप करके देवता का स्मरण किया। सुस्थित नामक देव उपस्थित हुआ। वासुदेव ने कहा–मेरे लिए एक नई नगरी का निर्माण करो। देवता ने इन्द्र महाराज को श्रीकृष्ण वासुदेव की भावना बताई। इन्द्र महाराज ने वैश्रमण कुबेर को आदेश दिया कि वासुदेव श्रीकृष्ण के लिए एक अतीव रमणीय विशाल नगरी का निर्माण करो। कुबेर ने १२ योजन लम्बी और ९ योजन चौड़ी एक भव्य विशाल नगरी का निर्माण किया। इस नगरी में अनेक द्वार-उपद्वार होने से इसका नाम (द्वारवती) द्वारका रखा गया।

आचार्य हेमचन्द्र के वर्णन के अनुसार–यहीं पर पहले वासुदेव की द्वारका नामक नगरी थी जो बाद में समुद्र में डूब गई। कुबेर ने उसी स्थान पर वैसी ही नगरी का निर्माण किया इसलिए उसका भी नाम द्वारका रखा। –(त्रिषष्टि शलाका ८,१५१)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुछ विद्वानों का मत है कि–उसमें दश दशार्ह, एक राजा श्रीकृष्ण, एवं बलदेव यों बारह प्रमुख शासक (स्वामी) होने से इसका नाम बारापति पड़ा जो धीरे-धीरे द्वारापति या द्वारका कहलाई ।

● पासादीया आदि ४ विशेषणों का अर्थ इस प्रकार है–

पासादीया–जिसे देखने से प्रसन्नता अनुभव हो ।

दरिसणीया–जो देखने योग्य हो ।

अभिरूवा–जिसे बार-बार देखने का मन होता हो ।

पडिरूवा–जिसे जब भी देखो, सुन्दर और सुरम्य दीखे ।

Elucidation

As it is expressed in previous pages that the description of 51 propiliators has been given in former five sections, these all were related to *Dwārakā* city and the royal family of *Vāsudeva Śrī Kṛṣṇa*. Hence first of all, the description of *Dwārakā* city has been given.

Dwārakā–It is the most popular city in History and literature of India. It was most beautiful and wealthy city. How and why it was built, the following popular episode makes it clear to understand easily.

When *Śrī Kṛṣṇa* murdered the cruel and tyrant ruler of *Mathurā* city, named *Kańsa*, then the wife of *Kańsa–Jīvayaśā* went to her father *Jarāsandha*, who was anti-*Vāsudeva* and ruler of *Rājagṛha* (really monarch of southern half of Indian penunsula). Weeping bitterly *Jīvayaśā* expressed the whole happenings and murder of her husband *Kańsa*, to her mighty father *Jarāsandha*. Listening all this *Jarāsandha* became red in fury. He sent his ambassador to *Śorīpura-ruler–Samudravijaya* (*Samudravijaya* was the great father of *Kṛṣṇa* and *Balarāma;* because the father of *Kṛṣṇa* and *Balarāma–Vasudeva* was the youngest brother of *Samudravijaya*. *Kṛṣṇa Balarāma* both went to *Śorīpura* after killing *Kańsa*).

Ambassador came to the court of *Samudravijaya* and spoke in harsh words–*Samudravijaya* ! Either you send *Kṛṣṇa-Balarāma* with me at once or my lord *Jarāsandha* will destroy you, your city and all *Yādavas* exhaustively.

The harsh words were intolerable to *Kṛṣṇa*. He disgraced the ambassador and the ambassador returned back angrily.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Samudravijaya called a meeting of his kiths and kins, ministers and royal astrologers and then asked–What should be done in present circumstances ?

Premier Astrologer told–Though in your family there are three highly great persons–(1) *Tīrathaṁkara Ariṣṭanemi*, (2) *Vāsudeva Kṛṣṇa* and (3) *Baladeva Balarāma*, so none can harm you, may he be mighty like *Yama*; but this land (territory) is not favourable for *Yādavas*. So for avoiding the struggle and peacelessness of everyday, you should leave this place and go to south-west direction with all your families and citizens. You please stop at the place, where *Satyabhāmā*, wife of *Śrī Kṛṣṇa*, give the birth to a son. That land would be favourable to *Yādavas* and there you will prosper.

According to the counsel of royal astrologer, *Samudrovijaya*, *Vasudeva*, *Kṛṣṇa*, *Balarāma* etc., whole *Yādava* family and citizens went out from *Śorīpura* and approached the south-west coast of ocean (*Lavaṇa samudra;* present Arabian gulf.) Here all encamped near *Raivataka* mountain. At that place *Satyabhāmā* gave birth to two sons–(1) *Bhānu* and (2) *Bhramara*. *Yādavas* decided to establish their capital at that very place. Observing three days' fast *Śrī Kṛṣṇa* called a deity. *Susthita* deity came. *Vāsudeva* expressed his desire–Please, construct a new city for me. Deity went to his ruler-*Indra* and gave words to the desire of *Kṛṣṇa*. *Indra* ordered *Vaiśramaṇa– Kubera* (god of wealth) to construct a very beautiful, heart.-pleasing great and vast city for *Vāsudeva Śrī Kṛṣṇa*.

Kubera constructed a vast and grand city which was twelve *yojanas* in length and nine *yojanas* in breadth. In this city there were many great and small gates, so it was named as *Dwārakā*.

According to *Ācārya Hemacandra* previously at this place was situated first *Vāsudeva's Dwārakā* city which was drowned in the sea afterwards. *Kubera* created at same place, the city, which was like old city. Therefore it is also named as *Dwārakā*, (*Triṣaṣṭi Śalākā*, 8-151)

Some scholars opine that in this city there were twelve rulers (chief administrators–ten *Daśārhas*, *Śrī Kṛṣṇa* and *Balarāma*, so it is called *Bārāpati*, which laterly became *Dwārāpati*, *Bāravaī* and finally *Dwārakā*.

Modern Historians and archaelogists say that this city was the centre of sea-trade from Arabian contries and middle east Asia in ancient time so it was called as western gateway of India. Hence this city became popular as *Dwārakā*.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

■ The meanings of four adjectives *Pāsādīya* etc., are as under–

Pāsādīyā–By seeing which the feeling of pleasure arises.

Darisaṇīyā–worth-seeing.

Abhirūvā–Desire for seeing which arouses again and again.

Paḍirūvā–Whenever seen it looked new, nice and splendid.

सूत्र ५ :

तीसे णं बारवईए नयरीए बहिया उत्तर-पुरत्थिमे दिसिभाए, एत्थ णं रेवयए णामं पव्वए होत्था । वण्णओ ।

तत्थ णं रेवयए पव्वए णंदणवणे णामं उज्जाणे होत्था । वण्णओ ।

सुरप्पिए णामं जक्खायतणे होत्था पोराणे से णं एगेणं वणसंडेणं परिक्खित्ते असोगवरपायवे ।

तत्थ णं बारवईए नयरीए कण्हे णामं वासुदेवे राया परिवसइ महया (हिमवंत) राय-वण्णओ ।

से णं तत्थ समुद्दविजयपामोक्खाणं दसण्हं दसाराणं । बलदेवपामोक्खाणं पंचण्हं महावीराणं । पज्जुण्ण-पामोक्खाणं अद्धट्ठाणं कुमारकोडीणं । संबपामोक्खाणं सट्ठीए दुद्दंत साहस्सीणं । महासेणपामोक्खाणं छप्पण्णाए बलवग्ग साहस्सीणं । वीरसेण-पामोक्खाणं एगवीसाए वीरसाहस्सीणं । उग्गसेणपामोक्खाणं सोलसण्हं रायसाहस्सीणं । रुप्पिणीपामोक्खाणं सोलसण्हं देवीसाहस्सीणं । अणंगसेणापामोक्खाणं अणेगाणं गणियासाहस्सीणं । अण्णेसिं च बहूणं ईसर जाव सत्थवाहाणं

बारवईए णयरीए अद्धभरहस्स य सीमंतयाय सम्मत्थस्स य आहेवच्चं जाव विहरइ ।

श्रीकृष्ण का राज-वैभव

सूत्र ५ :

उस द्वारका नगरी के बाहर ईशान कोण (पूर्व एवं उत्तर दिशा के बीच) में रैवतक नाम का एक पर्वत था । उस रैवतक पर्वत पर नन्दन वन नाम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का एक उद्यान था । उस नन्दन वन में सुरप्रिय नाम का एक प्राचीन यक्षायतन (यक्ष मन्दिर) था । वह उद्यान चारों तरफ से एक विशाल वन खण्ड से घिरा हुआ था, और उस वन खण्ड में एक विशाल अशोक वृक्ष था ।

उस द्वारका नगरी में श्रीकृष्ण वासुदेव राज्य करते थे । जो कि महा हिमवान पर्वत के समान, मर्यादा पुरुषोत्तम थे । (राजा एवं नगरी का वर्णन औपपातिक सूत्र के वर्णन के अनुसार जानना चाहिए ।)

द्वारका नगरी में समुद्रविजय जी आदि दश दशार्ह (पूज्य पुरुष) निवास करते थे । महावीर कहे जाने वाले बलदेव आदि पांच श्रेष्ठ महाबली, प्रद्युम्न आदि साढ़े तीन करोड़ कुमार भी द्वारका में थे । शाम्बकुमार, जिनमें प्रमुख गिने जाते थे ऐसे साठ हजार दुर्दान्त वीर तथा महासेन आदि छप्पन हजार बलवर्ग (सैन्यसमूह) थे । वीरसेन आदि इक्कीस हजार वीर योद्धा, उग्रसेन प्रमुख सोलह हजार राजा एवं रुक्मिणी प्रमुख सोलह हजार रानियां थीं । अनंगसेना आदि हजारों गणिकाएं भी द्वारका में रहती थीं । इनके अतिरिक्त अन्य बहुत से ईश्वर (सम्मानित पदधारी नागरिकों) से लेकर अनेक सार्थवाह (व्यापारी) आदि उस नगरी में निवास करते थे ।

इस प्रकार (विपुल वैभव एवं शक्तिशाली वीर योद्धाओं, नागरिकों से सम्पन्न) उस द्वारका नगरी तथा समस्त अर्ध भरत क्षेत्र (जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के तीन खण्डों) का अधिपतित्व करते हुए वासुदेव श्रीकृष्ण वहां राज्य करते थे ।

Magnificence of Śrīkṛṣṇa's Empire

Maxim 5 :

Out of *Dwārakā* city in the middle of East-North directions (*Īṣāna Koṇa*) there was a mountain named *Raivataka*. On *Raivataka* mountain there was a garden, named *Nandana vana*. In that *Nandana Vana* there was a temple (sanctuary) of *Surapriya Yakṣa* (deity) which was very old. That garden was surrounded by one vast

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

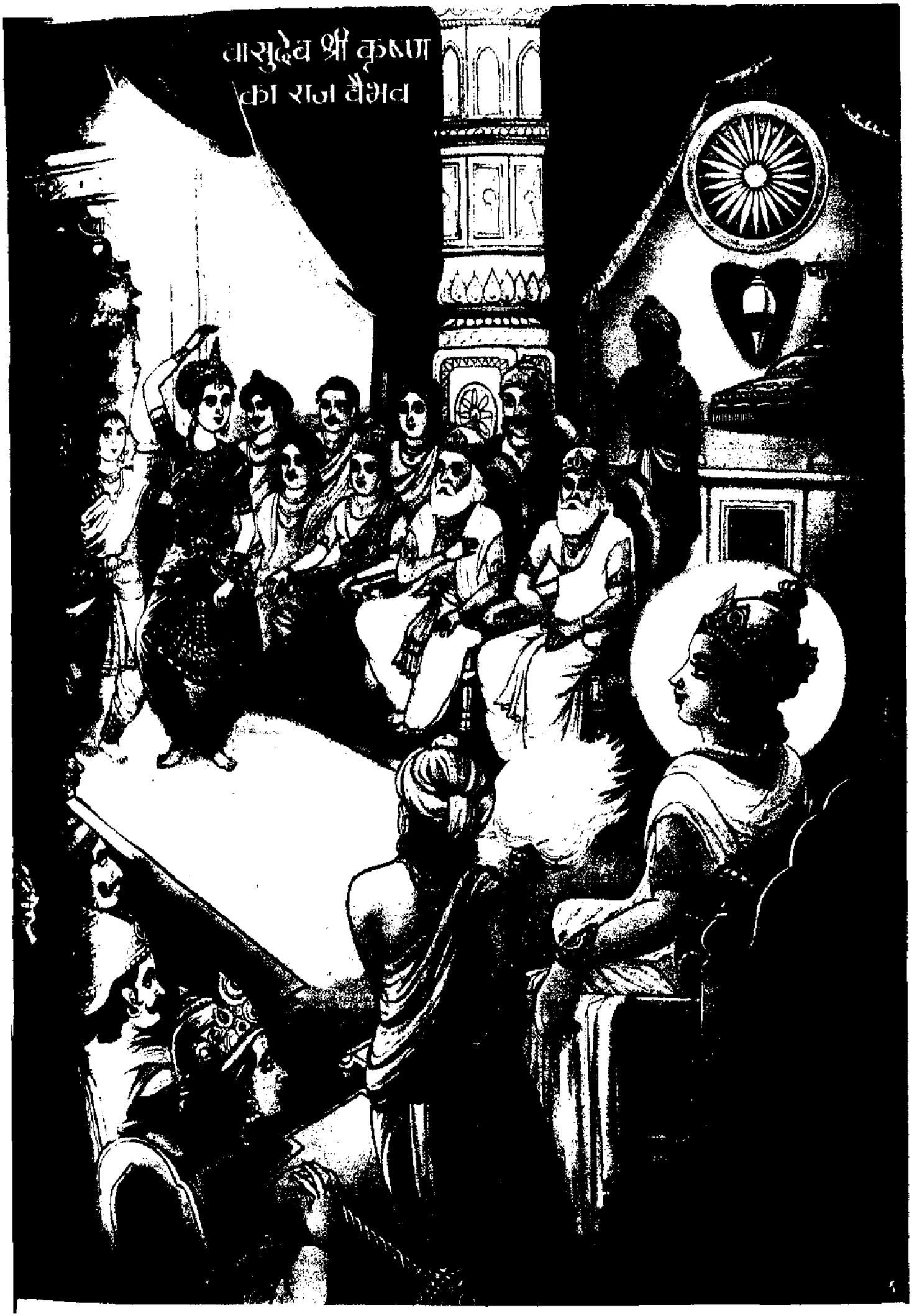

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रक्रम ३ :

श्रीकृष्ण वासुदेव का राजवैभव

वासुदेव श्रीकृष्ण की राजसभा में एक ओर समुद्रविजय, वसुदेव आदि कुल के पूज्य पुरुष आसीन हैं। दूसरी ओर गदाधर बलदेव, प्रद्युम्नकुमार, शाम्ब आदि वीर तथा महासेन, वीरसेन आदि सेनानायक, एक ओर नगर के प्रमुख सार्थवाह आदि उपस्थित हैं। अनंगसेना गणिका नृत्य-गीत से सभा का मनोरंजन कर रही है। सभा-कक्ष में सुदर्शन चक्र पाँचजन्य शंख आदि सज्जित दीख रहे हैं।

(वर्ग १/अध्य. १)

Illustration No. 3 :

View of *Vāsudeva Śrī Kṛṣṇa's* royal assembly

In the royal assembly of *Vāsudeva Śrī Kṛṣṇa*, at one side is seated *Samudravijay* and other adorables. On the other side are sitting mace-bearer *Baladeva*, *Pradyumna*, *Śāmbu* etc., war heroes (braves) *Mahāsena*, *Vīrasena* etc., army chiefs and premier traders of city. Harlot *Anaṅgasenā* is recreating assembly by her music, song and dance. *Sudarśana* (disc weapon), and *Pāñcajanya* conch are also seen there.

(Sec. 1/Ch. 1)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Vanakhaṇḍa, and in that *Vanakhaṇḍa*, there was a huge *Aśoka* tree.

ŚrīKṛṣṇa ruled over that *Dwārakā* city, which was great and high like mountain *Mahāhimavāna*. (More description about king and city should be known from *Aupapātika sūtra*.)

In *Dwārakā* city ten adorables (*Daśa Daśārha*) reside viz., *Samudravijayajī* etc. And there dwell *Balarāma* etc., five great warriors, *Pradyumna* etc., three and half crores princes, sixty thousand great fighters among them *Śāmba Kumāra* was the foremost, over fifty six thousand mighty men (army groups) among them foremost was *Mahāsena*. *Vīrasena* etc., twentyone thousand brave-men, *Ugrasena* etc., sixteen thousand rulers and *Rukmiṇī* (being foremost) etc., sixteen thousand queens dwell in *Dwārakā* city. *Anaṅgsenā* etc., thousands of prostitutes (harlots)–courtesans also live there. Besides these, other numerous *Īśwaras* (having respectable post and position), citizens, *sārthavāhas* (traders) etc., also live in this city.

In this way with vast fortune, magnificence, mighty warriors, citizens, *Dwārakā* city was opulent. *Śrī Kṛṣṇa Vāsudeva* ruled over this city and complete half of Bharat Kshetra (three parts of *Bharata-Kṣetra* of *Jambūdwīpa*).

सूत्र ६ :

तत्थ णं बारवईए णयरीए अंधगवण्ही णामं राया परिवसइ । महया हिमवन्त, वण्णओ ।

तस्स णं अंधगवण्हिस्स रण्णो धारिणी णामं देवी होत्था, वण्णओ । तए णं सा धारिणी देवी अण्णया कयाइं तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि एवं जहा महाबले–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुमिणदंसणं कहणा जम्मं बालत्तणं कलाओ य ।

जोव्वण-पाणिग्गहणं, कंता पासाय भोगा य ॥

णवरं गोयमो नामेणं । अट्ठण्हं रायवरकन्नाणं एगदिवसेण पाणिं गिण्हावेंति अट्ठट्ठओ दाओ ।

सूत्र ६ :

उस द्वारका नगरी में अंधकवृष्णि राजा निवास करते थे, जो महान हिमालय पर्वत की भांति मर्यादा पालक और समर्थ थे । धारिणी नाम की उनकी रानी थी ।

किसी दिन धारिणी रानी अपने शयनागार में (**तंसि तारिसगंसि**–पुण्यवान जनों के योग्य) सुख शय्या पर सोई हुई थी । (इसका वर्णन महाबल के प्रकरण के अनुसार समझ लेना चाहिए) जैसा कि–

धारिणी रानी का सिंह स्वप्न दर्शन, पति को स्वप्न कथन, बालक का जन्म, उसकी बाल-लीलाएं, कला शिक्षण, युवा अवस्था आने पर योग्य कन्याओं के साथ पाणिग्रहण, कान्त रमणीय प्रासाद में रहना और सांसारिक भोग भोगना आदि वर्णन यहां महाबल के समान समझ लेना चाहिए ।

विशेष यह है कि बालक का नाम गौतम कुमार रखा गया । एक दिन में आठ उत्तम कुलीन राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ और कन्यापक्ष की ओर से दाय=प्रीतिदान में आठ हिरण्य कोटि (स्वर्णमुद्राएँ) मिलीं ।

Maxim 6 :

In *Dwārakā* city ruler *Andhakavṛṣṇi* inhabited. He was great like *Himawāna* mountain. *Dhāriṇī* was his queen.

Once *Dhāriṇī* was sleeping on a very comfortable bed, (such a bed can be available to meritorious persons–*taṁsi tārisagaṁsi*) in her bedroom. (Its all description should be understood from the episode of *Mahābala*. As–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रक्रम ४ :

गौतमकुमार का जन्म एवं शिक्षण

प्रथम दृश्य में रानी धारिणी सुसज्जित शयन-कक्ष में सोयी श्वेत सिंह का स्वप्न देखती है।

द्वितीय दृश्य में गौतमकुमार के जन्म की खुशियाँ मनाई जा रही हैं। नृत्य-गान हो रहा है तथा मिष्टान्न बाँटा जा रहा है।

तृतीय दृश्य में गौतमकुमार की बाल-क्रीड़ा, गुरु के पास शस्त्र-शिक्षण तथा आठ राजकन्याओं से पाणिग्रहण का दृश्य है।

(वर्ग १/अध्य. १)

Illustration No. 4 :

Birth and learning of *Gautamakumāra*

First Scene–Sleeping in her decorated bed-room queen *Dhāriṇī* dreams a lion of white colour.

Second Scene–Birth ceremony of *Gautamakumāra*–singing and dancing, sweets are being distributed.

Third Scene–Childish plays of *Gautamakumāra*, learning of strategy from teacher and his marriage with eight royal princesses.

(Sec. 1/Ch. 1)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Queen *Dhāriṇī's* seeing the dream of a lion, expressing her dream to her husband, babybirth, funs of baby, studies of arts etc., young age, marriage with beautiful and cultured maidens, residing in a comfortable and pleasant palace, and enjoyment of worldly pleasures etc. All the description should be conceived here like *Mahābala.*

Here mentionable speciality is–that name of baby was kept *Guatama Kumāra.* He married eight princesses in one day and he got eight crore gold-coins from his fathers-in-law as dowry (*dāya*).

सूत्र ७ :

तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी आइगरे जाव विहरइ । चउव्विहा देवा आगया । कण्हे वि णिग्गए ।

तए णं से गोयमे कुमारे जहा मेहे तहा णिग्गए । धम्मं सोच्चा णिसम्म जं णवरं देवाणुप्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि । देवाणुप्पियाणं अंतिए पव्वयामि ।

एवं जहा मेहे तहा गोयमे वि जाव अणगारे जाए, इरियासमिए जाव इणमेव णिग्गंथं पावयणं पुरओ काउं विहरइ ।

तए णं से गोयमे अणगारे अण्णया कयाइं अरहओ अरिट्ठनेमिस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ जाव अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

तए णं अरहा अरिट्ठणेमि अण्णया कयाइं बारवईओ नयरीओ णंदणवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमइ । पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ ।

भगवान अरिष्टनेमि का द्वारका आगमन और गौतमकुमार की दीक्षा

सूत्र ७ :

उस समय अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान ग्रामानुग्राम विहार करते हुए द्वारका नगरी के नन्दनवन उद्यान में पधारे । भगवान का समवसरण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लगा । भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी एवं वैमानिक–चारों जाति के देव दर्शन करने आये । वासुदेव श्रीकृष्ण भी हजारों के जन समूह के साथ प्रभु के दर्शनार्थ आये ।

तब, वह गौतमकुमार भी मेघकुमार की तरह प्रभु के दर्शन करने के लिए घर से निकला । धर्मोपदेश सुनकर हृदय में धारण करके प्रभु से प्रार्थना की–हे देवानुप्रिय ! मैं अपने माता-पिता को पूछकर, उनकी अनुमति प्राप्त कर आप देवानुप्रिय के पास, प्रव्रजित (श्रमण दीक्षा लेना) होना चाहता हूँ ।

इस प्रकार मेघकुमार की भाँति, गौतमकुमार ने भी माता-पिता से आज्ञा मांगी । अन्त में बड़े समारोह पूर्वक गौतमकुमार ने दीक्षा ग्रहण कर ली । ईर्यासमिति आदि पांच समिति एवं तीन गुप्ति से सावधान रहकर निर्ग्रन्थ प्रवचन-अर्थात् भगवान की आज्ञा अनुशासन को शिरोधार्य करके विचरने लगे ।

उसके पश्चात् गौतम अणगार ने अरिहंत अरिष्टनेमि भगवान के तथारूप-गुण सम्पन्न गीतार्थ स्थविरों के पास सामायिक (आवश्यक सूत्र-श्रुत) आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया । अध्ययन करके गौतम अणगार बहुत से उपवास यावत् (बेला, तेला आदि) तप द्वारा आत्मा को भावित करते हुए आत्मानन्द में लीन रहने लगे ।

तब, अरिहंत अरिष्टनेमि ने किसी अन्य दिन, द्वारका नगरी के नन्दनवन उद्यान से प्रस्थान किया और अन्य भव्य जीवों को मोक्ष मार्ग का प्रकाश करते हुए विचरने लगे ।

Coming of Bhagawāna Aristanemi to Dwārakā and Consecration of Gautamakumāra

Maxim 7 :

At that time and at that period *Arihanta Aristanemi* wandering village to village came to *Nandana* garden of *Dwārakā* city, the religious council *(samavasarana)*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

held. *Bhavanapati, Vāṇavyantara, Jyotiṣka, Vaimānika*– all the four kinds of gods came to see and bow down to *Bhagawāna. Vāsudeva Śrīkṛṣṇa* also came with thousands of people, to see and bow down to him.

Then, *Gautamakumāra* also came out of his palace, for seeing and bowing down to *Bhagawāna like Meghakumāra.* Hearing and taking to heart the sermon of *Bhagawāna,* he requested him–O Reverend sir ! (*Devāṇupriya*–beloved of gods) asking permission from my parents. I want to accept consecration near your lotus feet.

Thus, like *Meghakumāra, Gautamakumāra* also asked permission from his parents. In the end *Gautamakumāra* accepted consecration with great pomp and show. He accepted five circumspections (*Samiti*) as circumspection of movement (*Īryā samiti*) etc. and three incognitoes (*gupti*) and began to wander according to the discipline of *Bhagawāna*, i.e., Jain religious monk order.

Thereafter friar (*aṇagāra*) *Gautama* learnt *Sāmāyika* (*Āvaśyaka sūtra*) etc., eleven *aṅgas* from the elder monks of *Bhagawāna Ariṣṭanemi*. After it observing many types of fast penances, like one day', two days', three days' fast penences etc., and by other types of austerities purifying his soul *Gautama* ascetic reserved himself in soul bliss.

Then, on an other day *Arihanta Ariṣṭanemi* went out from *Nandana* garden of *Dwārakā* city and began to wander village to village telling the path of salvation to other souls–beings.

सूत्र ८ :

तए णं से गोयमे अणगारे अण्णया कयाइं जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छइ; उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठणेमिं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ । करित्ता, वंदइ णमंसइ । वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे मासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए ।

एवं जहा खंदओ तहा बारस भिक्खु पडिमाओ फासेइ । फासित्ता गुणरयणं वि तवोकम्मं तहेव फासेइ णिरवसेसं । जहा खंदओ तहा चिंतेइ तहा आपुच्छइ । तहा थेरेहिं सद्धिं सेत्तुंजं दुरूहइ, मासियाए संलेहणाए बारस वरिसाइं परियाए जाव सिद्धे ।

एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं पढमस्स वग्गस्स पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते ।

(पढमं अज्झयणं सम्मत्तं)

सूत्र ८ :

उसके पश्चात् अन्य किसी दिन, गौतम अणगार जहाँ अरिहंत अरिष्टनेमि विराजमान थे वहाँ आये । अरिहंत अरिष्टनेमि को विनयपूर्वक तीन वार दाईं ओर से बाईं ओर प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वन्दन नमस्कार किया । वन्दन नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया–

हे भगवन् ! मेरी इच्छा है कि आपकी आज्ञा–अनुमति प्राप्त होने पर मैं मासिकी भिक्षु प्रतिमा अंगीकार करूँ ?

(अरिहंत अरिष्टनेमि ने कहा–देवानुप्रिय ! जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो, शुभ कार्य में विलम्ब मत करो ।)

इस प्रकार गौतम अणगार ने स्कन्धक मुनि की तरह क्रमशः बारह भिक्षु प्रतिमाओं की आराधना की । फिर गुणरत्न नामक तप की भी उसी प्रकार सम्पूर्ण आराधना की । (देखिए तालिका नं. १)

तप आराधना करते हुए गौतम अणगार ने स्कन्धक मुनि की भांति ही विचार किया, और स्थविर मुनियों को साथ लेकर शत्रुंजय पर्वत पर चढ़े । वहाँ शुद्ध भूमि की प्रतिलेखना कर एक मास की संलेखना की । इस प्रकार संलेखना पूर्वक बारह वर्ष की निर्दोष दीक्षा पर्याय पूर्ण करके, केवल ज्ञान प्राप्त कर अन्त में सर्व कर्मों का क्षय करके सिद्ध हुए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

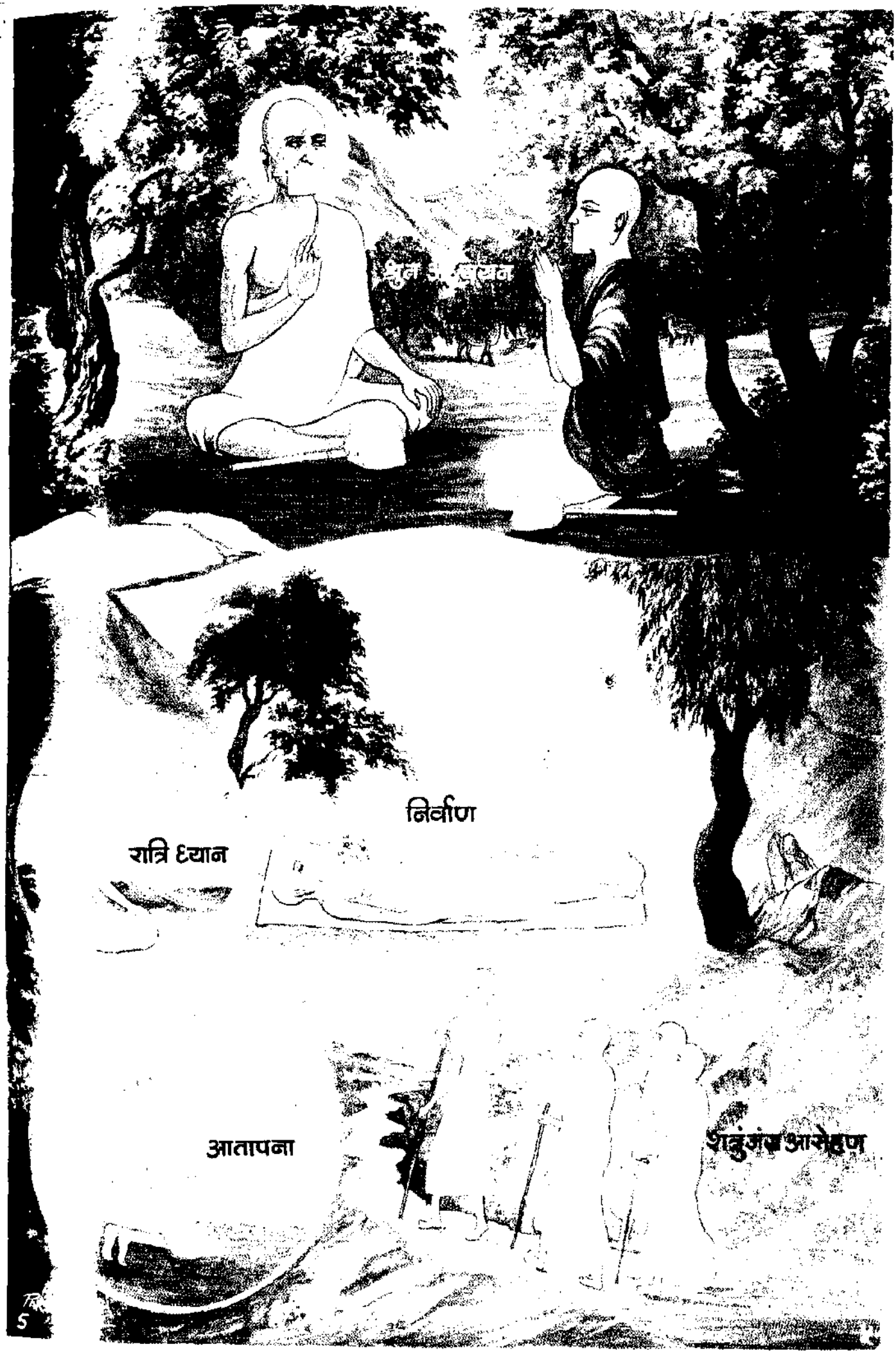

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रक्रम ५ :

गौतम अणगार का निर्वाण

गौतमकुमार ने दीक्षित होकर स्थविरों के पास ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। फिर भिक्षु प्रतिमा अंगीकार की तथा गुणरत्न संवत्सर तप किया। दिन में सूर्य की प्रखर किरणों के सामने वीरासन से बैठकर आतापना के साथ तथा रात्रि में उकडू आसन से ऊर्ध्वबाहु होकर ध्यान करते हैं। अन्त में स्थविरों के साथ शत्रुंजय पर्वत पर जाकर एक मास की संलेखनापूर्वक निर्वाण पद प्राप्त किया। देवताओं ने गौतम मुनि का निर्वाण-महोत्सव मनाया।

(वर्ग १/अध्य. १)

Illustration No. 5 :

Salvation of friar *Gautama*

Consecrated *Gautamakumāra* learnt eleven *aṅgas* from elder sages, practised sage–firm resolutions and observed *Guṇaratna saṁvatsara* austerity. In day time, sitting in *Vīrāsana* posture he grasped the heat of sharp sun-rays and in the night sitting with *utkaṭuka* posture and raising hands upwards meditated. At the nearing ending of his life he climbed mount *Śatruñjaya* with elder sages and attained salvation with one month's *Saṁlekhanā* and gods celebrated salvation-ceremony of monk *Guatama.*

(Sec. 1/Ch. 1)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आर्य सुधर्मा–हे जम्बू ! इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर ने आठवें अंग अन्तकृद्दशा के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह भाव कहा है ।

(प्रथम अध्ययन समाप्त)

Maxim 8 :

Thereafter on an other day ascetic *Gautama* came to *Bhagawāna Ariṣṭanemi*, circumabulated three times, worshipped and bowed down himself with devotion, then respectfully expressed his wish–

"*O Bhagawan* ! If you allow me, I want to observe one month *Bhikṣu Pratimā*.

(*Arihanta Ariṣṭanemi* said–Beloved as gods (*Devāṇupriya*) ! Do as you feel happy, but do not delay in meritorious deeds).

Thus *Gautama* ascetic observed twelve *Bhikṣu Pratimās* like *Skandhaka* monk and practised *Guṇaratna saṁvatsara* penance. (See Table 1)

Practising penances and austerities, ascetic *Gautama* also thought like monk *Skandhaka* and then with elder saints climbed up on *Śatruñjaya* mountain. There he searched a place without flora and insects, i.e., pure place. He made it neat and clean. After that with pure heart and steady propiliation, he accepted one month's fast penance (*saṁlekhaṇā*–Really it is a penance till death).

Thus with *saṁlekhaṇā* and fulfilling twelve years' consecration period and obtaining infinite knowledge, consuming all *karmas* he attained liberation.

Ārya Sudharmā–O Jambū ! Thus *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra* has expressed the subject matter of first chapter of first section of *Antakṛddaśā sūtra*.

[First Chapter concluded]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्ययन २–१०

सूत्र १ :

एवं जहा गोयमो तहा सेसा वि वण्ही पिया धारिणी माया ।

समुद्दे सागरे गंभीरे थिमिये, अयले कंपिल्ले अक्खोभे, पसेणई विण्हू ए-ए एगगमा ।

पढमो वग्गो दस अज्झयणा पण्णत्ता ।

सूत्र १ :

इस प्रकार जैसा गौतम अणगार का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार अन्य नौ का भी वर्णन समझना चाहिए । इन सबके पिता वृष्णि तथा माता धारिणी रानी थी । इन अन्य कुमारों के नाम इस प्रकार हैं–

२. समुद्रकुमार, ३. सागरकुमार, ४. गंभीरकुमार, ५. स्तिमितकुमार, ६. अचलकुमार, ७. कांपिल्यकुमार, ८. अक्षोभकुमार, ९. प्रसेनजित, १०. विष्णुकुमार ।

इन सभी अध्ययनों का वर्णन गौतम मुनि की तरह एक समान जानना चाहिए ।

इस प्रकार प्रथम वर्ग के दस अध्ययन कहे गये हैं ।

(प्रथम वर्ग समाप्त)

Chapterú 2 to 10

Maxim 1 :

Thus, as the description of ascetic *Gautama* has been given, in the same way the description of other 9 chapters should be known and understood. The father of all these was *Andhakavṛṣṇi* and mother was queen *Dhāriṇī* : but the names of *Kumāras* were–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(2) Samudra Kumāra, (3) Sāgara Kumāra (4) Gambhira Kumāra (5) Stimita Kumāra, (6) Acala Kumāra, (7) Kāmpilya Kumāra (8) Akṣobha Kumāra (9) Prasenajita, and (10) Viṣṇu Kumāra

The subject matter of all these chapters is like monk *Gautama* .

Thus these ten chapters are said.

[Chapters 2 to 10 concluded]
[First Section completed]

विवेचन

भिक्षु प्रतिमा

गौतम अणगार ने महामुनि स्कन्धक के समान भिक्षु की बारह प्रतिमाएँ धारण कीं–प्रतिमाओं का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

पहली प्रतिमा का धारक साधु एक महीने तक एक दत्ति अन्न की और एक दत्ति पानी की (दाता द्वारा दिये जाने वाले अन्न और पानी की अखण्ड धारा एक दत्ति कहलाती है) लेता है । एक से लेकर सात प्रतिमाओं का समय प्रत्येक का एक-एक मास बढ़ता जाता है । पहली एक मासिकी, दूसरी दो मासिकी, तीसरी त्रैमासिकी, चौथी चार मासिकी, पाँचवी पंच मासिकी, छठी षट्मासिकी और सातवीं सप्तमासिकी कहलाती है । पहली प्रतिमा में अन्न पानी की एक-एक दत्ति, दूसरी में दो, तीसरी में तीन, यावत् क्रमशः सातवीं में सात दत्ति, अन्न की और सात दत्ति ही पानी की ली जाती हैं । आठवीं प्रतिमा का काल सात अहोरात्रि का है । और नवमी प्रतिमा का भी सात दिन रात है । आठवीं, नवमी, दसवीं प्रतिमा में चौविहार उपवास किया जाता है । ग्यारहवीं प्रतिमा का समय एक दिन रात का है और चौविहार वेला करके आराधना की जाती है । बारहवीं प्रतिमा का समय एक रात का है और चौविहार तेले से इसकी आराधना की जाती है ।

भिक्षु प्रतिमाओं का विस्तृत वर्णन अन्तकृद्दशा महिमा (परिशिष्ट) में देखिए ।

- रैवतक पर्वत को उज्जयन्त, ऊर्जयन्त, गिरीणाल और गिरनार भी कहा जाता है । महाभारत आदि में भी इस रैवतक पर्वत का वर्णन आता है ।
- जिसमें भिन्न-भिन्न जाति के वृक्ष हों वह वन खण्ड कहलाता है । –ज्ञाता १ टीका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

- भगवान अरिष्टनेमि एवं वासुदेव श्रीकृष्ण आदि का जन्म सुप्रसिद्ध हरिवंश में हुआ था। इस वंश में शौर्यपुर के स्वामी शूरसेन नाम के प्रसिद्ध राजा हुए। शूरसेन के पुत्र का नाम शूरवीर था। शूरवीर के दो पुत्र थे–अंधक और वृष्णि। इन दोनों भाइयों के नाम से यह कुल अंधक-वृष्णि कुल नाम से प्रसिद्ध हुआ। (उत्तराध्ययन वृत्ति, २२)

- उत्तर पुराण (७०) के अनुसार शूरवीर के दो पुत्र थे अंधकवृष्णि और नरवृष्णि। अंधकवृष्णि के दस पुत्र थे जो दशार्ह कहलाते थे–१. समुद्रविजय, २. अक्षोभ्य, ३. स्तिमित, ४. सागर, ५. हिमवान, ६. अचल, ७. धरण, ८. पूरण, ९. अभिचन्द्र, १०. वसुदेव। (अभयदेवकृत अन्तकृद्दशावृत्ति।)

- **ईश्वर**–सचित्र अर्धमागधी कोष के अनुसार 'ईसर' शब्द का प्रयोग–युवराज, मांडलिक राजा, अमात्य, श्रीमंत, श्रेष्ठी आदि के लिए किया जाता था। (स.अ. को. भाग–२, पृष्ठ १५८)

- महाबल का वर्णन भगवती सूत्र शतक–११, उद्देशक ११ में आया है जिसका संक्षेप में हिन्दी भावार्थ अन्तकृद्दशामहिमा में दिया गया है।

- **दाय**–दात-कन्या के विवाह के पश्चात् दी जाने वाली वस्तु (ज्ञाता-वृत्ति)

- **देवानुप्रिय**–प्राचीन काल में यह एक मधुर सम्मानजनक सम्बोधन था। टीका ग्रन्थों में इस शब्द के दो अर्थ मिलते हैं–(१) देवों के समान प्रिय और (२) सरल आत्मन्। यह शब्द मुख्य रूप से जैन ग्रन्थों में ही मिलता है। वैसे यह सम्बोधन एक आम सम्बोधन था। पिता, पुत्र, गुरु, शिष्य, पति, पत्नी आदि सभी के लिए इसका प्रयोग होता था। सामान्य व्यक्ति के लिए भी 'देवानुप्रिय' शब्द का प्रयोग किया जाता था। बौद्ध साहित्य में 'देवानांप्रिय' शब्द मिलता है।

- मेघकुमार का वर्णन ज्ञातासूत्र अध्ययन १ के अनुसार संक्षेप में अन्तकृद्दशा महिमा में दिया गया है।

- संलेखना के विषय में विशेष स्पष्टीकरण अन्तकृद्दशा महिमा में देखें।

Elucidation

Special Resolution of Monk (Bhikṣu Pratimā)

Ascetic *Gautama* had practised 12 *Bhikṣu Pratimās* (Special resolution of a monk) like great monk *Skandhaka*. The conception of *Bhikṣu Pratimās* is as following–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

The practiser of first *Bhikṣu pratimā* takes one *dattī* of food and one *dattī* of water till one month. The regular flow of food and water, which is being given by a giver is termed as *dattī*.

From first to seven *Pratimās*, the time-period of every following *pratimā* increases by one month, As the period of first *pratimā* is one month, second of two months, third of three months, fourth of four months, fifth of five months, sixth of six months and seventh of seven months.

Likewise the number of *dattīs* also increases. As during first *Pratimā* the sage accepts one *dattī* of food and one *dattī* of water, in second two *dattīs* of food and two *dattīs* of water, in third three *dattīs*, in fourth four *dattīs*, in fifth five *dattīs*, in sixth six *dattis* and in seventh seven *dattīs* of food and water the sage accepts.

The time period of eighth *pratimā is* of seven days and nights and so is the case with 9th and tenth *pratimās*. All these eighth, nineth and tenth *pratimās* are practised observing complete fast, not even to take water on alternate days i.e. on first, third, fifth and seventh day.

The time period of eleventh *Bhikṣu Pratimā* is of one day-night only. It is also practised with two days complete fast penance, meaning to eat and drink nothing–to renounce all the four types of food *annaṁ*, *pānaṁ*, *khādim*, *swādim*.

The time period of twelfth *Bhikṣu Pratimā* is of one night only. It is practised with complete three days' fast penance.

–(*Daśāśrutaskandha, Daśā 7*)

Detailed study of *Bhikṣu Pratimās* has been discussed in *Antakṛddaśā Mahimā*. Readers are suggested to see that book.

- *Raivataka* mountain also called *Ujjayanta, Ūrjayanta, Girīṇāla* and *Giranāra*. The mention of this mountain has also been made in *Mahābhārata* etc.
- *Vanakhaṇḍa* denotes a part of wood in which various kinds of trees are found. –(*Jñātā 1, Commentary*)
- *Bhagawāna Ariṣṭanemi, Vāsudeva Śrīkṛṣṇa* and their kith and kins took birth in famous *Harivaṁśa*. In this tradition (*Vaṁśa*) the ruler of *Śauryapura, Śūrasena* became a famous king. The name of his son was *Śūravīra*. *Śūravīra* had two sons–(1) *Andhaka* and (2) *Vṛṣṇi*. By the

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

name of these two brothers this tradition became popular as *Andhaka-Vṛṣṇikula.* –(*Uttarādhyayana Vṛtti 21*)

According to *Uttar Purāṇa* (70)–*Śūravīra* had two sons–(1) *Andhaka-Vṛṣṇi* and (3) *Nara-Vṛṣṇi.*

Andhaka-Vṛṣṇi had ten sons, who were called *daśārhas* and their names were–(1) *Samudravijaya,* (2) *Akṣobhya* (3) *Stimita* (4) *Sāgara* (5) *Himavāna* (6) *Acala* (7) *Dharaṇa* (8) *Pūraṇa* (9) *Abhicandra* and (10) *Vasudeva.* –(*Abhayadevavṛtti–Antakṛddaśā Sūtra*)

- *Īśwara*–According to *Sacitra Ardha-māgadhī Koṣa* the word '*Īśwara*' is used for crown prince, *māṇḍalika rājā* (territorial ruler) *amātya* (minister) *Sāmanta* (government or gazetted officers), rich and wealthy persons etc., –(*S. A. Dictionary, vol. 2. p. 158*)
- The full description of *Mahābala* is given in *Bhagawatī Sūtra, Śataka 11, Uddeśaka 11.* Its simple and brief Hindi version is given in *Antakṛddaśā Mahimā.*
- *Dāya–Dāta* denotes the things which are given wilfully by their fathers at the occasion of the marriage of their daughters –(*Jñātā Vṛtti*)
- *Devānupriya* (*Prākṛta* form *Devāṇuppiya*)–It is a word used specially in Jain scriptures denoting sweet and honourable address. In Jain world it was a frequent address. Being sweet it was used for father, son, husband, general persons, kings etc., all and even to teacher, disciple, gods.
- The description of *Meghakumāra,* we get in *Jñātā Sūtra,* Chapter 1, the same briefly given in simple Hindi language in *Antakṛddaśā Mahimā.*
- For vivid description of *Saṁlekhanā* readers are advised to read the book *Antakṛddaśā Mahimā.*

गुणरत्न तप

गुणरत्न नामक तप सोलह महीनों में सम्पन्न होता है, इसमें तप के ४०७ दिन और पारणा के ७३ दिन होते हैं । पहले मास में एकान्तर उपवास किया जाता है । दूसरे मास में बेले-बेले पारणा और तीसरे मास में तेले-तेले पारणा किया जाता है । इसी प्रकार बढ़ाते हुए सोलहवें महीने में सोलह-सोलह उपवास करके पारणा किया जाता है । इस तप में दिन में उत्कटुक आसन से बैठकर सूर्य की आतापना ली जाती है और रात्रि में वस्त्र रहित वीरासन से बैठकर ध्यान किया जाता है । गौतम कुमार की तप आराधना का चित्र देखिए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Guṇaratna Saṁvatsara Tapa (Penance)

Guṇaratna penance completes in 16 months. Among them 407 days are of fast and 73 days are of *Pāraṇā* (to take food). During first month one day fast and second day *Pāraṇā* this order is followed. In second month two days' fast and third day *Pāraṇā*, in third month three days' fast and one day *pāraṇā*. Increasing in this way in 16th month *pāraṇā* is taken after sixteen days' fast. In this penance during day the practiser sits in sunrays with *Utkaṭuka* posture and in the night, putting off all clothes the practiser meditates with *Vīrāsana* posture.

The adjacent table elucidates the penance-observing of *Gautama Kumāra* clearly.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणरत्न संवत्सर तप-तालिका

महीना	तप व तप संख्या	तप के दिन	पारणे के दिन	योग
पहला	१५ उपवास	१५	१५	३०
दूसरा	१० बेला	२०	१०	३०
तीसरा	८ तेला	२४	८	३२
चौथा	६ चोला	२४	६	३०
पांचवाँ	५ पचोला	२५	५	३०
छठा	४ छह	२४	४	२८
सातवाँ	३ सात	२१	३	२४
आठवाँ	३ अठाई	२४	३	२७
नौवाँ	३ नौ	२७	३	३०
दसवाँ	३ दस	३०	३	३३
ग्यारहवाँ	३ ग्यारह	३३	३	३६
बारहवाँ	२ बारह	२४	२	२६
तेरहवाँ	२ तेरह	२६	२	२८
चौदहवाँ	२ चौदह	२८	२	३०
पन्द्रहवाँ	२ पन्द्रह	३०	२	३२
सोलहवाँ	२ सोलह	३२	२	३४
योग		४०७	७३	४८०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Table of Guṇaratna Saṁvatsara Tapa (Penance)

Month	Penance (fast) and Penance no.	Days of fast Penance	Days of Pāraṇā	Total
First	15 fast	15	15	30
Second	10 two days' fast	20	10	30
Third	8 three days' fast	24	8	32
Fourth	6 four days' fast	24	6	30
Fifth	5 five days' fast	25	5	30
Sixth	4 six days' fast	24	4	28
Seventh	3 seven days' fast	21	3	24
Eighth	3 eight days' fast	24	3	27
Nineth	3 nine days fast	27	3	30
Tenth	3 ten days' fast	30	3	33
Eleventh	3 eleven days' fast	33	3	36
Twelfth	2 twelve days' fast	24	2	26
Thirteenth	2 thirteen days' fast	26	2	28
Fourteenth	2 fourteen days' fast	28	2	30
Fifteenth	2 fifteen days' fast	30	2	32
Sixteenth	2 sixteen days' fast	32	2	34
Total		407	73	480

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्कन्धक के समान चिन्तन

गौतम अणगार को स्कन्धक मुनि की तरह एकदा–किसी समय, रात्रि के पिछले प्रहर में धर्म जागरणा करते हुए ऐसा विचार आया–अनेक प्रकार के उदार तप द्वारा मेरा शरीर शुष्क एवं कृश हो गया है । मेरा शारीरिक बल भी क्षीण हो गया है । केवल आत्मबल से चलता और खड़ा रहता हूँ । चलते हुए, खड़े होते हुए हड्डियों में कड़-कड़ की आवांज होती हैं । अतः जब तक मुझमें उत्थान-कर्म-बल-वीर्य-पुरुषाकार पराक्रम है, तब तक मेरे लिये यह श्रेयस्कर है कि रात्रि व्यतीत होने पर प्रातःकाल भगवान के समीप जाकर, उनको वन्दन-नमन कर, पर्युपासना करूँ, करके स्वयं ही पाँच महाव्रतों का आरोपण करके साधु-साध्वियों को खमाकर, स्थविरों के साथ शत्रुंजय पर्वत पर चढ़कर शिलापट्ट की प्रतिलेखना करके, डाभ का संथारा बिछाकर, अपनी आत्मा को संलेखना से दोषमुक्त करके, आहार-पानी का त्याग कर पादपोपगमन संथारा करना तथा उसमें स्थिर रहना मेरे लिए श्रेष्ठ है । –(भ. सू. श. २ उद्दे.१)

Thinking like Skandhaka

Skandhaka was a great sage in Jain *Sūtras*. His thinking was very deep and famous. So the simile of *Gautama* mendicant is given to *Skandhaka* sage.

Once, on a night during religious awakening monk *Gautama* began to think like this–Due to different types of severe penances my body has become lean and withered and strength of body hase also diminished. Only by self-strength I stand and move. While I stand or move my bones crackle and make sound. Until I have strength, valour, etc., it would be better for me that I should propiliate the religious rites which are practised at the end of life. So in the morning I will go to *Bhagawāna* and by bowing down worship him, myself propiliating five great vows, begging pardon of all saints and nuns, climbing on the mount *Śatruñjaya* with elder sages, watch a rock, taking bed of grass, making my own soul faultless by *saṁlekhanā*, and renouncing food and water, lying like a broken branch of a tree (*Pādapopagamana saṁthārā*) and should remain steadfast in it. This is the best for me. –*(Bha, Sū, Śa, 2, Udd., 1)*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीय वर्ग

अध्ययन १–८

१ :

जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं भगवया महावीरेण पढमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, दोच्चस्स णं भंते ! वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं कई अज्झयणा पण्णत्ता ?

एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठ अज्झयणा पण्णत्ता। तं जहा–

अक्खोभे सागरे खलु, समुद्द हिमवंत अयल णामे य ।
धरणे य पूरणे वि य, अभिचन्दे चेव अट्ठमए ॥

सूत्र १ :

जम्बू स्वामी–हे भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर प्रभु ने प्रथम वर्ग का जो वर्णन किया है, वह मैंने सुना । अब दूसरे वर्ग में श्रमण भगवान महावीर ने कितने अध्ययन फरमाये हैं ?

आर्य सुधर्मा–हे जम्बू ! श्रमण यावत् मुक्ति प्राप्त भगवान महावीर ने दूसरे वर्ग के आठ अध्ययन फरमाये हैं, जैसे कि–१. अक्षोभकुमार, २. सागर, ३. समुद्र, ४. हिमवान, ५. अचल, ६. धरण, ७. पूरण और ८. अभिचन्द्र ।

SECOND SECTION

Chapters 1 to 8

Maxim 1 :

Jambū Swāmī–O Reverend Sir ! *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra* described as the first section, so I heard

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

attentively. Now please tell me how many chapters have been described by *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra* in the second section of *Antakriddaśā Sūtra.*

Ārya Sudharmā–O Jambū ! Śramaṇa (until salvated) *Bhagawāna Mahāvīra* has described eight chapters of second section. As–(1) *Akṣobhakumāra* (2) *Sāgara* (3) *Samudra*, (4) *Himavāna*, (5) *Acala*, (6) *Dharaṇa*, (7) *Pūraṇa*, and (8) *Abhicandra.*

अध्ययन १ से ८

सूत्र २ :

तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईए णयरीए वण्ही पिया धारिणी माया । जहा पढमो वग्गो, तहा सव्वे अट्ठ अज्झयणा । गुणरयणं तवोकम्मं सोलसवासाइं परियाओ । सेत्तुंजे मासियाए संलेहणाए जाव सिद्धे ।

एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अगंस्स दोच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते ।

सूत्र २ :

उस काल उस समय में द्वारका नगरी में इन आठों कुमारों के वृष्णि राजा पिता और धारिणी माता थी । जिस प्रकार प्रथम वर्ग कहा, उसी प्रकार ये सभी आठों अध्ययन समझने चाहिए । इन सभी साधकों ने गुणरत्न संवत्सर तप किया । सोलह वर्ष का निर्मल चारित्र पालन कर शत्रुंजय पर्वत पर एक मास की संलेखना की, यावत् सिद्ध हुए ।

इस प्रकार हे जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर प्रभु ने आठवें अंग अन्तकृद्दशा के दूसरे वर्ग का यह भाव फरमाया है ।

(द्वितीय वर्ग के अध्ययन १ से ८ समाप्त)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

xim 2 :

(At that time and at that period) Father was *Vṛṣṇi* and mother was *Dhāriṇī* of all these eight princes. As in the first section is said about *Gautamakumāra*, in the same way all these eight chapters should be known. All the practisers observed *Guṇaratna saṁvatsara* penance and practised consecration period of sixteen years. These practised pure conduct and with *saṁlekhanā* of one month all these attained liberation from mountain *Śatruñjaya*.

Thus O *Jambū* ! *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra* has told the subject matter of the second section of Eighth *Aṅga Antakṛddaśā* .

[Eight chapters consumed]

[Second section completed]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृतीय वर्ग

सूत्र १ :

जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स दोच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, तच्चस्स णं भंते ! वग्गस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स तच्चस्स वग्गस्स अंतगडदसाणं तेरस अज्झयणा पण्णत्ता । तं जहा–

१. अणीयसेणे, २. अणंतसेणे, ३. अजियसेणे, ४. अणिहयरिऊ, ५. देवसेणे, ६. सत्तुसेणे, ७. सारणे, ८. गए, ९. सुमुहे, १०. दुम्मुहे, ११ कूवए, १२ दारुए, १३ अणादिट्ठी ।

जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स तेरस अज्झयणा पण्णत्ता । तं जहा–अणीयसेणे जाव अणादिट्ठी ।

पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

सूत्र १ :

आर्य जम्बू–हे भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर प्रभु ने आठवें अंग अन्तकृद्दशा के दूसरे वर्ग का जो भाव कहा, वह मैंने सुना । अब हे भगवन् ! तीसरे वर्ग का श्रमण भगवान महावीर प्रभु ने क्या भाव कहा है ?

सुधर्मा स्वामी–हे जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने आठवें अंग अन्तकृद्दशा सूत्र के तीसरे वर्ग में तेरह अध्ययनों का वर्णन किया है, जो इस प्रकार है–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. अनीकसेन, २. अनन्तसेन, ३. अजितसेन, ४. अनिहतरिपु, ५. देवसेन, ६. शत्रुसेन, ७. सारण, ८. गजसुकुमाल, ९. सुमुख, १०. दुर्मुख, ११. कूपक, १२. दारुक, १३. अनाधृष्टि ।

आर्य जम्बू–हे भगवन् ! श्रमण प्रभु महावीर ने आठवें अंग अन्तकृद्दशा के तीसरे वर्ग में १३ अध्ययन कहे हैं तो प्रथम अध्ययन का क्या भाव फरमाया है ?

THIRD SECTION

Maxim 1:

Ārya Jambū–O Reverend sir ! I heard attentively the description given by *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra* of the second section of Eighth *Aṅga Antakṛddaśā Sūtra.* Now please tell me what *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra* told in third section of this *Aṅga.*

Sudharmā Swāmī–O Jambū ! Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra has described thirteen chapters in the third section of Eighth *Aṅga Antakṛddaśā Sūtra,* which are as follows–

(1) *Aṅīkasena* (2) *Anantasena* (3) *Ajitasena* (4) *Anihataripu,* (5) *Devasena* (6) *Śatrusena* (7) *Śāraṇa* (8) *Gaja Sukumāla* (9) *Sumukha* (10) *Durmukha* (11) *Kūpaka* (12) *Dāruka* and (13) *Anādhṛṣṭi.*

Ārya Jambū–O Reverend sir ! If *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra* has said thirteen chapters in the third section of Eighth *Aṅga Antakṛddaśā Sūtra;* then what description he has given of first chapter.

प्रथम अध्ययन

सूत्र २ :

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं भद्दिलपुरे णामं णयरे होत्था । रिद्धित्थिमिय-समिद्धे, वण्णओ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्स णं भद्दिलपुरस्स नयरस्स बहिया उत्तर-पुरत्थिमे दिसिभाए सिरीवणे णामं उज्जाणे होत्था, वण्णओ । जियसत्तू राया ।

तत्थ णं भद्दिलपुरे णयरे णागे णामं गाहावई होत्था, अड्ढे जाव अपरिभूए ।

तस्स णं णागस्स गाहावइस्स सुलसा णामं भारिया होत्था, सुकुमाला जाव सुरूवा । तस्स णं णागस्स गाहावइस्स पुत्ते सुलसाए भारियाए अत्तए अणीयसेणे णामं कुमारे होत्था । सुकुमाले जाव सुरूवे । पंच धाई परिक्खित्ते ।

तं जहा–खीरधाई, (मज्जणधाई, मंडणधाई, कीलावणधाई, अंकधाई)

जहा दढपइण्णे जाव गिरिकंदर-मल्लीणेव चंपकवरपायवे सुहंसुहेणं परिवड्ढई ।

अनीकसेन कुमार

सूत्र २ :

श्री सुधर्मा स्वामी–हे जम्बू ! उस काल उस समय में भद्दिलपुर नाम का नगर था । वह नगर उत्तम नगरों के सभी गुणों से युक्त, धन धान्यादि से परिपूर्ण, भय रहित एवं भवन-उपवन आदि से समृद्ध, वर्णन करने योग्य था ।

उस भद्दिलपुर नगर के बाहर ईशान कोण में श्रीवन नाम का उद्यान था । वहां जितशत्रु नामक राजा थे ।

उस भद्दिलपुर नगर में नाग नामक गाथापति रहता था । वह ऋद्धि सम्पन्न एवं अपराभूत–किसी बात से हार मानने वाला नहीं था ।

उस नाग नामक गाथापति के सुलसा नामक पत्नी थी । वह सुकुमार एवं रूपवती थी । उस नाग गाथापति एवं सुलसा पत्नी के अनीकसेन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । वह भी सुकुमार एवं रूपवान था । पांच धायों के द्वारा उसका पालन-पोषण किया गया । पाँच धायमाताएं इस प्रकार थीं–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

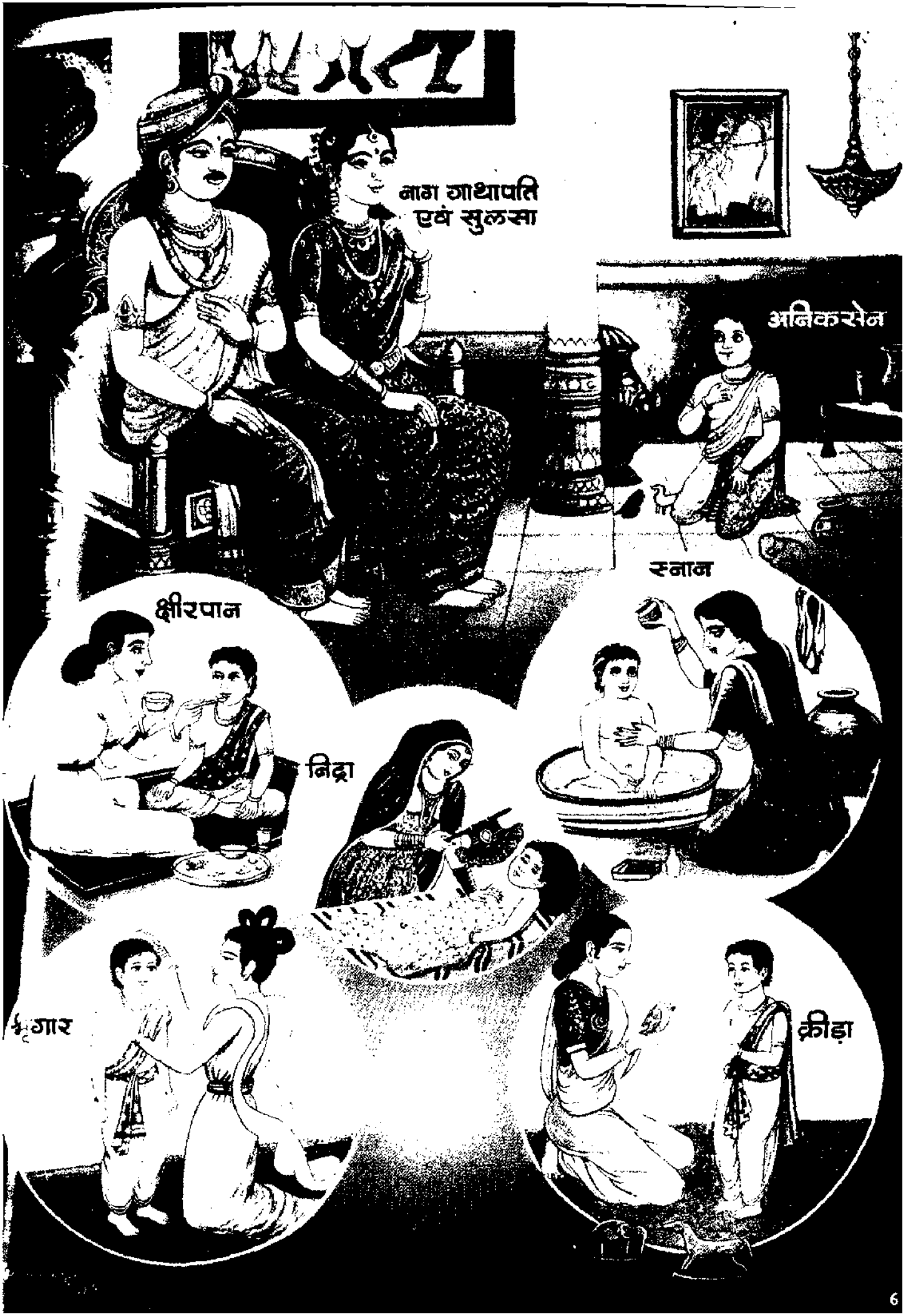

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रक्रम ६ :

अनीकसेनकुमार

भद्दिलपुर निवासी नाग गाथापति अपनी भार्या सुलसा के साथ अनीकसेनकुमार की बाल-लीला देखकर प्रसन्न हो रहा है।

विभिन्न देशों की पाँच धायमाताओं द्वारा कुमार का लालन-पालन–

१. क्षीरधात्री–दूध पिलाती है।
२. मज्जनधात्री–स्नान कराती है।
३. मंडनधात्री–केशसज्जा, वस्त्र पहनाना आदि कार्य करती है।
४. अंकधात्री–कुमार को गोदी में लेती है। लोरी सुनाकर सुलाती है।
५. क्रीड़ाधात्री–विविध प्रकार के खिलौनों से खिलाती है।

(वर्ग ३/अध्य. १)

Illustration No. 6 :

Anīkasenakumāra

Resident of *Bhaddilapura* city. *Nāga* trader, with his wife *Sulasā*, becoming glad visualising the childish plays of his son *Anīkasenakumāra.*

Nurturing of child (*Kumāra*) by five mothers (nurses) of different countries–

1. Foster mother–makes child to drink milk.
2. Bathing mother–bathes the child.
3. Decorating mother–decorates child with clothes, ornaments and design his hairs in various styles.
4. Lap mother–takes child in her lap and makes him to sleep singing lullabies.
5. Amusement mother–makes baby to play with many kinds of toys.

(Sec. 3/Ch. 1)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. क्षीरधात्री–दूध पिलाने वाली, २. मज्जनधात्री–स्नान कराने वाली, ३. मंडनधात्री–आभूषण वस्त्रादि पहनाने वाली, ४. क्रीड़ापनधात्री–खेल खिलाने वाली एवं ५. अंकधात्री–गोद में रखने वाली ।

वह अनीकसेन दृढ़प्रतिज्ञ कुमार के समान एवं पर्वत की गुफा में एकान्त में जिस प्रकार चंपक वृक्ष निर्विघ्न बढ़ता है, उसी प्रकार वह सुखपूर्वक बढ़ रहा था ।

दृढ़प्रतिज्ञ कुमार का वर्णन औपपातिक सूत्र में आया है । अन्तकृद्दशा महिमा में देखें ।

Chapter 1

Anīkasena Kumāra

Maxim 2 :

Sudharmā Swāmī–O *Jambū* ! At that time and at that period, there was a city named *Bhaddilapura*. That had many characterstics like great cities, opulated with wealth and agriculture products, gardens and parks, buildings and palaces and free from fear. So it was describable.

Out of that city *Bhaddilapura*, in its north-east direction, there was situated a garden (park) named *Śrīvana*.

The ruler of *Bhaddilapura* was king *Jitaśatru*.

In that city lived *Nāga Gāthāpati* (trader). He was wealthy and respected. He was not daunted by any task.

Sulasā was the wife of *Nāga Gāthāpati*. She was beautiful and tender-bodied. She gave birth to a son named *Anīkasena*. He was also beautiful and tender. He was nurtured by five foster mothers (*dhātrī mātā*).

These were–(1) Foster mother, who make him to drink milk. (2) *Majjana dhātrī*–bathing mother. (3) *Maṇḍana dhātrī*, the mother who adorns him by clothes and ornaments. (4) *Krīḍā dhātrī*, she was supporter to him in play. (5) *Lap mother*–who fondles him in her lap.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Anīkasena was growing like *Dṛḍhapratijña Kumāra*, as the fragrant tree of *campaka* grows up without any hinderance in a cave of mountain and lonely place.

Aupapatika Sūtra vividly explains the description of *Dṛḍhapratijña Kumāra*. See full description in *Antakṛddaśā Mahima*.

सूत्र ३ :

तए णं तं अणीयसेणं कुमारं साइरेगं अट्ठवास-जायं अम्मापियरो कलायरियस्स उवणेंत्ति जाव भोगसमत्थे जाए यावि होत्था ।

तए णं तं अणीयसेणं कुमारं उम्मुक्क-बालभावं जाणित्ता अम्मापियरो सरिसयाणं, सरिसवयाणं, सरिसत्तयाणं, सरिसलावण्ण-रूव-जोवण्ण-गुणोववेयाणं सरिसेहिंतो कुलेहिंतो आणिल्लियाणं बत्तीसाए इब्भवर कण्णगाणं एग-दिवसेणं पाणिं गिण्हावेइ ।

सूत्र ३ :

जब अनीकसेन कुमार आठ वर्ष से अधिक वय का हुआ तो माता-पिता ने शिक्षण के लिए कलाचार्य के पास भेजा । कला-कौशल प्राप्त कर वह भोग समर्थ युवावस्था को प्राप्त हुआ ।

तब उस अनीकसेन कुमार को माता-पिता ने बाल भाव मुक्त अर्थात् युवावस्था को प्राप्त हुआ जानकर, उसके अनुरूप समान वयवाली, समान त्वचा (रंग) और रूपलावण्य तथा तारुण्य गुण वाली, अपने समान कुलों से लाई गई बत्तीस इभ्य श्रेष्ठियों की कन्याओं के साथ उसका एक ही दिन में पाणिग्रहण करवाया ।

Maxim 3 :

When *Anīkasena Kumāra* crossed the age of eight years then his parents sent him to an able teacher for education. He became at home in various arts and crafts and branches

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

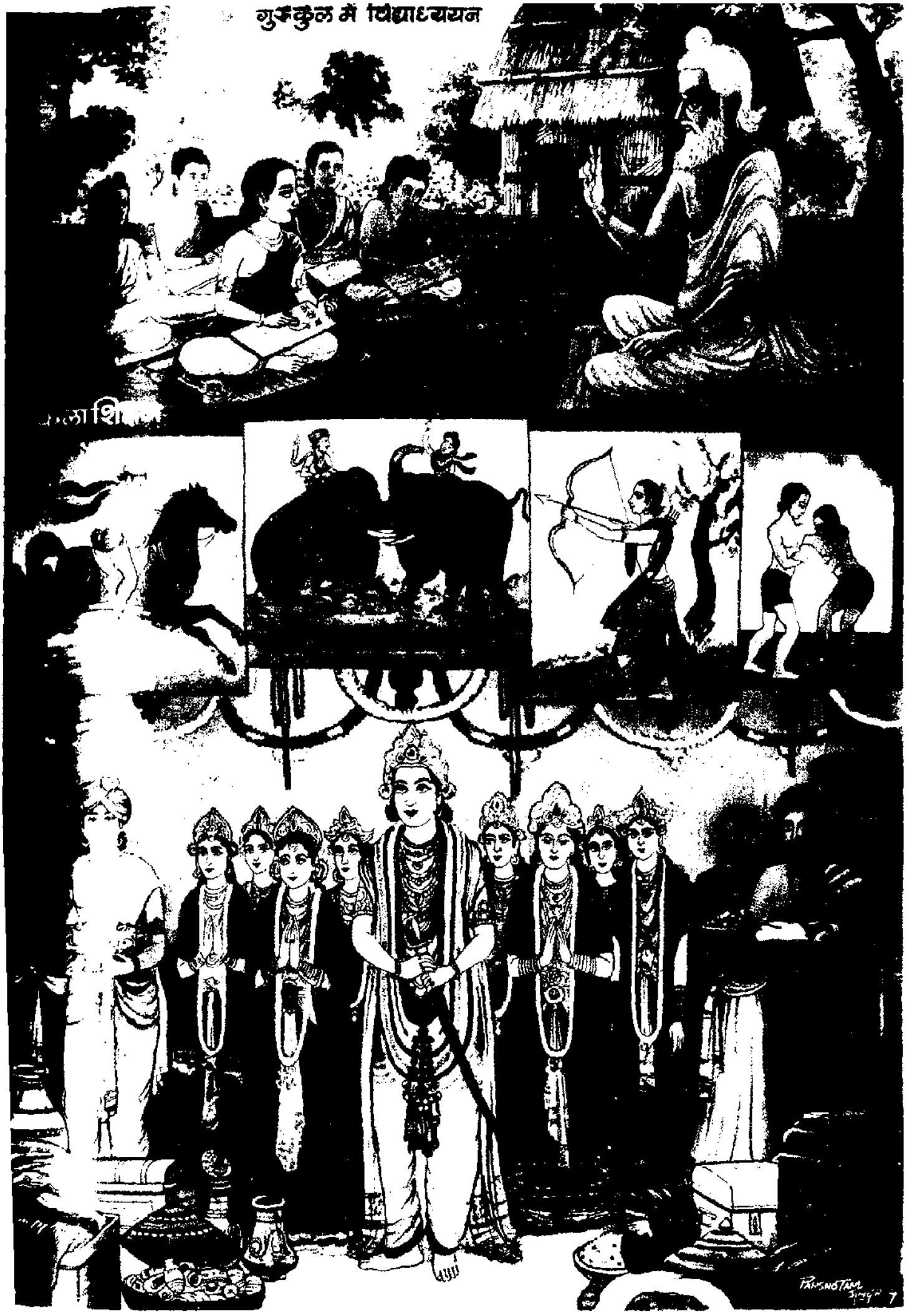

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रक्रम ७ :

अनीकसेनकुमार का शिक्षण एवं विवाह

दृश्य १—कलाचार्य के पास कुमार शिक्षण ग्रहण करते हैं।

दृश्य २—मल्ल-युद्ध, शस्त्र-संचालन-कला, गज-युद्ध, अश्व-युद्ध आदि का प्रशिक्षण लेते हैं।

दृश्य ३—एक ही दिन में बत्तीस कन्याओं के साथ विवाह तथा नाग गाथापति द्वारा प्रीतिदान।

(वर्ग ३/अध्य. १)

Illustration No. 7 :

Education and marriage of *Anīkasenakumāra*

Scene 1. Pupils (*Kumāras*) take education near teacher.

Scene 2. Kumāras learn the technique of wrestling, weapon strategy, elephant fighting, horse fighting etc.

Scene 3. Marriage with thirty two maidens in a single day and donation given by *Nāga* trader as token of love.

(Sec. 3/Ch. 1)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

of learning and along with he became adolescent and capable to enjoy worldly pleasures.

Then knowing this state his parents married him with thirty two richmen's daughters in only one day. The maidens (young maidens) were like him, in age, colour, beauty, charm and youth.

सूत्र ४ :

तए णं से णागे गाहावई अणीयसेणस्स कुमारस्स इमं एयारूवं पीइ-दाणं दलयइ । तं जहा–बत्तीसं हिरण्णकोडीओ, जहा महब्बलस्स जाव उप्पिंपासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुइंग-मत्थएहिं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठणेमी जाव समोसढे । सिरिवणे उज्जाणे अहापडिरूवं उग्गहं जाव विहरइ । परिसा णिग्गया ।

तए णं तस्स अणीयसेणस्स कुमारस्स तं महया जणसद्दं जहा गोयमे तहा णवरं सामाइयमाइयाइं चोद्दसपुव्वाइं अहिज्जइ । बीसं वासाइं परियाओ सेसं तहेव जाव सेत्तुंजे पव्वए मासियाए संलेहणाए जाव सिद्धे ।

एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते ।

(पढमं अज्झयणं सम्मत्तं)

सूत्र ४ :

पाणिग्रहण कराने के पश्चात् उस नाग गाथापति ने अनीकसेन कुमार को इस प्रकार का प्रीतिदान किया, जैसे कि बत्तीस करोड़ चाँदी, सोना आदि । इसका विवरण महाबल के समान समझना चाहिए । यावत् इस प्रकार अनीकसेन कुमार ऊपर प्रासाद में बजती हुई मृदंगों की तालों के साथ गीत-नृत्य आदि सांसारिक सुखों को भोगते हुए रहता था ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस समय में अरिहंत अरिष्टनेमि ग्राम-ग्राम विचरते हुए भद्दिलपुर नगर में पधारे । श्रीवन नामक उद्यान में यथाविधि अवग्रह तृण-पाट आदि की आज्ञा लेकर, विराजमान हुए । धर्म श्रवण करने परिषद आई ।

तदनन्तर उस अनीकसेन कुमार को भी भगवान के आगमन की सूचना मिली, दर्शनार्थ जाते हुए जन समूह को देखा, उसके मन में भी भगवान के दर्शनों की इच्छा जागी । गौतम कुमार के समान अनीकसेन कुमार ने भी समवशरण में जा, प्रभु की धर्म देशना सुनी, तदनन्तर माता-पिता की आज्ञा लेकर प्रभु के चरणों में दीक्षा प्राप्त की । गौतम कुमार से विशेष यह कि सामायिक श्रुत आदि ग्यारह अंग तथा चौदह पूर्वों का ज्ञान भी सीखा । २० वर्ष की श्रमण पर्याय का पालन किया । शेष उसी प्रकार शत्रुंजय पर्वत पर जाकर एक मास की संलेखना करके यावत् सिद्ध हुए ।

इस प्रकार हे जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर प्रभु ने आठवें अन्तकृद्दशा अंग के तीसरे वर्ग के प्रथम अध्ययन का वर्णन किया है ।

(तीसरे वर्ग का प्रथम अध्ययन समाप्त)

Maxim 4 :

After marriage, *Nāga Gāthāpati* gave such a present (*Prītidāna*) to his son *Anīkasena Kumāra*, as thirty two crores silver and gold (coins) etc. Its description should be known like *Mahābala* (until) the time of *Anīkasena* was passing pleasurefully with sweet recitation of songs and orchestra– musical instruments etc.

At that time and at that period wandering village to village *Arihanta Aristanemi* came to *Bhaddilapura*, stayed at *Śrīvana* garden with due consent about every necessary thing. Congregation assembled for hearing his sermon. *Anīkasena Kumāra* also came to know about coming of *Bhagawāna*. While he saw the people going to bow down to *Bhagawāna*, his desire also aroused. Like *Gautama Kumāra*, *Anīkasena Kumāra* also approached to the religious assembly, and heard the sermon. Thereafter

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

taking the permission of parents, he accepted the consecration at the lotus feet of *Bhagawāna.*

Speciality from *Gautama Kumāra* is this–that *Anīkasena Kumāra* learned *Sāmāyika* etc., eleven *Aṅgas* and fourteen *Pūrvas*, practised *śramaṇahood* upto 20 years. Remaining account is the same, he climbed upon mountain *Śatruñjaya* and liberated after the *saṁlekhanā* of one month.

Thus O *Jambū* ! *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra* has described the subject matter of first chapter of third section of Eighth *Aṅga Antakṛddaśā Sūtra.*

(First chapter of third section concluded)

विवेचन

प्रीतिदान–किसी भी हर्ष के प्रसंग पर प्रसन्नता के साथ दिया जाने वाला पुरस्कार या उपहार **प्राचीन** समय में "प्रीतिदान" के नाम से प्रसिद्ध था । ध्यान देने की बात है कि कन्यापक्ष की ओर **से वर** पक्ष को दिया जाने वाला धन जिसे आजकल दहेज कहते हैं, प्राचीन समय में "दाय" कहलाता **था** । गौतम कुमार के प्रकरण में "दाय" शब्द का प्रयोग हुआ है । किन्तु यहां प्रीतिदान शब्द है **और** यह अपनी बत्तीस पुत्रवधुओं के लिए वर के पिता नाग गाथापति की ओर से दिया गया । जो उन बत्तीस कन्याओं (बहुओं) में बाँट दिया गया ।

वैसे आगमों में 'दाय' और 'प्रीतिदान' दोनों ही शब्दों का यथाप्रसंग समान अर्थ में भी प्रयोग **मिलता** है ।

Elucidation

Prītidāna–At any occasion of pleasure, the prize or present given wilfully and with happiness, was famous by the term *prītidāna* in ancient times. It is to be taken into consideration that the wealth given by relatives of bride to bridegroom which is now called dowry, in the ancient times it was called *dāya.* In the episode of *Gautama Kumāra* the word *dāya* is used; but here is the word *prītidāna* and it is given by *Nāga Gāthāpati* the father of bridegroom to his thirtytwo daughters-in-law, which was distributed among them (brides).

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

However, *prītidāna* and *dāya*, both the words are used in *Āgama* according to occasion, in the same sense.

अध्ययन २-६

सूत्र ५ :

एवं जहा अणीयसेणे एवं सेसा वि (अणंतसेणे, अजियसेणे, अणिहयरिऊ, देवसेणे, सत्तुसेणे) छ अज्झयणा एगगमा । बत्तीसओ दाओ । बीस वासाइं परियाओ । चोद्दस पुव्वाइं अहिज्जंति सेत्तुंजे जाव सिद्धा ।

(छट्ठं अज्झयणं सम्मत्तं)

सूत्र ५ :

जिस प्रकार अनीकसेन कुमार का वर्णन किया गया, उसी प्रकार शेष अध्ययन भी, २. अनंतसेन, ३. अजितसेन, ४. अनिहतरिपु, ५. देवसेन और ६. शत्रुसेन–समझना चाहिए ।

ये छः ही अध्ययन एक समान हैं । इन सबको भी बत्तीस-बत्तीस करोड़ चांदी सोने का प्रीतिदान मिला । सबका २०-२० वर्ष का दीक्षा काल रहा । सबने चौदह पूर्व का अध्ययन किया एवं सभी शत्रुंजय पर्वत पर संलेखणा की आराधना करके सिद्ध हुए ।

(तीसरे वर्ग के २ से ६ अध्ययन समाप्त)

Chapter 2–6

Maxim 5 :

As is the description of *Anīkasena* so is of subsequent chapters, viz., (2) *Anantasena* (3) *Ajitasena* (4) *Anihataripu* (5) *Devasena* and (6) *Śatrusena*.

These six chapters are alike. All these get the wilful pleasure, gift of thirty two crores silver and gold (coins). The consecration period of all these was twenty years. All

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

these learned fourteen *Pūrvas*. All these became emancipated by *saṁlekhanā-Saṁthārā* at mountain *Śatruñjaya*.

(2 to 6 Chapters concluded)

सातवां अध्ययन

सूत्र ६ :

जइ णं भंते ! उक्खेवो सत्तमस्स !

तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईए णयरीए जहा पढमे । णवरं वसुदेवे राया, धारिणी देवी, सीहो सुमिणे, सारणे कुमारे, पण्णासओ दाओ, चोद्दसपुव्वाइं वीसं वासाइं परियाओ; सेसं जहा गोयमस्स जाव सेत्तुंजे सिद्धे ।

(इति सत्तमज्झयणं)

सूत्र ६ :

आर्य जम्बू–हे पूज्य ! श्रमण भगवान महावीर ने छठे अध्ययन का जो भाव (उत्क्षेपक–जिसका अर्थ है–वर्णन, अधिकार या भाव है) कहा, वह सुना, अब सातवें अध्ययन का क्या उत्क्षेपक अधिकार है ? कृपा कर फरमाइये ।

आर्य सुधर्मा–उस काल उस समय में द्वारका नगरी थी । वहां का वर्णन प्रथम अध्ययन के समान समझना चाहिए । विशेष–वहां वसुदेव राजा थे, और धारिणी देवी उनकी रानी थी । देवी ने सिंह का स्वप्न देखा । उनके पुत्र का नाम सारण कुमार रखा गया । उसे विवाह में पचास-पचास स्वर्ण-रजत कोटि का प्रीतिदान मिला । सारण कुमार ने सामायिक आदि ग्यारह अंगों तथा १४ पूर्वों का अध्ययन किया । बीस वर्ष तक दीक्षा पर्याय का पालन किया । शेष गौतम कुमार की तरह शत्रुंजय पर्वत पर एक मास की संलेखना सहित सिद्ध हुए ।

(सातवां अध्ययन समाप्त)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Chapter 7

Maxim 6 :

Ārya Jambū–O reverend Sir ! *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra* as described the sixth chapter, so you have told me and I have heard attentively. Now please tell me–what is the description of seventh chapter.

Ārya Sudharmā–At that time and at that period there was a city named *Dwārakā*. The description of that city should be known from first chapter of the first section.

Speciality was that there was ruler *Vasudeva*, and *Dhāriṇī Devī* was his queen. *Dhāriṇī* has seen a lion in dream. Her son was named as *Sāraṇa Kumāra*. After marriage he got fifty-fifty crores of silver and gold coins as wilful pleasure gift.

Sāraṇa Kumāra had studied *Sāmāyika* etc., eleven *Aṅgas* and fourteen *Pūrvas*. His consecration period was of twenty years. Remaining like *Gautama Kumāra*, with *Saṁlekhanā* of one month he attained salvation from *Śatruñjaya* mountain.

(Seventh chapter concluded)

आठवां अध्ययन

सूत्र ७ :

जइ णं भंते ! उक्खेवो अट्ठमस्स ।

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईये णयरीए जहा पढमे जाव अरहा अरिट्ठणेमी सामी समोसढे ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतेवासी छ अणगारा भायरो सहोदरा होत्था । सरिसया, सरिसत्तया सरिसव्वया, णीलुप्पल गवल-गुलिय-अयसि-कुसुमप्पगासा सिरिवच्छं-कियवच्छा कुसुम-कुण्डल-भद्दलया णलकुब्बर समाणा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आर्य जम्बू–हे भन्ते ! मैंने सातवें अध्ययन का भाव सुना, अब आठवें अध्ययन का प्रभु महावीर ने क्या अधिकार (उत्क्षेपक) कहा है ? कृपा कर फरमाइये ।

आर्य सुधर्मा–इस प्रकार हे जम्बू ! उस काल, उस समय में द्वारका नगरी में कृष्ण वासुदेव आदि प्रथम अध्ययन में किये गये वर्णन के अनुसार वर्णन समझना चाहिए । यावत् अरिहंत अरिष्टनेमि भगवान पधारे ।

उस काल, उस समय में भगवान अरिष्टनेमि के अंतेवासी शिष्य छः मुनि सहोदर भाई थे । वे समान आकार वाले, समान त्वचा (रंग) और अवस्था में समान दिखने वाले थे । शरीर का रंग नीलकमल, भैंस के सींग की गुली (भीतरी भाग) और अलसी के फूल जैसा नीली आभा (छवि) वाला था । उनके वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चिन्ह था और कुसुम के समान कोमल एवं कुण्डल के समान घुंघराले बालों वाले वे सभी मुनि नलकूबर के समान लगते थे ।

● नलकूबर का अर्थ है– वैश्रमण देव का एक बहुत रूपवान पुत्र । वैदिक ग्रंथों में भी नलकूबर को कुबेर का सुन्दर पुत्र बताया है ।

Chapter 8

Maxim 7 :

Ārya Jambū–O Reverend Sir ! I have heard the subject matter of seventh chapter. Now, please tell me what description of eighth chapter has been given by *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra.*

Ārya Sudharmā–O *Jambū* ! At that time and at that period, there was a city named *Dwārakā*. The description of city should be known from first chapter of first section, until, *Arihanta Ariṣṭanemi Bhagwāna* came.

At that time and at that period the six uterine brothers were the disciples of *Bhagawāna Ariṣṭanemi*, who lived near

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

him. All these six were alike in colour, structure, configuration and age; differentiation was very difficult among them. Their colour was blue, like blue lotus, horn of a buffalo. There was the mark of *Śrīvatsa* on the chest of every one. Their hairs were soft, curly and conjusted. These all were as beautiful as *Nalakūbara*.

■ *Nalakūbara* means the very beautiful son of *Vaiśramaṇa* (god of wealth). *Vaidic* scriptures also mention *Nalakūbara* as the beautiful son of *Kubera*.

सूत्र ८ :

तए णं ते छ अणगारा जं चेव दिवसं मुण्डा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया तं चेव दिवसं अरहं अरिट्ठणेमिं वंदंति णमंसंति, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी–इच्छामो णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठं छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं संजमेणं अप्पाणं भावेमाणा विहरित्तए ।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह ।

तए णं ते छ अणगारा अरहया अरिट्ठनेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठं छट्ठेणं जाव विहरंति ।

सूत्र ८ :

तब (दीक्षित होने के पश्चात्) वे छहों मुनि जिस दिन मुण्डित होकर अगार से अणगार धर्म में प्रव्रजित हुए, उसी दिन अरिहंत अरिष्टनेमि के पास आकर वंदना नमस्कार कर इस प्रकार बोले–

हे भगवन् ! हम चाहते हैं कि आपकी आज्ञा पाकर जीवन पर्यन्त निरन्तर बेले–बेले की तपस्या द्वारा अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करें ।

प्रभु ने कहा–हे देवानुप्रियो ! जिससे तुम्हें सुख प्राप्त हो, वही कार्य करो, शुभ कार्य में प्रमाद मत करो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रक्रम ८ :

छह सहोदर बन्धु–श्रमण

भगवान अरिष्टनेमि के अन्तेवासी छह सहोदर अणगार घुँघराले बालों वाले, नीलवर्ण, रूप, वय आदि में एक समान, बेले-बेले तप करते हुए। बेले तप के पारणा की आज्ञा लेते हैं।

(वर्ग ३/अध्य. ८)

Illustration No. 8 :

Six uterine brother–sages

Six uterine brother–sages curly haired, alike in form, body-frame, shape, colour, age etc., they were consecrated by *Bhagawana Aristanemi*, and regularly observed two days' fast. Now they are asking the permission of *Bhagawāna* to seek food on the fast-breaking day.

(Sec. 3/Ch. 8)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तब वे छहों मुनि भगवान् अरिष्टनेमि की आज्ञा पाकर जीवन भर के लिये बेले-बेले की तपस्या करते हुए ग्रामानुग्राम विचरण करने लगे ।

Maxim 8 :

As all these accepted consecration, i.e., became houseless mendicants renouncing house-holders' code, the very day all these approached *Arihanta Aristanemi* and bowing worshipping him spoke these words–

O *Bhagawan* ! With your consent we wish that till life we practise two days' fast penance and third day take food. Thus observing austerity and fixing ourselves in soul virtues, we wish to move in your religious order.

Bhagawāna said–O beloved as gods ! Do, as you feel happy; but do not delay or be not careless in meritorious deeds.

Then getting the consent of *Bhagawāna Aristanemi*, all these six monks began to wander village to village, with the religious congregation observing two days' fast penance and third day to take food (*Bele-Bele* fast penance) for whole life.

सूत्र ९ :

तए णं ते छ अणगारा अण्णया कयाइं छट्ठक्खमण पारणगंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेंति जहा गोयमसामी जाव।

इच्छामो णं भंते । छट्ठक्खमणस्स पारणए तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा तिहिं संघाडएहिं बारवईए णयरीए जाव उच्च नीयं मज्झिमाइं कुलाइं अडित्तए ।

अहासुहं देवाणुप्पिया !

तए णं ते छ अणगारा अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा अरहं अरिट्ठणेमिं वंदंति णमंसंति, वंदित्ता णंमंसित्ता अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतियाओ सहस्संबवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमंति पडिणिक्खमित्ता तिहिं संघाडएहिं अतुरियं जाव अडंति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्थ णं एगे संघाडए बारवईए णयरीए उच्च-णीय मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे वसुदेवस्स रण्णो देवईए देवीए गिहं अणुप्पविट्ठे ।

तए णं सा देवई देवी ते अणगारे एज्जमाणे पासित्ता हट्ठ-तुट्ठ चित्तमाणंदिया, पीईमणा परमसोमणस्सिया, हरिसवस- विसप्पमाणहियया आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ अणुगच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ, णमंसइ । वंदित्ता, णमंसित्ता जेणेव भत्तघरए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहकेसराणं मोयगाणं थालं भरेइ, भरित्ता ते अणगारे पडिलाभेइ पडिलाभित्ता वंदइ, णमंसइ । वंदित्ता णमंसित्ता पडिविसज्जेइ ।

छह अणगार : देवकी के भवन में

सूत्र ९ :

उसके पश्चात् उन छहों मुनियों ने अन्यदा किसी समय, बेले की तपस्या के पारणे के दिन प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया और गौतम स्वामी के समान प्रभु के समक्ष उपस्थित होकर बोले–

हे भगवन् ! हम बेले की तपस्या के पारणे में आपकी आज्ञा पाकर दो-दो के तीन संघाडों से द्वारका नगरी में यावत् भिक्षा हेतु भ्रमण करना चाहते हैं ।

भगवान ने कहा–देवानुप्रियो ! जैसे सुख हो, वैसा करो ।

तब उन छहों मुनियों ने अरिहंत अरिष्टनेमि की आज्ञा पाकर प्रभु को वन्दन नमस्कार किया । वन्दन नमस्कार करके वे भगवान अरिष्टनेमि के पास से सहस्राम्रवन उद्यान से प्रस्थान करते हैं । उद्यान से निकल करके वे दो-दो के तीन संघाटकों में सहज मन्द-मन्द गति से, शान्त चित्त से ईर्यासमिति पूर्वक भ्रमण करने लगे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रक्रम ९ :

रानी देवकी के भवन में छह अनगार

छहों सहोदर अणगार दो-दो के सिंघाड़े में द्वारका में भिक्षार्थ भ्रमण करते हुए पहला सिंघाड़ा रानी देवकी के भवन में आ रहा है। दो अणगारों को आते देखकर रानी देवकी उठकर सामने जाती है। वन्दना नमस्कार करती है, फिर उन्हें भोजन गृह में ले जाकर सिंहकेशर मोदक बहराती है।

कुछ समय बाद दूसरा सिंघाड़ा भवन में प्रवेश करता है। एक समान रंग, रूप, वय होने से देवकी उसी सिंघाड़े को दुबारा आया समझकर आश्चर्यपूर्वक देखती है।

कुछ देर बाद तीसरा सिंघाड़ा आता है तब तो देवकी रानी गहरे विचार में डूब जाती है कि क्या वे ही मुनि तीसरी बार आये हैं ? मुनियों से पूछने पर मुनियों द्वारा रहस्य का उद्घाटन।

(वर्ग ३/अध्य. ८)

Illustration No. 9 :

Six friars in the palace of queen *Devakī*

Six friars divided themselves in three groups of two sages each. First group of two sages wandering in *Dwārakā* city, coming to the palace of *Devakī*. Seeing them *Devaki* comes forward, praises and bows down to them. Bringing from kitchen she gives them *Singha Keśara* sweet-balls and let them go.

After some time second group of two sages enters. Seeing the sages alike in age, colour etc., *Devakī* awfully gazes them.

After a little time when third group of two sages enters, *Devakī* drowns deep in thoughts—Whether the same sages have come thrice. She asks sages. Sages reveal the secret.

(Sec. 3/Ch. 8)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उन तीनों संघाड़ों में से एक संघाड़ा द्वारिका नगरी के ऊँच- नीच-मध्यम कुलों में, एक घर से दूसरे घर, भिक्षाचर्या के हेतु भ्रमण करता हुआ राजा वसुदेव की महारानी देवकी के प्रासाद में प्रविष्ट हुआ ।

उस समय देवकी रानी उन दो मुनियों के संघाड़े को अपने यहाँ आये देखकर प्रसन्न संतुष्ट एवं चित्त में आनन्दित हुई । प्रीतिवश उसका मन परमाल्हाद को प्राप्त हुआ, हर्षातिरेक से उसका हृदय-कमल विकसित हो उठा ।

तब देवकी रानी आसन से उठकर सात-आठ कदम मुनियुगल के सम्मुख गई । सामने जाकर तीन बार दायें से बांईं ओर उनकी प्रदक्षिणा की । प्रदक्षिणा कर उन्हें वन्दन नमस्कार किया । वन्दन नमस्कार के पश्चात जहाँ भोजनशाला है, वहाँ आई । भोजनशाला में आकर सिंहकेशर मोदकों (विशेष प्रकार के सुगंधित एवं पौष्टिक लड्डू) से एक थाल भरा और थाल भरकर उन मुनियों को प्रतिलाभ दिया । प्रतिलाभ देने के पश्चात् देवकी ने उन्हें पुनः वन्दन-नमन कर विदा किया ।

Six Monks : In the Palace of Devakī

Maxim 9 :

• Thereafter at any day of *pāraṇā* (the day of taking food) after two days' fast penance all these six monks studied in the first three hours (first *prahara*) of the day and after that approached *Bhagawāna*, like *Gautama Swāmī* and spoke thus unto him.

O *Bhagawan* ! We all six monks want to wander in *Dwārakā* city, in three groups (containing two in each group) for seeking food as the *pāraṇā* of two days' fast penance with your consent.

Bhagawāna said–Beloved as gods ! Do, as you feel happy.

Then getting the consent all the six monks bowed down and worshipped *Arihanta Ariṣṭanemi*. After it, from there,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

these monks went out and reached *Sahasrāmravana* (the wood of mango trees). Going out of that wood they divided themselves in three groups of two monks. Then they began to wander in the city with peaceful mind and observing circumspection of movement.

First Group

One of those three groups wandering in *Dwārakā* city seeking alms from high-low-medium standard houses, from one to the other house, approached the palace of *Devakī*, the queen of king *Vasudeva*.

Queen *Devakī* became very glad, happy and filled with bliss, seeing the two monks coming to her palace. Due to affection her mind filled with joy, her heart bloomed like a lotus due to the extremity of happiness.

Standing up from her seat queen *Devakī* went towards monk couple, seven or eight steps with pleasureful heart, and circumambulated bowed down and worshipped them. Then she went to kitchen with monk-couple. There he put *Singha-Keśara Modaka* (a kind of too much fragrant and nourishing–vitalising sweetball) in a big plate and gave to monk-couple. After this queen *Devakī* once again bowed down, worshipped and gave farewell to monk-couple.

विवेचन

● जहा गोयम सामी जाव इच्छामो.....

छहों सहोदर मुनियों ने गौतम स्वामी की तरह (गौतम स्वामी की दिनचर्या का वर्णन भगवती सूत्र शतक २ उद्देशक–५ में आया है ।) बेले के पारणे के दिन प्रथम प्रहर में शास्त्र-स्वाध्य, दूसरे प्रहर में ध्यान तथा तीसरे प्रहर में शान्त भाव से मुखवस्त्रिका, वस्त्रों व पात्रों की प्रतिलेखना की । पात्रों को लेकर भगवान के चरणों में विधिवत् वन्दन नमस्कार करके नगरी में भिक्षार्थ जाने की आज्ञा मांगी । आज्ञा मिल जाने पर चंचलता रहित तथा ईर्या शोधन पूर्वक शांति चित्त से भिक्षा हेतु भ्रमण करने लगे । यह वर्णन जानना चाहिए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उच्च-नीच मध्यम कुल के विषय में प्राचीन आचार्यों का स्पष्टीकरण इस प्रकार है–

- राजा आदि के राज भवन–सत्ता एवं संपदा की दृष्टि से उच्च कुल ।
- श्रेष्ठ, धनी व्यापारी आदि के भवन मध्यम कुल ।
- एक मंजिले छोटे झोंपड़ी आदि में रहने वालों के भवन नीच कुल कहे जाते थे ।

साधु इन सभी कुलों में सामुदानिक रूप में समभाव के साथ भिक्षा के लिए जाते थे ।

(आचारांग-निशीथ सूत्र के अनुसार)

Elucidation

■ *Jahā Goyama Sāmī Jāva icchāmo.....*

All these six uterine brother monks wished to move like *Gautama Swāmī*.

(The method of seeking alms of *Gautama Swāmī*, we get in *Bhagavatī Sūtra, Śataka* 2, *Uddeśaka* 5.) Like him, all these six brother monks studied scriptures in the first *prahara* of the day, in second involved in meditation, in third peacefully watched cloths, mouth-cloth, utensils etc. Taking utensils came to the lotus feet of *Bhagawāna* and bowing down in due order asked the permission to wander in the city for seeking alms. Obtaining the permission began to wander in the city for seeking alms with peaceful mind and observing movement circumspection.

■ Regarding high-medium-low standard people, the clarification of ancient sages–preachers, is like this–

(a) *High* (standard)–The palaces of kings, rulers, powerful persons etc.

(b) *Medium*–Big houses of wealthy traders and rich persons.

(c) *Low*–One storeyed houses, cottages of general public.

Sages used to seek alms from all these three types of houses and persons without any differentiation .

(According *to Ācārāṅga* and *Niśītha Sūtra*)

सूत्र १० :

तयाणंतरं च णं दोच्चे संघाडए बारवईए णयरीए उच्च जाव पडिविसज्जेइ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तयाणंतरं च णं तच्चे संघाडए उच्च-णीय जाव पडिलाभेइ । पडिलाभित्ता एवं वयासी–

किण्हं देवाणुप्पिया ! कण्हस्स वासुदेवस्स इमीसे बारवईए णयरीए दुवालसजोयण-आयामाए णवजोयण-वित्थिण्णाए पच्चक्खं देवलोगभूयाए समणा णिग्गंथा उच्च-णीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणा भत्तपाणं णो लभंति ? जण्णं ताइं चेव कुलाइं भत्तपाणाए, भुज्जो भुज्जो अणुप्पविसंति ।

दूसरा संघाटक

सूत्र १० :

प्रथम संघाटक के लौट जाने के पश्चात् उन छः सहोदर साधुओं के तीन संघाटकों में से दूसरा संघाटक भी द्वारका के उच्च-नीच-मध्यम आदि कुलों में भिक्षार्थ भ्रमण करता हुआ महारानी देवकी के प्रासाद में आया । देवकी ने प्रथम संघाटक की भाँति दूसरे मुनि संघाटक को भी प्रसन्न मन से सिंह केसर मोदकों का प्रतिलाभ देकर विसर्जित किया ।

तीसरा संघाटक

द्वितीय संघाटक के लौट जाने के पश्चात् उन मुनियों का तीसरा संघाड़ा भी द्वारका नगरी के ऊँच-नीच-मध्यम कुलों में भिक्षार्थ भ्रमण करता हुआ महारानी देवकी के प्रासाद में प्रविष्ट हुआ । देवकी ने पहले आये दो संघाटकों के समान उस तीसरे संघाटक को भी प्रसन्न मन से सिंह केसर–मोदकों का प्रतिलाभ दिया । प्रतिलाभ देकर आश्चर्य चकित होकर महारानी देवकी इस प्रकार बोली–

हे देवानुप्रियो ! क्या कृष्ण वासुदेव की इस बारह-योजन लम्बी, नव योजन चौड़ी, प्रत्यक्ष देवलोक के समान, द्वारका नगरी में श्रमण निर्ग्रन्थों को उच्च-नीच एवं मध्यम कुलों के गृह समुदायों से, भिक्षार्थ भ्रमण करते हुए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णिंदू भविस्सई । तए णं सा सुलसा बालप्पभिइं चेव हरिणेगमेसि देवभत्तया यावि होत्था ।

हरिणेगमेसिस्स पडिमं करेइ, करित्ता कल्लाकल्लिं ण्हाया जाव पायच्छित्ता उल्लपड-साडया महरिहं पुप्फच्चणं करेइ, करित्ता जाणुपायवडिया पणामं करेइ, तओ पच्छा आहारेइ वा णीहारेइ वा वरइ वा ।

सूत्र १३ :

तदनन्तर अर्हन्त अरिष्टनेमि देवकी को सम्बोधित कर इस प्रकार बोले– हे देवकी ! क्या इन छः साधुओं को देखकर वस्तुतः तुम्हारे मन में इस प्रकार का विचार या संशय उत्पन्न हुआ कि पोलासपुर नगर में अतिमुक्तकुमार श्रमण ने तुम्हें आठ अद्वितीय पुत्रों को जन्म देने का जो भविष्यकथन किया था, वह मिथ्या सिद्ध हुआ ऐसा प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है ? अतः उस विषय में पृच्छा करने के लिए तुम जल्दी-जल्दी यहाँ चली आई हो । हे देवकी ! क्या यह बात ठीक है ?

देवकी ने कहा–हाँ भगवन् ! ऐसा ही है ।

प्रभु अरिष्टनेमि ने शंका समाधान करते हुए कहा–हे देवानुप्रिये ! उस काल उस समय में भद्दिलपुर नगर में नाग नाम का गाथापति रहता था, जो आढ्य (महान ऋद्धिशाली) था । उस नाग गाथापति की सुलसा पत्नी थी । उस सुलसा गाथापत्नी को बाल्यावस्था में ही किसी निमित्तज्ञ ने कहा– यह बालिका निंदू (मृतवत्सा) यानि मृत बालकों को जन्म देने वाली होगी । इस कारण सुलसा बाल्य-काल से ही हरिणगमेषी देव की भक्त बन गई ।

सुलसा ने हरिणगमेषी देव की मूर्ति बनाई । मूर्ति बनाकर प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान करके यावत् दुःस्वप्न निवारणार्थ प्रायश्चित्त (शुद्धि) कर गीली साड़ी पहने हुए उसकी बहुमूल्य सुन्दर पुष्पों से अर्चना करती । पुष्पों द्वारा पूजा के पश्चात् घुटने टिकाकर (पाँचों अंग नमाकर) प्रणाम करती, तदनन्तर आहार नीहार आदि अपने अन्य कार्य करती थी ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं खलु देवाणुप्पिए ! अम्हे भद्दिलपुरे णयरे णागस्स गाहावइस्स पुत्ता सुलसाए भारियाए अत्तया छ भायरो सहोदरा सरिसया जाव णलकुब्बर-समाणा अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म संसार भयउव्विग्गा भीया जम्म-मरणाओ मुण्डा जाव पव्वइया ।

तए णं अम्हे जं चेव दिवसं पव्वइया तं चेव दिवसं अरहं अरिट्ठणेमिं वंदामो णमंसामो; वंदित्ता णमंसित्ता इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हामो- इच्छामो णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा ।

जाव अहासुहं !

देवाणुप्पिए ! तए णं अम्हे अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठं छट्ठेणं जाव विहरामो । तं अम्हे अज्ज छट्ठक्खमण पारणगंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेत्ता जाव अडमाणा तव गेहं अणुप्पविट्ठा ।

तं णो खलु देवाणुप्पिए ते चेव णं अम्हे । अम्हे णं अण्णे !

देवइं देविं एवं वयइ वइत्ता, जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए ।

सूत्र ११ :

देवकी द्वारा इस प्रकार का प्रश्न पूछे जाने पर वे मुनि देवकी देवी से इस प्रकार बोले–हे देवानुप्रिये ! ऐसी बात तो नहीं है कि कृष्ण वासुदेव की इस यावत् प्रत्यक्ष देवलोक के समान द्वारका नगरी में श्रमण निर्ग्रन्थों को उच्च-नीच-मध्यम कुलों में भ्रमण करते हुए आहार पानी प्राप्त नहीं होता है । और न मुनिजन आहार-पानी के लिए उन घरों-कुलों में दूसरी-तीसरी बार जाते हैं ।

हे देवानुप्रिये ! वास्तव में बात इस प्रकार है । भद्दिलपुर नगर में हम नाग गाथापति के पुत्र और उनकी सुलसा भार्या के आत्मज छः सहोदर भाई हैं । पूर्णतः समान आकृति एवं समान रूप वाले नलकूवर के समान हैं । हम छहों भाइयों ने अरिहंत अरिष्टनेमि का उपदेश सुनकर और उसे धारण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर संसार के भय से उद्विग्न एवं जन्म-मरण से भयभीत हो मुण्डित होकर श्रमण धर्म की दीक्षा ग्रहण की है ।

हमने जिस दिन दीक्षा ग्रहण की थी, उसी दिन अरिहंत अरिष्टनेमि को वन्दन नमन किया और वन्दन नमस्कार कर इस प्रकार का अभिग्रह धारण करने की आज्ञा चाही । "हे भगवन् ! आपकी अनुमति प्राप्त होने पर जीवन पर्यन्त बेले-बेले की तपस्यापूर्वक अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरना चाहते हैं ।"

तब प्रभु ने कहा–"देवानुप्रियो ! जिससे तुम्हें सुख हो, वैसा करो, प्रमाद मत करो ।"

हे देवानुप्रिये ! उसके बाद अरिहंत अरिष्टनेमि की अनुज्ञा प्राप्त होने पर हम जीवन भर के लिए निरंतर बेले-बेले की तपस्या करते हुए विचरने लगे ।

तो इस प्रकार आज हम छहों भाई बेले की तपस्या के पारणा के दिन प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करने तथा द्वितीय प्रहर में ध्यान करने के पश्चात् तृतीय प्रहर में प्रभु अरिष्टनेमि की आज्ञा प्राप्त कर तीन संघाटकों में भिक्षार्थ उच्च–मध्यम एवं निम्न कुलों में भ्रमण करते हुए तुम्हारे घर आ पहुँचे हैं ।

तो देवानुप्रिये ! ऐसी बात नहीं है कि जो पहले दो संघाटकों में मुनि तुम्हारे यहाँ आये थे, वे हम ही हैं । वस्तुतः हम दूसरे हैं ।

उन मुनियों ने देवकी देवी को इस प्रकार कहा, और यह कहकर वे जिस दिशा से आये थे, उसी दिशा की ओर लौट गये ।

Maxim 11 :

This question of *Devakī* was answered by the sages in these words–O beloved as gods ! The position is not like this, that sages could not get food and water from high-low-middle-class houses of this city of *Kṛṣṇa Vāsudeva*, which is like heaven abode nor the sages go over and again to the same house for their need of food and water.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

O beloved as gods ! The fact is like this. We six are uterine brothers, sons of *Nāga Gāthāpati* and his wife *Sulasā*, inhabitant of city *Bhaddilapura.* We all six brothers are just alike regarding age, colour, body-formation etc., and looked like–(resembled) *Nalakūbara.* We all six brothers heard sermon of *Arihanta Ariṣṭanemi*, took it to heart and being frightened from the cycle of births and deaths–the world, we accepted consecration and are practising sagehood.

The day we all six brothers accepted consecration, we bowed down and worshipped *Arihanta Ariṣṭanemi* and expressed our utter wish in these words–"O *Bhagawan* ! by your permission we wish to wander with you observing two days' fast penance (and third day to take food) (*Bele-Bele tapasyā*) till life, thus purifying our souls."

Then *Bhagawāna* permitting us said–"O beloved as gods ! Do as you feel happy; but do not delay.

O beloved as gods (*Devākī*) ! obtaining the permission of *Arihanta Ariṣṭanemi,* we began to wander practising *bele-bele* austerity.

Thus, today is the day of breaking fast of six meals, of all six brothers. During the first *prahara* (three hours) of day we studied scriptures and in second *prahara* meditated and in the third *prahara* taking the permission of *Arihanta Ariṣṭanemi,* we made three groups of two monks each and wandering for seeking food and water in high-low-middle class houses of the city approached to your palace.

O beloved as gods ! It is not a fact that we are the monks who came to you in two former groups, but it is true that we are others.

Those monks said such to *Devakī* and returned back in the direction they had come.

सूत्र १२ :

तए णं तीसे देवईए देवीए अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पण्णे !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं खलु अहं पोलासपुरे णयरे अइमुत्तेणं कुमारसमणेणं बालत्तणे वागरिया–तुमं णं देवाणुप्पिए ! अट्ठपुत्ते पयाइस्ससि सरिसए जाव नलकुब्बरसमाणे णो चेव णं भारहेवासे अण्णाओ अम्मयाओ तारिसए पुत्ते पयाइस्संति ।

तं णं मिच्छा ? इमं णं पच्चक्खमेव दिस्सइ भारहे वासे अण्णाओ वि अम्मयाओ खलु एरिसए जाव पुत्ते पयायाओ । तं गच्छामि णं अरहं अरिट्ठणेमिं वंदामि णमंसामि, वंदित्ता णमंसित्ता इमं च णं एयारूवं वागरणं पुच्छिस्सामि त्ति कट्टु एवं संपेहेइ संपेहित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी-लहु करण णप्पवरं जाव धम्मियं जाणप्पवरं उवट्ठवेति जहा देवाणंदा जाव पज्जुवासइ ।

सूत्र १२ :

इस प्रकार की बात सुनकर (मुनियों के लौट जाने के पश्चात्) देवकी के मन में इस प्रकार की विचार तरंगें उत्पन्न हुईं ।

एक बार पोलासपुर नगर में अतिमुक्त कुमार नामक श्रमण ने मेरे समक्ष बचपन में इस प्रकार भविष्यवाणी की थी कि–हे देवानुप्रिये देवकी ! तुम, एक दूसरे के पूर्णतः समान (सरीखे) आठ पुत्रों को जन्म दोगी, जो नलकूबर के समान होंगे । भरतक्षेत्र में दूसरी कोई माता वैसे पुत्रों को जन्म नहीं देगी ।

क्या यह भविष्यवाणी आज मिथ्या सिद्ध हुई ? क्योंकि यह प्रत्यक्ष ही दीख रहा है कि भरतक्षेत्र में अन्य माताओं ने भी सुनिश्चित रूपेण ऐसे एक समान छह सुन्दर पुत्रों को जन्म दिया है । (मुनि की बात मिथ्या नहीं होनी चाहिए, फिर यह प्रत्यक्ष में उससे विपरीत क्यों ? विचारों की इस उथल-पुथल में देवकी ने निर्णय किया) "ऐसी स्थिति में मैं अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान की सेवा में जाऊँ, उन्हें वन्दन नमस्कार करूँ, और वन्दन नमस्कार करके अतिमुक्तक मुनि के कथन के विषय में प्रभु से पूछूँ" देवकी ने इस प्रकार सोचा, ऐसा सोचकर देवकी ने अपने आज्ञाकारी पुरुषों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को बुलाया और बुलाकर कहा--"शीघ्र ही लघुकर्ण वाले (शीघ्रगामी) श्रेष्ठ धर्म रथ को तैयार करके लाओ ।"

आज्ञाकारी पुरुषों ने रथ उपस्थित किया । देवकी महारानी तैयार होकर उस रथ में बैठीं और प्रभु के समवशरण में उपस्थित हुईं । देवानन्दा द्वारा जिस प्रकार भगवान महावीर की पर्युपासना किये जाने का वर्णन है, उसी प्रकार महारानी देवकी भगवान अरिष्टनेमि के दर्शन कर पर्युपासना करने लगी ।

Maxim 12 :

Hearing this episode and after the departure of the sages, the mind of *Devakī* was engrossed by these thought currents.

Once, in my childhood, in *Polāsapura* city sage *Atimukta* foretold about me that *Devakī*, the beloved as gods ! you will give birth to eight sons, they will resemble each other and would be handsome like *Nalakūbara*. In this *Bharatakṣetra*, no other mother will give birth to such sons.

Has this forecast proved false to-day ? It is clearly evident that other mothers have also given birth to such resembling sons. (But forecast of sage must not be wrong. Why this controversy before my eyes ? During the up and down of thoughts) *Devakī* determined that I should go to *Arihanta Aristanemi*,bow down and worship him and doing thus, ask about the forecast of sage *Atimukta*. *Devakī* thought like this and as such she called the family servants and ordered them--"Bring forth quickly the stately religious chariot (*ratha*) with all equipments."

Family servants presented the chariot immediately. Queen *Devakī* sat in that chariot and approached the religious congregation of *Aristanemi*. As we get the description of worshipping *Bhagawāna Mahāvīra*, by *Devānandā* in the same way *Devakī* began to worhip *Arihanta Aristanemi*.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

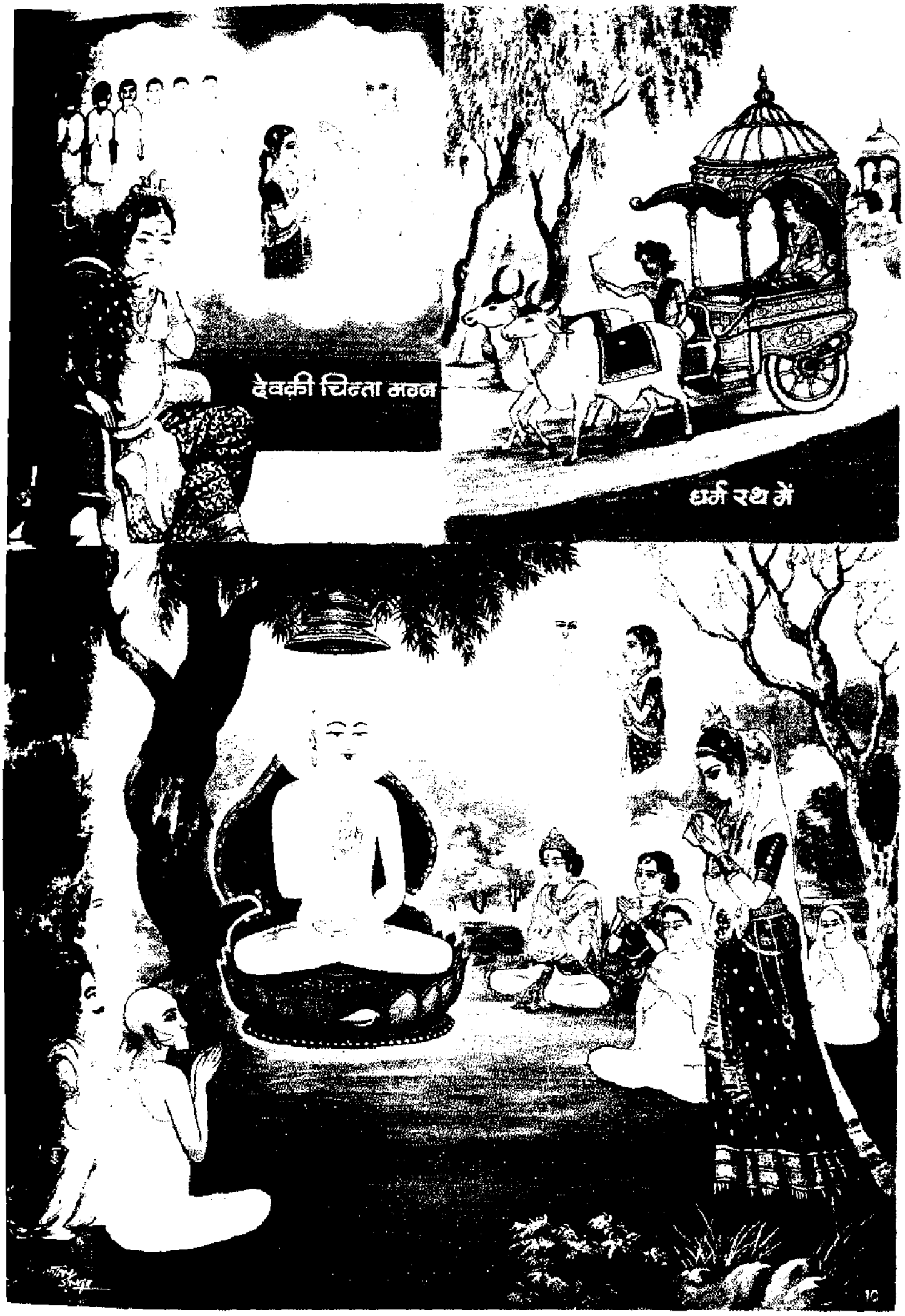

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रक्रम १० :

रानी देवकी की शंका तथा भगवान के समक्ष पृच्छा

दृश्य १—मुनियों के चले जाने के पश्चात् देवकी चिन्तन-मग्न होकर सोचती है, मुझे बचपन में श्रमण अतिमुक्तक ने कहा था—इस भरतक्षेत्र में तुम नलकूबर के समान सुन्दर एक जैसे आठ पुत्रों की माता बनोगी। ऐसे पुत्रों को भरतक्षेत्र में अन्य कोई माता जन्म नहीं देगी, तो क्या मुनि की वाणी असत्य सिद्ध हो गई? ये छह सहोदर बंधु भी नलकूबर के समान एक जैसे हैं और इन मुनियों ने बताया कि इनकी माता, नाग गाथापति की भार्या सुलसा है...वास्तव में क्या यही सत्य है?

दृश्य २—संशयशील होकर माता देवकी धर्मरथ पर आरूढ़ होकर भगवान अरिष्टनेमि से छहों सहोदर बंधु अणगारों की चर्चा करके श्रमण अतिमुक्तक की भविष्य वाणी के विषय में शंका करती है। भगवान अरिष्टनेमि द्वारा समाधान।

(वर्ग ३/अध्य. ८)

Illustration No. 10 :

Suspicion of queen *Devakī* and asking from *Bhagawāna*

Scene 1. After departing sages, *Devakī* thinks deeply—When I was merely a lass, monk *Atimuktaka* said to me—you would be the mother of eight sons, beautiful like *Nalakūbara* in this *Bharataksetra* (*Bhārata*—India). No other woman shall give birth to such sons. Have these words of monk proved false ? These six uterine brother sages are alike and like *Nalakūbara* and these sages told that their mother is *Sulasā*, wife of *Nāga* trader. Is it really true ?

Scene 2. Being doubtful, mother *Devakī* riding the religious chariot approaches *Bhagawāna* and after discussing about six uterine brother sages, expresses her suspicion about the words of monk *Atimuktaka*. *Bhagawāna* pacifies her curiosity.

(Sec. 3/Ch. 8)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन

"अइमुत्तेणं कुमार समणेणं" पाठ से यहाँ अभिप्राय है अतिमुक्त नामक कुमार श्रमण की भविष्यवाणी से । घटना इस प्रकार है ।

अतिमुक्त कुमार श्रमण कंस के छोटे भाई थे । जिस समय कंस की पत्नी जीवयशा अपनी छोटी ननद देवकी के साथ क्रीड़ा कर रही थी उस समय अतिमुक्त कुमार जीवयशा के घर में भिक्षा के लिए गये थे । आमोद-प्रमोद में मग्न जीवयशा ने अपने देवर को मुनि के रूप में देखकर उपहास करना प्रारम्भ किया । वह बोली–"देवर जी ! आओ तुम मेरे साथ क्रीड़ा करो, इस आमोद-प्रमोद में तुम भी भाग लो ।"

इस पर मुनि अतिमुक्त कुमार जीवयशा से कहने लगे–"जीवयशे ! जिस देवकी के साथ तुम इस समय क्रीड़ा कर अपने भाग्य पर इतरा रही हो, भविष्य में इस देवकी के गर्भ से आठ पुत्र उत्पन्न होंगे । ये पुत्र इतने सुन्दर और पुण्यात्मा होंगे कि भारतवर्ष में किसी स्त्री के ऐसे पुत्र नहीं होंगे । परन्तु इस देवकी का सातवाँ पुत्र तेरे पति को मारकर आधे भारतवर्ष पर राज्य करेगा ।" यह बात देवकी देवी ने बचपन में सुनी थी । अतः इसी के समाधान हेतु उसने भगवान अरिष्टनेमि के पास जाने का निश्चय किया ।

● **जहा देवाणंदा जाव पज्जुवासइ–**

माता देवकी का भगवान की सेवा में जाने का वर्णन भगवती सूत्र शतक ९ उद्देशक ३३ में वर्णित माता देवानन्दा की दर्शन यात्रा के समान बतलाया गया है । अर्थात् देवकी धार्मिक रथ में बैठकर द्वारका के मध्य बजारों में होती हुई नन्दन वन में पहुंची । भगवान के अतिशय को देखकर रथ से नीचे उतरी और पाँच अभिगम करके समवशरण में जाकर भगवान को विधिवत् वन्दना नमस्कार करके सेवा पर्युपासना करने लगी ।

Elucidation

1. The clause *Āimutteṇaṁ Kumāra Samaṇeṇaṁ* here indicates the forecast of *Atimukta Kumāra-sage*. The tale goes like this :

Atimukta Kumāra-sage was the younger brother of *Kaṁsa*. When the wife of *Kaṁsa, Jīvayaśā* was making amusements with *Devakī* (the younger sister-in-law) at that time *Atimukta Kumāra-sage* reached the house of *Jīvayaśā* for

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

seeking food and water. Envolved in rejoicings *Jīvayaśā*, saw *Atimukta Kumāra-sage*, took in view the past relation of brother-in-law, and began to jo She said–"Brother-in-law ! You also come and participate in amusements a rejoicings."

Then *Atimukta Kumāra-sage* said-*Jīvayaśā* ! Now you are rejoicing wi *Devakī* thinking yourself much fateful; but in future *Devakī* will give birth to eig sons. These sons would be such beautiful and fateful that no other woman *Bhārat-Varṣa* (India) can produce such sons. But the seventh son of this *Deva* will murder your husband and rule over half of *Bhārata-varṣa* (India). *Deva* listened this fact in her childhood. For ascertaining this, queen *Devakī decided* go to *Bhagawāna Ariṣṭanemi*.

■ ***Jahā Devāṇandā jāva pajjuvāsaï*.....**

Description of *Devakī* going to *Bhagawāna Ariṣṭanemi* is told like going t see *Bhagawāna Mahāvīra* by *Devānandā*, which we get in *Bhagavatī Sūtra*, *Śataka 9, Uddeśaka 33.* Meaning–*Devakī* sitting in religious chariot, goin through the main markets of *Dwārakā* approached *Nandana-vana*. Seeing the felicitations of *Bhagawāna*, she practised five *Abhigamas* and then reaching the religious assembly of *Bhagawāna* bowed down to him in due order and began to praise and worship him.

सूत्र १३ :

तए णं अरहा अरिट्ठणेमी देवई देविं एवं वयासी–से नूणं तव देवई ! इमे छ अणगारे पासित्ता अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था । एवं खलु पोलासपुरे णयरे अइमुत्तेणं तं चेव जाव णिग्गच्छसि, णिग्गच्छित्ता जेणेव मम अंतियं हव्वमागया। से णूणं देवई देवी ! अयमट्ठे समट्ठे ?

हंता ! अत्थि ।

एवं खलु देवाणुप्पिए !

तेणं कालेणं तेणं समएणं भद्दिलपुरे णयरे, णागे णामं गाहावई परिवसइ, अड्ढे । तस्सणं णागस्स गाहावइस्स सुलसा णामं भारिया होत्था । सा सुलसा-गाहावइणी बालत्तणे चेव णिमित्तिएणं वागरिया–एस णं दारिया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णिंदू भविस्सई । तए णं सा सुलसा बालप्पभिइं चेव हरिणेगमेसिं देवभत्तया यावि होत्था ।

हरिणेगमेसिस्स पडिमं करेइ, करित्ता कल्लाकल्लिं ण्हाया जाव पायच्छित्ता उल्लपड-साडया महरिहं पुप्फच्चणं करेइ, करित्ता जाणुपायवडिया पणामं करेइ, तओ पच्छा आहारेइ वा णीहारेइ वा वरइ वा ।

सूत्र १३ :

तदनन्तर अर्हन्त अरिष्टनेमि देवकी को सम्बोधित कर इस प्रकार बोले– हे देवकी ! क्या इन छः साधुओं को देखकर वस्तुतः तुम्हारे मन में इस प्रकार का विचार या संशय उत्पन्न हुआ कि पोलासपुर नगर में अतिमुक्तकुमार श्रमण ने तुम्हें आठ अद्वितीय पुत्रों को जन्म देने का जो भविष्यकथन किया था, वह मिथ्या सिद्ध हुआ ऐसा प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है ? अतः उस विषय में पृच्छा करने के लिए तुम जल्दी-जल्दी यहाँ चली आई हो । हे देवकी ! क्या यह बात ठीक है ?

देवकी ने कहा–हाँ भगवन् ! ऐसा ही है ।

प्रभु अरिष्टनेमि ने शंका समाधान करते हुए कहा–हे देवानुप्रिये ! उस काल उस समय में भद्दिलपुर नगर में नाग नाम का गाथापति रहता था, जो आढ्य (महान ऋद्धिशाली) था । उस नाग गाथापति की सुलसा पत्नी थी । उस सुलसा गाथापत्नी को बाल्यावस्था में ही किसी निमित्तज्ञ ने कहा– यह बालिका निंदू (मृतवत्सा) यानि मृत बालकों को जन्म देने वाली होगी । इस कारण सुलसा बाल्य-काल से ही हरिणगमेषी देव की भक्त बन गई ।

सुलसा ने हरिणगमेषी देव की मूर्ति बनाई । मूर्ति बनाकर प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान करके यावत् दुःस्वप्न निवारणार्थ प्रायश्चित्त (शुद्धि) कर गीली साड़ी पहने हुए उसकी बहुमूल्य सुन्दर पुष्पों से अर्चना करती । पुष्पों द्वारा पूजा के पश्चात् घुटने टिकाकर (पाँचों अंग नमाकर) प्रणाम करती, तदनन्तर आहार नीहार आदि अपने अन्य कार्य करती थी ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Maxim 13 :

Thereafter *Arihanta Ariṣṭanemi* addressing queen *Devakī* spoke thus unto her–O *Devakī* ! Did such suspicion and thought arise in your mind, that the forecast about you done by *Atimukta Kumāra-sage* that you will give birth to eight matchless sons, proved false ? In this regard, for asking and being sure, you have come quickly here. Is it correct ?

Devakī accepted–O *Bhagawan* ! It is correct.

Bhagawāna Ariṣṭanemi removing the doubt, began to speak–

O beloved as gods ! At that time and at that period, a *gāthāpatī* named *Nāga* lived in *Bhaddilapura*. He was very rich. *Sulasā* was his wife. An astrologer told about *Sulasā*, when she was in childhood that this girl would give birth to deceased children, On account of this, *Sulasā* became the devotee of *Hariṇagameṣī* god.

Sulasā made an image of *Hariṇagameṣī* god. Every morning she bathed, repented for ill-dreams and worshipped god by fragrant, beautiful flowers of great value, wearing all the time drenched robe. After worship she fell on her knees and bowed down; then she used to do the work of household, food etc.

सूत्र १४ :

तए णं तीसे सुलसाए गाहावइणीए भत्ति-बहुमाण सुस्सूसाए हरिणेगमेसी देवे आराहिए यावि होत्था । तए णं से हरिणेगमेसी देवे सुलसाए गाहावइणीए अणुकंपणट्ठाए सुलसं गाहावइणिं तुमं च णं दोण्णि वि समउउयाओ करेइ ।

तए णं तुब्भे दो वि सममेव गब्भे गिण्हह, सममेव गब्भे परिवहह, सममेव दारए पयायह । तए णं सा सुलसा गाहावइणी विणिहायमावण्णे दारए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रक्रम ११ :

अर्हत् अरिष्टनेमि के द्वारा रहस्योद्घाटन

देवकी रानी के पूछने पर अर्हत् अरिष्टनेमि ने बताया कि भद्दिलपुर निवासी नाग गाथापति की पत्नी सुलसा को किसी ने कहा था कि वह मृतवत्सा होगी, अतः वह बाल्यकाल से ही गीली साड़ी पहनकर बहुमूल्य पुष्पों आदि से हरिणगमैषी देवता की भक्ति करने लगी। हरिणगमैषी देव सुलसा की अनुकम्पा के लिए कंस के कारागार में जन्मे तुम्हारे जीवित पुत्रों को उठाकर उसके पास रख देता था और उसकी मृत सन्तान को तुम्हारे पास लाकर रख देता, जिससे तुम्हें लगता कि तुमने मृत सन्तान को जन्म दिया है। वास्तव में ये छहों सहोदर श्रमण तुम्हारे ही आत्मज हैं।

(वर्ग ३/अध्य. ८)

Illustration No. 11 :

The secret revealed by *Arhat Aristanemi*

At the curiosity of queen *Devakī*, *Arhat Aristanemi* told–Somebody fore-told *Sulasā*, wife of *Nāga* trader, resident of *Bhaddilapura*, that you will give birth to still (dead) sons. Therefore from her childhood she began to offer valuable flowers to god *Hariṇagamaisī* with great devotion wearing drenched robe (*sārī*), *Harinagamaiṣī* pleased. Having pity on *Sulasā*, god *Hariṇagamaisī* used to put your alive sons you give birth to in the prison of *Kaṅsa* beside *Sulasā* and her still sons beside you. So you felt that you have given birth to still sons. Really these six uterine brother friars are your own sons.

(Sec. 3/Ch. 8)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

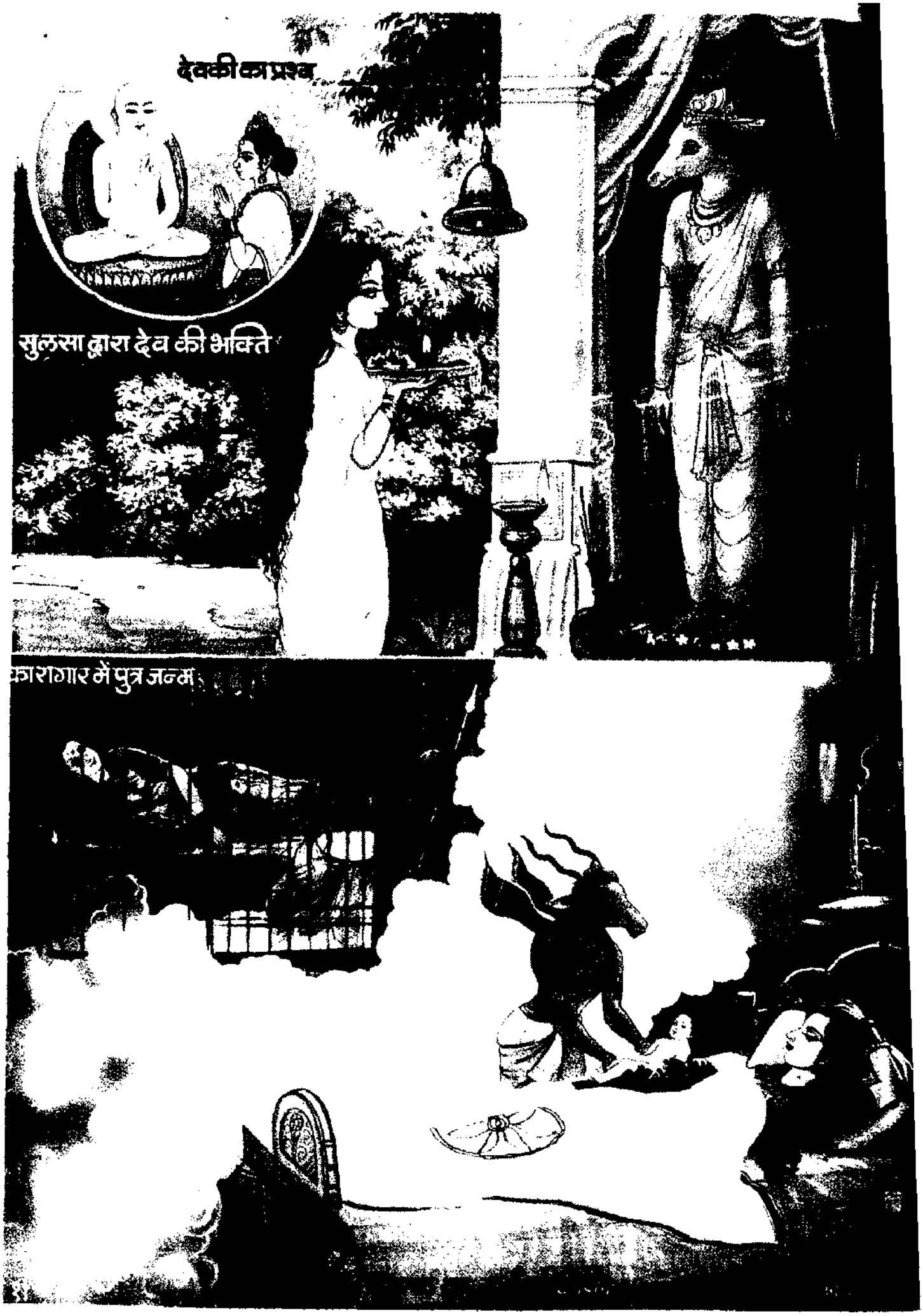

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पयायइ । तए णं से हरिणेगमेसी देवे सुलसाए अणुकंपणट्ठाए विणिहायमावण्णए दारए करयल-संपुडेणं गिण्हइ । गिण्हित्ता तव अंतियं साहरइ । साहरइत्ता तं समयं च णं तुम णवण्हं मासाणं सुकुमाल दारए पसवसि ।

जे वि य णं देवाणुप्पिए ! तव पुत्ता ते वि य जाव अंतियाओ करयल-संपुडेणं गिण्हइ, गिण्हित्ता सुलसाए गाहावइणीए अंतिए साहरइ ।

तं तव चेव णं देवइ ! ए ए पुत्ता । णो चेव णं सुलसाए गाहावइणीए ।

सूत्र १४ :

तब सुलसा गाथापत्नी की उस भक्ति (अनुराग) बहुमान-सन्मान सत्कार पूर्वक की गई सेवा-शुश्रूषा से देवता प्रसन्न हुआ । हरिणगमेषी देव, सुलसा गाथापत्नी पर अनुकम्पा करने हेतु सुलसा गाथापत्नी को तथा तुम्हें–दोनों को समकाल में ऋतुमति (रजस्वला) करता ।

तब तुम दोनों समकाल में गर्भ धारण करतीं और समकाल में ही बालक को जन्म देतीं । तब हरिणगमेषी देव सुलसा पर अनुकम्पा करने के लिए उसके मृत बालक को सावधानी पूर्वक दोनों हाथों में लेता और लेकर तुम्हारे पास ले आता ।

इधर उस समय तुम भी नवें मास का काल पूर्ण होने पर सुकुमार बालक को जन्म देती थीं ।

हे देवानुप्रिये ! जो तुम्हारे पुत्र होते उनको भी हरिणगमेषी देव तुम्हारे पास से अपने दोनों हाथों में ग्रहण करता और उन्हें ग्रहण कर सुलसा गाथापत्नी के पास लाकर रख देता था ।

अतः वास्तव में हे देवकी ! ये तुम्हारे ही आत्मज पुत्र हैं, सुलसा गाथा पत्नी के नहीं हैं ।

Maxim 14 :

The god was pleased with *Sulasā* by her such devotion, respect and service. On account of compassion for *Sulasā*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Gāthāpatnī god *Hariṇagameṣī* menstruated both–you and her at the same time.

Then at the same time you and she become pregnant and both gave birth to sons at the same (after completing the pregnancy period of nine months) time.

Then god *Hariṇagameṣī*–used to take the still (deceased) child of *Sulasā* and keep that beside you.

O beloved as gods ! Like this the god carefully took your alive son and kept in the lap of *Sulasā* housewife.

Devakī ! Therefore, actually these six monks are your sons and not of *Sulasā*.

सूत्र १५ :

तए णं सा देवई देवी अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हियया, अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ णमंसइ । वंदित्ता णमंसित्ता जेणेव ते छ अणगारा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ते छप्पि अणगारे वंदइ णमंसइ ।

वंदित्ता णमंसित्ता आगयपण्हुया पप्फुल्ललोयणा कंचुय-परिक्खित्तिया दरियवलय-बाहाधाराहय-कलंब-पुप्फगविव समूससिय–रोमकूवा ते छप्पि अणगारे अणिमिसाए दिट्ठीए पेहमाणी पेहमाणी सुचिरं णिरिक्खइ । णिरिक्खित्ता वंदइ णमंसइ ।

वंदित्ता णमंसित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छई, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठणेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता तमेव धम्मियं जाणप्पवरं दुरूहइ, दुरूहित्ता जेणेव बारवई णयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बारवइं णयरिं अणुप्पविसइ ।

अणुप्पविसित्ता जेणेव सए गिहे, जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पच्चोरुहित्ता जेणेव सए वासघरे, जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता, सयंसि सयणिज्जंसि णिसीयइ ।

१५ :

तव उस देवकी देवी ने अरिहंत अरिष्टनेमि के मुखारविन्द से इस प्रकार रहस्य उद्घाटित करने वाली बात सुनकर हृदयंगम की । संतुष्ट एवं प्रसन्न चित्त होकर अरिहंत अरिष्टनेमि भगवान को वन्दन नमस्कार किया और वन्दन नमस्कार करके वे छहों मुनि जहाँ विराजमान थे, वहाँ आई । आकर उसने उन छहों मुनियों को वन्दन किया ।

वन्दन नमस्कार करके देवकी छहों अणगारों को अपलक देखने लगी । उन अणगारों को देखकर उसके हृदय में, पुत्र-प्रेम उमड़ पड़ा । उसके स्तनों से दूध झरने लगा । हर्ष के कारण उसकी आँखें विकसित हो गयीं और खुशी के आँसू भर आये । अत्यन्त हर्ष के कारण शरीर फूलने से उसकी कंचुकी की कसें टूट गईं और भुजाओं के आभूषण तथा हाथ की चूड़ियाँ तंग हो गईं । जिस प्रकार वर्षा की धारा पड़ने से कदम्ब पुष्प एक साथ विकसित हो जाते हैं, उसी प्रकार उसके शरीर के सभी रोम-रोम पुलकित हो गये । वह उन छहों मुनियों को निर्निमेष दृष्टि से देखती हुई चिरकाल तक निरखती ही रही । फिर स्वयं को संभालकर उसने छहों मुनियों को वन्दन नमस्कार किया ।

वन्दन नमस्कार करके वह जहाँ भगवान अरिष्टनेमि विराजमान थे, वहाँ आई और आकर अर्हत् अरिष्टनेमि को तीन बार प्रदक्षिणा करके वन्दन नमस्कार किया ।

वन्दन नमस्कार करके उसी धार्मिक श्रेष्ठ रथ पर आरूढ़ हुई । रथारूढ़ हो, जहाँ द्वारका नगरी है, वहाँ आयी और वहाँ आकर द्वारका नगरी में प्रविष्ट हुई ।

देवकी द्वारका नगरी में प्रवेश कर जहां अपने प्रासाद के बाहर की उपस्थानशाला अर्थात् बैठक थी वहाँ आयी, वहाँ आकर धार्मिक रथ से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नीचे उतरी, नीचे उतरकर जहाँ अपना वास गृह (निवास कक्ष) था, जहाँ अपनी शय्या थी, वहाँ आयी, वहाँ आकर अपनी शय्या पर बैठ गयी ।

Maxim 15 :

Then *Devakī Devī*, listening the secret disclosed by *Arihanta Aristanemi*, became glad. She bowed down, praised and worshipped him and reached the six monks and bowed down and worshipped them.

Devakī gazed at those sages for a long time. Her heart filled with motherly affection. Her breasts began to milch. Due to joy her eyes streamed and filled with tears of happiness. Her body spread out so the binding threads of her brassiere broke up, her bracelets splitted on her arms, the root-cells of her hair swelled like *kadamba* flowers beaten by rain showers. She observed those six monks with unwinking eyes for a long time. Then *Devakī* brought herself to her senses and again bowed down to all the six sages.

Thereafter she came to *Arihanta Aristanemi*, circumambulating thrice she bowed down to him with devotion and went out of the religious assembly.

She sat in her religious chariot, reached *Dwārakā* city and then her palace. Getting down from chariot she entered her bed-room and sat on her bed.

सूत्र १६ :

तए णं तीसे देवईए अयं अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पण्णे—एवं खलु अहं सरिसए जाव णलकुब्बर-समाणे सत्त पुत्ते पयाया णो चेव णं मए एगस्स वि बालत्तणए समणुभूए । एस वि य णं कण्हे वासुदेवे छण्णं मासाणं ममं अंतियं पायवंदए हव्वमागच्छइ ।

तं धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ जासिं मण्णे णियग-कुच्छिसंभूयाइं थणदुद्धलुद्धयाइं महुर-समुल्लावयाइं मम्मण-जंपियाइं थणमूल-कक्ख

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देसभागं अभिसरमाणाइं, मुद्धयाइं पुणो य कोमल-कमलोवमेहिं हत्थेहिं गिण्हिऊण उच्छंगे णिवेसियाइं देंति; समुल्लावए सुमहुरे पुणो-पुणो मंजुलप्पभणिए ।

अहं णं अधण्णा अपुण्णा एत्तो एगयरमवि ण पत्ता (एवं) ओहयमण-संकप्पा जाव झियायइ ।

देवकी को पुत्र अभिलाषा

सूत्र १६ :

उस समय देवकी को इस प्रकार का विचार, चिन्तन और अभिलाषापूर्ण मानसिक संकल्प उत्पन्न हुआ कि–अहो ! मैंने पूर्णतः समान आकृति वाले यावत् नलकूबर के समान सात पुत्रों को जन्म दिया, पर मैंने एक पुत्र की भी बाल्यक्रीड़ा के आनन्द का अनुभव नहीं किया । फिर यह कृष्ण वासुदेव भी छः महीनों के पश्चात् मेरे पास चरण-वन्दना के लिए भागता दौड़ता आता है ।

इस संसार में वास्तव में वे माताएं धन्य हैं, जिनकी अपनी कुक्षि से उत्पन्न हुए, स्तनपान के लोभी बालक, मधुर-आलाप करते हुए, तुतलाती बोली से मन्मन बोलते हुए, स्तनमूल कक्षा भाग में इधर से उधर अभिसरण करते घूमते रहते हैं, एवं फिर उन मुग्ध भोले बालकों को जो माताएँ कमल के समान अपने कोमल हाथों द्वारा पकड़ कर गोद में बिठाती हैं, और अपने बालकों से मंजुल–मधुर शब्दों में बार-बार बातें करती हैं ।

मैं तो निश्चित रूप से अधन्य, अकृतार्थ (असफल) और पुण्यहीन हूँ क्योंकि मैंने इनमें से किसी एक पुत्र की भी बाल-क्रीड़ा नहीं देखी । इस प्रकार देवकी खिन्न मन से हथेली पर मुख रखे उदास होकर आर्त्तध्यान करने लगी ।

Son-desire of Devakī

Maxim 16 :

Then there arose such thinking, thought and mental current in the mind of *Devakī*–Oh truly I gave birth to seven sons exactly alike (until) resembling *Nalakūbara* in beauty but

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

I could not enjoy the childhood plays of even one of them. Even this *Kṛṣṇa* comes to me after six months for reverence, but in hurry.

In this world, really happy and fateful are those mothers, the sons (child) born from their own wombs, greedy for sucking the milk of their breasts, lisping sweetly, babbling and pattling, moving to their armpits from where the breasts arose up, give a sitting in their laps having them by lotus-like hands, give sweet talks and pleasing words.

Definitely, I am hapless, meritless and successless; because I have not even visualized the childhood plays of any one of my seven sons.

Thus *Devakī*, putting her cheek on her palm, drowned in sorrowful thoughts with frustrated mind and hopes.

सूत्र १७ :

इमं च णं कण्हे वासुदेवे ण्हाए जाव विभूसिए देवईए देवीए पायवंदए हव्वमागच्छइ ! तए णं से कण्हे वासुदेवे देवइं देविं पासइ पासित्ता देवईए देवीए पायग्गहणं करेइ करित्ता देवइं देविं एवं वयासी–

अण्णया णं अम्मो ! तुब्भे ममं पासित्ता हट्ठ जाव भवह, किण्णं अम्मो ! अज्ज तुब्भे ओहय मण संकप्पा जाव झियायह ।

तए णं सा देवई देवी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी–एवं खलु अहं पुत्ता ! सरिसए जाव नलकुब्बर समाणे सत्त पुत्ते पयाया । णो चेव णं मए एगस्स वि बालत्तणे अणुभूए ।

तुमं पि य णं पुत्ता ! ममं छण्हं-छण्हं मासाणं अंतियं हव्वमागच्छसि, तं धण्णाओ णं ताओ, अम्मयाओ जाव झियामि ।

सूत्र १७ :

देवकी इस प्रकार उदास होकर बैठी थी कि उसी समय वहाँ श्रीकृष्ण वासुदेव स्नान कर यावत् वस्त्र अलंकारों से विभूषित होकर देवकी माता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रक्रम १२ :

देवकी का शिशु लालन के लिए आर्त्तध्यान

अर्हत् अरिष्टनेमि से सत्य जानकर देवकी घर आई और उदास होकर सोचने लगी—वे माताएँ धन्य हैं, भाग्यशालिनी हैं, जो अपने शिशु को अपने हाथ से खिलाती हैं, अँगुली पकड़कर चलाती हैं और गोद में लेकर उसका दुलार करती हैं, उसे दूध पिलाती हैं और बार-बार अपने शिशुओं के साथ तोतली बोली बोलती हैं। मैंने सात पुत्रों को जन्म दिया, परन्तु एक की भी बाल-लीला नहीं देखी। यह श्रीकृष्ण वासुदेव भी तो छह-छह महीने से कुछ क्षण के लिए ही सूरत दिखाने आता है।

देवकी इन विचारों में खोई है, तभी श्रीकृष्ण वासुदेव उनकी चरण-वन्दना करने आते हैं। देवकी माता को उदास और अन्यमनस्क देखकर श्रीकृष्ण कारण पूछते हैं।

(वर्ग ३/अध्य. ८)

Illustration No. 12 :

Painy feelings of *Devakī* for a baby

Knowing real fact from *Arhat Aristanemi*, *Devakī* returned to her palace and began to think sadly—Fateful are those mothers, who make their babies play with their own hands, make walk them taking their fingers, love them getting them in their laps, feed them by their own breasts, embrace them, speak lisking and pleasing words with their babies over and over again. I have given birth to seven sons but could not see the childish plays of any one of them. Even this *Vāsudeva Kṛṣṇa* comes to bow me after six months and that is also for a few minutes.

Devakī is deep in such sadful thoughts; at the same time *Śrī Kṛṣṇa Vāsudeva* comes to rever and bow down at her feet. Seeing mother *Devakī* sad he asks the reason.

(Sec. 3/Ch. 8)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के चरण वन्दन के लिए शीघ्रतापूर्वक आये । तब कृष्ण वासुदेव देवकी माता के दर्शन करते हैं । दर्शन कर देवकी के चरणों में वन्दन करते हैं । उन्होंने अपनी माता को उदास और चिन्तित देखा तो चरण वन्दन कर देवकी देवी से इस प्रकार पूछने लगे–

हे माता ! इससे पहले तो मैं जब-जब आपके चरण वन्दन के लिए आता था, तब-तब आप मुझे देखते ही हर्ष से पुलकित एवं आनन्दित हो जाती थीं, पर माँ आप आज उदास, चिन्तित तथा आर्त्तध्यान में निमग्न सी क्यों दिखाई दे रही हो ? हे माता ! इसका क्या कारण है ? कृपा करके बताइये ।

कृष्ण द्वारा इस प्रकार का प्रश्न पूछे जाने पर देवकी देवी कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहने लगी–हे पुत्र ! वस्तुतः बात यह है कि मैंने एक समान आकार, एक समान रंग-रूप वाले सात पुत्रों को जन्म दिया, परन्तु मैंने उनमें से किसी एक का भी बाल्यकाल अथवा बाल-लीला का अनुभव नहीं किया ।

पुत्र ! तुम भी छः छः महीनों के अन्तर से मेरे पास चरण वन्दन के लिए आते हो । इसीलिए मैं ऐसा सोच रही हूँ कि वे माताएँ धन्य हैं, पुण्यशालिनी हैं, जो अपनी संतान को स्तनपान कराती हैं, यावत् उनके साथ मधुर आलाप करती हैं, और उनकी बाल-क्रीड़ा के आनन्द का अनुभव करती हैं । मैं अधन्य हूँ, अकृत-पुण्य हूँ । यही सब सोचती हुई मैं उदासीन होकर इस प्रकार का आर्त्तध्यान कर रही हूँ ।

Maxim 17 :

Thus *Devakī* was sitting sad-minded. At the same time *Kṛṣṇa Vāsudeva*, bathed (until) decorated his body with clothes and ornaments, came quickly to mother *Devakī* for reverence of her feet. Then *Vāsudeva Kṛṣṇa* saw and bowed down at the feet of *Devakī*. When he saw his mother sad and worried he enquired–

O mother ! Formerly whenever I came to touch your feet, you always became glad on seeing me; but O mother !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

today why are you sad, worried and brooding ? What is its reason ? Please tell me.

On this question *Devakī* began to say unto *Kṛṣṇa Vāsudeva*–O Son ! really the fact is this that I have given birth to seven sons exactly same in colour, form and body formation; but could not enjoy the childhood days and plays of any single son.

You also come to me after six months for touching my feet. Hence I am thinking that those mothers are fateful, who feed their sons by their breasts talk sweetly to them. I am hapless, meritless. Pondering over all this, I am sad, worried and brooding.

सूत्र १८ :

तए णं से कण्हे वासुदेवे देवइं देविं एवं वयासी–मा णं तुब्भे अम्मो ! ओहयमण संकप्पा जाव झियायह । अहं णं तहा जवत्तिस्सामि जहा णं ममं सहोदरे कणीयसे भाउए भविस्सइ ।

त्ति कट्टु देवइं देविं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं जाव वग्गूहिं समासासेइ ।

समासासित्ता तओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता जहा अभओ णवरं हरिणेगमेसिस्स अट्ठम भत्तं पगिण्हइ ।

जाव अंजलिं कट्टु एवं वसायी–इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! मम सहोदरं कणीयसं भाउयं विदिण्णं ।

श्रीकृष्ण द्वारा चिन्ता निवारण का उपाय

सूत्र १८ :

माता की यह बात सुनकर श्रीकृष्ण वासुदेव ने देवकी देवी से इस प्रकार कहा–हे माताजी ! आप उदास अथवा चिन्तित होकर अब आर्त्तध्यान मत करो । मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा कि जिससे मेरे एक सहोदर छोटा भाई होगा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रक्रम १३ :

श्रीकृष्ण द्वारा हरिणगमैषी देव की आराधना

श्रीकृष्ण वासुदेव ने पौषधशाला में जाकर तेला करके हरिणगमैषी देवता का आह्वान किया। हरिणगमैषी देव आकाश में प्रकट हुआ। श्रीकृष्ण वासुदेव ने कहा–हे देवानुप्रिय ! मेरी माता की इच्छा है कि मुझे एक छोटा भाई प्राप्त हो।

(वर्ग ३/अध्य. ८)

Illustration No. 13 :

Propiliation of god *Hariṇagamaiṣī* by *Śrī Kṛṣṇa*

Śrī Kṛṣṇa Vāsudeva went to oratory (*Pausadhaśālā*), observed three days' fast penance and called god *Harinagamaiṣī*. *Harinagamaiṣī* came and remained still in sky. *Śrī Kṛṣṇa Vāsudeva* expressed his desire–Beloved as gods ! My mother wishes that I should have one uterine younger brother.

(Sec. 3/Ch. 8)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार कहकर श्रीकृष्ण ने देवकी माता को प्रिय, अभिलषित, मधुर एवं इष्ट कान्त वचनों से धैर्य बंधाया, आश्वस्त किया ।

इस प्रकार अपनी माता को आश्वस्त कर श्रीकृष्ण माता के आवास से निकले । निकलकर जहां पौषधशाला थी वहां आये। पौषधशाला में आकर जिस प्रकार अभयकुमार ने अष्टम भक्त तप (तेला) स्वीकार करके अपने देवता की आराधना की थी, उसी प्रकार श्री कृष्ण वासुदेव भी तेला करके हरिणैगमेषी देव की आराधना करने लगे ।

आराधना से आकर्षित होकर वह दिव्य रूप एवं विशिष्ट कान्तिवाला हरिणैगमेषी देव अन्तरिक्ष में कृष्ण वासुदेव के सम्मुख उपस्थित हुआ और श्रीकृष्ण वासुदेव से बोला–हे देवानुप्रिय ! मैं हरिणगमेषी देव हूं। अष्टम भक्त तप करके आपने मुझे क्यों याद किया ? आपकी आराधना से आकृष्ट हुआ मैं उपस्थित हूँ। कहिये, क्या इच्छा है ? आपका क्या मनोरथ है ? मैं आपके किस शुभ कार्य में सहायता कर सकता हूँ ?

तब श्रीकृष्ण वासुदेव ने दोनों हाथ जोड़कर उस देव से कहा–हे देवानुप्रिय ! मेरे एक सहोदर लघुभ्राता का जन्म हो, यह मेरी इच्छा है ।

Worry-Preventive device by Śrīkṛṣṇa

Maxim 18 :

Hearing this expression and knowing the desire of mother, *Śrīkṛṣṇa Vāsudeva* said–O mother ! Do not be sad, worried and brood, I shall so strive that my uterine brother will take birth.

Thus saying *Śrīkṛṣṇa* assured his mother *Devakī* with sweet, pleasing and agreeable words.

Thus assuring his mother, *Śrīkṛṣṇa* came out of the palace and reached oratory (*Pauṣadhaśālā*). As *Abhaya Kumāra* propiliated his god accepting three days' fast penance, in the same way *Śrīkṛṣṇa Vāsudeva*, accepting three days' fast penance began to propiliate god *Hariṇagameṣī*.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Having divine form and unique lustre god *Hariṇagameṣī*, attracted by propiliation came and staying in sky became present before *Kṛṣṇa Vāsudeva* and spoke thus–O beloved as gods ! I am god *Hariṇagameṣī*. Why you have called me by eight meals fast austesity. Attracted by your penance I am present before you. Tell me your desire, in which good deed of yours can I help you ? What is your wish ?

Then *Śrīkṛṣṇa Vāsudeva* spoke to god with folded hands–O beloved as gods ! My one uterine brother should take birth, it is my wish.

विवेचन

अभयकुमार की भांति श्रीकृष्ण वासुदेव ने हरिणगमेषी देवता की आराधना की और एक छोटा भाई प्राप्त करने की इच्छा जताई।

अभयकुमार का वर्णन ज्ञातासूत्र अ. १ में मेघकुमार के प्रसंग में आता है । माता धारिणी देवी को अ-समय में वर्षा ऋतु जैसी क्रीड़ा करने का दोहद उत्पन्न हुआ । उसकी पूर्ति के लिए अभयकुमार ने अपने पूर्वभव के मित्र सौधर्मकल्प वासी देवता की आराधना की। आराधना की विधि इस प्रकार है–पौषधशाला मे जाकर तेले का तप किया । पूर्ण ब्रह्मचर्यपूर्वक पौषध किया । सब प्रकार के आभूषण आदि उतार कर घास का संथारा विछाया । अष्टम भक्तपूर्वक मन से हरिणैगमेषी देवता का ध्यान कर आह्वान किया । तेले की पूर्ति के दिन देवता का आसन चलायमान हुआ । उसने अवधिज्ञान के उपयोग से जाना तो उत्तर वैक्रिय समुद्घात करके शीघ्र गति से अन्तरिक्ष में स्वयं आकर उपस्थित हुआ ।

Elucidation

Jahā Abhao.....

Like *Abhaya Kumāra, Śrīkṛṣṇa Vāsudeva* propiliated god *Hariṇgameṣī* and expressed his desire for a younger uterine brother.

Description of *Abhaya Kumāra*, we get in *Jñātāsūtra*, Chapter 1, regarding the episode of *Megha kumāra*. An intense desire arose in the head and heart of mother (really step mother of *Abhaya Kumāra) Dhāriṇī*. While she was

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

pregnant, that I may enjoy rainy season but it was not according to time, because at that time summer was prevailing. For fulfilling the intense desire of pregnant *Dhāriṇī*, *Abhaya Kumāra* propiliated a god who was residing in *Saudharma* heaven, but was friend of his (*Abhaya Kumāra's*) former life. Method of propiliation is thus–Going to oratory (*pauṣadhaśālā*) accepted three days' fast penance, practising full celibacy done *pauṣadha* (a special vow), putting off all kinds of ornaments, spread a pallet–bed of grass. With eight meals fast putting mind in *Hariṇagameṣī* god called him by heart. At the last day of three days' fast, the seat of god moved. By clairvoyance he became aware of the fact, then he came with fast speed and presented himself staying in sky, i.e., not touching the ground or remaining four fingers above from the surface of earth.

सूत्र १९ :

तए णं से हरिणेगमेसी देवे कण्हं वासुदेवं एवं वयासी–होहिइ णं देवाणुप्पिया ! तव देवलोयचुए सहोदरे कणीयसे भाउए ! से णं उम्मुक्कबालभावे जाव जोव्वणगमणुप्पत्ते अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतियं मुण्डे जाव पव्वइस्सइ।

कण्हं वासुदेवं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयइ, वइत्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

सूत्र १९ :

तदनन्तर वह हरिणैगमेषी देव श्रीकृष्ण वासुदेव से इस प्रकार बोला–हे देवानुप्रिय ! देवलोक का एक देव वहां की आयुष्य पूर्ण होने पर देवलोक से च्युत होकर आपके सहोदर छोटे भाई के रूप में जन्म लेगा और इस प्रकार आपका मनोरथ अवश्य पूर्ण जायेगा। परन्तु वह बाल्यकाल बीतने पर युवावस्था प्राप्त होने पर भगवान श्री अरिष्टनेमि के पास मुण्डित होकर श्रमण दीक्षा ग्रहण कर लेगा ।

उस देव ने श्रीकृष्ण वासुदेव को दूसरी बार, तीसरी बार भी यही बात कही और कहने के पश्चात् जिस दिशा की ओर से आया था उसी दिशा की ओर लौट गया ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Maxim 19 :

Thereafter *Hariṇagameṣī* god spoke such unto *Śrīkṛṣṇa Vāsudeva*–O beloved as gods ! one god, completing his duration of celestial abode, will take birth as your uterine younger brother, so your desire will be surely fulfilled. But passing boyhood and attaining young age being tonsured he will accept sagehood near *Bhagawāna Śrī Ariṣṭanemi*.

The god said thus twice and thrice to *Śrīkṛṣṇa Vāsudeva* and then he went back to the same direction from which he had come.

सूत्र २० :

तए णं से कण्हे वासुदेवे पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ । पडिणिक्खमित्ता जेणेव देवई देवी तेणेव उवागच्छइ । उवागच्छित्ता देवईए देवीए पायग्गहणं करेइ, करित्ता एवं वयासी–होहिइ णं अम्मो ! ममं सहोदरे कणीयसे भाउ त्ति कट्टु देवइं देविं ताहिं इट्ठाहिं जाव आसासेइ, आसासित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए ।

तए णं सा देवई देवी अण्णया कयाइं तंसि तारिसगंसि सयण्णीज्जंसि जाव सुत्तजागराए जाव सीहं सुमिणे पासित्ता पडिबुद्धा, जाव हट्ठ-तुट्ठ हियया तं गब्भं सुहं सुहेणं परिवहइ ।

सूत्र २० :

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण वासुदेव पौषधशाला से निकले, निकलकर देवकी माता के पास आये और आकर माता का चरण वन्दन किया । चरण वन्दन करके माता से इस प्रकार बोले–"माताजी ! मेरे एक सहोदर छोटा भाई अवश्य होगा । आपकी इच्छा पूरी होगी। अब आप चिन्ता न करें ।" इस प्रकार उन्होंने देवकी माता को मधुर एवं इष्ट वचनों से आश्वस्त किया और आश्वस्त करके जिधर से आये थे, उधर ही वापस स्वस्थान को चले गये ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालान्तर में एकदा देवकी माता जब पुण्यशाली जन के योग्य सुखशय्या पर सोई हुई थी, तब एक सिंह का स्वप्न देखा । स्वप्न देखकर वह जागृत हुई । उठकर राजा वसुदेव जी के पास आई और स्वप्न का वृत्तान्त कहा । इस प्रकार अपने मनोरथ की पूर्णता को निश्चित समझकर देवकी हर्षित एवं प्रसन्न होती हुई सुखपूर्वक अपने गर्भ का परिवहन (पालन-पोषण) करने लगी ।

Maxim 20 :

After that *Śrīkṛṣṇa Vāsudeva* came out of oratory and reached mother *Devakī*. Touching her feet, he said–O mother ! my one uterine brother will surely be born. Your desire will be fulfilled. So you should not worry. Thus he assured mother *Devakī* by sweet and agreeable words and then went back to the direction from which he had come.

Then at any other time mother *Devakī* was sleeping on a luxurious (worth sleeping meritorious persons) bed, she saw a lion in dream. She woke up, came to king *Vasudeva* and told him her dream. Thus understanding the fulfilment of desire definitely, she became glad and happily began to nurture the child in her womb with du[illegible].

सूत्र २१ :

तए णं सा देवई देवी नवण्हं मासाणं जासुमणा-रत्तबन्धुजीवयं-लक्खारस-सरसपारिजातक-तरुणदिवायर-समप्पभं सव्व-नयणकंतं सुकुमालं जाव सुरूवं गयतालुयसमाणं दारयं पयाया । जम्मणं जहा मेहकुमारे जाव ।

जम्हा णं अम्हे इमे दारए गयतालुसमाणे तं होउ णं अम्हं एयस्स दारयस्स नामधेज्जे गयसुकुमाले । तएणं तस्स दारगस्स अम्मा पियरे नामं करेंति गयसुकुमाले त्ति । सेसं जहा मेहे जाव अलं भोगसमत्थे जाए यावि होत्था ।

सूत्र २१ :

तत्पश्चात् नव मास का गर्भकाल पूर्ण होने पर देवकी देवी ने जपा कुसुम, लाल बंधु जीवक पुष्प के समान, लाक्षारस, श्रेष्ठ पारिजात एवं उदीयमान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूर्य के समान (लाल) रक्त कान्ति वाले सर्वजन-नयनाभिराम, सुकुमाल परिपूर्ण इन्द्रियों वाले, सौम्य आकार वाले गजतालु के समान लाल एवं कोमल रूपवान पुत्र को जन्म दिया ।

गजसुकुमाल के जन्म का वर्णन मेघकुमार के समान समझना चाहिए। (यावत्) नामकरण के समय माता-पिता ने सोचा-"क्योंकि हमारा यह बालक गजतालु के समान सुकोमल एवं सुन्दर है । इसलिए हमारे इस बालक का नाम "गजसुकुमाल" हो ।" इस प्रकार विचार कर बालक के माता-पिता ने उसका नाम "गजसुकुमाल" रखा । शेष वर्णन मेघकुमार के समान समझना चाहिए । इस प्रकार क्रमशः गजसुकुमाल युवावस्था को प्राप्त कर भोग-समर्थ हो गया ।

Maxim 21 :

Thereafter, on completion of nine month's pregnancy period, *Devakī Devī* gave birth to a son, having the beauty of a jasumina-flower, red *Bandhujīvaka* flower, of lac-pigment, best *Pārijātaka* flower, red like rising sun, eye-soothing to all persons, tender, with all developed senses, good shapeliness and tendu like an elephant's palate.

The description of *Gaja Sukumāla* (name of newly born son of *Devakī*) should be known as of *Megha Kumāra.* (until) At the time of giving name, parents thought that our this child is tender and beautiful like an elephant's palate, so its name should be *Gaja Sukumāla.* Thinking thus the parents of the child gave him the name *Gaja Sukumāla.* Remaining description should be known like *Megha Kumāra.* In this way gradually *Gaja Sukumāla* became young and capable to enjoy worldly entertainments and rejoicings, pleasures.

विवेचन

● **जा सुमणा**–(जपा-सुमण) लाल वर्ण के फूल, अडहुल का फूल ।

● **रत्त बंधुजीवक**–दुपहरिया का पौधा । बरसात में इस पर लाल रंग के फूल खिलते हैं । लोक भाषा में इसे वीर बहूटी या इन्द्रगोप भी कहते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

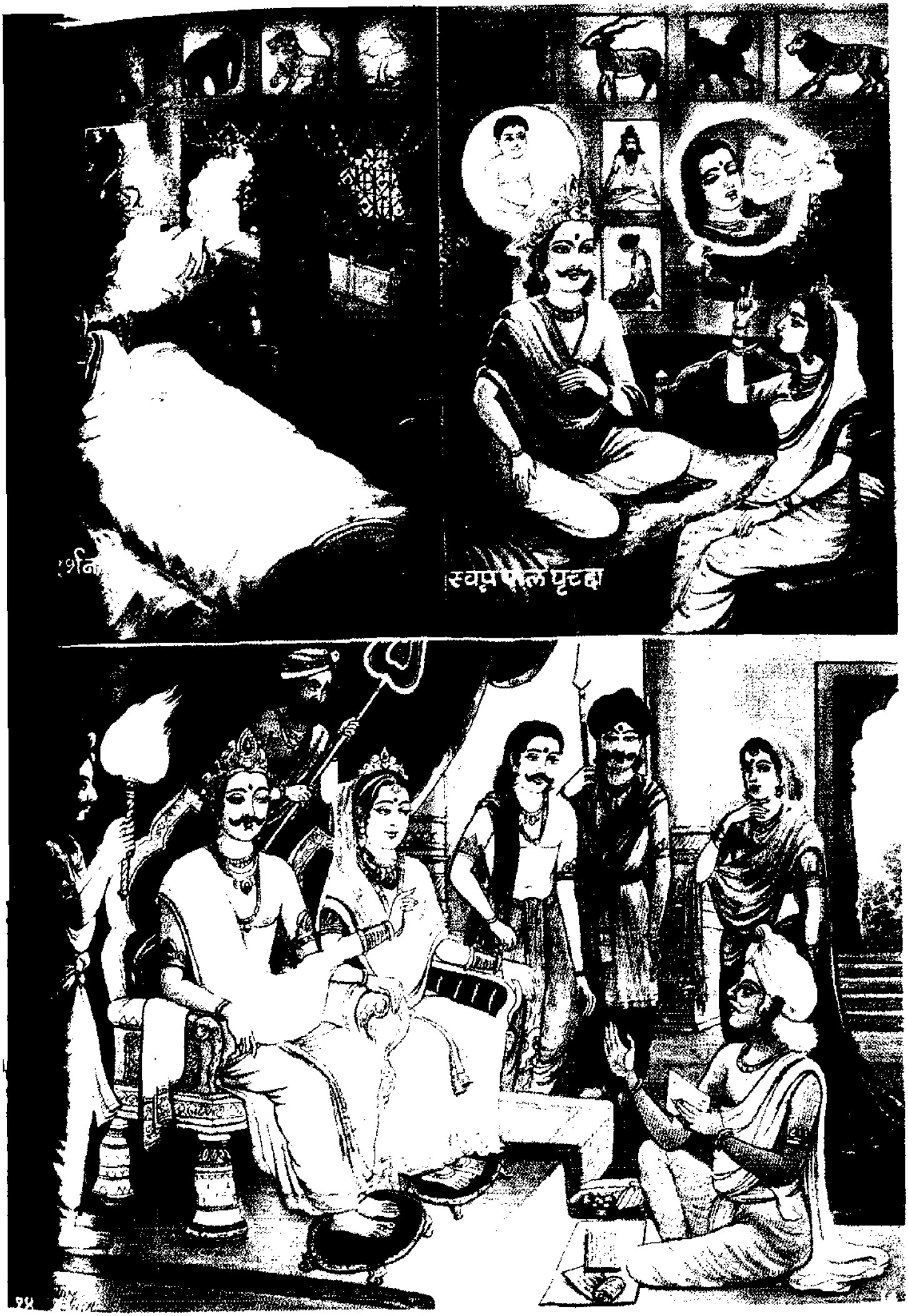

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रक्रम १४ :

माता देवकी का स्वप्न-दर्शन, स्वप्न-फल पृच्छा

दृश्य १—सुख-शय्या में सोई हुई माता देवकी स्वप्न देखती है—एक श्वेत सिंह उसके उदर में प्रवेश कर रहा है।

दृश्य २—जागृत होकर देवकी रानी राजा वसुदेव के शयन-कक्ष में आती है और अपना विचित्र स्वप्न सुनाती है। वसुदेव जी बताते हैं—तुम एक भाग्यशाली पुत्र की माता बनोगी।

दृश्य ३—प्रातःकाल राजसभा में स्वप्न-पाठक को बुलाकर स्वप्न-फल पूछते हैं। स्वप्न-पाठक बताता है—एक सुन्दर पराक्रमी पुत्र का जन्म होगा। राजा स्वप्न-पाठक को पुरस्कार देकर प्रसन्न करते हैं।

(वर्ग ३/अध्य. ८)

Illustration No. 14 :

Dream of mother *Devakī* and enquiry about its consequences

Scene 1. Sleeping at comfortable bed *Devakī* dreams that a white lion is entering in her abdomen through her mouth.

Scene 2. Being awakened *Devakī* reaches the bed-room of king *Vasudeva*, tells her astonishing dream to him. *Vasudeva* tells—You would be mother of a fateful son.

Scene 3. In the morning *Vasudeva* calls a oneirocritic (*swapnapāṭhaka*) and asks the result of that dream. He tells that a brave and beautiful son will be born. King honours him by giving reward.

(Sec. 3/Ch. 8)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

● **लक्खारस**–महावर,

● **तरुण दिवायर**–आचार्य अभयदेव के अनुसार यहां तरुण दिवाकर से उदीयमान लाल सूर्य जैसा लाल रंग अभिप्रेत है ।

● **जम्मणं जहा जम्म मेहकुमारे**–मेघकुमार के जन्म का वर्णन इस प्रकार है–

धारिणी के समान देवकी महारानी के दोहद की पूर्ति होने पर वह सुख-पूर्वक अपने गर्भ का पालन करने लगी और नौ मास साढ़े सात दिन व्यतीत होने पर उसने एक सुन्दर पुत्र रत्न को जन्म दिया । जिसका जन्म महोत्सव मेघकुमार के समान समझना चाहिए। जन्म की खुशी में–

१. सूचना देने वाली दासियों को दासता से मुक्त किया और उनको उपहार में विपुल धनराशि प्रदान की ।

२. नगर को सुगन्धित जल से पवित्र कराया । कैदियों को बन्धन मुक्त किया और तोल माप की वृद्धि की ।

३. दस दिन के लिये सभी व्यापार कर मुक्त कर दिया और गरीबों और अनाथों को राजा ने मुक्त हाथ से दान दिया । दस दिन तक राज्य में आनन्द महोत्सव हुआ ।

४. बारहवें दिन राजा ने विपुल भोजन बनवाकर मित्र, ज्ञाति, राज्य सेवक आदि के साथ खाते-खिलाते हुए आनन्द प्रमोद का उत्सव मनाया । फिर उनका वस्त्राभूषणादि से सत्कार-सम्मान कर माता-पिता बोले कि हमारा यह बालक गज के तालु के समान कोमल व लाल है, इसलिए इसका नाम गजसुकुमाल होना चाहिये, ऐसा कहकर पुत्र का नाम गजसुकुमाल रखा । **(ज्ञाता सूत्र के पाठ के अनुसार)**

Elucidation

Ja Sumaṇa–(Japākusum) flowers of red colour, *Aḍahula*-flowers.

Rakta Bandhu Jīvaka–Plant of noon, on it red colour flowers bloom in rainy season. Generally it is also called *Vīrabahūṭī* or *Indragopa.*

Lakkhā rasa–Mahāvara–red colour.

T*aruṇa Diwāyara*–According to *Ācārya Abhayadeva*, here this word denotes red colour as of rising sun.

Jammaṇaṁ jahā Meha Kumāre.....

Description of birth of *Megha Kumāra* is as follows–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Like *Dhāriṇī* while intense desire of *Devakī* fulfilled then she began to nurture womb-child carefully. When nine months and seven and a half days of her pregnancy period passed, she gave birth to a beautiful son, whose birth ceremony should be known like *Megha Kumāra.* In the happiness of birth–

1. Slave-women, who gave the information of baby-birth, were freed from slavery and huge wealth was given to them as gift etc.
2. City was purified with fragrant water, prisoners were set free and weights and measures were increased.
3. For ten days all the trades were announced tax-free. King lavishly gave charity the poor and orphans. Celebration were held for ten days in the kingdom.
4. On the twelfth day king got food etc., prepared in huge quantity and celebrated the joyful ceremony eating with his friends, caste persons and state-servants. Then he honoured them by clothes and ornaments. Afterwards the parents spoke that our this child is tender and red like an elephant's palate, so its name should be *Gaja Sukumāla.* Thus saying they gave the name *Gaja Sukumāla* to their son.

–(according the wordings of Jñātā Sūtra)[1]

सूत्र २२ :

तत्थ णं बारवईए णयरीए सोमिले नामं माहणे परिवसइ, अड्ढे, रिउव्वेय जाव सुपरिणिट्ठिए यावि होत्था ।

तस्स सोमिलस्स माहणस्स सोमसिरी णामं माहणी होत्था, सुकुमाला ।

तस्स णं सोमिलस्स माहणस्स धूया सोमसिरीए माहणीए अत्तया सोमा णामं दारिया होत्था, सुकुमाला जाव सुरूवा । रूवेणं जाव लावण्णे उक्किट्ठा, उक्किट्ठ सरीरा यावि होत्था ।

तए णं सा सोमा दारिया अण्णया कयाइं ण्हाया जाव विभूसिया बहूहिं खुज्जाहिं जाव परिक्खित्ता सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता जेणेव रायमग्गे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रायमग्गंसि कणग-तिंदूसएणं कीलमाणी कीलमाणी चिट्ठइ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रक्रम १५ :

सोमिल विप्र से कन्या की याचना

दृश्य १—द्वारका निवासी सोमिल ब्राह्मण की एक अत्यन्त सुकुमार कन्या है सोमा। स्नान एवं शृंगार करके वह अपनी दासियों के साथ राजमार्ग पर स्वर्ण-कन्दुक से क्रीड़ा कर रही है।

दृश्य २—वासुदेव श्रीकृष्ण हाथी पर बैठे गजसुकुमाल को साथ लिये अर्हत् अरिष्टनेमि के दर्शन करने जा रहे हैं। स्वर्ण-कन्दुक से खेलती रूप-लावण्यवती सोमा को देखकर उसके विषय में पूछते हैं तथा गजसुकुमाल के लिए वधू के रूप में उसकी विप्र सोमिल से याचना करते हैं। (वर्ग ३/अध्य. ८)

Illustration No. 15 :

Asking the daughter of *Somila Vipra (Brāhmaṇa)*

Scene 1. Most beautiful, tender and young girl *Somā* is the daughter of *Somila Brāhmaṇa*, the resident of *Dwārakā* city. Bathing and decorating herself she is playing with a golden ball, with her girl-friends and slave maidens.

Scene 2. Vāsudeva Śrī Kṛṣṇa riding on an elephant, with his younger uterine brother *Gajasukumāla*, while going to praise and bow down to *Arhat Ariṣṭanemi*, enquires about *Soma* the beautiful, who is playing with golden ball and asks her from *Somila* for *Gajasukumāla*.

(Sec. 3/Ch. 8)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२ :

उस द्वारका नगरी में सोमिल नामक एक ब्राह्मण रहता था, जो समृद्ध था और ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, सामवेद इन चारों वेदों का सांगोपांग ज्ञाता था तथा यज्ञ-याग आदि कर्मकांडों का रहस्यवेत्ता भी था ।

उस सोमिल ब्राह्मण के सोमश्री नाम की ब्राह्मणी (पत्नी) थी । सोमश्री सुकुमार एवं रूप लावण्यवती थी ।

उस सोमिल ब्राह्मण की पुत्री और सोमश्री की आत्मजा सोमा नाम की कन्या थी जो सुकुमाल यावत् बड़ी रूपवती थी । उसका रूप, लावण्य श्रेष्ठ था तथा देहयष्टि (शरीर) का गठन भी उत्कृष्ट था ।

वह सोमा कन्या अन्यदा किसी दिन स्नान कर यावत् वस्त्रालंकारों से विभूषित हो, कुब्जा चिलात आदि बहुत सी दासियों से घिरी हुई अपने घर से बाहर निकली । घर के बाहर जहां राजमार्ग है, वहां आई और राजमार्ग में सुवर्ण की (सुवर्ण तारों से गठित) गेंद से खेलने लग गई ।

Somila Brāhmaṇa

Maxim 22 :

At that time in *Dwārakā* city a *brāhmaṇa* dwelt, whose name was *Somila.* He was rich and well-versed in all the four *Vedas, viz., Ṛgveda, Yajurveda, Atharvaveda* and *Śāmaveda;* and also knew the secrets of *Yajña-Yāga* and other rituals, sacrifices etc.

His wife was *Somaśrī.* She was tender and beautiful.

Somā was the daughter of *Somila* and *Somaśrī.* She was tender and extremely beautiful. She was very shapely and superbly beautiful.

One day maiden *Somā* bathed (until) adorned by clothes and ornaments, surrounded by *Kubjā, Cilāta* etc., slave-maidens came out of house. Having set out she came to the

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

highway. On the highway she began to play with a golden (binded by golden threads) ball.

सूत्र २३ :

तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठणेमी समोसढे परिसा णिग्गया ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे ण्हाए जाव विभूसिए । गयसुकुमालेणं कुमारेणं सद्धिं हत्थिखंधवरगए सकोरंट मल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं उद्धुवमाणीहिं उद्धुवमाणीहिं बारवईए णयरीए मज्झं मज्झेणं अरहओ अरिट्ठणेमिस्स पायवंदए णिगच्छमाणे सोमं दारियं पासइ । पासित्ता सोमाए दारियाए रूवेण य जोव्वणेण य जायविम्हिए ।

सोमा का गजसुकुमाल के लिए ग्रहण

सूत्र २३ :

उस काल उस समय में अरिहंत अरिष्टनेमि द्वारका नगरी में पधारे । परिषद धर्म देशना सुनने को आई ।

उस समय कृष्ण वासुदेव भी भगवान के शुभागमन के समाचार सुनकर स्नान आदि करके वस्त्रालंकारों से विभूषित हुए । गजसुकुमाल कुमार के साथ हाथी के हौदे पर आरूढ़ हुए । उनके गले में कोरंट पुष्पों की माला थी और मस्तक पर छत्र धारण किये हुए थे, दोनों ओर श्वेत एवं श्रेष्ठ चामर ढुल रहे थे । द्वारका नगरी के मध्य भागों से होकर अर्हत् अरिष्टनेमि के चरण-वन्दन के लिये जा रहे थे, तब राजमार्ग पर खेलती हुई उस सोमा कन्या को देखते हैं । सोमा कन्या के रूप, लावण्य और कान्ति-युक्त यौवन को देखकर कृष्ण वासुदेव अत्यन्त आश्चर्यचकित हुए ।

Preservation of Somā for Gaja Sukumāla

Maxim 23 :

At that time and at that period *Arihanta Aristanemi* came to *Dwārakā*. Congregation went out for listening his sermon.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Heaving heard auspicious news of the coming of *Bhagawāna, Śrīkṛṣṇa Vāsudeva* bathed and decked and rode an elephant with *Gaja Sukumāla Kumāra. Śrīkṛṣṇa* was wearing garland of *Korṇṭa* flowers and an umbrella on his head, white and best *cāmaras* were fanned on both his sides. Thus he was going through the centre of *Dwārakā* to bow down to Arishtnami. Then he saw *Somā* playing on highway. He was wonder-struck seeing the shape, youth, beauty etc., of maiden *Somā*.

सूत्र २४ :

तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी–गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! सोमिलं माहणं जायित्ता सोमं दारियं गिण्हह-गिण्हित्ता कण्णंऽतेउरंसि पक्खिवह । तए णं एसा गयसुकुमालस्स भारिया भविस्सइ । तए णं ते कोडुंबिय-पुरिसा जाव पक्खिवंति ।

तए णं ते कोडुंबिय-पुरिसा जाव पच्चप्पिणंति ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे बारवईए णयरीए मज्झं मज्झेणं णिगच्छइ । णिगच्छित्ता जेणेव सहस्संबवणे उज्जाणे जाव पज्जुवासइ ।

तए णं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हस्स वासुदेवस्स गयसुकुमालस्स कुमारस्स तीसे य धम्म कहाए । कण्हे पडिगए ।

सूत्र २४ :

तब कृष्ण वासुदेव ने साथ में चलने वाले आज्ञाकारी पुरुषों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा–हे देवानुप्रियो ! तुम सोमिल ब्राह्मण के पास जाओ और उससे इस सोमा कन्या की याचना करो । उसे प्राप्त करो और फिर उसे लेकर कन्याओं के अन्तःपुर में पहुँचा दो । समय आने पर यह सोमा कन्या, मेरे छोटे भाई गजसुकुमाल की भार्या होगी ।

तब श्रीकृष्ण की आज्ञा शिरोधार्य कर वे आज्ञाकारी पुरुष सोमिल ब्राह्मण के पास गये और उससे कन्या की याचना की । उससे सोमिल ब्राह्मण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहुत-बहुत प्रसन्न हुआ और अपनी कन्या को ले जाने की स्वीकृति दे दी। उन कौटुम्बिक पुरुषों ने सोमा को उसके पिता सोमिल से प्राप्त कर कन्याओं के अन्तःपुर में पहुँचा दिया। और उन्होंने श्रीकृष्ण को निवेदन किया कि– आपकी आज्ञा का पूर्णतः पालन हो गया।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव द्वारका नगरी के मध्य भाग से होते हुए निकले और निकलकर जहाँ सहस्राम्रवन उद्यान था वहां पहुँचे। पाँच अभिगम-पूर्वक प्रभु को वन्दन नमस्कार करके उचित स्थान पर बैठकर उनकी सेवा करने लगे।

उस समय भगवान् अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव और गजसुकुमाल कुमार प्रमुख उस सभा को धर्मोपदेश दिया। प्रभु की देशना सुनकर श्रीकृष्ण अपने आवास को लौट गये।

Maxim 24 :

Then *Vāsudeva Kṛṣṇa* called the chamberlains going with him and ordered them–O beloved as gods ! Go to *Somila brāhmaṇa* and beg this maiden *Somā* from him, take hold of her and put her in the harem of maidens. At proper time, this maiden *Somā*, would be the wife of my younger brother *Gaja Sukumāla.*

Then chamberlains obeying the order of *Śrīkṛṣṇa* went to *Somila brāhmaṇa* and asked for his daughter. *Somila* became very much glad and agreed to give away his daughter. Chamberlains took *Somā* from his father *Somila* and put her in harem. And then they said to *Śrīkṛṣṇa* that your order has been fulfilled.

Thereafter *Kṛṣṇa Vāsudeva* went through the middle of *Dwārakā* and reached *Sahasrāmra* garden (wood), practised five *abhigamas* and bowed down to *Bhagawāna* and then sat at a proper place.

Bhagawāna Ariṣṭanemi preached sermon to the congregation, the premier were *Gaja Sukumāla* and *Śrīkṛṣṇa.*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रक्रम १६ :

गजसुकुमाल को वैराग्य जागरण

अर्हत् अरिष्टनेमि का उपदेश सुनकर गजसुकुमाल का मन संसार से विरक्त हो उठता है। वे कहते हैं–प्रभो ! जैसे किसी के घर में आग लगने पर वह अपनी सबसे मूल्यवान वस्तु को निकाल लाना चाहता है। वैसे ही मैं भी जन्म-जरा-मृत्यु की अग्नि से अपनी आत्म-मंजूषा को निकालकर आपके चरणों में मुंडित होकर संयम ग्रहण कर आत्म-कल्याण करना चाहता हूँ।

वासुदेव श्रीकृष्ण आदि चकित होकर गजसुकुमाल की बातें सुन रहे हैं।

(वर्ग ३/अध्य. ८)

Illustration No. 16 :

Apathy of *Gajasukumāla*

Hearing the religious sermon of *Arhat Aristanemi*, the heart of *Gajasukumāla* was filled with ascetic feelings. He utters–Reverend Sir ! If any house catches fire then its owner tries to take out his most valuable thing. In the same way, I also want to save my own soul from this world, burning by the fires of birth, old age death; and wish to purify my soul, after being tonsured on head at your lotus feet.

Vāsudeva Śrī Krsna etc., are listening to the words of *Gajasukumāla* astonishingly.

(Sec. 3/Ch. 8)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

After hearing the sermon of *Bhagawāna, Śrīkṛṣṇa* returned back.

२५ :

तए णं से गयसुकुमाले कुमारे अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतियं धम्मं सोच्चा जं णवरं अम्मापियरं आपुच्छामि ।

जहा मेहो जं णवरं (महिलियावज्जं जाव वड्ढियकुले) ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे जेणेव गयसुकुमाले कुमारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गयसुकुमालं कुमारं आलिंगइ, आलिंगित्ता उच्छंगे निवेसेई निवेसित्ता एवं वयासी–

तुमं ममं सहोदरे कणीयसे भाया, तं मा णं देवाणुप्पिया ! इयाणिं अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए मुण्डे जाव पव्वयाहि। अहं णं बारवईए णयरीए महया रायाभिसेएणं अभिसिंचिस्सामि ।

तए णं से गयसुकुमाले कुमारे कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ते समाणे तुसिणीए संचिट्ठइ ।

सूत्र २५ :

उस समय प्रभु का धर्मोपदेश सुनकर गजसुकुमाल कुमार संसार से विरक्त हो गया । वैराग्य जागृत होने पर प्रभु अरिष्टनेमि को वन्दना करके इस प्रकार बोले–हे भगवन् ! मुझे यह धर्म रुचिकर लगा है और मुझे इस पर प्रीति उत्पन्न हुई है । अतः मैं इसे स्वीकार करना चाहता हूँ और माता-पिता की आज्ञा लेकर मैं आपके पास श्रमण-धर्म ग्रहण करूँगा ।

इस प्रकार मेघकुमार के समान भगवान् को निवेदन करके गजसुकुमाल अपने घर आये और माता-पिता के सामने अपने विचार प्रकट किये । दीक्षा की बात सुनकर देवकी बहुत दुखी हुई । एक बार मूर्च्छित होकर गिर पड़ी । फिर आँसू बहाते हुए उसने कहा–हे पुत्र ! तुम हमें बहुत प्रिय हो। हम तुम्हारा वियोग सहन नहीं कर सकेंगे । अभी तुम्हारा विवाह भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं हुआ है, इसलिये तुम पहले विवाह करो । विवाह करके कुल की वृद्धि कर संतान को अपना दायित्व सौंप कर फिर दीक्षा ग्रहण करना ।

कृष्ण वासुदेव ने गजसुकुमाल के विरक्त होने की बात सुनी, तो वे गजसुकुमाल के पास आये और आकर गजसुकुमाल का स्नेह से आलिंगन किया, आलिंगन करके गोद में बैठाया, गोद में बिठाकर अत्यन्त स्नेह भरे शब्दों से बोले–

हे देवानुप्रिय ! तुम मेरे सहोदर छोटे भाई हो, इसलिये मेरा तुमसे कहना है कि इस समय भगवान् अरिष्टनेमि के पास मुण्डित होकर दीक्षा ग्रहण मत करो । मैं तुमको द्वारका नगरी में बहुत बड़े समारोह के साथ राज्याभिषेक से अभिषिक्त करूँगा ।

Maxim 25 :

Hearing the sermon of *Bhagawāna, Gaja Sukumāla Kumāra* became adverse from world and worldly joys. Being engrossed by apathetic feelings, bowing down to *Aristanemi Bhagawāna* spoke–O *Bhagawan* ! I feel this doctrine very interesting, I love it, so I want to accept it. Taking permission from parents, I will accept *Śramaṇa* hood from you.

Like *Megha Kumāra, Gaja Sukumāla* saying thus to *Bhagawāna* returned to his residence and expressed his own thoughts before his parents. Hearing about consecration *Devakī* was filled with grief, firstly she swooned, afterwards came into senses and began to say, shedding her tears–O son ! You are too dear to us. We shall not be able to tolerate your separation. Still you are unmarried, so first of all you wed, increase family-line and transfering your responsibilities to your sons, then you accept consecration.

Vāsudeva Kṛṣṇa, after he became aware about apathy of *Gaja Sukumāla* he came to him, embraced him, put him in his lap and said in very affectionate words–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

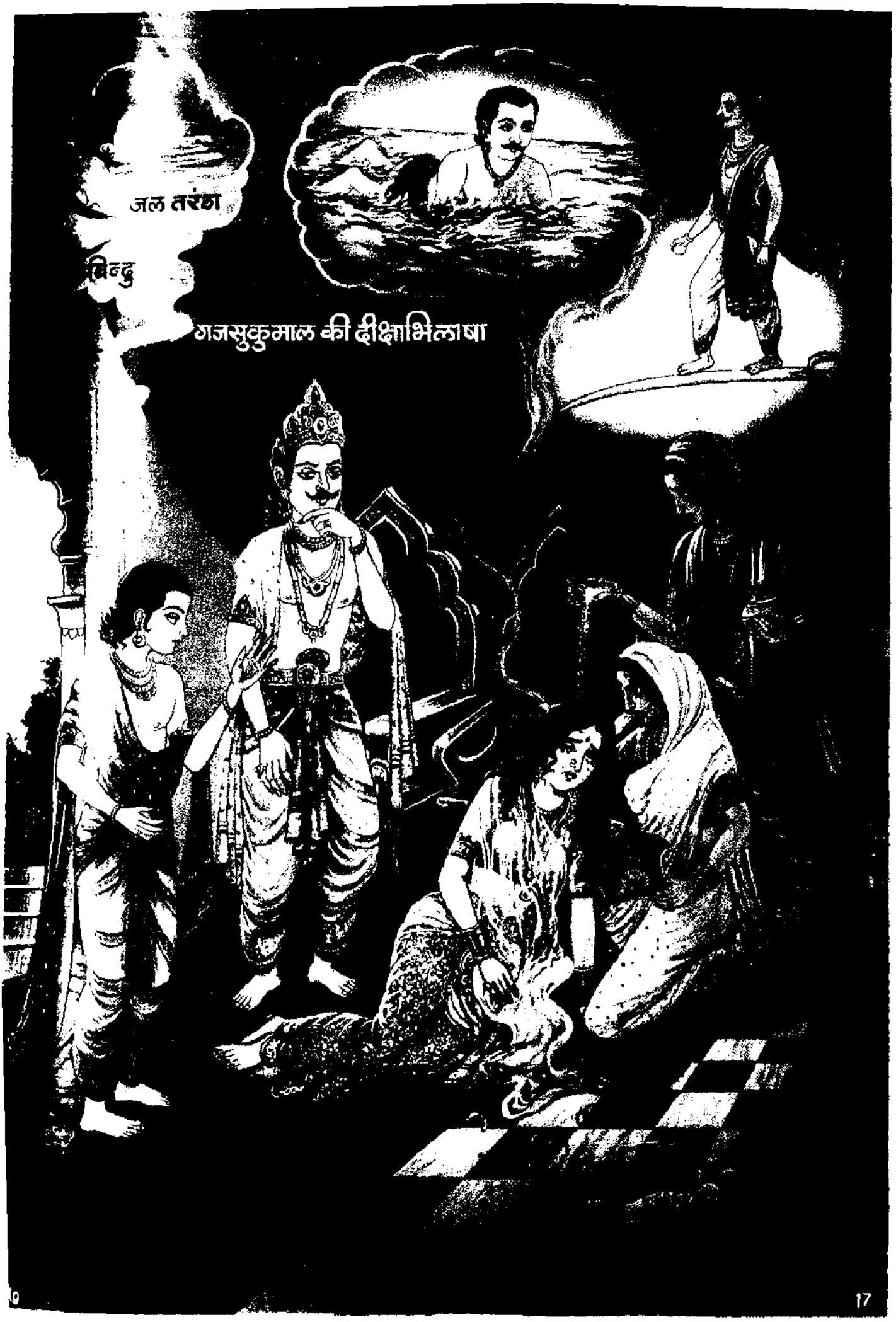

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रक्रम १७ :

गजसुकुमाल का वैराग्य

गजसुकुमाल ने पिता-माता से कहा–यह जीवन घास पर गिरी ओस विन्दु तथा जल तरंगों के समान चंचल है, अतः मैं शीघ्र ही संसार त्याग कर दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ। यह सुनकर वसुदेव जी चिन्तित हो उठे और माता देवकी तो मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ीं। शीतल उपचार से स्वस्थ होने पर माता ने आँसू वहाते हुए कहा–पुत्र ! संयम ग्रहण करना भुजाओं से महासागर को तैरना और नंगी तलवार पर चलने जैसा अत्यन्त दुष्कर है, तुम बहुत सुकुमार हो.....

(वर्ग ३/अध्य. ८)

Illustration No. 17 :

Apathy of *Gajasukumāla*

Gajasukumāla said to his parents–This life is transitory like a drop on the tip of grass; and waves of water; so I want quickly to accept consecration, leaving this world. Hearing these words *Vasudeva* was worried and mother *Devakī* swooned and fell down on floor. After coming to senses by fanning etc., shedding tears the mother said–O Son ! To accept restrain is as difficult as to swim the ocean by arms and to walk on the edge of a sword. You are too tender.....

(Sec. 3/Ch. 8)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

O beloved as gods ! you are my younger uterine brother. Hence I say that you should not accept consecration after tonsuring your head near *Bhagawāna Ariṣṭanemi* at this time. I shall anoint you with royal coronation in this city *Dwārakā* in a grand ceremony.

२६ :

तए णं से गयसुकुमाले कुमारे कण्हं वासुदेवं अम्मापियरो य दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी–एवं खलु देवाणुप्पिया ! माणुस्सया कामा खेलासवा असुइ, असासया, वंतासवा जाव विप्पजहियव्वा भविस्संति ।

तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए जाव पव्वइत्तए ।

तए णं तं गयकुसुमालं कुमारं कण्हे वासुदेवे अम्मापियरो य जाहे णो संचाएइ बहुयाहिं अणुलोमाहिं जाव आघवित्तए, ताहे अकामा चेव एवं वयासी–

तं इच्छामो णं ते जाया ! एगदिवसमवि रज्जसिरिं पासित्तए ।

णिक्खमणं जहा महब्बलस्स जाव तमाणाए तहा जाव संजमित्तए ।

तए णं से गयसुकुमाले अणगारे जाए इरियासमिए जाव गुत्तबंभयारी ।

सूत्र २६ :

कृष्ण वासुदेव द्वारा ऐसा कहे जाने पर गजसुकुमाल कुमार मौन रहे । कुछ समय मौन रहने के पश्चात् गजसुकुमाल अपने बड़े भाई कृष्ण वासुदेव एवं माता-पिता से दूसरी-तीसरी बार भी इस प्रकार बोले–

हे देवानुप्रियो ! वस्तुतः मनुष्य के काम-भोग एवं देह अपवित्र, अशाश्वत, क्षणविनाशी और मल-मूत्र-कफ-वमन-पित्त-शुक्र एवं शोणित आदि अशुद्धि के भण्डार हैं । यह मनुष्य शरीर और ये उससे सम्बन्धित काम-भोग अस्थिर हैं, अनित्य हैं, एवं सड़न-गलन तथा नाशमान होने के कारण आगे-पीछे कभी न कभी अवश्य नष्ट होने वाले हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसलिये हे देवानुप्रिय ! मैं चाहता हूँ कि आपकी आज्ञा मिलने पर भगवान अरिष्टनेमि के पास प्रव्रज्या (श्रमण-दीक्षा) ग्रहण कर लूँ ।

तब उस गजसुकुमाल कुमार को कृष्ण वासुदेव और माता-पिता जब बहुत सी अनुकूल और स्नेह भरी युक्तियों से भी समझाने में समर्थ नहीं हुए तब निराश होकर अनचाहे ही श्रीकृष्ण एवं माता-पिता इस प्रकार बोले–

यदि ऐसा ही है तो हे पुत्र ! हम एक दिन की तुम्हारी राज्यश्री (राज की शोभा) देखना चाहते हैं । इसलिये तुम कम से कम एक दिन के लिये तो राजलक्ष्मी को स्वीकार करो ।

माता-पिता एवं बड़े भाई के इस प्रकार अनुरोध करने पर गजसुकुमाल मौन रहे । 'मौनं सम्मति लक्षणं' मानकर बड़े समारोह के साथ १०८ स्वर्ण रजत आदि के कलशों से उनका राज्याभिषेक किया गया ।

गजसुकुमाल के राजगद्दी पर बैठने पर माता-पिता ने उससे पूछा–हे पुत्र ! अब तुम क्या चाहते हो? बोलो, तुम्हारी क्या इच्छा है ?

गजसुकुमाल ने उत्तर दिया–मैं दीक्षित होना चाहता हूँ ।

तब गजसुकुमाल की इच्छानुसार दीक्षा की सभी सामग्री मंगाई गई । गजसुकुमाल सहस्र पुरुष वाहिनी शिविका में बैठ कर विशाल शोभा यात्रा पूर्वक भगवान अरिष्टनेमि के समवसरण में पहुँचे । माता-पिता ने भगवान को शिष्य भिक्षा दी । गजसुकुमाल ने स्वयं सभी आभरण उतारे, पंचमुष्टि लोच किया, फिर भगवान से प्रार्थना की–हे भन्ते ! अब आप ही स्वयं मुझे मुंडित करें, मुनि-वेष प्रदान करें और आचार धर्म का बोध देवें । प्रभु ने चरणसत्तरी, करणसत्तरी आदि का उपदेश दिया । अब वह गजसुकुमाल अणगार हो गये । ईर्यासमिति वाले यावत् गुप्त ब्रह्मचारी बन गये ।

Maxim 26 :

Gaja Sukumāla remained silent hearing these words of *Kṛṣṇa Vāsudeva.* After some times *Gaja Sukumāla*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

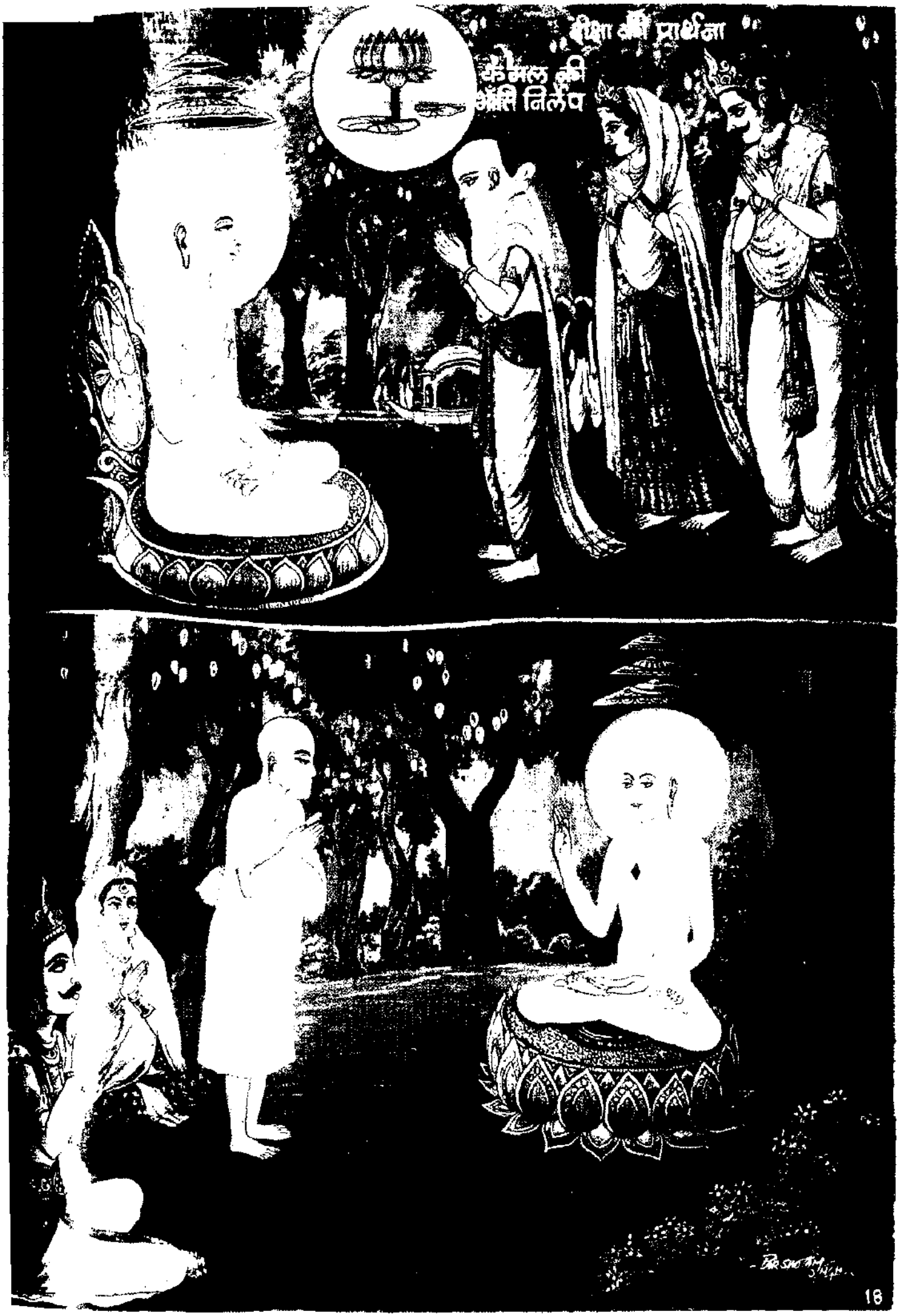

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रक्रम १८ :

गजसुकुमाल की दीक्षा

दृश्य १—गजसुकुमाल दीक्षा के लिए तैयार हो, भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में उपस्थित होकर बोले—प्रभु ! जल में स्थित कमल की भाँति मैं विषयों से निर्लिप्त जीवन जीना चाहता हूँ। मुझे अपना शिष्य बनाइए। माता देवकी एवं पिता वसुदेव जी ने प्रभु से प्रार्थना की—हे भन्ते ! हमारे चक्षु के समान प्रिय पुत्र को आप शिष्य-भिक्षा के रूप में स्वीकार कीजिए।

दृश्य २—मुनि वेष धारण किये गजसुकुमाल भगवान के श्रीमुख से संयम दीक्षा का पाठ ग्रहण करते हैं।

(वर्ग ३/अध्य. ८)

Illustration No. 18 :

Consecration of *Gajasukumāla*

Scene 1. Being ready for consecration and standing near the lotus feet of *Bhagawāna Aristanemi*, thus spoke *Gajasukumāla* unto him—*Prabhu* (Reverend Sir) ! I wish to lead my life disinclined to worldly passions, as the lotus remaining in water, does not wet. Please accept me as your pupil. Mother *Devakī* and father *Vasudeva* also requested—*Bhante !* Please accept, our son—who is so dear as our eyes, as your disciple.

Scene 2. Wearing the robe of a monk, *Gajasukumāla* accepts the consecration schedule from the mouth of *Bhagawāna.*

(Sec. 3/Ch. 8)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

spoke twice and thrice to his elder brother *Kṛṣṇa Vāsudeva* and parents–

O beloveds as gods ! Really amusements and rejoicings of man and his body are impure, perishable and momentary. This body is filled with stool, urine, phlegm, vomit, semen, blood etc. the dirty things. This human body and the sensual pleasures related to it are unstable, with an end, and being perishable,, these are to be exhausted either now or later.

Therefore O beloveds as gods ! I wish that permitted by you, I shall accept consecration (*śramaṇahood*) before *Bhagawāna Ariṣṭanemi.*

When *Kṛṣṇa Vāsudeva* and his parents could not become capable of moulding *Gaja Sukumāla* towards worldly enjoyments even by loving and agreeable expressions, then being disappointed unwillingly *Kṛṣṇa Vāsudeva* and his parents spoke thus unto him–

"O son ! If it is so, then we want to visualise you as a king (adorned with coronation) only for one day. So you accept kingship at least for a single day.

At such insistence of parents and elder brother *Gaja Sukumāla* remained silent. Assuming silence as acceptance with a great ceremony he was coronated by 108 pitchers of gold and silver etc.

After enthronement of *Gaja Sukumāla* parents asked–O son ! Now what do you want ? Tell, what is your wish ?

Gaja Sukumāla answered–I want to be consecrated.

Then according to the wish of *Gaja Sukumāla* all the paraphernalia was provided. Sitting in the palanquin which is carried by one thousand persons *Gaja Sukumāla* reached the religious assembly of *Bhagawāna Ariṣṭanemi* in great procession. Parents gave their son as pupil to *Bhagawāna. Gaja Sukumāla* put off all ornaments himself, tonsured his head by five fists and then requested

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

to *Bhagawāna* that O Bhante (*Bhagawan*) ! Now, you yourself cosecrate me, give me the robe of a sage and knowledge of conduct. *Bhagawāna* preached him (*Gaja Sukumāla*) seventy rules of conduct (*Caraṇa sattarī*) and seventy rules of activity (*Karṇa sattarī*) and consecrated him. Now *Gaja Sukumāla* became a housless mendicant. Practising movement incognito (until) he became deep celebate or guarded in celibacy.

विवेचन

(१) राज्याभिषेक विधि का विस्तृत वर्णन–रायपसेणिय सूत्र में तथा दीक्षा का वर्णन महा के प्रकरण भगवती सूत्र ११/११ में विस्तार के साथ मिलता है ।

(२) अभिषेक विधि में सर्व प्रकार की औषधियों से युक्त पवित्र जल मंत्रोपचार के साथ मस्त पर छिड़का जाता है । इसमें १०८ सुवर्ण कलश, १०८ रजत कलश तथा १०८ मिट्टी के कल में औषधियों से युक्त समुद्र एवं नदियों आदि का जल भरा जाता है ।

राज्याभिषेक के पश्चात् माता-पिता पूछते हैं–अब तुम्हारी क्या इच्छा है? हमें बताओ । त गजसुकुमाल कहते हैं–कुत्रिकापण–(एक ऐसी देवाधिष्ठित दुकान जिसमें सब प्रकार का सामान मिल हो । संसार की दुर्लभ से दुर्लभ वस्तु यहां मिलती है । आज की भाषा में संसार का यह सबसे ब डिपार्टमेंटल स्टोर कहा जा सकता है) से मेरे लिए दीक्षा के उपकरण, रजोहरण, पात्र आदि मंगाओ और नाई को बुलाओ । तब दो लाख स्वर्णमुद्राओं का सामान तथा एक लाख स्वर्ण मुद्रा देकर ना को बुलाया गया । नाई ने गजसुकुमाल के चार अंगुल अग्रकेश छोड़कर बाकी शेष केश का उस्त से मुंडन किया । माता देवकी ने श्वेत उज्ज्वल वस्त्र में उन केशों को ग्रहण किया, फिर एक रत्न करंडिये (रत्न मंजूषा) में उन्हें संभालकर रखा और कहा–मेरे प्रिय पुत्र के केश हमारे लिये बहुत-से तिथियों, पर्वों, महोत्सवों आदि में अन्तिम दर्शन के लिए उपयोग में आयेंगे ।

दीक्षा की शोभा-यात्रा आदि का विस्तृत वर्णन अन्तकृद्दशा महिमा में देखे ।

Elucidation

(1) Detailed description of coronation we get in *Rāyapaseṇiya Sūtra* and that of consecration in *Bhagawatī Sūtra* (11/11) in the episode of *Mahābala*.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(2) In the method of installing (*abhiṣeka vidhi*) the purified water mixed with all kinds of herbs is sprinkled on the head of a person with chanting *mantras*. In this the herb-mixed pure water is filled from seas, rivers etc. in 108 pitchers of gold, 108 pitchers of silver and 108 pitchers of clay.

After the royal function or function of coronation, parents ask–Now what is your wish, tell us. Then *Gaja Sukumāla* says–For me, ask for parapharnelia of consecration–duster (*rajoharaṇa*) utensils (*pātra*) from the shop *Kutrikāpaṇa* (a shop blessed by a god or Jeity, where every kind of goods are available. All the things of the world which are most difficult to get are also available in that shop. In modern days, it can be told as the biggest departmental store of the world.) and also call a barber. Then paraphernalia costing two lakhs golden coins and a barber for one lakh gold coin was asked. Then barber shaved the head of *Gaja Sukumāla* by razor leaving only four *aṅgula* fore-hairs. Mother *Devakī* took those shaven hairs in a white and neat cloth and then kept them in a box studded with gems with due care and said–These hair of my dear son would be useful for last visualization on the auspicious occasions days, festivals and celebrations.

(3) Vivid description of *dīkṣā* grand procession etc., readers are suggested to study *Antakṛddśā Mahimā*.

सूत्र २७ :

तए णं से गयसुकुमाले अणगारे जं चेव दिवसं पव्वइए तस्सेव दिवसस्स पुव्वावरण्ह-कालसमयंसि जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठणेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ जाव एवं वयासी–

इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे महाकालंसि सुसाणंसि एगराइयं महापडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए ।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह !

तए णं से गयसुकुमाले अणगारे अरहया अरिट्ठनेमिणा अब्भणुण्णाए समाणे अरहं अरिट्ठनेमिं वंदइ णमंसइ । वंदित्ता णमंसित्ता अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतियाओ सहस्संबवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमइ । पडिणिक्खमित्ता जेणेव महाकाले सुसाणे तेणेव उवागए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उवागच्छित्ता थंडिलं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता उच्चार-पासवण भूमिं पडिलेहेइ पडिलेहित्ता ईसिं पब्भारगएणं काएणं जाव दो वि पाए साहट्टु एगराइयं महापडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ।

महाप्रतिमा-धारण

सूत्र २७ :

दीक्षित होने के पश्चात् गजसुकुमाल मुनि जिस दिन दीक्षित हुए, उसी दिन के पिछले भाग (तृतीय प्रहर) में जहां अरिहंत अरिष्टनेमि विराजमान थे, वहां आये। वहां आकर उन्होंने भगवान अरिष्टनेमि को तीन बार प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके इस प्रकार निवेदन किया–

हे भगवन् ! आपकी अनुमति प्राप्त होने पर मैं महाकाल श्मशान में एक रात्रि की महाप्रतिमा धारण कर विचरना चाहता हूँ ।

प्रभु ने कहा–हे देवानुप्रिय ! जिससे तुम्हें सुख प्राप्त हो वही करो ।

गजसुकुमाल मुनि ने अरिहंत अरिष्टनेमि की आज्ञा मिलने पर भगवान अरिष्टनेमि को वंदन नमस्कार किया। वंदन नमस्कार कर अर्हत् अरिष्टनेमि के पास से चलकर सहस्राम्रवन उद्यान से निकले, और जहां महाकाल श्मशान था, वहां आये ।

महाकाल श्मशान में आकर प्रासुक स्थण्डिल भूमि (जीव-जन्तु रहित निर्दोष स्थान) की प्रतिलेखना-देखभाल करते हैं । इसके पश्चात् उच्चार- प्रस्रवण (मल-मूत्र त्याग) के योग्य भूमि का प्रतिलेखन करते हैं । इसके पश्चात् एक स्थान पर खड़े हो, अपनी देह यष्टि को किंचित् झुकाये हुए (दोनों हाथों को घुटनों तक लम्बा करके) एक पुद्गल केन्द्र पर दृष्टि जमाकर दोनों पैरों को (चार अंगुल के अन्तर से) सिकोड़ कर एक रात्रि की महाप्रतिमा अंगीकार कर ध्यान में लीन हो गये ।

Acceptance of Special Vow of Mahāpratimā

Maxim 27 :

After consecration, *Gaja Sukumāla* sage, in the first part of afternoon (third *prahara* of the day), the same day on

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

which came into sage order, went to the place where *Arihanta Aristanemi* was, thrice circumambulated and then spoke in polite words–

O *Bhagawan* ! On being permitted by you I want to abide observing the great vow-resolution (*mahāpratimā*) of one night in thc cemetry (funeral place) *Mahākāla.*

Bhagawāna said–O beloved as gods ! Do as you feel happy.

Thus being permitted by *Arihanta Aristanemi* sage *Gaja Sukumāla* bowed down and worshipped him and starting from there walked out of *Sahasrāmravana* and reached cemetry *Mahākāla.*

There he looked for clean spot free from flora and insects. After that he looked for clean spot for discharging stool and urine. Thereafter standing at a place, slightly bending forward his body (hanging both the hands upto knees), fixing eyes on a lump of matter (*pudgala*), contracting both legs (with the distance of four fingers between the heels and toes of both legs), accepting great firm resolution (*Mahāpratimā*) of one night went deep into meditaion.

सूत्र २८ :

इमं च णं सोमिले माहणे सामिधेयस्स अट्ठाए बारवईओ नयरीओ बहिया, पुव्वनिग्गए । समिहाओ य दब्भे य कुसे य पत्तामोडयं च गिण्हइ । गिण्हित्ता तओ पडिनियत्तइ, पडिनियत्तित्ता महाकालस्स सुसाणस्स अदूरसामंतेणं वीईवयमाणे संझाकालसमयंसि पविरल-मणुस्संसि गयसुकुमालं अणगारं पासइ ।

पासित्ता तं वेरं सरइ, सरित्ता आसुरुत्ते एवं वयासी–एस णं भो ! से गयसुकुमाले कुमारे अपत्थिय जाव परिवज्जिए जेणं मम धूयं सोमसिरीए भारियाए अत्तयं सोमं दारियं अदिट्ठदोसपइयं कालवत्तिणीं विप्पजहित्ता मुण्डे जाव पव्वइए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोमिल द्वारा उपसर्ग

सूत्र २८ :

इधर सोमिल ब्राह्मण समिधा (यज्ञ की लकड़ी) लेने के लिये द्वारका नगरी के बाहर गजसुकुमाल अणगार के श्मशान भूमि में जाने से पूर्व ही निकला था, वह उधर जंगल से समिधा, दर्भ, कुश, डाभ एवं अग्रभाग से मुड़े पत्तों को लेता है । उन्हें लेकर वहां से अपने घर की तरफ लौटता है । लौटते समय महाकाल श्मशान के निकट से जाते हुए संध्या काल की बेला में, जबकि मनुष्यों का आवागमन बहुत कम हो गया था, वह गजसुकुमाल मुनि को वहां ध्यानस्थ खड़े देखता है ।

उन्हें देखते ही सोमिल के हृदय में पूर्वभवों के वैर का संस्कार जाग्रत हुआ । पूर्वजन्म के वैर का स्मरण हुआ । पूर्व जन्म के वैर की स्मृति होने पर वह क्रोध से तमतमा उठा और इस प्रकार बुदबुदाया (बड़बड़ाया)– अरे यह तो वही अप्रार्थनीय का प्रार्थी (मृत्यु की इच्छा करने वाला) निर्लज्ज एवं श्री-कान्ति आदि से हीन गजसुकुमाल कुमार है, जो मेरी सोमश्री भार्या की कुक्षि से उत्पन्न, यौवनावस्था को प्राप्त, मेरी निर्दोष पुत्री सोमा कन्या को अकारण ही छोड़कर मुण्डित होकर साधु बन गया है ।

Trouble (Upasarga) by Somila

Maxim 28 :

Brāhmaṇa Somila for taking sacrificial wood went out of *Dwārakā* to the forest, before *Gaja Sukumāla* reached the *Mahākāla* funeral place. The way to forest passed near to the same funeral place. In the forest he collected sacrificial wood, grass, plucked up fore-part bent leaves and returned to the city–to his home. On returning passing by *Mahākāla* cemetry at the time of evening twilight when the coming and going of men becomes rare, he saw monk *Gaja Sukumāla* there standing in meditation.

Seeing the monk, the enmity of former births awakened in the heart of *Somila*. He recollected the enmity of former

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रक्रम १९ :

महाकाल श्मशान में ध्यान तथा महाउपसर्ग

दृश्य १—दीक्षा लेकर दिन के तृतीय प्रहर में मुनि गजसुकुमाल महाकाल श्मशान में जाकर एक रात्रि की महाप्रतिमा धारण कर ध्यानस्थ हो गए। श्मशान में कहीं चिताएँ जल रही हैं। कहीं नरमुंड पड़े हैं। इधर-उधर हिंसक माँसाहारी जानवर घूम रहे हैं। सोमिल विप्र यज्ञ की सामग्री साथ लिये, उधर से गुजरा तो उसने गजसुकुमाल को मुनि रूप में देखा। वह क्रोध में पागल हो उठा—"इसी राजकुमार ने मेरी प्यारी पुत्री सोमा को बिना विवाह किये मझधार में छोड़ दिया है तो मैं भी अब इसका बदला लूँगा।"

दृश्य २—बदले की भावना से प्रेरित होकर सोमिल ने ध्यानस्थ मुनि के सिर पर गीली चिकनी मिट्टी की पाल बाँधी, फिर पास में ही जलती चिता से धधकते अंगारे लिये और मुनि के सिर पर धर दिये। मुनि का मस्तक और शरीर जलने लगा। मुनि फिर भी शांत, अचल खड़े रहे। सोमिल भयभीत हुआ—"कहीं यह दुष्कृत्य करते मुझे किसी ने देख लिया और वासुदेव श्रीकृष्ण को पता लग जायेगा तो ....." वह उलटे पाँव नगर की ओर भागा। (वर्ग ३/अध्य. ८)

Illustration No. 19 :

Meditation and great trouble in *Mahākāla* cemetry

Scene 1. Accepting consecration in the third *prahara* (3 p.m.) of day, monk *Gajasukumāla*, accepting the great monk resolution approached the *Mahākāla* funeral place and went deep into meditation. Somewhere in cemetry, pyres are burning, somewhere are half burnt and unburnt corpses, flesh eater and violent animals are wandering hither and thither. *Brāhmana Somila* passed by that cemetry. Then he saw *Gajasukumāla* as a sage. He became mad in fury—"This prince has bereaved my dear daughter, without marrying her. I shall also take revenge."

Scene 2. Instigated by the feelings of revenge *Somila* put wet clay on the head of monk and then taking burning coals from a pyre, kept them on the head of the monk. The head and body of monk began to burn, still he stood erect and calm. *Somila* was frightened—"Lest any man may see him doing this evil deed; and that *Vāsudeva Śrī Kṛṣṇa* might become aware of this, then...." He ran away towards the city. (Sec. 3/Ch. 8)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

births. By this remembrance he raged up in fury and murmured–Oh this is the same *Gaja Sukumāla* desirous of undesirable–wisher of death, shameless and devoid of fortunes; who abandoning my matured, faultless daughter *Somā* (born from the womb of my wife *Somaśrī*) without any cause became an ascetic.

विवेचन

गजसुकुमाल मुनि को ध्यानस्थ देखकर सोमिल के मन में अचानक इतना प्रचण्ड भीषण क्रोध **क्यों** उपज आया ? इसके पीछे प्रत्यक्ष एवं परोक्ष कई कारण हो सकते हैं । प्रत्यक्ष कारण तो यहां **स्पष्ट** बताया गया है कि–पुत्री सोमा के साथ गजसुकुमाल का पाणिग्रहण होने वाला था । वासुदेव **श्रीकृष्ण** ने उसकी याचना करके उसे कन्याओं के अन्तःपुर में रखवाया, अब गजसुकुमाल उस कन्या **को** मंझधार में छोड़कर मुनि बन गये । इस कारण सोमिल को क्रोध आ गया ।

दूसरा परोक्ष कारण भी है जिसका संकेत आगम में दो वाक्यों में किया गया है–तं **वेरं सरइ** ..... वैर का स्मरण करके तथा **"अणेग भव–सय सहस्स संचियं कम्मं उदीरेमाणेणं**–लाखों भवों के **संचित** कर्मों की उदीरणा करते हुए। इस स्थान पर गजसुकुमाल एवं सोमिल के अतीत जन्मों की वैर परम्परा की एक कथा प्रसिद्ध है जो इस प्रकार है–

गजसुकुमाल का जीव अनेकानेक भवों के पूर्व भव में एक राजा की रानी के रूप में था । उसकी सौतेली रानी के पुत्र होने से सौतेली रानी राजा को बहुत प्रिय हो गई । इस कारण, उसे सौतेली रानी से द्वेष हो गया और चाहने लगी कि किसी भी तरह से उसका पुत्र मर जाए ।

संयोग की बात है कि पुत्र के सिर में फोड़ा–गुमड़ी हो गई और वह पीड़ा से छटपटाने लगा । विमाता ने कहा–मैं इस रोग का उपचार जानती हूँ । अभी ठीक कर देती हूँ । इस पर रानी ने अपने पुत्र को विमाता को दे दिया । उसने उड़द की जाड़ी रोटी गर्म करके बच्चे के सिर पर बांध दी। बालक को भयंकर असह्य वेदना हुई । वह छटपटाने लगा और कुछ ही क्षणों में मर गया ।

कालान्तर में बालक का जीव सोमिल और विमाता का जीव गजसुकुमाल के रूप में उत्पन्न हुए । वेराणुबंधीणि महब्भयाणि–वैर के अनुबंध भयंकर होते हैं । अतः इस पूर्व वैर का स्मरण होने पर सोमिल को तीव्र क्रोध उत्पन्न हुआ और बदला चुकाने के लिये ध्यानस्थ मुनि के सिर पर मिट्टी की पाल बांधकर खैर के धधकते अंगारे रख देने की भावना जागी । और पूर्व वैर वश इतना क्रूर पैशाचिक कृत्य कर डाला । **(अन्तकृद्दशा सूत्र–आचार्य आत्मारामजी म. कृत हिन्दी टीका पृष्ठ १८ से)**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Elucidation

Seeing monk *Gaja Sukumāla* in meditation why the mind of *Somila* filled with such a ferocious anger ? There may be many present and past causes of it. Present cause here clearly stated that his daughter *Somā* was to be wedded with him (*Gaja Sukumāla*). *Vāsudeva Śrīkṛṣṇa* asked and preserved her (*Soma*) in harem of maidens. When *Gaja Sukumāla* accepted monkhood leaving that maiden then *Somila* raged in fury.

The other past cause also pointed in *Āgama* by words–'*taṁ veraṁ saraï*– remembering the enmity' and '*aṇega bhava–saya sahassa saṁciyaṁ kammaṁ udīremaṇeṇaṁ*– performing *udīraṇā* of accumulated *karmas* of million former births'. In this context a story is popular about the former birth of *Somila* and *Gaja Sukumāla*. The episode is this–

The soul of *Gaja Sukumāla* was a queen of a king in his innumerous former birth. That king had another queen also. That queen had given birth to a son so she became more beloved of that king. So the queen (soul of *Gaja Sukumāla*) began to have feelings of detachment towards that other queen and have keen desire that her son may die somehow.

Per chance a boil took place in the son's head. Child began to flounder due to agony. Step mother (soul of *Gaja Sukumāla*) said to the mother of that child that I know the treatment of this disease. The mother of child gave her son to step mother. Step mother binded a hot horse-bean bread on the head of the child. Due to serious agony child floundered much and died. After a long-long period the soul of that child took birth as *Somila* and that of step mother as *Gaja Sukumāla*.

Verāṇubandhīṇi mahabbhayāṇi–The bondages of enmity are most ferocious. So by the remembrance of this former enmity *Somila* raged in fury, and for taking the revenge, his ill feelings aroused to take wet clay to make the raised up sides on the head of monk and to fill it with the burning coals of *khair* fuel.

He had done such cruel deed due to former enmity.

[*Antakṛd-daśā Sūtra* Hindi Commentary by *Ātmārāmajī Mahārāja p.18*]

सूत्र २९ :

तं सेयं खलु मम गयसुकुमालस्स वेरनिज्जायणं करित्तए । एवं संपेहेइ, संपेहित्ता दिसापडिलेहणं करेइ, करित्ता सरसं मट्टियं गिण्हइ । गिण्हित्ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जेणेव गयसुकुमाले अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गयसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए मट्टियाए पालिं बंधइ ।
बंधित्ता जलंतीओ चियायाओ फुल्लिय-किंसुयसमाणे खयरंगारे कहल्लेणं गिण्हइ । गिण्हित्ता गयसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए पक्खिवइ । पक्खिवित्ता भीए तओ खिप्पामेव अवक्कमइ । अवक्कमित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए ।

सूत्र २९ :

इसलिये मुझे निश्चय ही गजसुकुमाल से इस वैर का बदला लेना चाहिये, सोमिल के मन में इस प्रकार का दुर्विचार उठा, उसने सोचा, सोचकर सब दिशाओं की ओर दूर-दूर तक देखा कि कहीं कोई उसे देख तो नहीं रहा है। चारों तरफ देखता हुआ पास के ही तालाब से थोड़ी गीली मिट्टी ली, गीली मिट्टी लेकर वहां आया, वहां आकर गजसुकुमाल मुनि के सिर पर उस मिट्टी से चारों तरफ पाल बांध देता है ।

पाल बांधकर पास में ही कहीं जलती हुई चिता में से फूले हुए केसू (पलाश) के समान लाल-लाल खेर के अंगारों को किसी मिट्टी के खप्पर में लेकर वह उन दहकते हुए अंगारो को गजसुकुमाल मुनि के सिर पर रख देता है । रखने के बाद (इस भय से कि कहीं कोई देख न ले) भयभीत होकर त्रस्त होकर शीघ्रता से पीछे की ओर हटा और (वहां से भागता हुआ) वह (सोमिल) जिस ओर से आया था उसी ओर चला जाता है ।

Maxim 29 :

Therefore I should definitely take revenge from *Gaja Sukumāla*–such ill-feelings occupied the mind of *Somila*. He thought and after thinking he gazed at all directions upto far distance that whether any body was seeing him or not. Gazing all around he took moist clay from a nearby pond, came to the place where monk *Gaja Sukumāla* was, putting that clay on the head of monk, raised it on all sides.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

After that he took burning coals from a pyre in a piece of claypitcher and put up those burning coals on the head of monk *Gaja Sukumāla*. Then being frightened (fear lest anyone may see him) sharply he stepped backward and (running from there) he (*Somila*) went to the direction from which he had come.

सूत्र ३० :

तए णं तस्स गयसुकुमालस्स अणगारस्स सरीरयंसि वेयणा पाउब्भूया, उज्जला जाव दुरहियासा । तए णं से गयसुकुमाले अणगारे सोमिलस्स माहणस्स मणसा वि अप्पदुस्समाणे तं उज्जलं वेयणं जाव अहियासेइ ।

तए णं तस्स गयसुकुमालस्स अणगारस्स तं उज्जलं जाव अहियासेमाणस्स सुभेणं परिणामेणं पसत्थ-ज्झवसाणेणं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खएणं कम्मरय-विकिरणकरं अपुव्वकरणं अणुप्पविट्ठस्स अणंते, अणुत्तरे जाव केवलवरनाण-दंसणे समुप्पण्णे । तओ पच्छा सिद्धे जावप्पहीणे ।

तत्थ णं अहासंनिहिएहिं देवेहिं सम्मं आराहियं ति कट्टु दिव्वे सुरभिगंधोदए वुट्ठे, दसद्धवण्णे कुसुमे णिवाडिए; चेलुक्खेवे कए, दिव्वे य गीय-गंधव्वनिनाए कए यावि होत्था ।

सूत्र ३० :

तब, सिर पर जाज्वल्यमान अंगारों के रखे जाने से गजसुकुमाल मुनि के शरीर में महा भयंकर वेदना उत्पन्न हुई, जो अत्यन्त दाहक, कर्कश, तीव्र और दुस्सह थी ।

इतना होने पर भी वे गजसुकुमाल मुनि सोमिल ब्राह्मण पर मन से लेश मात्र भी द्वेष नहीं करते हुए उस एकान्त दुःखरूप वेदना को समभाव पूर्वक सहन करने लगे ।

उस समय उस एकान्त दुःखपूर्ण दुस्सह दाहक वेदना को समभाव पूर्वक सहन करते हुए शुभ परिणामों तथा प्रशस्त शुभ अध्यवसायों (भावनाओं) के फलस्वरूप आत्मगुणों को आच्छादित करने वाले कर्मों के क्षय से, समस्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्म-रज को झाड़कर साफ कर देने वाले कर्म विनाशक अपूर्वकरण में प्रविष्ट हुए, जिससे उन गजसुकुमाल अणगार को अनंत–अन्तरहित, अनुत्तर–सर्वश्रेष्ठ, निर्व्याघात, निरावरण एवं परिपूर्ण केवलज्ञान एवं केवलदर्शन की उपलब्धि हुई । तत्पश्चात आयुष्य पूर्ण हो जाने पर वे उसी समय सिद्ध, बुद्ध, यावत् सभी दुःखों से मुक्त हो गये ।

इस प्रकार सकल कर्मों के क्षय हो जाने से वे गजसुकुमाल अणगार कृतकृत्य बनकर सिद्ध पद को प्राप्त हुए। लोकालोक के सभी पदार्थों का ज्ञान होने से बुद्ध हुए। सभी कर्मों के छूट जाने से परिनिर्वृत्त परमशान्त हुए, शारीरिक और मानसिक सभी दुःखों से रहित होने से "सर्वदुःख-प्रहीण" हुए ।

उस समय वहां समीपवर्ती देवों ने–अहो ! इन गजसुकुमाल मुनि ने श्रमण चारित्र धर्म की अत्यन्त उत्कृष्ट आराधना की है, यह जानकर अपनी वैक्रिय शक्ति के द्वारा दिव्य सुगन्धित अचित्त जल की तथा पाँच वर्णों के दिव्य अचित्त फूलों एवं वस्त्रों की वर्षा की, और दिव्य मधुर गीतों तथा गन्धर्व वाद्ययन्त्रों की ध्वनि से आकाश को गुंजा दिया ।

Maxim 30 :

Due to the burning embers kept on the head, most ferocious agony took place in the body of monk *Gaja Sukumāla*, that was much fiery, acute and untolerable.

Even so, monk *Gaja Sukumāla* bore it with even mind, not becoming wrathful towards *brāhmaṇa Somila*, even a bit.

At that time, bearing such an acute painful, fiery, untolerable agony with calm and equanimous mind friar *Gaja Sukumāla* entered the eighth stage of spiritual develop-ment stage–*Apūrwakaraṇa* by his auspicious thoughts and feelings, destroying the *karmas* which envelop soul-virtues.

By it monk *Gaja Sukumāla* attained infinite knowledge and perception. Thereafter his duration completed and he became perfected (until) and free of all miseries and pains.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Thus by exhaustion (destruction) of all *karmas* houseless mendicant *Gaja Sukumāla* became emancipated (who has nothing to do) omniscient–knower of every thing in *Loka* and *Aloka*, supreme calm (*parinivritta*)–being free from all *karmas*, and becoming free from all mental and bodily pains he became free from all miseries (*sarvaduhkha prahīṇa*).

At that time the nearby gods knowing that–'*monk Gaja Sukumāla* has propiliated sage-order with supremity' they rained the divine fragrant non-sensient water, showered divine non-sensient flowers of five colours and clothes and echoed the sky by celestial song and melody.

विवेचन

अपुव्वकरणं–अपूर्वकरणम्–अपूर्वकरण शब्द का अर्थ है–जिसकी पहले प्राप्ति नहीं हुई–ऐसा भाव या उत्कृष्ट स्थिति का अनुभव । यह आठवें "निवृत्तिबादर गुणस्थान" का भी परिचायक माना गया है । इस गुणस्थान से दो श्रेणियां आरम्भ होती हैं–(१) उपशम श्रेणी और (२) क्षपक श्रेणी । उपशम श्रेणी वाला जीव मोहनीय कर्म की प्रकृतियों का उपशमन करता हुआ ग्यारहवें गुणस्थान तक जाकर रुक जाता है और नीचे गिर जाता है । क्षपक श्रेणी वाला जीव दशवें गुणस्थान से सीधा बारहवें गुणस्थान पर जाकर अप्रतिपाती हो जाता है । आठवें गुणस्थान में आरूढ़ हुआ जीव क्षपक श्रेणी से उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ जब बारहवें गुणस्थान में पहुँच जाता है तब समस्त घातीकर्मों का क्षय करता हुआ कैवल्य ज्ञान प्राप्त कर लेता है । तत्पश्चात तेरहवें गुणस्थान में स्थिर होता है । आयु पूर्ण होने पर चौदहवाँ गुणस्थान प्राप्त करके परम कल्याण रूप मोक्षपद को प्राप्त कर लेता है ।

प्रस्तुत में सूत्रकार ने "अपुव्वकरण" पद देकर गजसुकुमाल के साथ अपूर्वकरण अवस्था का सम्बन्ध सूचित किया है । भाव यह है कि गजसुकुमाल मुनि ने आठवें गुणस्थान में प्रविष्ट होकर उत्तम क्षपक श्रेणी को अपना लिया था ।

Elucidation

Apuvvakaraṇa–Apūrvakaraṇa–This word means–which is never attained before–realisation of the sublime feeling of this stage. It is also taken as the eighth

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

sipirtual development stage named as *nivṛtti bādara guṇasthāna*. Two steps begin from this stage–(1) Subduative step (*upaśama śreṇī*) and (2) exhaustive step (*kṣapaka śreṇī*). The mendicant who takes subduative step he stops reaching the eleventh stage of spiritual development and falls down from that stage. The mendicant who takes exhaustive step he does not touch eleventh stage and reaches twelfth from tenth stage in a jumping way and becomes unfallible. Really the mendicant taking exhaustive step raises up one after another development stage, but not touching eleventh reaches twelfth directly. Then exhausting all *ghātī* (soul-binding) *karmas* attains infinite knowledge and perception. Then crossing twelfth stage he stays himself in thirteenth stage of spiritual development and remains there till whole life but a little span of period. During this period he enters in fourteenth stage of spiritual development and within a few seconds becomes emancipated and reaching on the top of *loka* enjoys soul-bliss upto infinite time.

In the present maxim scripturist giving the word *apuvvkaraṇa* pointed out the relativeness of *apūrvakaraṇa* with monk *Gaja Sukumāla*. Its inherent idea is this, that monk *Gaja Sukumāla* entering the eighth stage of spiritual development had taken the exhaustive step.

सूत्र ३१ :

तए णं से कण्हे वासुदेवे कल्लं पाउप्पभायाए जाव जलंते ण्हाए जाव विभूसिए, हत्थिक्खंधवरगए सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं उद्धुव्यमाणीहिं महया भड-चडगर-पहकरवंद-परिक्खित्ते बारवइं णयरिं मज्झं मज्झेणं जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे बारवईए णयरीए मज्झं मज्झेणं णिगच्छमाण एक्कं पुरिसं पासइ । जुण्णं जरा-जज्जरियं देहं, जाव किलंतं महइ-महालयाओ इट्टगरासिओ एगमेगं इट्टगं गहाय बहिया रत्थापहाओ अंतोगिहं अणुप्पविसमाणं पासइ ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे तस्स पुरिसस्स अणुकंपणट्ठाए हत्थिक्खंधवरगए चेव एगं इट्टगं गिण्हइ, गिण्हित्ता बहिया रत्थापहाओ अंतोगिहं अणुप्पवेसिए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तए णं कण्हेणं वासुदेवेणं एगाए इट्ठगाए गहियाए समाणीए अणेगेहिं पुरिससएहिं से महालए इट्ठगस्स रासी बहिया रत्थापहाओ अंतोघरंसि अणुप्पवेसिए ।

वृद्ध की सहायता

सूत्र ३१ :

उस रात्रि के व्यतीत होने पर दूसरे दिन सूर्योदय की वेला में कृष्ण वासुदेव स्नान कर वस्त्रालंकारों से विभूषित हो, हाथी पर आरूढ़ हुए । वे कोरंट पुष्पों की माला एवं छत्र धारण किये हुए थे । श्वेत एवं उज्ज्वल चामर उनके दायें बायें ढोरे जा रहे थे । अनेक बड़े-बड़े योद्धाओं के समूह से घिरे हुए द्वारका नगरी के राजमार्ग से होते हुए जहां भगवान् अरिष्टनेमि विराजमान थे, वहां के लिये प्रस्थान किया ।

तब कृष्ण वासुदेव ने द्वारका नगरी के मध्य भाग से जाते समय एक पुरुष को देखा, जो अति वृद्ध, जरा से जर्जरित देह, दुर्बल, अति क्लान्त-कुम्हलाया हुआ एवं थका हुआ सा था । उसके घर के बाहर राजमार्ग पर ईंटों का एक विशाल ढेर लगा हुआ था, वह वृद्ध पुरुष उस ढेर में से एक-एक ईंट उठाकर अपने घर में भीतर रख रहा था ।

उस दुःखी वृद्ध पुरुष को इस तरह एक-एक ईंट उठाते देखकर कृष्ण वासुदेव ने उस पुरुष के प्रति करुणार्द्र होकर उस पर अनुकम्पा करते हुए हाथी पर बैठे-बैठे ही उस ढेर में से एक ईंट उठाई और उसे ले जाकर उसके घर के भीतर रख दी ।

कृष्ण वासुदेव को इस तरह ईंट उठाते देखकर उनके साथ के अनेकों सैंकड़ों अनुगामी पुरुषों ने भी एक-एक करके ईंटों के उस सम्पूर्ण ढेर को तुरन्त बाहर से उठाकर उसके घर के भीतर पहुँचा दिया । इस प्रकार श्रीकृष्ण के एक ईंट उठाने मात्र से उस वृद्ध जर्जर दुःखी पुरुष का बार-बार चक्कर काटने का कष्ट दूर हो गया ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रक्रम २० :

वृद्ध पुरुष की सहायता

दृश्य १—श्रीकृष्ण वासुदेव प्रातःकाल भगवान अरिष्टनेमि के दर्शन करने राजमार्ग से निकले। राजपथ पर एक अत्यन्त दुर्बल वृद्ध पुरुष को ईंटों के विशाल ढेर में से एक-एक ईंट उठाकर ले जाते देखा, तो अनुकम्पा भाव से वासुदेव ने स्वयं एक ईंट उठाकर उसके घर के भीतर रख दी।

दृश्य २—श्रीकृष्ण का अनुसरण करके सभी अनुगामी व्यक्तियों ने एक-एक ईंट उठाकर उसके घर में पहुँचा दी। वृद्ध का कार्य शीघ्र पूर्ण हो गया।

(वर्ग ३/अध्य. ८)

Illustration No. 20 :

Help of an old man

Scene 1. Vāsudeva Śrī Kṛṣṇa went out in the morning for paying his respects to *Bhagawāna Ariṣṭanemi*, with his chamberlains and followers. In the way he saw an aged, lean, weak bodied, old man who was taking one brick from the huge accumulation (heap) of bricks, which was lying on royal-road, and was putting it down inside his home. Then due to compassion *Vāsudeva* picked up one brick from the heap and kept it inside his house.

Scene 2. Following this activity of *Śrī Kṛṣṇa* his followers also took up bricks from the heap and kept inside the house of that old man.

(Sec. 3/Ch. 8)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Help of an Oldman

Maxim 31 :

Passing that night and at the dawn of second day *Kṛṣṇa Vāsudeva* bathed and adorned by clothes and ornaments rode on an elephant. He was wearing the garland of *Koraṇta* flowers and canopy was on his head, white and best *cāmaras* were fanned on his both sides. Surrounded by numerous strong warriors, moving on the royal road started from *Dwārakā* to go where *Bhagawāna Ariṣṭanemi* was.

While going through the middle part of *Dwārakā Kṛṣṇa Vāsudeva* saw a man, who ws too old, with body bathered by old age, weak, wearied and tired. Out of his house, on the royal road a huge heap of bricks was accumulated. That oldman was carrying bricks from that heap one by one and keeping in the inner part of his house.

Kṛṣṇa Vāsudeva seeing that grieved old man, filled with compassion. Sitting on elephant he took up one brick from that heap and put in the inner part of his house.

When the numerous followers saw *Śrīkṛṣṇa Vāsudeva* putting a brick from that heap then all of them put one brick in the house of that old man. Consequently heap was finished. In this way only taking one brick by *Śrīkṛṣṇa*, the turmoil of carrying brick of that old bathered bodied man came to an end.

सूत्र ३२ :

तए णं से कण्हे वासुदेवे बारवईए णयरीए मज्झं मज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागए, उवागच्छित्ता जाव वंदइ णमंसइ ।

वंदित्ता णमंसित्ता गयसुकुमालं अणगारं अपासमाणे अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-कहि णं भंते ! से मम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सहोदरे कणीयसे भाया गयसुकुमाले अणगारे जण्णं अहं वंदामि नमंसामि ।

तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी–साहिए णं कण्हा ! गयसुकुमालेणं अणगारेणं अप्पणो अट्ठे ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं एवं वयासी-कहण्णं भंते! गयसुकुमालेणं अणगारेणं साहिए अप्पणो अट्ठे ?

सूत्र ३२ :

तत्पश्चात वह कृष्ण वासुदेव द्वारका नगरी के मध्य भाग से निकलते हुए जहां सहस्राम्रवन में भगवान् अरिष्टनेमि विराजमान थे, वहां आये। वहां आकर भगवान को वन्दन नमस्कार किया ।

इसके पश्चात अपने सहोदर लघु भ्राता नवदीक्षित गजसुकुमाल मुनि को (वन्दन नमस्कार करने के लिये) इधर-उधर देखा ।

जब उन्हें मुनि वहां नहीं दिखाई दिये तो भगवान् अरिष्टनेमि को पुनः वन्दन नमस्कार किया और वन्दन-नमस्कार करके भगवान से पूछा– प्रभो ! वे मेरे सहोदर लघुभ्राता नवदीक्षित गजसुकुमाल मुनि कहां हैं ? मैं उनको वन्दन नमस्कार करना चाहता हूँ ।

तब अर्हन्त अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा– हे कृष्ण ! गजसुकुमाल मुनि ने जिस प्रयोजन के लिये संयम स्वीकार किया था, वह प्रयोजन, वह आत्मार्थ उन्होंने सिद्ध कर लिया है ।

यह सुनकर चकित होते हुए कृष्ण वासुदेव ने अर्हन्त प्रभु से प्रश्न किया– भगवन ! गजसुकुमाल मुनि ने अपना प्रयोजन (अपना आत्मार्थ) कैसे सिद्ध कर लिया है ?

Maxim 32 :

After that passing through the middle of *Dwārakā city* *Kṛṣṇa Vāsudeva* reached *Sahasrāmravana*, where *Bhagawāna Ariṣṭanemi* was present. He bowed down and worshipped *Bhagawāna*.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

After that he moved his eyes to see his younger brother newly consecrated monk *Gaja Sukumāla* to bow down to him; but could not find him there. Then he bowing down to *Bhagawāna Ariṣṭanemi* asked–*Bhagawan* ! Where is my younger uterine brother the newly consecrated monk ? I want to bow down to him.

Then *Arihanta Ariṣṭanemi* replying to the question of *Kṛṣṇa Vāsudeva said–Kṛṣṇa* ! The purpose for which *Gaja Sukumāla* accepted consecration he has attained that.

Hearing this worried *Kṛṣṇa Vāsudeva* asked *Arihanta Ariṣṭanemi– Bhagawan* ! How has *Gaja Sukumāla* attained his goal (salvation of soul) ?

सूत्र ३३ :

तए णं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी–एवं खलु कण्हा ! गयसुकुमालेणं अणगारेणं ममं कल्लं पुव्वावरण्ह कालसमयंसि वंदइ णमंसइ । वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी–इच्छामि णं जाव उवसंप्पज्जित्ताणं विहरइ ।

तए णं तं गयसुकुमालं अणगारं एगे पुरिसे पासइ । पासित्ता आसुरत्ते जाव सिद्धे ।

तं एवं खलु कण्हा ! गयसुकुमालेणं अणगारेणं साहिए अप्पणो अट्ठे ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं एवं वयासी–

से के णं भंते ! से पुरिसे अपत्थियपत्थिए जाव परिवज्जिए, जेणं ममं सहोदरं कणीयसं भायरं गयसुकुमालं अणगारं अकाले चेव जीवियाओ ववरोविए ?

तए णं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एव वयासी–मा णं कण्हा ! तुमं तस्स पुरिसस्स पओसमावज्जहि । एवं खलु कण्हा ! तेणं पुरिसेणं गयसुकुमालस्स अणगारस्स साहिज्जे दिण्णे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र ३३ :

तब अर्हत् अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव को उत्तर दिया–हे कृष्ण ! वस्तुत: कल के दिन अपराह्न काल के पूर्व भाग में गजसुकुमाल मुनि ने मुझे वन्दन-नमस्कार किया । वन्दन नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया– हे प्रभु ! आपकी आज्ञा हो तो मैं महाकाल श्मशान में एक रात्रि की महाभिक्षु प्रतिमा धारण करके विचरना चाहता हूँ । मेरी अनुज्ञा प्राप्त होने पर वह गजसुकुमाल मुनि महाकाल श्मशान में जाकर भिक्षु की महा-प्रतिमा धारण करके ध्यानस्थ खड़े हो गये ।

इसके बाद उन गजसुकुमाल मुनि को एक पुरुष ने देखा और देखकर वह उन पर बहुत क्रुद्ध हुआ ।" इत्यादि समस्त घटनाक्रम सुनाकर भगवान ने कहा–हे कृष्ण ! उन गजसुकुमाल मुनि ने अपना प्रयोजन सिद्ध कर लिया, अपना आत्मकार्य सिद्ध कर लिया ।

यह सुनकर कृष्ण वासुदेव भगवान अरिष्टनेमि से इस प्रकार पूछने लगे– हे पूज्य ! वह अप्रार्थनीय का प्रार्थी अर्थात् मृत्यु को चाहने वाला निर्लज्ज पुरुष कौन है जिसने मेरे सहोदर लघु भ्राता गजसुकुमाल मुनि का असमय में ही प्राणहरण कर लिया ?

तब अर्हत् अरिष्टनेमि कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार बोले– हे कृष्ण ! तुम उस पुरुष पर द्वेष मत करो, क्योंकि उस पुरुष ने सुनिश्चित रूप से गजसुकुमाल मुनि को अपना आत्महित एवं अपना प्रयोजन सिद्ध करने में सहायता प्रदान की है ।

Maxim 33 :

Then *Arhat Aristanemi* replied to *Krsna Vāsudeva*–O *Krsna* ! Verily *Gaja Sukumāla* bowed down to me yesterday in the first part of afternoon and then said–O Lord ! if you permit me I intend to accept and observe monk's twelfth special resolution (*Bhiksu-Mahāpratimā*) of one night in *Mahākāla* cemetry. Getting my permission *Gaja Sukumāla* went to *Mahākāla* cemetry, accepted

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

the great resolution, stood up and went deep into meditation.

Thereafter a man saw monk *Gaja Sukumāla* and became red in fury. Thus telling full description *Bhagawāna* said–O *Kṛṣṇa* ! thus monk *Gaja Sukumāla* obtained his goal–the salvation of his soul.

Hearing all this *Kṛṣṇa* began to inquire from *Bhagawāna Aristanemi*–O Reverend sir ! Who is that shameless person, desirous of undesirable–desirous of death, who has untimely made my younger uterine brother monk *Gaja Sukumāla* lifeless.

Then *Arhat Aristanemi* spoke thus to *Kṛṣṇa Vāsudeva*–O *Kṛṣṇa* ! Do not be invidious towards that person, because really he became helpful to monk *Gaja Sukumāla* for attaining his goal–purification of soul.

सूत्र ३४ :

कहण्णं भंते ! तेणं पुरिसेणं गयसुकुमालस्स णं साहिज्जे दिन्ने ?

तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी–

से नूणं कण्हा ! तुमं मम पायवंदए, हव्वमागच्छमाणे बारवईए णयरीए एगं पुरिसं पाससि जाव अणुप्पवेसिए । जहा णं कण्हा तुमं तस्स पुरिसस्स साहिज्जे दिण्णे । एवमेव कण्हा ! तेणं पुरिसेणं गयसुकुमालस्स अणगारस्स अणेगभव-सय-सहस्स-संचियं कम्मं उदीरेमाणेणं बहुकम्मणिज्जरट्ठं साहिज्जे दिण्णे ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं एवं वयासी–से णं भंते ! पुरिसे मए कहं जाणियव्वे ?

तए णं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी–जे णं कण्हा ! तुमं बारवईए णयरीए अणुप्पविसमाणं पासित्ता टियए चेव ठिइभेएणं कालं करिस्सइ तए णं तुमं जाणिज्जासि, एस णं से पुरिसे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र ३४ :

यह सुनकर कृष्ण वासुदेव ने पुनः आश्चर्यपूर्वक प्रश्न किया–हे भगवन् ! उस पुरुष ने गजसुकुमाल मुनि को सहायता दी, यह कैसे ?

अर्हंत अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव को इस प्रकार स्पष्ट उत्तर दिया–हाँ कृष्ण ! निश्चय ही उसने सहायता की ।

यथा–मेरे चरण वन्दन हेतु शीघ्रता पूर्वक आते समय तुमने द्वारका नगरी में एक वृद्ध पुरुष को देखा और उसके घर के बाहर राजमार्ग पर पड़ी ईंटों की विशाल राशि में से तुमने एक ईंट उस वृद्ध के घर में ले जाकर रख दी। तुम्हें एक ईंट रखते देखकर तुम्हारे साथ के सब पुरुषों ने भी उन ईंटों को उठा-उठाकर उस वृद्ध पुरुष के घर में पहुँचा दिया और ईंटों की वह विशाल राशि इस तरह तत्काल राज-मार्ग से उठकर उस वृद्ध के घर में चली गई । इस तरह तुम्हारे इस सहकार से उस वृद्ध पुरुष का उस ढेर की एक-एक ईंट उठाकर ढोने का कष्ट दूर हो गया ।

हे कृष्ण ! वास्तव में जिस तरह तुमने उस पुरुष का कष्ट दूर करने में सहायता की, उसी तरह उस पुरुष ने भी अनेकानेक लाखों (शत-सहस्र) भवों के संचित कर्म की राशि की उदीरणा करने में संलग्न गजसुकुमाल मुनि को उन कर्मों की सम्पूर्ण निर्जरा करने में सहायता प्रदान की है ।

यह सुनकर कृष्ण वासुदेव ने अर्हंत अरिष्टनेमि से इस प्रकार पूछा–हे भगवन् ! मैं उस पुरुष को किस प्रकार पहचान सकूँगा ?

भगवान् अरिष्टनेमि कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार बोले–हे कृष्ण ! यहाँ से लौटते समय जब तुम द्वारका नगरी में प्रवेश करोगे, उस समय तुम्हें देखकर जो पुरुष भयभीत हो उठेगा और वहीं खड़े-खड़े ही आयुष्य पूर्ण हो जाने से मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा। तुम समझ लेना कि निश्चयरूपेण यही वह पुरुष है ।

Maxim 34 :

Hearing this *Śrīkṛṣṇa Vāsudeva* was non-plussed again and asked–O *Bhagawan* ! That person became helpful to monk *Gaja Sukumāla* (attaining his end). How is it so ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Then Arhat Ariṣṭanemi clearly replied to *Vāsudeva Śrīkṛṣṇa* in this way–Yes *Kṛṣṇa* ! Definitely he helped.

When you were coming to bow down to me then you saw an old man carrying one brick from the heap of bricks which was accumulated before his house on the main road. You had picked up one brick and carrying that placed it in his house.

Seeing you putting one brick all of your followers, picking up those bricks put down in the house of that old man. Thus by your this help the turmoil of putting down those bricks one by one inside his house finished.

O *Kṛṣṇa* ! Just as you lent aid to finish that oldman's turmoil, in the same way O *Kṛṣṇa* ! that person also aided *Gaja Sukumāla* monk to completely annihilate the accumulated *karmas* of numerous previous births.

Hearing this *Śrīkṛṣṇa Vāsudeva* asked *Arhat Ariṣṭanemi* –O *Bhagawan* ! How can I recognise that person ?

Bhagawāna Ariṣṭanemi spoke thus unto *Vāsudeva Śrīkṣṛṇa*–O *Kṛṣṇa* ! Returning from here when you will enter *Dwārakā* city, at that time seeing you the person who will be frightened and standing there due to completion of life span will die. You should consider that definitely he is the person concemed.

सूत्र ३५ :

तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ णमंसइ । वंदित्ता णमंसित्ता जेणेव आभिसेयं हत्थिरयणं तेणेव उवागच्छइ; उवागच्छित्ता हत्थिं दुरूहइ; दुरूहित्ता जेणेव बारवई णयरी, जेणेव सए गिहे तेणे पहारेत्थ गमणाए ।

तए णं तस्स सोमिलस्स माहणस्स कल्लं जाव जलंते अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे जाव समुप्पण्णे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं खलु कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं पायवंदए निग्गए तं नायमेयं अरहया, विण्णायमेयं अरहया, सुयमेयं अरहया, सिट्ठमेयं अरहया भविस्सइ कण्हस्स वासुदेवस्स ।

तं न णज्जइ णं कण्हे वासुदेवे ममं केण वि कु-मारेणं मारिस्सइ त्ति कट्टु भीए सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ ।

पडिणिक्खमित्ता कण्हस्स वासुदेवस्स बारवइं णयरिं अणुप्पविसमाणस्स पुरओ सपक्खिं सपडिदिसं हव्वमागए ।

सूत्र ३५ :

अपने प्रश्न का समाधान पाकर कृष्ण वासुदेव अरिष्टनेमि को वन्दन नमस्कार कर जहां अपना प्रधान हस्तिरत्न खड़ा था, वहाँ पहुँचकर उस हाथी पर आरूढ़ हुए और अपने राजप्रासाद की ओर चल पड़े ।

उधर उस सोमिल ब्राह्मण के मन में दूसरे दिन सूर्योदय होते ही इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ–

(आज) निश्चय ही कृष्ण वासुदेव अरिहंत अरिष्टनेमि के निकट वन्दन करने के लिए गये होंगे । वे तो सर्वज्ञ हैं, उनसे कोई बात छिपी नहीं है । उन्होंने गजसुकुमाल की मृत्यु और मेरे कुकृत्य सम्बन्धी सब वृत्तान्त जान लिया होगा, आद्योपान्त पूर्णतः विदित कर लिया होगा । अर्हन्त अरिष्टनेमि ने अवश्यमेव कृष्ण वासुदेव को यह सब कुछ बता दिया होगा ।

तो ऐसी स्थिति में कृष्ण वासुदेव क्रोधित होकर मुझे न मालूम किस प्रकार की कुमौत से मारेंगे। ऐसा विचार कर वह डरा, भयाक्रान्त हुआ, और घर से निकला, नगर से कहीं दूर भागने का निश्चय किया ।

उसने सोचा कि श्रीकृष्ण तो राजमार्ग से लौटेंगे। इसलिए मैं किसी छोटी गली के रास्ते से निकल भागूँ और उनके लौटने से पूर्व ही निकल जाऊँ। ऐसा सोचकर वह अपने घर से निकला और गली के रास्ते से भागा ।

इधर कृष्ण वासुदेव भी अपने लघु-सहोदर भाई गजसुकुमाल मुनि की अकाल मृत्यु के शोक से विह्वल होने के कारण राजमार्ग छोड़कर उसी गली के रास्ते से लौट रहे थे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Satisfied with reply of his question *Kṛṣṇa Vāsudeva* bowed down and did reverence to *Arhat Ariṣṭanemi*, went to the place where his excellent elephant was standing, rode on it and started towards his royal palace.

On the other side, as the sun shone with lustre, such thoughts arose in the mind of *Somila Brāhmaṇa*–

'Today, *Kṛṣṇa Vāsudeva* must have definitely gone to bow down to *Arhat Ariṣṭanemi*. He is omniscient. Nothing is hidden from him. He must have known all details about death of *Gaja Sukumāla* and my ill-deed. *Arihanta Ariṣṭanemi* must have told everything to *Kṛṣṇa Vāsudeva*. In these conditions, becoming agitated *Kṛṣṇa Vāsudeva* will kill me in a cruel manner that I do not know. Thinking thus he was frightened, came out of home and decided to run far away out of the city.

He thought–*Kṛṣṇa* will return via royal road. Therefore I should run away through any small street and get out of the city before he returns. Thinking thus, he came out his home and ran through a small street.

Kṛṣṇa Vāsudeva was full of sorrow due to the cruel death of his younger brother monk *Gaja Sukumāla*. So he was returning through the same street.

सूत्र ३६ :

तए णं से सोमिले माहणे कण्हं वासुदेवं सहसा पासित्ता भीए, ठिए चेव ठिइभेएणं कालं करेइ । करित्ता धरणितलंसि सव्वंगेहिं धस त्ति सण्णिवडिए ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे सोमिलं माहणं पासइ, पासित्ता एवं वयासी–

एस णं भो देवाणुप्पिया ! से सोमिले माहणे अपत्थियपत्थए जाव परिवज्जिए । जेण ममं सहोयरे कणीयसे भायरे गयसुकुमाले अणगारे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविए, त्ति कट्टु ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोमिलं माहणं पाणेहिं कड्ढावेइ, कड्ढावित्ता, तं भूमिं पाणिएणं अब्भुक्खावेइ, अब्भुक्खावित्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए। सयं गिहं अणुप्पविट्ठे ।

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स अट्ठमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते ।

(अट्ठमं अज्झयणं समत्तं)

सूत्र ३६ :

कृष्ण वासुदेव के द्वारका नगरी में प्रवेश करते समय वह संयोगवश एकदम उनके सामने ही आ जाता है. तब उस समय वह सोमिल ब्राह्मण कृष्ण वासुदेव को अचानक सम्मुख देखकर भयभीत हुआ और जहाँ का तहाँ स्तंभित खड़ा रह गया और वहीं खड़े-खड़े ही स्थिति-भेद से–अपना आयुष्य पूर्ण हो जाने से उसका अंग अंग ढीला पड़ गया वह सोमिल "धस" शब्द करता हुआ वहीं भूमि-तल पर धड़ाम से गिर पड़ा। उसके प्राण निकल गये ।

उस समय कृष्ण वासुदेव ने सोमिल ब्राह्मण को (मरकर) गिरता हुआ देखा और देखकर इस प्रकार बोले–

अरे ओ देवानुप्रियो ! यही वह मृत्यु की इच्छा करने वाला तथा निर्लज्ज एवं शोभाहीन सोमिल ब्राह्मण है, जिसने मेरे सहोदर छोटे भाई गजसुकुमाल मुनि को असमय में ही मृत्यु के मुँह में धकेल दिया है ।

ऐसा कहकर श्रीकृष्ण वासुदेव ने सोमिल ब्राह्मण के उस शव को चाण्डालों द्वारा घसीटवाकर नगर के बाहर फिंकवा दिया और उस शव से स्पर्श की गई भूमि को पानी से धुलवाया। उस भूमि को पानी से धुलवाकर कृष्ण वासुदेव अपने राज प्रासाद में प्रविष्ट हुए।

आर्य सुधर्मा–इस प्रकार हे जम्बू ! मोक्ष को प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने आठवें अंग के तीसरे वर्ग के आठवें अध्ययन का यह भाव प्रतिपादित किया है । **(आठवां अध्ययन समाप्त)**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

As *Kṛṣṇa Vāsudeva* entered *Dwārakā* city, perchance, all of a sudden he (*Somila*) came in front of him. Then that *Somila Brāhmaṇa* seeing *Kṛṣṇa Vāsudeva* was frightened, stunned, remained standing as he was and due to completion of life span the limbs of his body loosened and he (*Somila*) fell down on the ground with a great sound *dhaḍāma*. He became lifeless.

Kṛṣṇa Vāsudeva saw *Somila* falling down dead, so he spoke–

O beloved as gods ! This is the person desirous of death, shameless *Somila Brāhmaṇa* who has untimely killed my younger uterine brother monk *Gaja Sukumāla*.

Saying thus *Kṛṣṇa Vāsudeva* caused to be pulled and thrown the corpse of *Somila* by *Cāṇḍālas* He then got washed the land touched by the dead body of *Somila*. And then he entered his palace.

Ārya Sudharmā–Thus O *Jambū* ! Liberated *Śramaṇa Bhgawāna Mahāvīra* expressed such subject matter of eighth chapter of third section of eighth *aṅga*.

[Eighth Chapter Concluded]

नवम अध्ययन

सूत्र ३७ :

णवमस्स उक्खेवओ ।

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईए णयरीए जहा पढमए जाव विहरइ ।

तत्थ णं बारवईए बलदेवे णामं राया होत्था । वण्णओ । तस्स णं बलदेवस्स रण्णो धारिणी णामं देवी होत्था । वण्णओ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तए णं सा धारिणी । सीहं सुमिणे,

जहा गोयमे णवरं सुमुहे णामं कुमारे,

पण्णासं कण्णाओ । पण्णासंओ दाओ, चोद्दसपुव्वाइं अहिज्जइ । वीसं वासाइं परियाओ । सेसं तं चेव जाव सेत्तुंजे सिद्धे ।

निक्खेवओ । **(नवमं अज्झयणं समत्तं)**

सूत्र ३७ :

आर्य सुधर्मा से पुनः जम्बू स्वामी पूछते हैं कि हे भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अंतकृद्दशांग सूत्र के तीसरे वर्ग के आठवें अध्ययन के जो भाव कहे वे मैंने आपसे सुने। हे भगवन ! अब आगे नवमें अध्ययन में उन्होंने क्या भाव फरमाये हैं ? सो कृपा कर बतावें ।

आर्य सुधर्मा स्वामी ने कहा--हे जम्बू ! उस काल, उस समय में द्वारका नाम की नगरी थी जिसका वर्णन पूर्व में किया जा चुका है । एक दिन भगवान् अरिष्टनेमि विहार करते हुए उस नगरी में पधारे ।

द्वारका नगरी में बलदेव नाम के राजा थे । उनकी धारिणी नाम की रानी थी । वह अत्यन्त सुकोमल, सुन्दर एवं गुण सम्पन्न थी ।

एक समय सुकोमल शय्या पर सोई हुई धारिणी देवी ने रात को सिंह का स्वप्न देखा (स्वप्न देखकर वह जाग गई । उसी समय अपने पति के पास जाकर स्वप्न का वृत्तान्त उन्हें सुनाया । यावत् स्वप्न पाठकों से स्वप्न फल पूछकर गर्भ की देखभाल करती रही। गर्भ समय पूर्ण होने पर स्वप्न के अनुसार उनके यहां एक पुण्यशाली पुत्र का जन्म हुआ) उसके जन्म, बाल्यकाल आदि का वर्णन गौतम कुमार के समान समझना चाहिए । विशेष में, उस बालक का नाम सुमुख रखा गया। युवा होने पर पचास कन्याओं से साथ उसका पाणिग्रहण संस्कार हुआ । विवाह में पचास-पचास करोड़ सोनैया आदि का प्रीतिदान उसे मिला ।

भगवान अरिष्टनेमि के किसी समय वहां पधारने से उनका धर्मोपदेश सुनकर सुमुख कुमार उनके पास दीक्षित हो गया । दीक्षित होकर चौदह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्व का ज्ञान पढ़ा । बीस वर्ष तक श्रमण दीक्षा पाली । अन्त में गौतम कुमार की तरह संलेखणा यावत् संथारा करके शत्रुंजय पर्वत पर सिद्ध हुए ।

हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर ने अन्तकृद्दशा के तीसरे वर्ग के नवमें अध्ययन में उपरोक्त भाव कहे हैं । **(नवम अध्ययन समाप्त)**

Chapter 9

Maxim 37 :

Jambū Swāmi further requests *Ārya Sudharmā* O *Bhagawan* ! I have heard from you the subject matter as expressed by *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra* of eighth chapter of third section of *Antakṛddaśāṅga Sūtra*, O *Bhagawan* ! What is the subject matter he expressed in the ninth chapter? Please tell me now.

Ārya Sudharmā said–O *Jambū* ! At that time and at that period there was a city named *Dwārakā*. Its description has been given in previous pages. One day *Bhagwāna Aristanemi* reached there. There was a ruler named *Baladeva* in *Dwārakā* city. His queen was *Dhāriṇī*. She was very tender, beautiful and virtuous.

Some time, *Dhāriṇī* was sleeping on her comfortable bed. She saw a lion in dream. She woke up seeing this dream. Then, she went to her husband and told about her dream. She enquired the consequences of dream from dream-tellers and nurtured her foetus carefully.

On completion of pregnancy period, according to the dream queen gave birth to a fateful son. The description of birth, childhood etc., should be known as of *Gautama Kumāra*. Excepting; the name of this son was *Sumukha*. Becoming young he was married to fifty maidens.

At the time of marriage he got gift of fifty-fifty *Karoda* (five hundred millions) gold coins etc. Once *Bhagawāna*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Ariṣṭanemi came there. Listening his sermon *Sumukha Kumāra* accepted consecration. Then he studied fourteen *Pūrvas*. For twenty years he practised consecration. In the end, like *Gautama Kumāra*, he practised *saṁlekhanā saṁthāra* and became emancipated from mountain *Śatrumjaya*.

O *Jambū* ! *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra* expressed such subject matter in ninth chapter of third section of *Antakṛddaśā Sūtra*. ***[Nineth Chapter Concluded]***

अध्ययन १०-१३

सूत्र ३८ :

एवं दुम्मुहे वि । कूवदारए वि ।

दोण्हं वि बलदेवे पिया धारिणी माया ।

दारुए वि एवं चेव, णवरं वसुदेवे पिया, धारिणी माया ।

एवं अणादिट्ठी वि, वसुदेवे पिया धारिणी माया ।

एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वगस्स तेरसमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि ।

(तृतीय वर्ग समाप्त)

सूत्र ३८ :

जिस प्रकार प्रभु ने नवमें अध्ययन का भाव फरमाया है, उसी प्रकार दसवें "दुर्मुख" और ग्यारहवें "कूवदारक" का भी वर्णन जान लेना चाहिए। अन्तर इतना है कि दोनों के पिता बलदेव महाराज और माता धारिणी थी, बाकी इनका सारा वर्णन "सुमुख" के समान ही समझना चाहिए ।

इसी तरह बारहवें में "दारुक" और तेरहवें में "अनाधृष्टि कुमार" का वर्णन समझना। इसमें अन्तर केवल इतना ही है कि इनके पिता वसुदेव और धारिणी माता थी ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा–इस तरह हे जम्बू! श्रमण यावत् मोक्ष को प्राप्त भगवान महावीर ने आठवें अंग अंतगडदशा सूत्र के तीसरे वर्ग के एक से लेकर तेरह अध्ययनों का यह भाव फरमाया है। **(तृतीय वर्ग समाप्त)**

Chapter 10-13

Maxim 38 :

As th *Lord (Bhagawāna)* expressed the subject matter of ninth chapter so should be known the subject matter of tenth chapter *Durmukha* and eleventh chapter *Kūvadāruka*. Excepting; father of both of them was ruler *Baladeva* and mother was *Dhāriṇī*. All the remaining description is like that of *Sumukha Kumāra*.

In the same way the description of twelfth chapter *Dāruka* and thirteenth chapter *Anādṛṣṭi Kumāra* should be known. Excepting; father of these both was *Vasudeva* and mother was *Dhāriṇī*.

Śrī Sudharmā Swamī said–O *Jambū* ! Liberated *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra* thus, expressed the subject matter of third section of *Antakṛddaśā Sūtra* in chapters one to thirteen. **[Third section finished]**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्थ वर्ग

अध्ययन १ से १०

सूत्र १ :

जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते । चउत्थस्स णं भंते ! वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं चउत्थस्स वग्गस्स अंतगडदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता । तं जहा–

जालि[1] मयालि[2] उवयालि[3] पुरिससेणे[4] य वारिसेणे[5] य ।
पज्जुण्ण[6] संब[7] अणिरुद्धे[8], सच्चणेमी[9] य दढणेमी[10] ॥ १ ॥

सूत्र १ :

श्री जम्बू स्वामी ने प्रश्न किया– हे भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर ने आठवें अंग अंतकृद्दशा के तीसरे वर्ग का जो वर्णन किया वह मैंने आपसे सुना है । अब अंतकृद्दशा सूत्र के चौथे वर्ग के श्रमण भगवान महावीर ने क्या भाव बताये हैं, यह भी मुझे बताने की कृपा करें ।

श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा–हे जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर ने अंतकृद्दशा के चौथे वर्ग के दस अध्ययन कहे हैं, जो इस प्रकार हैं–

१. जालिकुमार, २. मयालिकुमार, ३. उवयालिकुमार, ४. पुरुषसेन कुमार, ५. वारिसेन कुमार, ६. प्रद्युम्न कुमार, ७. शाम्ब कुमार, ८. अनिरुद्ध कुमार, ९. सत्यनेमि कुमार, १०, दृढ़नेमि कुमार ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

FOURTH SECTION

Chapters 1 to 10

[redacted]axim 1:

Śrī Jambū Swāmī asked–I have heard from you, the subject matter expressed by *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra* of third section of *Eighth Aṅga Antakṛddaśā Sūtra*. Now please tell me the subject matter of fourth section of this *Sūtra* as described by *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra*.

Śrī Sudharmā Swāmī told–O *Jambū* ! *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra* has narrated ten chapters of fourth section of *Antakṛddaśā Sūtra*. These are–

1. Jāli Kumāra 2. Mayāli Kumāra. 3. Uvayāli Kumāra 4. Puruṣasena Kumāra. 5. Vārisena Kumāra 6. Pradyumna Kumāra. 7. Śāmba Kumāra 8. Aniruddha Kumāra 9. Satyanemī Kumāra and 10. Dṛḍhanemi Kumāra.

सूत्र २ :

जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं चउत्थस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता । पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेण के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई णयरी होत्था, जहा पढमे । कण्हे वासुदेवे आहेवच्चं जाव विहरइ ।

तत्थ णं बारवईए णयरीए वसुदेवे राया, धारिणी देवी, वण्णओ ।

सूत्र २ :

श्री जम्बू स्वामी ने पूछा–हे भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर ने चौथे वर्ग के दस अध्ययन कहे हैं । तो उनमें से प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ बतलाया है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा--हे जम्बू ! उस काल, उस समय में द्वारका नाम की नगरी थी, जिसका वर्णन प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन में किया जा चुका है । श्री कृष्ण वासुदेव वहां राज्य कर रहे थे ।

उस द्वारका नगरी में महाराज वसुदेव और रानी धारिणी निवास करते थे । रानी धारिणी अत्यन्त सुकुमार सुन्दर और सुशीला थी । एक समय कोमल शय्या पर सोती हुई धारिणी रानी ने सिंह का स्वप्न देखा। उस स्वप्न का वृत्तान्त उसने अपने पतिदेव को सुनाया। यावत् स्वप्न फल आदि का वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए ।

Maxim 2 :

Śrī Jambū Swāmī asked–O *Bhagawan* ! *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra* has told ten chapters of fourth section. What subject matter has he expressed in first chapter ?

Śrī Sudharmā Swāmī said–O *Jambū* ! At that time and at that period there was a city named *Dwārakā*. Its description has been given in the first chapter of first section. *Śrī Kṛṣṇa Vāsudeva* was ruling over it.

In that *Dwārakā* city there lived king *Vasudeva* and his queen *Dhāriṇī*. Queen *Dhariṇī* was most tender, beautiful and chaste woman. Once she was sleeping on a comfortable bed when she saw a lion in dream. She told her dream to her husband. The description of dream etc. should be known as described before (in previous pages).

सूत्र ३ :

जहा गोयमो, णवरं जालिकुमारे पण्णासओ दाओ । बारसंगी सोलस वासा-परियाओ । सेसं जहा गोयमस्स जाव सेत्तुंजे सिद्धे ।

एवं (२) मयालि (३) उवयालि, (४) पुरिससेणे, (५) वारिसेणे, य । एवं (६) पज्जुण्णे वि, णवरं कण्हे पिया, रुप्पिणी माया । एवं (७) संबे वि, नवरं जंबवई माया । एवं (८) अनिरुद्धे वि, णवरं पज्जुण्णे पिया,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेदब्भी माया । एवं (९) सच्चणेमी णवरं समुद्दविजये पिया, सिवा माया । एवं (१०) दढणेमी वि ।

सव्वे एगगमा । चउत्थस्स वग्गस्स णिक्खेवओ ।

(चतुर्थ वर्ग समाप्त)

३ :

इसके बाद पूर्व में वर्णित गौतम कुमार की तरह उनके एक तेजस्वी पुत्र का जन्म हुआ, जिसका नाम "जालिकुमार" रखा गया । जब वह युवावस्था को प्राप्त हुआ तब उसका विवाह पचास कन्याओं के साथ किया गया और उन्हें पचास-पचास करोड़ सोनैया आदि का प्रीतिदान मिला। संक्षेप में वर्णन इस प्रकार समझना चाहिए–

एक समय भगवान् अरिष्टनेमि वहाँ पधारे । उनका धर्मोपदेश सुनकर जालिकुमार को संसार से विरक्ति हो गई । माता-पिता की आज्ञा लेकर उन्होंने अर्हन्त अरिष्टनेमि के पास दीक्षा अंगीकार की । बारह अंगों का अध्ययन किया और १६ वर्ष पर्यन्त श्रमण दीक्षा पर्याय पाली। फिर गौतम कुमार की तरह इन्होंने भी संलेखना आदि करके शत्रुंजय पर्वत पर एक मास का संथारा किया और सब कर्मों से मुक्त होकर सिद्ध हुए ।

जालिकुमार की तरह २. मयालिकुमार, ३. उवयालिकुमार, ४. पुरुषसेन कुमार, और ५. वारिसेन कुमार के वर्णन भी समझने चाहिये । ये सभी वसुदेव जी के पुत्र एवं धारिणी रानी के आत्मज थे ।

इसी तरह छठे प्रद्युम्न कुमार का जीवन चरित्र भी जानना चाहिए । केवल अन्तर इतना जानना चाहिए कि इनके पिता "श्रीकृष्ण" और माता रुक्मिणी थी ।

ऐसे ही सातवें शाम्बकुमार का जीवन वर्णन समझना। केवल अन्तर इतना कि इनके पिता श्रीकृष्ण एवं माता जाम्बवती थी ।

इसी प्रकार आठवें अध्ययन में अनिरुद्ध कुमार का जीवन वर्णन समझना चाहिये, इनके पिता प्रद्युम्न कुमार और माता वैदर्भी थी ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसे ही नवमें अध्ययन में सत्यनेमि कुमार और दशवें अध्ययन में दृढ़नेमि कुमार का वर्णन समझना चाहिये । इनमें विशेष यह है कि समुद्रविजय जी इनके पिता थे और शिवादेवी इनकी माता थीं (ये दोनों अर्हत् अरिष्टनेमि के छोटे भाई थे) ।

ये सब अध्ययन एक समान वर्णन वाले हैं । यह चौथे वर्ग का उत्क्षेपक सारांश है ।

श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा–इस प्रकार जम्बू ! दस अध्ययनों वाले इस चौथे वर्ग का श्रमण भगवान महावीर ने जो भाव प्रतिपादित किया है, वह मैंने तुम्हें सुनाया है । **(चौथा वर्ग समाप्त)**

Maxim 3 :

After it, as described before, like *Gautama Kumāra*, a brilliant son took birth. He was named *Jāli Kumāra*. When he attained youth he was wedded to fifty young girls and he got fifty-fifty *karoḍa* (five hundred millions) gold coins each etc., as wedding-gift. Further description should be known thus in brief–

Once *Bhagawāna Ariṣṭanemi* came there. Listening his sermon *Jāli Kumāra* became apathetic to the world. With permission of his parents, he accepted consecration, before *Arihanta, Ariṣṭanemi*. He studied twelve *angas* (holy scriptures) and practised sage-consecration upto sixteen years. Then like *Gautama kumāra*, he accepted *saṁlekhanā* and practised *saṁthārā* for one month on mount *Śatruñjaya* and exhausting all *karmas* beatified.

Like *Jāli Kumāra* the descriptions of 2. *Mayāli Kumāra* 3. *Uvayāli Kumāra* 4. *Puruṣasena Kumāra* and 5. *Vārisena Kumāra* should be known. All these were the sons of king *Vasudeva* and queen *Dhāriṇī*.

In the same way the life-character of sixth *Pradyumna Kumāra* should be known. Excepting; his father was *Śrī Kṛṣṇa* and mother was *Rukmiṇī*.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

The same is the life description of seventh *Śāmba Kumāra*. Excepting; his father was *Śrī Kṛṣṇa* and mother was *Jāmbavatī*.

Similar is the life-description of *Aniruddha kumāra* in eighth chapter. Excepting; his father was *Pradyumna Kumāra* and mother was *Vaidarbhī*.

Similar is the description of *Satyanemi* in ninth chapter and *Dṛḍhanemi* in tenth chapter. Excepting; father of these both was *Samudravijaya* and mother was *Śivādevī*. As such, these both were the younger brothers of *Bhagawāna Ariṣṭanemi*.

All these chapters are alike in description. This is the substance of fourth section.

Śrī Sudharmā Swāmī said–Thus O *Jambū* ! *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra* has expressed the subject matter of fourth section containing ten chapters, which I have told you.

[Fourth section concluded]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचम वर्ग

सूत्र १ :

जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेण चउत्थस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते । पंचमस्स णं भंते ! वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं पंचमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता । तं जहा–

पउमावई[१] य गोरी,[२] गंधारी[३] लक्खणा[४] सुसीमा[५] य ।

जंबवई[६] सच्चभामा[६] रुप्पिणी[८] मूलसिरी[९] मूलदत्ता[१०] य ॥

जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं पंचमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता । पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

सूत्र १ :

आर्य जम्बू–हे भगवन् ! श्रमण यावत् मुक्ति को प्राप्त प्रभु ने चौथे वर्ग का यह अर्थ वर्णन किया है, तो अन्तकृद्दशा के पंचम वर्ग का क्या भाव प्रतिपादन किया है ?

आर्य सुधर्मा–हे जम्बू ! इस प्रकार निश्चय ही श्रमण भगवान ने पंचम वर्ग के दस अध्ययन बताये हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं– १. पद्मावती, २. गौरी, ३. गांधारी, ४. लक्ष्मणा, ५, सुसीमा देवी, ६, जाम्बवती, ७, सत्यभामा, ८. रुक्मिणी, ९. मूलश्री, १०. मूलदत्ता ।

आर्य जम्बू– हे भगवन् मोक्ष प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने पंचम वर्ग के दस अध्ययन कहे हैं, तो प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

FIFTH SECTION

[illegible]axim 1 :

Ārya Jambū asked–O *Bhagawan* ! If later salvated *Bhagawāna* thus described subject matter of fourth section then what subject matter did he preach in *Antakṛddaśā's* fifth section ?

Ārya Sudharmā told–O *Jambū* ! Definitely, *Śramaṇa Bhagawāna* preached ten chapters of fifth section, the names of these chapters are–

1. Padmāvatī 2. Gaurī 3. Gāndhārī 4. Lakṣamaṇā 5. Susīmā Devī 6. Jāmbavatī 7. Satyabhāmā 8. Rukmiṇī 9. Mūlaśrī and 10 Mūladattā.

Ārya Jambū asked–O *Bhagawan* ! If salvated *Śramaṇa Bhagawāna Mahavīra* had narrated ten chapters of fifth section, then what subject matter did he describe in first chapter ?

प्रथम अध्ययन

पद्मावती

सूत्र २ :

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई णामं णयरी होत्था, जहा पढमे, जाव कण्हे वासुदेवे आहेवच्चं जाव विहरइ ।

तस्स णं कण्हस्स वासुदेवस्स पउमावई णामं देवी होत्था, वण्णओ ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी समोसढे जाव विहरइ ।

कण्हे निग्गए जाव पज्जुवासइ ।

तएणं सा पउमावई देवी इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणी हट्ठ-तुट्ठा-हि जहा, देवई जाव पज्जुवासइ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हस्स वासुदेवस्स पउमावईए य जाव धम्मकहा । परिसा पडिगया ।

सूत्र २ :

श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा–हे जम्बू ! उस काल उस समय में द्वारका नाम की नगरी थी, जिसका वर्णन प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन में किया जा चुका है । यावत् श्रीकृष्ण वासुदेव वहां राज्य कर रहे थे ।

श्रीकृष्ण की पद्मावती नाम की महारानी थी, जो अत्यन्त सुकुमार, सुरूपा और वर्णन करने योग्य थी ।

उस काल उस समय में अरिहंत अरिष्टनेमि संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए द्वारका नगरी में पधारे । श्री कृष्ण वंदन नमस्कार करने हेतु अपने राजप्रासाद से निकलकर प्रभु के पास पहुँचे यावत् प्रभु अरिष्टनेमि की पर्युपासना करने लगे ।

उस समय पद्मावती ने भगवान् के आने की खबर सुनी तो वह अत्यन्त प्रसन्न हुई । वह भी देवकी महारानी के समान धर्मरथ पर आरूढ़ होकर भगवान को वंदना करने गई । अर्हत् अरिष्टनेमि की पर्युपासना करने लगी ।

अरिहंत अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव, पद्मावती देवी और जन परिषद् को धर्मोपदेश दिया, धर्मकथा कही। धर्मोपदेश एवं धर्मकथा सुनकर परिषदा अपने-अपने घर लौट गई ।

Chapter 1

Padmāvati

Maxim 2 :

Sudharmā Swāmī uttered–O *Jambū* ! At that time and at that period, there was a city named *Dwārakā*. Its description has been given in the first chapter of first section, until that *Śrī Kṛṣṇa Vāsudeva* ruled over it.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Padmāvatī was his queen. She was very tender and beautiful. So she was describable.

At that time and at that period, *Arihanta Aristanemi* enshining his soul by penance and restraint came to *Dwārakā*. For bowing down and worshipping him *Śrī Kṛṣṇa* started from his royal palace and reaching near *Bhagawāna* began to worship him.

At that time when queen *Padmāvatī* heard the auspicious news of arrival of *Bhagawāna*, she became very glad. She too, like queen *Devakī*, riding on religious chariot, went to bow down to *Bhagawāna*. She worshiped *Arhat Aristanemi*. *Arihanta Aristanemi* preached religious sermon to *Kṛṣṇa Vāsudeva*, *Padmāvatī Devī* and entire congregation. He also told religious tales. Hearing religious sermon, tales and doctrines people went back to their home.

सूत्र ३ :

तए णं कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं वंदइ णमंसइ । वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–

इमीसे णं भंते ! बारवईए णयरीए दुवालसजोयणआयामाए, णवजोयण-वित्थिण्णाए जाव पच्चक्खं देवलोगभूयाए किं मूलाए विणासे भविस्सइ ?

'कण्हाइ' ! अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी–

एवं खलु कण्हा ! इमीसे बारवईए णयरीए दुवालसजोयणआयामाए णवजोयण-वित्थिण्णाए जाव पच्चक्खं देवलोगभूयाए सुर-ग्गि-दीवायण मूलाए विणासे भविस्सइ ।

द्वारका-विनाश का कारण

सूत्र ३ :

तब कृष्ण वासुदेव ने भगवान् अरिष्टनेमि को वंदन नमस्कार करके उनसे इस प्रकार प्रश्न किया–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हे भगवन् ! बारह योजन लम्बी और नव योजन चौड़ी यावत् साक्षात् देवलोक के समान इस द्वारका नगरी का विनाश किस कारण से होगा ?

•श्रीकृष्ण आदि को सम्बोधित करते हुए अरिहंत अरिष्टनेमि ने इस प्रकार उत्तर दिया--

हे कृष्ण ! निश्चय ही बारह योजन लम्बी और नव योजन चौड़ी यावत् प्रत्यक्ष देवलोक के समान इस द्वारका नगरी का विनाश मदिरा (सुरा), अग्नि और द्वैपायन ऋषि के कोप के कारण से होगा ।

Causes of Dwārakā-destruction

Maxim 3 :

Then bowing down to and worshipping *Bhagawāna Aristanemi*, *Vāsudeva Krsna* asked him a question–

O *Bhagawan* ! How twelve *yojana* long and nine *yojana* wide this *Dwārakā* city that is like heaven, will be destroyed ?

Arihanta Aristanemi thus replied unto *Krsna Vāsudeva*– O *Krsna* ! Definitely, twelve *yojana* long and nine *yojana* wide this *Dwārakā* city that is like heaven will be destroyed by wine, fire and anger of *Dwaipāyana risi* (penancer); *i.e.* these three would be the causes of *Dwārakā's* destruction.

सूत्र ४ :

तए णं कण्हस्स वासुदेवस्स अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा अयमेयारूवे अज्झत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पण्णे–

धण्णा णं ते जालि-मयालि-उवयालि-पुरिससेण-वारिसेण-पज्जुण्ण-संब-अणिरुद्ध-दढणेमि-सच्चणेमिप्पभिइओ कुमारा जे णं चिच्चा हिरण्णं जाव परिभाइत्ता अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतियं मुण्डा जाव पव्वइया ।

अहण्णं अधण्णे अकयपुण्णे रज्जे य जाव अंतेउरे य माणुस्सएसु य कामभोगेसु मुच्छिए । णो संचाएमि अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए जाव पव्वइत्तए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कण्हाइ ! अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी–

से नूणं कण्हा ! तव अयं अज्झत्थिए समुप्पण्णे–'धण्णा णं ते जालि जाव पव्वइत्तए।'

से नूणं कण्हा ! अयमट्ठे समट्ठे ?

हंता अत्थि ।

सूत्र ४ :

अर्हन्त अरिष्टनेमि के श्रीमुख से द्वारका नगरी के विनाश का कारण जानकर श्रीकृष्ण वासुदेव के मन में ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि "वे जालि, मयालि, उवयालि, पुरुषसेन, वारिसेन, प्रद्युम्न, शाम्ब, अनिरुद्ध, दृढ़नेमि और सत्यनेमि प्रभृति कुमार धन्य हैं, जो हिरण्यादि (स्वर्ण-रजत-रत्नादि) संपदा और परिजनों को छोड़कर यावत् प्रभु अरिष्टनेमि के पास मुण्डित हुए यावत् प्रव्रजित हो गये। मैं अधन्य हूँ, अकृत-पुण्य हूँ, इसलिए कि राज्य, अन्तःपुर और मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों में मूर्च्छित हूँ, इन्हें त्यागकर भगवान् अरिष्टनेमि के पास प्रव्रज्या लेने में समर्थ नहीं हूँ, ले नहीं पा रहा हूँ ।"

भगवान अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव के मन में आये इन विचारों को जानकर आर्त्तध्यान में डूबे हुए कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा–

"निश्चय ही हे कृष्ण ! तुम्हारे मन में ऐसा विचार उत्पन्न हुआ–वे जालि मयालि आदि कुमार धन्य हैं, जिन्होंने धन, वैभव एवं स्वजनों को त्यागकर मुनिव्रत ग्रहण किया और मैं अधन्य हूँ, अकृतपुण्य हूँ जो राज्य, अन्तःपुर और मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों में ही गृद्ध हूँ । मैं प्रभु के पास प्रव्रज्या नहीं ले सकता ।"

हे कृष्ण ! क्या यह बात सही है ?

श्रीकृष्ण–हाँ भगवन् ! आपने जो कहा वह सभी यथार्थ है । सत्य है ।

Maxim 4 :

Hearing the impending causes of *Dwārakā* city's destruction from *Arihanta Aristanemi*, such thoughts

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

aroused in the mind of *Kṛṣṇa Vāsudeva*–"Blessed are *Jāli, Mayāli, Uvayāli, Puruṣasena, Vārisena, Pradyumna, Śāmba, Aniruddha, Dṛḍhnemi, Satyanemi* and other princes, who giving up gold, silver, jewels etc. wealth and family members consecrated near *Bhagawāna Ariṣṭanemi*, with shaven heads. I am unblessed and without meritorious deeds, because I am deep drowned in kingdom, harem, and passionate pleasures of man. I am not capable to give up those pleasures and to accept consecration near *Bhagawāna Ariṣṭanemi* and so I can not enter the sage-order.

Bhagawāna Ariṣṭanemi being aware of the mental thoughts of *Kṛṣṇa Vāsudeva* and knowing him deep in inauspicious feelings said thus to *Kṛṣṇa Vāsudeva*–

Definitely O *Kṛṣṇa* ! Such thoughts aroused in your mind that blessed are *Jāli, Mayāli* and other princes, who entered the sage order renouncing welath, fortune and family members. I am unblessed, without meritorious deeds as I am deeply drowned in kingdom, harem, passionate pleasures relating to man. I cannot accept consecration near *Bhagawāna*.

O *Kṛṣṇa* ! Is it not true ?

Śrī Kṛṣṇa replied–Yes *Bhagawan* ! What you have told, is a fact and true.

सूत्र ५ :

तं णो खलु कण्हा ! एवं भूयं वा भव्वं वा भविस्सइ वा जण्णं वासुदेवा चइत्ता हिरण्णं जाव पव्वइस्संति ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ 'ण एवं भूयं वा जाव पव्वइस्संति' ?

कण्हाइ ! अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी–एवं खलु कण्हा ! सव्वे वि य णं वासुदेवा पुव्वभवे नियाणकडा से एएणट्ठेणं कण्हा ! एवं वुच्चइ ण एवं भूयं जाव पव्वइस्संति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[redacted] ५ :

प्रभु ने कहा–तो हे कृष्ण ! ऐसा कभी हुआ नहीं, होता नहीं, और होगा भी नहीं कि वासुदेव (अपने इसी भव में) धन-धान्य, स्वर्ण, राज्य आदि सम्पत्ति को त्यागकर मुनिव्रत ले लें । वासुदेव दीक्षा लेते नहीं, ली नहीं, एवं भविष्य में कभी लेंगे भी नहीं ।

श्रीकृष्ण ने पूछा–भगवन् ! ऐसा क्यों, किसलिए कहा जाता है कि ऐसा कभी हुआ नहीं, होता नहीं, और होगा नहीं ।

तब अर्हत् अरिष्टनेमि ने कृष्ण-वासुदेव को इस प्रकार उत्तर दिया–हे कृष्ण ! निश्चय ही सभी वासुदेव पूर्वभव में निदान-कृत (नियाणा करने वाले) होते हैं, इसलिये मैं ऐसा कहता हूँ कि ऐसा कभी हुआ नहीं, होता नहीं और होगा भी नहीं कि वासुदेव कभी अपनी सम्पत्ति को छोड़कर प्रव्रज्या अंगीकार करें ।

Maxim 5 :

Bhagawāna said–Then O *Kṛṣṇa* ! It has never happened, nor is and never will be that any *Vāsudeva* (ruler of three regions of India) in his present birth, giving up cattle and agriculture, gold, kingdom and wealth, may accept sagehood. *Vāsudeva* never accepted consecration in past, cannot accept in present and will not accept in future.

Śrī Kṛṣṇa asked–*Bhagawan* ! Why and what for it is said that it never happened in past, nor can happen in present and never will happen in future ?

Then *Arhat Ariṣṭanemi* replied to *Śrī Kṛṣṇa Vāsudeva* in these words–O *Kṛṣṇa* ! all the *Vāsudevas* in their previous births have made a sinful strong volition. Therefore I say that it never happened in past, can not happen in present and never will happen in future that any *Vāsudeva* may accept consecration giving up all his wealth etc.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन

जैन साहित्य में श्रीकृष्ण को कृष्ण वासुदेव कहा जाता है । वासुदेव शब्द का व्याकरण के आधार पर अर्थ होता है–"**वसुदेवस्य अपत्यं पुमान् वासुदेवः ।**" वसुदेव के पुत्र को वासुदेव कहते हैं । कृष्ण के पिता का नाम वसुदेव था, अतः इनको वासुदेव कहते हैं । वासुदेव शब्द सामान्य रूप से कृष्ण का वाचक है–कृष्ण का दूसरा नाम है ।

परन्तु वासुदेव का उक्त अर्थ प्रचलित होने पर भी यह शब्द जैन-दर्शन का पारिभाषिक शब्द बन गया है । अतएव सभी अर्धचक्रवर्तियों के लिए वासुदेव शब्द का प्रयोग किया जाता है । जैन परम्परा के अनुसार इस अवसर्पिणी में वासुदेव नौ हुए हैं–१. त्रिपृष्ठ, २. द्विपृष्ठ, ३. स्वयंभू, ४. पुरुषोत्तम, ५. पुरुषसिंह, ६. पुरुषपुण्डरीक, ७. दत्त, ८. नारायण (लक्ष्मण), ९. कृष्ण । इनमें कृष्ण अंतिम वासुदेव हैं ।

वासुदेव का पारिभाषिक अर्थ है–जो सात रत्नों, छह खण्डों में से तीन खण्डों का अधिपति हो तथा जो अनेकविध ऋद्धियों से सम्पन्न हो। जैन-दृष्टि से वासुदेव प्रतिवासुदेव को जीतकर एवं मारकर तीन खण्ड पर एकछत्र राज्य करते हैं । इसके अतिरिक्त २८ लब्धियों में से वासुदेव लब्धि भी एक लब्धि मानी गई है । इस पद का प्राप्त होना वासुदेव-लब्धि का फल है ।

वासुदेव में महान बल होता है । इस बल का उपमा द्वारा वर्णन करते हुए जैनाचार्यों ने कहा है–कुँए के किनारे बैठे हुए और भोजन करते हुए वासुदेव को जंजीरों से बाँध कर यदि चतुरंगिणी सेना सहित सोलह हजार राजा मिलकर खींचने लगें तो भी वे उन्हें खींच नहीं सकते, किन्तु उसी जंजीर को बाएँ हाथ से पकड़कर वासुदेव अपनी ओर उन्हें आसानी से खींच सकते हैं।

जैन आगमों में जिन श्री कृष्ण का उल्लेख है वे ऐसे ही वासुदेव हैं, वासुदेव-लब्धि से सम्पन्न हैं ।

● **नियाणकडा–(निदानकृत)** निदान जैन परम्परा का एक विशेष पारिभाषिक शब्द है । मोहनीय कर्म के उदय से कामभोगों की इच्छा होने पर साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका आदि का अपने चित्त में संकल्प कर लेना कि मेरी तपस्या से मुझे अमुक फल की प्राप्ति हो, उसे निदान कहते हैं । जन भाषा में इसे नियाणा कहते हैं । निदान कल्याण-साधक नहीं । जो व्यक्ति निदान करके मरता है, उसका फल प्राप्त करने पर भी उसे निर्वाण की प्राप्ति नहीं हो सकती । वासुदेव की पदवी पूर्वभव में किये गये निदान का फल होता है, अतः वासुदेव के भव में कोई जीव संसार त्यागकर साधु नहीं बन सकता ।

(निदान के विषय में विस्तृत वर्णन अन्तकृद्दशा महिमा में देखें)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Elucidation

In Jain literature *Śrī Kṛṣṇa* is called *Kṛṣṇa Vāsudeva*. According to grammatical basis the meaning of word *Vāsudeva* is–the son of *Vasudeva* (*Vasudevasya apatyaṁ pumān Vāsudevaḥ*). The name of *Kṛṣṇa's* father was *Vasudeva*. So he is called *Vāsudeva* word *Vāsudeva* generally denotes *Kṛṣṇa*. Really it is *Kṛṣṇa's* other name.

Though this meaning of word *Vāsudeva* is generally in vogue, yet this word became technical in Jainology. Hence *Vāsudeva* word is used for all monarchs or sovereings of half the land (rulers of three regions of India). According to Jain tradition, there became nine *Vāsudevas* in this *Avasarpiṇī kāla* (time era). The names of these are–1. *Tripṛṣṭha*, 2. *Dwipṛṣṭha*, 3. *Swayambhū*, 4. *Puruṣottama*, 5. *Puruṣasingha*, 6. *Puruṣapuṇḍarīka* 7. *Datta*, 8. *Nārāyaṇa* (*Laxmaṇa*) and 9. *Kṛṣṇa*. Among all these *Kṛṣṇa* is the last *Vāsudeva*.

According to Jain tradition *Vāsudeva* is an appellation. As such, this technical term indicates the person who has seven gems, the ruler of three regions out of six regions (of India) and has many occult powers. According to Jain-view, *Vāsudeva*, conquering and killing *Prati-Vāsudeva*, rules over three regions as the only monarch.

Besides this, among twenty eight high occult powers, *Vāsudeva* speciality is also considered as special occult power. To obtain this dignity is the fruition of *Vāsudeva* occult power.

Vāsudeva has enormous strength and power. *Jainācāryas* have described this strength and power by a simile–Sitting on the bank of a well and eating food there, the *Vāsudeva*, if binded by iron chains if pulled by sixteen thousand rulers with their fourfold army using their full power cannot pull him; but if *Vāsudeva* wishes he can pull all of them towards himself easily by his only left hand, with the medium of the same iron chain.

The description of *Śrī Kṛṣṇa* that we find in Jain holy scripture (*āgamas*) is opulent with the same *Vāsudeva* occult power.

■ **Niyāṇa kaḍā**–*Nidānakṛta–Nidāna* is a special technical word in Jain tradition. Due to the rise of *infatuation* relating *karma* when the sage, nun, laymen or lay women make a sinful strong volition in heart that as the fruition of the austerity I must obtain such and such thing, it is called sinful resolution (*Nidāna*). Generally people term it in folk language as *niyāṇā*. Volition never brings bliss.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

The person, who dies making a sinful resolution, even after getting the fruit according to that resolution, he cannot attain salvation. The appellation of *Vāsudeva* is the fruit of sinful strong volition made in previous birth. Hence, in the life span of *Vāsudeva* no person can enter monk-order, giving up worldly pleasures.

For detailed study of sinful strong volition (*nidāna*) readers are suggested to see the book *Antakṛddaśā Mahimā*.

सूत्र ६ :

तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं एवं वयासी—अहं णं भंते ! इओ कालमासे कालं किच्चा कहिं गमिस्सामि ? कहिं उववज्जिस्सामि ?

तए णं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु कण्हा ! तुमं बारवईए णयरीए सुर-ग्गि-दीवायण—कोवणिदड्ढाए अम्मा-पिइ-णियग-विप्पहूणे रामेण बलदेवेण सद्धिं दाहिणवेयालिं अभिमुहे जोहिट्ठिल्लपामोक्खाणं पंचण्हं पंडवाणं पंडुरायपुत्ताणं पासं पंडुमहुरं संपत्थिए कोसंबवणकाणणे णग्गोहवर-पायवस्स अहे पुढविसिलापट्टए पीयवत्थपच्छाइयसरीरे जराकुमारेणं तिक्खेणं कोदण्ड-विप्पमुक्केणं इसुणा वामे पाये विद्धे समाणे कालमासे कालं किच्चा तच्चाए वालुयप्पभाए पुढवीए जाव उववज्जिहिसि ।

सूत्र ६ :

तब कृष्ण वासुदेव अरिहन्त अरिष्टनेमि से इस प्रकार बोले—हे भगवन् ! यहाँ से काल के समय काल करके मैं कहां जाऊँगा, कहां उत्पन्न होऊँगा ?

इस पर अर्हन्त अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—हे कृष्ण ! सुरा, अग्नि और द्वैपायन के कोप के कारण इस द्वारका नगरी के जलकर नष्ट हो जाने पर और अपने माता-पिता एवं स्वजनों का वियोग हो जाने पर तुम राम-बलदेव के साथ दक्षिणी समुद्र तट की ओर पाण्डुराजा के पुत्र युधिष्ठिर प्रमुख (भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव) इन पांचों पाण्डवों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के समीप पाण्डु मथुरा की ओर जाओगे । रास्ते में विश्राम लेने के लिये कौशाम्ब वन उद्यान में अत्यन्त विशाल वटवृक्ष के नीचे, पृथ्वी शिलापट्ट पर, पीताम्बर ओढ़कर तुम सो जाओगे । उस समय (मृग के भ्रम में) जराकुमार द्वारा चलाया गया तीक्ष्ण तीर तुम्हारे बायें पैर में विद्ध होने से तुम पार्थिव शरीर का त्याग करोगे ।

Maxim 6 :

Then *Kṛṣṇa Vāsudeva* spoke thus to *Arihanta Ariṣṭanemi*–O *Bhagawan* ! Leaving this body at the time of death, where shall I go ? Where shall I take birth ?

Arihanta Ariṣṭanemi said thus to *Kṛṣṇa Vāsudeva*–O *Kṛṣṇa* ! *Dwārakā* city will be burnt and destroyed due to the causes–wine, fire and wrath of *Dwaipāyana* and at the loss of your parents and family members you will also be bereaved. Then you with *Rāma–Baladeva* will start along southern coast of sea towards the city of *Pāṇḍumathurā*, to go to *Yudhiṣṭhira* (elder) (*Bhīma, Arjuna, Nakula, Sahadeva*). the five sons of king *Pāṇḍu*–five *Pāṇḍavas*. In between you will reach *Kośāmbī* forest. For taking rest you will sleep under a huge banyan tree, and on a stone-rock covering your body with a yellow robe. At that time, you will be pierced in the left foot by a sharp arrow released from the bow (in the delusion of a deer) of *Jarā Kumāra*. Thus you will leave this body.

विवेचन

द्वारका विनाश एवं श्रीकृष्ण के देहत्याग का वृत्तान्त

प्रचलित कथा के अनुसार कहा जाता है कि मदिरा को द्वारका विनाश का कारण जान कर कृष्ण वासुदेव ने सम्पूर्ण द्वारका में मद्य-निषेध कर दिया तथा बची-खुची मदिरा नगर के बाहर फिंकवा दी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक बार कुछ यादव कुमार घोड़े लेकर घूमने गये । प्यास लगी तो उन्होंने गड्ढे में पड़ी हुई शराब पी ली। वहीं द्वैपायन ऋषि तप युक्त ध्यान कर रहे थे । मदिरा के नशे में उन्मत्त यादव कुमार उनके ऊपर घोड़े कुदाने लगे, तथा कहीं एक मरा सर्प पड़ा था, उन्होंने उसे फेंककर ऋषि के गले में डाल दिया और ऋषि को प्रताड़ित किया ।

इस अभद्रतापूर्ण दुर्व्यवहार से द्वैपायन ऋषि क्रोधित हो गये । उन्होंने क्रोधावेश में निदान कर लिया कि "यदि मेरी तपस्या का कोई फल हो तो मैं द्वारका नगरी को जलाकर भस्म कर दूँगा और सभी यादवों का विनाश कर डालूँगा ।"

श्रीकृष्ण वासुदेव को ज्ञात हुआ तो उन्होंने ऋषि से क्षमा मांगी और निदान त्यागने की प्रार्थना की, परन्तु ऋषि ने निदान नहीं त्यागा, केवल इतना ही कहा कि "तुम दोनों भाई वच जाओगे ।"

श्रीकृष्ण वासुदेव ने इस विनाश से वचने का उपाय पूछा तो एक ज्ञानी मुनि ने वताया—जव तक द्वारका में आयम्विल तप होता रहेगा, कोई भी देव-दानव इसका विनाश नहीं कर सकेगा ।

श्रीकृष्ण वासुदेव ने पूरे नगर में ऐसी समुचित व्यवस्था कर दी कि प्रतिदिन आयम्बिल तप चलता ही रहे । निदानानुसार द्वैपायन ऋषि अग्निकुमार जाति के देव वना । वह पूर्व वैर का स्मरण करके द्वारका-दाह का अवसर देखने लगा, परन्तु प्रतिदिन की आयंबिल तपस्या के प्रभाव के सामने उसका कोई जोर नहीं चलता था । वह द्वारका नगरी को जलाने में असफल रहा, तथापि उसने प्रयत्न नहीं छोड़ा, लगातार वारह वर्षों तक उसका यह प्रयत्न चलता रहा ।

बारह वर्षों के वाद द्वारका के कुछ लोग सोचने लगे—तपस्या करते-करते वर्षों व्यतीत हो गए, अब द्वैपायन (अग्निकुमार) हमारा क्या विगाड़ सकता है ? इसके अतिरिक्त कुछ लोग यह भी सोच रहे थे कि द्वारका के सभी लोग तो आयंबिल कर ही रहे हैं, यदि हम लोग न भी करें तो इससे क्या अन्तर पड़ता है ?

समय की बात ही समझिए कि द्वारका में एक दिन ऐसा आ गया जव किसी ने भी आयम्बिल तप नहीं किया । व्यक्तिगत स्वार्थ एवं प्रमाद के कारण संकट-मोचक आयम्बिल तप से सभी विमुख हो गये ।

अग्निकुमार द्वैपायन देव के लिये इससे वढ़कर और कौन-सा अवसर हो सकता था । उसने द्वारका में अग्नि-वर्षा प्रारम्भ कर दी । चारों ओर भयंकर शब्द होने लगे, जोर की आंधी चलने लगी, भूचाल से मकान धराशायी होने लगे, अग्नि की धधकती ज्वालाओं ने सारी द्वारका को अपनी लपेट में ले लिया । श्रीकृष्ण वासुदेव ने अग्नि शान्त करने के अनेकों प्रयत्न किए, परन्तु कर्मों का ऐसा प्रकोप चल रहा था कि आग पर डाला जाने वाला पानी तेल का काम कर रहा था । पानी डालने से आग शान्त होती है, पर उस समय ज्यों-ज्यों पानी डाला जाता था, त्यों-त्यों अग्नि और अधिक भड़कती थी । अग्नि की भीषण ज्वालाएं मानों गगन को भी भस्म करने का प्रयास कर रही थीं ।

कृष्ण वासुदेव, वलराम सव निराश थे । उनके देखते-देखते द्वारका जल गई, वे उसे वचा नहीं सके ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रक्रम २१ :

अग्निकुमार (द्वैपायन) द्वारा द्वारका विनाश

(भगवान अरिष्टनेमि द्वारा कथित भविष्य का दृश्य)

अग्निकुमार (द्वैपायन) ने द्वारका में अग्निवर्षा की। राजमहल व अन्य भवन आदि धू-धू कर जल उठे। वासुदेव श्रीकृष्ण व बलराम ने माता-पिता को जलते महलों से निकालकर रथ में बैठाया। अश्वशाला जल जाने से घोड़े भी नहीं मिले तो दोनों भाई स्वयं ही रथ में जुत गए। रथ लेकर नगर के सिंहद्वार से जैसे ही बाहर निकले कि जलता हुआ द्वार टूटकर गिर पड़ा। तत्काल वसुदेव-देवकी की मृत्यु हो गई। यह अत्यन्त कारुणिक दृश्य देखकर दोनों भाई व्यथित हो गये।

(अन्य ग्रन्थों के अनुसार) (वर्ग ३/अध्य. ८)

Illustration No. 21 :

Destruction of *Dwārakā* by fiery god *(Dwaipayanā)*

(The scene which was foretold by Bhagawāna Aristanemi)

Fiery god (*Dwaipāyana*) rained the flames of fire on *Dwārakā* city. Royal palace and other buildings began to burn. *Vāsudeva Śrī Kṛṣṇa* and *Balarāma* taking out parents from burning palace, made them to sit down in chariot. They could not get horses then both the brothers themselves began to draw chariot like horses. As soon as this stepped out from the main gate of the city, the burning main gate fell down. The same moment *Vasudeva* and *Devakī* died. Seeing this pitiable scene both the brothers felt much worried.

(According to other scriptures) (Sec. 3/Ch. 8)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वारका के दग्ध हो जाने पर कृष्ण वासुदेव और बलराम वहां से जाने की तैयारी करने लगे। इसी बात को "सुर-दीवायण-कोवनिदड्ढाए" इस पद से अभिव्यक्त किया है।

आगम का दूसरा वाक्य है–"**अम्मा-पिइनियग-विप्पहूणे**"–अम्बापितृ-निजकविप्रहीण :–अर्थात् माता-पिता और अपने सम्बन्धियों से रहित। कथाकारों का कहना है कि जब द्वारका नगरी जल रही थी तब कृष्ण वासुदेव और उनके बड़े भाई बलराम दोनों आग बुझाने की चेष्टा कर रहे थे, पर जब वे सफल नहीं हुए तब अपने महलों में पहुँचे और अपने माता-पिता को बचाने का प्रयत्न करने लगे। बड़ी कठिनाई से माता-पिता को महल से निकालने में सफल हुए। इनका विचार था कि माता-पिता को रथ में बिठा कर किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दिया जाए। अपने विचार की पूर्ति के लिए श्रीकृष्ण जब अश्वशाला में पहुँचे तो देखते हैं, अश्वशाला नष्ट हो चुकी है। वे वहां से चले, रथशाला में आए। रथशाला में आग लगी हुई थी, किंतु एक रथ उन्हें सुरक्षित मिल गया। वे तत्काल उसी को बाहर ले आये, उस पर माता-पिता को बैठाया। घोड़ों के स्थान पर दोनों भाई स्वयं जुत गये पर जैसे ही सिंहद्वार को पार करने लगे और रथ का जुआ और दोनों भाई द्वार से बाहर निकले ही थे कि तत्काल द्वार का ऊपरी भाग टूट पड़ा और माता-पिता उसी के नीचे दब गए। उनका देहान्त हो गया। वासुदेव कृष्ण तथा बलराम से यह मार्मिक भयंकर दृश्य देखा नहीं गया। वे माता-पिता के वियोग से अधीर हो उठे। जैसे-तैसे उन्होंने अपने मन को संभाला, माता-पिता तथा अन्य सम्बन्धियों के वियोग से उत्पन्न महान् संताप को धैर्यपूर्वक सहन किया।

द्वारका नगरी के दग्ध हो जाने पर कृष्ण बड़े चिन्तित थे। उन्होंने बलराम से कहा–औरों को शरण देने वाला कृष्ण आज किस की शरण में जाये ?

इसके उत्तर में बलराम कहने लगे–पाण्डवों की आपने सदा सहायता की है, उन्हीं के पास चलना ठीक है।

उस समय पाण्डव हस्तिनापुर से निर्वासित होकर पाण्डुमथुरा में रह रहे थे। उनके निर्वासन की कथा ज्ञाताधर्मकथा से जान लेनी चाहिए।

बलराम की बात सुनकर कृष्ण बोले–जिनको सहारा दिया हो, उनसे सहारा लेना लज्जास्पद है, फिर सुभद्रा (अर्जुन की पत्नी) अपनी बहन है। बहन के घर रहना भी शोभास्पद नहीं है।

कृष्ण की तर्कसंगत बात सुनकर बलराम कहने लगे–भाई ! कुन्ती तो अपनी बुआ है, बुआ के घर जाने में अपमान की कोई बात नहीं।

अन्त में कृष्ण की अनिच्छा होने पर भी बलराम कृष्ण को साथ लेकर दक्षिण समुद्र तट पर बसी पांडवों की राजधानी पाण्डुमथुरा की ओर चल दिए।

सूत्रकार ने प्रस्तुत सूत्र में जो "**दाहिणवेयालिं अभिमुहे पंडुमहुरं संपत्थिए**" ये पद दिये हैं ये उक्त कथानक की ओर ही संकेत कर रहे हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"जराकुमारेणं"–का अर्थ है जराकुमार ने । जराकुमार यादववंशीय एक राजकुमार था, जो वासुदेव श्रीकृष्ण का भाई था । भगवान् अरिष्टनेमि ने भविष्यवाणी करते हुए कहा था कि जराकुमार के बाण से वासुदेव की मृत्यु होगी। यह जानकर जराकुमार को बड़ा दुःख हुआ। उसने निश्चय किया कि मैं द्वारका छोड़कर दूर कोशाम्रवन में चला जाता हूँ, वहीं जीवन के शेष क्षण व्यतीत कर दूँगा । इससे श्रीकृष्ण की मृत्यु का कारण बनने से बच जाऊँगा ।

अपने निश्चय के अनुसार वह कोशाम्रवन में रहने लगा था । पर भवितव्यता को कौन टाल सकता था ? द्वारका के जल जाने पर श्रीकृष्ण अपने बड़े भाई बलराम के साथ पाण्डुमथुरा जा रहे थे। रास्ते में कोशाम्रवन आया । श्रीकृष्ण को प्यास लगी, बलराम पानी लेने चले गये । तत्पश्चात् श्रीकृष्ण एक वृक्ष के नीचे पीत पस्त्र ओढ़कर विश्राम करने लगे । उनका एक पांव दूसरे पांव पर रखा हुआ था ।

वासुदेव के पांव में पद्म-मणि होती है । दूर से जैसे मृग की आँख चमकती है ठीक उसी प्रकार श्रीकृष्ण के पांव में पद्म-मणि चमक रही थी ।

उधर जराकुमार उसी वन में भ्रमण कर रहा था । उसे किसी शिकार की खोज थी । जब वह वट वृक्ष के निकट आया तो उसे दूर से ऐसा लगा जैसे कोई मृग बैठा है । उसने तत्काल धनुष पर बाण चढ़ाया, और छोड़ दिया । बाण लगते ही श्रीकृष्ण छटपटा उठे । उनके मुख से एक चीत्कार निकली । उन्हें ध्यान आया कि बाण कहीं जराकुमार का तो नहीं ? उधर चीत्कार सुनते ही जराकुमार भी दौड़कर आया, देखा, फूट-फूटकर रोने लगा । जराकुमार को सामने देखकर श्रीकृष्ण ने कहा–

"जराकुमार ! तुम्हारा इसमें क्या दोष है ? भवितव्यता ही ऐसी थी। भगवान् अरिष्टनेमि की भविष्यवाणी अन्यथा कैसे हो सकती थी ? बलराम के आने का समय हो चुका है, अतः तुम यहां से भाग जाओ, अन्यथा बलराम के हाथों से तुम बच नहीं सकोगे ।"

जिस अधम कार्य से जराकुमार बचना चाहता था, जिस पाप से बचने के लिए उसने द्वारका नगरी को छोड़कर कोशाम्रवन का वास अंगीकार किया था, उसी पाप को अपने हाथों से होते देखकर उसका हृदय रो पड़ा । पर क्या कर सकता था ?

बलराम के आने तक श्रीकृष्ण देह त्याग कर चुके थे ।

Elucidation

Description of Dwārakā-Destruction and Body-releasement by Śrī Kṛṣṇa

According to prevailing narrative, it is said that knowing wine as the cause of *Dwārakā*-destruction *Śrī Kṛṣṇa* announced wine-prohibition in whole

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रक्रम २२ :

कोशाम्र वन में श्रीकृष्ण

(श्रीकृष्ण अवसान का दृश्य)

दृश्य १—द्वारका दग्ध हो जाने पर अत्यन्त खिन्न हुए बलराम-श्रीकृष्ण दक्षिण समुद्रतट पर बसी पाँडु-मथुरा की ओर जाते हुए मार्ग में कोशाम्र वन में पहुँचे। विशाल वट वृक्ष के नीचे विश्राम करने लगे। तीव्र प्यास से गला सूखने पर श्रीकृष्ण ने बलराम को हाथ का संकेत कर पानी के लिए कहा। बलराम ने कहा—मैं अभी कहीं से जल लेकर आता हूँ। श्रीकृष्ण एक पाँव पर दूसरा पाँव रखे लेटे हुए हैं। उनके पाँव में पद्म-मणि चमक रही है।

दृश्य २—जराकुमार वन में शिकार की खोज करता हुआ उसी वन में आता है। श्रीकृष्ण के पाँव में चमकती पद्म-मणि देखकर उसे मृग की चमकती आँख की भ्रान्ति हो गई, उसने धनुष पर बाण चढाकर निशाना लगाया। तीक्ष्ण बाण वासुदेव श्रीकृष्ण के पैर में लगते ही वे एक तीखी चीत्कार के साथ भूमि पर गिर पड़े। (वर्ग ३/अध्य. ८)

Illustration No. 22 :

Śrī Kṛṣṇa in *Kośamra* Forest

(Scene of body bereavement by Śrī Kṛṣṇa)

Scene 1. After burning of *Dwarakā*, *Śrī Kṛṣṇa* and *Balarāma*, became more disappointed and going towards the city *Pāṇḍu-mathurā*, situated at the southern coast of sea reached *Kośāmra* forest. For taking rest *Śrī Kṛṣṇa* lay down on a rock under a huge banyan tree covering his body with yellow cloth. By the indication of hand he told *Balarāma* that he was thirsty, *Balarāma* went out to take water, *Śrī Kṛṣṇa* is lying down keeping his one leg over the knee of the other leg. *Padma* is shining in his foot.

Scene 2. Jarākumāra searching prey comes to the same forest. Looking at the shining *Padma* in the foot of *Śrī Kṛṣṇa*, he took it as the eye of a deer, thus delusioned, he shot an arrow taking the aim. Pierced by sharp arrow a cry came out of the mouth of *Śrī Kṛṣṇa* and he fell down on the ground.

(Sec. 3/Ch. 8)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Dwārakā city and remaining quantity of wine was ordered to be thrown away out of the city. So the wine had been thrown away in hills surrounding *Dwārakā* city. That wine accumulated in ditches of mountain.

Once some princes riding on horses went out of city for a walk. Being thirsty princes drank up that wine. Nearby *Dwaipāyana Rishi* was sitting in deep meditation. *Yādava* princes became fanatic due to intoxication of wine. As they saw (penancer) *Dwaipāyana*, they filled with anger bearing in mind that this penancer will destroy our beautiful city so he should be murdered just now. They caused their horses to jump over penancer. Corpse of a snake was lying down there, the princes put it round the neck of penancer and began to beat him cruelly and when penancer became half-dead, those princes returned to the city, thinking that now the penancer will die.

Due to cruel beating, and even without any cause the anger of *Dwaipāyana* penancer raised to highest degree. He made a firm sinful volition–If there is any consequence of my penance, then I must kill all the *Yādavas* and burn this *Dwārakā* city to ashes.

As soon as, *Śrī Kṛṣṇa* became aware of this painful event, he quickly reached to penancer, with his elder brother *Balarāma*. *Śrī Kṛṣṇa* begged pardon for the offence of princes and requested that he should withdraw his volition. Being satisfied by the courtesy of *Śrī Kṛṣṇa*, penancer *Dwaipāyana* assured him that you and your elder brother–both will go sefely out of city; but I (*Dwaipāyana*) will not withdraw my volition. Thus saying penancer *Dwaipāyana* died and took birth in the class of fiery gods (*Agnikumāra* god). Both the brothers, being disappointed returned from there.

Śrī Kṛṣṇa asked a wise sage, the device to save *Dwārakā* then the sage said–Until *Āyambila* penance will be regularly practised in *Dwārakā* city by its inhabitants, no god or demon can destroy it.

Accordingly *Śrī Kṛṣṇa* made an announcement in the city that *Āyambila* penance should continue. Citizens followed the announcement of ruler.

Dwaipāyana penancer becoming fiery god, remembering his previous birth's enmity came to *Dwārakā* to burn it, but he cannot fulfil his evil desire due to the mighty force of *Āyambila* penance.

Although *Dwaipāyana* fiery god could not burn *Dwārakā* at that time but he did not stop his efforts. He continually waited for twelve years to avail any opportunity to fulfil his desire.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Time of twelve years was very long. Citizens of *Dwārakā* began to think otherwise–A long period of twelve years has been passed practising *Āyambila* penance continually. Now how that fiery god *Dwaipāyana* can hazard us ? He must have been disappointed and gone elsewhere.

Thinking of some other citizens was like this–All the other citizens are practising *Āyambila* penance. If we persons do not practise the penance what difference will it make ?

Lo, such a day arrived that all the citizens of *Dwārakā* became disinclined to obstacle remover *Āyambila* penance.

This was the best opportunity for fiery god *Dwaipāyana*. He availed this fully.

Fire began to pour from sky, frightful voices echoed all directions, stormy winds blew up, houses began to fall due to earth quake, very soon the tremendous flames of fire galloped the whole city *Dwārakā*.

Vāsudeva Kṛṣṇa did many efforts to extinguish fire; but the agitation of *karmas* was so forceful and hazardous that water thrown on fire was proving as oil. Though water quenches fire, but at that time as much as water was poured the fire went on increasing. It seemed that high raising flames of fire trying to burn the sky. *Kṛṣṇa Vāsudeva* and *Balarāma*–both brothers were disappointed. *Dwārakā* burnt to ashes before their eyes, but they could not save it.

After burning *Dwārakā* to *ashes Kṛṣṇa* and *Balarāma* made preparations to go from there. This has been elaborated by these words (*Sura Dīwāyaṇa* kova *ṇidaḍḍhāye*)

Ammā - pi 'i' - ṇiyaga- Vippahūṇe– (*Ambāpitṛa- Nijaka- Viprahīṇaḥ*)– meaning bereaved from mother-father and relatives. Folklorists assert–When *Dwārakā* city was burning, then *Kṛṣṇa Vāsudeva* and his elder brother *Balarāma*–both were trying to stop fire, but they could not succeed in their efforts, then they reached to their palace and began to save their parents. With great difficulty they could take out their parents from palace. Their idea was that riding on a chariot the parents may be taken to a safe place, For fulfilling this purpose *Śrī Kṛṣṇa* reached his stable (*aśwaśālā*). There he saw stable has been burnt up. Sooner he started from there and reached chariot-shelter. It was also burning; but one chariot was safe. Quickly he took out that chariot. Making parents sit in it both brothers began to draw it like horses. As soon as they were to cross the main gate, the upper part of the gate fell down. Parents died under it. Both brothers could not

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

see such a painful scene. They became very much restless due to bereavement of parents. Anyhow they held up themselves and tolerated the great distress caused by the death of parents and relations.

Śrī Kṛṣṇa was too much worried by burning *Dwārakā* city. He said to *Balarāma*–Patron (shelter-giver) of others, whose shelter shall we take today ?

Balarāma suggested–You have always helped *Pāṇḍavas*. It would be proper to go there.

At that time *Pāṇḍavas*, exiled from *Hastināpura*, were residing at *Pāṇḍumathurā*.

The episode of *Paṇḍavas'* exilement from *Hastināpura* should be known from *Jñātādharmakathā Sūtra*.

Hearing the suggestion of *Balarāma*, *Śrī Kṛṣṇa* spoke thus unto him–It is shameful to seek shelter from those, to whom I have given shelter, *Subhadrā* (wife of *Arjuna*) is our sister. To live in sister's house is not praiseworthy.

Hearing the proper clue of *Śrī Kṛṣṇa*, *Balarāma* said–Dear brother ! *Kuntī* is our father's sister (aunt–*Bhuvā–Phūphī*). There is nothing disgraceful to go and live in aunt's home.

Though *Śrī Kṛṣṇa* was unwilling but *Balarāma* proceeded towards the capital city of *Pāṇḍavas*, *Pāṇḍumathurā*, which was situated at the deccan coast of the sea, taking *Śrī Kṛṣṇa* with him.

The scripturist has given the words–'*dāhiṇaveyālie abhimuhe paṇḍumahuraṁ saṁpatthiye*. These words are indicating towards this very episode.

■ The word *Jarākumāreṇaṁ* means *Jarā Kumāra* himself or by *Jarākumāra*. *Jarākumāras* was a prince in *Yādava* tradition or lineage, who was brother of *Śrī Kṛṣṇa*. *Bhagawāna Ariṣṭanemi*, told in his forecast that the death of *Śrī Kṛṣṇa* will happen by the arrow of *Jarākumāra*. Knowing this *Jarākumāra* grieved much. He decided–I will go to *Kośāmravana* (forest) leaving *Dwārakā* and there I will reside till death and thus I will not be the cause of death of *Śrī Kṛṣṇa*.

According to his decision *Jarākumāra* began to live in *Kośāmra* forest. But who can challenge the destined destiny ?

After burning *Dwārakā*, *Śrī Kṛṣṇa* was going to *Pāṇḍumathura*. On the way there was *Kośāmba* forest. *Kṛṣṇa* felt eager in thirst. *Balarāma* went to bring

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

water. *Kṛṣṇa* began to take rest under a huge banyan tree lying down on a slab of stone and covering his body by a yellow robe. He had put his one leg on the other leg. Every *Vāsudeva* has *padma-maṇi* in his foot. From a distance as eye of deer shines such was the shining of the *padma-maṇi* in the foot of *Śrī Kṛṣṇa*. *Jarākumāra* was wandering in the same forest. He was in the search of prey. When he came near that huge banyan tree, then from a distance, it seemed to him that a deer is sitting under the tree. At once he put a sharp arrow on the bow and released it with his full strength. As the arrow pierced the foot of *Śrī Kṛṣṇa* he tossed and trembled about. A painful cry came out of his mouth. He thought lest this arrow may be of *Jarākumāra*. Hearing that painful human cry *Jarākumāra* also came there almost running and began to weep bitterly. Seeing *Jarākumāra* in front, *Śrī Kṛṣṇa* said to him–

Jarākumāra ! What is your fault in it ? It was such destined. How could be otherwise the forecast of *Bhagawāna Ariṣṭanemi*. *Balarāma* is about to reach here. You quickly run away from here, otherwise you cannot remain alive. *Balarāma* will definitely kill you.

Jarākumāra wanted to escape from the meanest deed and for this he left *Dwārakā* and accepted to live in *Kośāmra* forest, but the same sin occurred by his own hands. He began to weep bitterly. But what can be done now ? What has been done cannot be undone.

Śrī Kṛṣṇa had died, before *Balarāma* returned.

सूत्र ७ :

तए णं कण्हे वासुदेवे अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म ओहय जाव झियाइ ।

कण्हाए ! अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी–मा णं तुमं देवाणुप्पिया ! ओहय जाव झियाहि ।

एवं खलु तुमं देवाणुप्पिया ! तच्चाओ पुढवीओ उज्जलियाओ अणंतरं उव्वट्टित्ता इहेव जंबुद्दीवे-दीवे भारहे वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए पुण्डेसु जणवएसु सयदुवारे बारसमे अममे णामं अरहा भविस्ससि । तत्थ तुमं बहूइं वासाइं केवलपरियायं पाउणित्ता सिज्झिहिसि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र ७ :

अर्हत् अरिष्टनेमि के श्रीमुख से यह वृत्तान्त सुनकर कृष्ण वासुदेव खिन्न मन होकर आर्तध्यान करने लगे ।

तब अरिष्टनेमि ने पुनः इस प्रकार कहा–हे देवानुप्रिय ! तुम (खिन्न मन होकर) आर्त्तध्यान मत करो । निश्चय ही हे देवानुप्रिय ! कालान्तर में तुम इसी जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र में आने वाले उत्सर्पिणी काल में पुण्ड्र जनपद के शतद्वार नाम के नगर में "अमम" नाम के बारहवें तीर्थंकर बनोगे। वहां बहुत वर्षों तक केवली पर्याय का पालन कर तुम सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हो जाओगे ।

Maxim 7 :

Then *Kṛṣṇa Vāsudeva* having heard and listened to this whole matter from *Arhat Aristanemi*, with his all hopes laid low, drowned deep in passive-thoughts.

Then *Arhat Aristanemi* said–O beloved as gods ! Do not brood with all hopes laid low. Definitely O beloved as gods ! after a definite period of time in this *Bharatakṣetra*, of *Jambūdvīpa* in forthcoming *Utsarpiṇī* time era, in *Śatadwāra* city of *Puṇḍra* area you would be twelfth *tīrthaṅkara*, named *Amama*. There you will wander as omniscient (*kevalin*) and then will and attain salvation.

सूत्र ८ :

तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ अप्फोडेइ; अप्फोडित्ता वग्गइ; वग्गित्ता तिवइं छिंदइ; छिंदित्ता सीहणायं करेइ; करित्ता अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ नमंसइ; वंदित्ता नमंसित्ता तमेव अभिसेक्कं हत्थिरयणं दुरूहइ; दुरूहित्ता जेणेव बारवई णयरी जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभिसेयहत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ । पच्चोरुहित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव सए सीहासणे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे णिसीयइ; णिसीइत्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेई; सद्दावित्ता एवं वयासी—गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! बारवईए णयरीए सिंघाडग जाव उग्घोसेमाणा एवं वयह—

एवं खलु देवाणुप्पिया ! बारवईए णयरीए दुवालसजोयणआयामाए जाव पच्चक्खं देवलोग-भूयाए सुरग्गि-दीवायणमूले विणासे भविस्सइ; तं जो णं देवाणुप्पिया इच्छइ बारवईए णयरीए राया वा, जुवराया वा, ईसरे, तलवरे, माडंबिए, कोडुंबिए, इब्भे, सेट्ठी वा, देवी वा, कुमारो वा, कुमारी वा, अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए मुण्डे जाव पव्वइत्तए, तं णं कण्हे वासुदेवे विसज्जेइ ।

पच्छाउरस्स वि य से अहापवित्तं वित्तिं अणुजाणइ । महया इड्ढी-सक्कार-समुदएण य से णिक्खमणं करेइ । दोच्चं पि तच्चं पि घोसणयं घोसेह, घोसित्ता मम एयं आणत्तियं पच्चप्पिणह ।

तए णं ते कोडुंबिय पुरिसा जाव पच्चप्पिणंति ।

सूत्र ८ :

अर्हन्त प्रभु के मुख से अपने उज्ज्वल भविष्य का यह वृत्तान्त सुनकर कृष्ण वासुदेव आनन्द विभोर हो उठे और हर्षावेश में अपनी भुजा पर ताल ठोकने लगे । फिर जयनाद किया । उसके बाद त्रिपदी का छेदन अर्थात् तीन कदम पीछे हटकर सिंहनाद किया । फिर भगवान अरिष्टनेमि को वंदन नमस्कार करके अपने अभिषेक योग्य (उत्सव के समय जिसका अभिषेक-तिलक किया जाय) प्रधान हस्तिरत्न पर बैठे तथा द्वारका नगरी के मध्य होते हुए अपने राजप्रासाद में आ गये ।

हाथी से नीचे उतरे, और फिर जहां बाहर की उपस्थानशाला (राजसभा) थी, जहां अपना सिंहासन था, वहां आये । वे सिंहासन पर पूर्वाभिमुख

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विराजमान हुए, फिर अपने आज्ञाकारी पुरुषों, राजसेवकों को बुलाकर इस प्रकार बोले–

हे देवानुप्रियो ! तुम द्वारका नगरी में शृंगाटक यावत् चौराहों आदि सभी राजमार्गों पर जाकर मेरी इस आज्ञा की घोषणा (प्रचारित) करो कि–

"(हे द्वारकावासी नगरजनो) इस बारह योजन लम्बी यावत् प्रत्यक्ष देवलोक के समान द्वारका नगरी का सुरा, अग्नि एवं द्वैपायन के कारण एक दिन विनाश होगा, इसलिये हे देवानुप्रियो ! द्वारका नगरी में जिसकी भी इच्छा हो, राजा हो, युवराज हो, ईश्वर (स्वामी या मंत्री) हो, तलवर (राजा का प्रिय अथवा राजा के समान) हो, माडम्बिक (छोटे गांव का स्वामी) हो, कौटुम्बिक (दो या तीन कुटुम्बों का स्वामी) हो, इभ्य सेठ हो, रानी हो, कुमार हो, या कुमारी हो, राजरानी हो या राजपुत्री हो, इनमें से जो भी भगवान अरिष्टनेमि के पास मुण्डित होकर यावत् दीक्षा लेना चाहता हो, उसको कृष्ण वासुदेव ऐसा करने की सहर्ष आज्ञा देते हैं ।

दीक्षार्थी के पीछे उनके आश्रित सभी कुटुम्बीजनों की भी श्रीकृष्ण वासुदेव यथायोग्य व्यवस्था करेंगे और ऋद्धि सत्कार के साथ उसका दीक्षा महोत्सव भी वे ही सम्पन्न करेंगे ।" इस प्रकार दो-तीन बार घोषणा कर मुझे वापिस सूचित करो ।

कृष्ण वासुदेव का आदेश पाकर उन आज्ञाकारी राजपुरुषों ने वैसी ही घोषणा दो तीन-बार करके लौट कर इसकी सूचना कृष्ण को दी ।

Maxim 8 :

Having heard and listened to this description of his own most brilliant future *Kṛṣṇa Vāsudeva* became very much glad. In the emotion of happiness he clapped his arms, moved three step backwards and roared like a lion, and then bowing down and praising–woshipping *Arhat Aristanemi*, rode on his own excellent elephant worthy for royal emblem and moving through the middle of *Dwārakā* came to his own palace.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Then he got down from his excellent elephant, went to the outer audience chamber, came to and sat on his throne with face in eastern direction and then calling his chamberlains and state-servants spoke thus–

O beloved as gods ! you go and declare my proclamation at the open places, fourway, three way crossings etc; of *Dwārakā* city, that–

O the citizens of *Dwārakā !* This twelve *yojana* long and nine *yojana* broad, heaven like *Dwārakā* city will be destroyed any day due to wine, fire and *Dwaipāyana* penancer. Therefore, O beloved as gods ! if any person whether he may be a king, heir apparant, minister or lord *(Īśwara)*, dear to king or like a king (*talawara*) baron (lord of a small village), head of two or three families (*Koṭumbika*), banker–too much wealthy person, queen, prince, maiden, princess, queen of a king, daughter of a king intends to enter the sage order of *Bhagawāna Ariṣṭanemi* after being shaven-headed and consecrated, *Śrī Kṛṣṇa* gladly allows such persons to do so. *Śrī Kṛṣṇa Vāsudeva* will himself celebrate his consecration with great splendour in a gathering. *Śrī Kṛṣṇa Vāsudeva* also holds responsibility of the family members of the consecrated persons dependent on them. He will provide all necessities and comforts to those family members.

O beloved as gods (chamberlains) ! Proclaim this proclamation twice and thrice at all the places and report to me.

Hearing the order of *Kṛṣṇa Vāsudeva* the chamberlains twice and thrice proclaimed this proclamation and reported to him.

सूत्र ९ :

तए णं सा पउमावई देवी अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हियया अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ णमंसइ; वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'सद्दहामि णं भंते ! णिग्गंथं पावयणं से जहेयं तुब्भे वयह, जं णवरं देवाणुप्पिया ! कण्हं वासुदेवं आपुच्छामि, तए णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए मुण्डा जाव पव्वयामि ।'

'अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह ।'

सूत्र ९ :

इसके बाद उधर पद्मावती महारानी भगवान् अरिष्टनेमि का धर्मोपदेश सुनकर एवं उसे धारण करके बड़ी प्रसन्न हुई, उसका हृदय प्रफुल्लित हो उठा यावत् वह अर्हन्त अरिष्टनेमि को वंदना नमस्कार कर इस प्रकार बोली–

हे भगवन् ! निर्ग्रन्थ प्रवचन पर मैं श्रद्धा करती हूँ। आप जैसा कहते हैं वह तत्व वैसा ही है । (आपका धर्मोपदेश यथार्थ है) हे भगवन् ! मैं कृष्ण वासुदेव की आज्ञा लेकर देवानुप्रिय के पास मुण्डित होकर दीक्षा ग्रहण करना चाहती हूँ ।

भगवान ने कहा–हे देवानुप्रिये ! धर्म-कार्य में विलम्ब मत करो । जैसा तुम्हारी आत्मा को सुख हो वैसा करो ।

Maxim 9 :

Thereafter, queen *Padmāvatī* became much more glad and satisfied and took to her heart the sermon of *Bhagawāna Aristamemi*. Her heart filled with happiness, Bowng down and worshipping *Arihanta Aristanemi*, she spoke thus–

O *Bhagawan* ! I have faith ir the *Nirgrantha pravacana* (doctrine). The fact is as you have said. Your sermon is true to the last. I intend to accept consecration with my shaven head in presence of you, with the permission of *Krsna Vāsudeva*.

Bhagawāna said–O-beloved as gods ! Do, as your mind feels. But do not delay in religious deed.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र १० :

तए णं सा पउमावई देवी धम्मियं जाणप्पवरं दुरूहइ । दुरूहित्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ । उवागंच्छित्ता धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ; पच्चोरुहित्ता जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल जाव अंजलिं कट्टु कण्हं वासुदेवं एवं वयासी–

इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं अब्भनुण्णाया समाणी अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए मुंडा जाव पव्वयामि ।

(कण्हे-) अहासुहं देवाणुप्पिया !

तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुंबिए पुरिसे सद्दावेइ; सद्दावित्ता एवं वयासी–

खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! पउमावईए देवीए महत्थं णिक्खमणाभिसेयं उवट्ठवेह; उवट्ठवित्ता एयं आणत्तियं पच्चप्पिणह ।

तए णं ते कोडुंबिया जाव पच्चप्पिणंति ।

सूत्र १० :

उसके बाद पद्मावती देवी धार्मिक श्रेष्ठ रथ पर आरूढ़ होकर द्वारका नगरी में अपने भवन पर आई, धार्मिक रथ से नीचे उतरी और जहां कृष्ण वासुदेव थे वहां आकर दोनों हाथ जोड़कर कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार निवेदन किया–

हे देवानुप्रिय ! अर्हत् अरिष्टनेमि का उपदेश सुनकर मेरा मन संसार से विरक्त हो गया है, अतः आपकी आज्ञा हो तो मैं अर्हत् अरिष्टनेमि के पास मुण्डित होकर दीक्षा ग्रहण करना चाहती हूँ ।

कृष्ण ने कहा–हे देवानुप्रिये ! जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो ।

तब कृष्ण वासुदेव ने अपने आज्ञाकारी पुरुषों को बुलाकर इस प्रकार आदेश दिया–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही महारानी पद्मावती के लिये दीक्षा महोत्सव की विशाल तैयारी करो, और तैयारी हो जाने की मुझे वापस सूचना दो ।

तब आज्ञाकारी पुरुषों ने वैसा ही किया और दीक्षा महोत्सव की तैयारी की सूचना उनको दी ।

Maxim 10 :

After that riding on an excellent religious chariot *Padmāvatī Devī* came in *Dwārakā* city and to her palace. Riding off from chariot she came before *Śrī Kṛṣṇa Vāsudeva* and folding her both hands spoke thus unto him–

O beloved as gods ! Having heard and listened to the sermon (religious discourse) of *Arhat Aristanemi* my mind became disinclined from world and worldly pleasures. Hence, if you permit me, I intend to tonsure my head and accept consecration in presence of *Arhat Aristanemi*.

Kṛṣṇa said–Do, as you feel happy.

Then *Vāsudeva Kṛṣṇa* called his chamberlains and ordered them–

O beloved as gods ! Quickly make the enormous preparations of consecration ceremony of queen *Padmāvatī* and report to me.

Chamberlains obeyed the order of *Vāsudeva*, made preparations according to his wishes and reported him.

सूत्र ११ :

तए णं से कण्हे वासुदेवे पउमावइं देविं पट्टयं दुरूहइ, दुरूहित्ता अट्ठसएणं सोवण्णकलसेणं जाव णिक्खमणाभिसेणं अभिसिंचइ, अभिसिंचित्ता, सव्वालंकारविभूसियं करेइ; करित्ता पुरिससहस्सवाहिणीं सिवियं दुरूहावेइ; दुरूहावित्ता बारवईए णयरीए मज्झं मज्झेणं णिगच्छइ, णिगच्छित्ता जेणेव रेवयए पव्वयए जेणेव सहस्संबवणे उज्जाणे तेणेव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सिवियं ठवेइ। ठवेत्ता, पउमावई देवी सिवियाओ पच्चोरुहइ ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे पउमावइं देविं पुरओ कट्टु जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, अरहं अरिट्ठणेमिं आयाहिण-पयाहिणं करेइ । करित्ता, वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी–

एस णं भंते ! मम अग्गमहिसी पउमावई णामं देवी इट्ठा, कंता, पिया, मणुण्णा, मणामा, अभिरामा, जीवियऊसासा, हियया णंदजणिया उंबरपुप्फंविव दुल्लहा, सवणयाए किमंग ! पुण पासणयाए । तए णं अहं देवाणुप्पिया ! सिस्सिणीभिक्खं दलयामि, पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया ! सिस्सिणीभिक्खं ।

अहासुहं !

तए णं सा पउमावई देवी उत्तर-पुरच्छिमदिसिभागं अवक्कमइ । अवक्कमित्ता सयमेव आभरणालंकारं ओमुयइ । ओमुइत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठणेमि तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी– आलित्ते णं भंते ! पलित्ते णं भन्ते ! लोए । जाव धम्ममाइक्खियउं ।

दीक्षा महोत्सव

सूत्र ११ :

इसके बाद कृष्ण वासुदेव ने पद्मावती को एक विशेष पट्ट पर बिठाया और एक सौ आठ सुवर्ण आदि कलशों से स्नान कराया यावत् दीक्षा-सम्बन्धी अभिषेक किया । फिर सभी प्रकार के अलंकारों से उसे विभूषित करके हजार पुरुषों द्वारा उठायी जाने वाली शिविका (पालकी) में बिठाकर द्वारका नगरी के मध्य होते हुए निकले और जहां रैवतक पर्वत और सहस्राम्र उद्यान था वहां आकर पालकी नीचे रखी। पद्मावती देवी पालकी से नीचे उतरी ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रक्रम २३ :

पद्मावती रानी का वैराग्य

भगवान अरिष्टनेमि की वाणी से प्रबुद्ध होकर श्रीकृष्ण की पटरानी पद्मावती ने संयम लेने का निश्चय किया। आभरण अलंकार त्याग कर स्वयं मस्तक का लोच करके श्रमणी वेश धारण किया और प्रभु चरणों में उपस्थित हो बोली–भन्ते ! जैसे कोई गृहस्थ अग्नि-ज्वाला में जलते हुए घर में से अपना बहुमूल्य रत्नकरण्ड सुरक्षित निकालना चाहता है। उसी प्रकार मैं भी इस जन्म-मरण की ज्वाला से जलते संसार से अपनी आत्मा को निकालना चाहती हूँ। आप मुझे दीक्षा प्रदान करें। श्रीकृष्ण वासुदेव दीक्षा की आज्ञा प्रदान कर रहे हैं।

(वर्ग ५/अध्य. १)

Illustration No. 23 :

Apathy of queen *Padmāvatī*

Enlightened, hearing the sermon of *Bhagawāna Ariṣṭanemi*, *Padmāvatī*, queen of *Śrī Kṛṣṇa*, decided to accept consecration. Putting off ornaments etc., she tonsured her head by her own hands, dressed in the nun-cloth and coming to the lotus feet of *Prabhu* (The Lord) she spoke thus unto him–*Bhagawāna* ! As any householder desires to take out his gem-box safely from the burning house, so I wish to take out my own soul safely from the world which is burning in flames of birth and death. Please consecrate me. *Śrī Kṛṣṇa* is consenting for conseeration.

(Sec. 5/Ch. 1)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

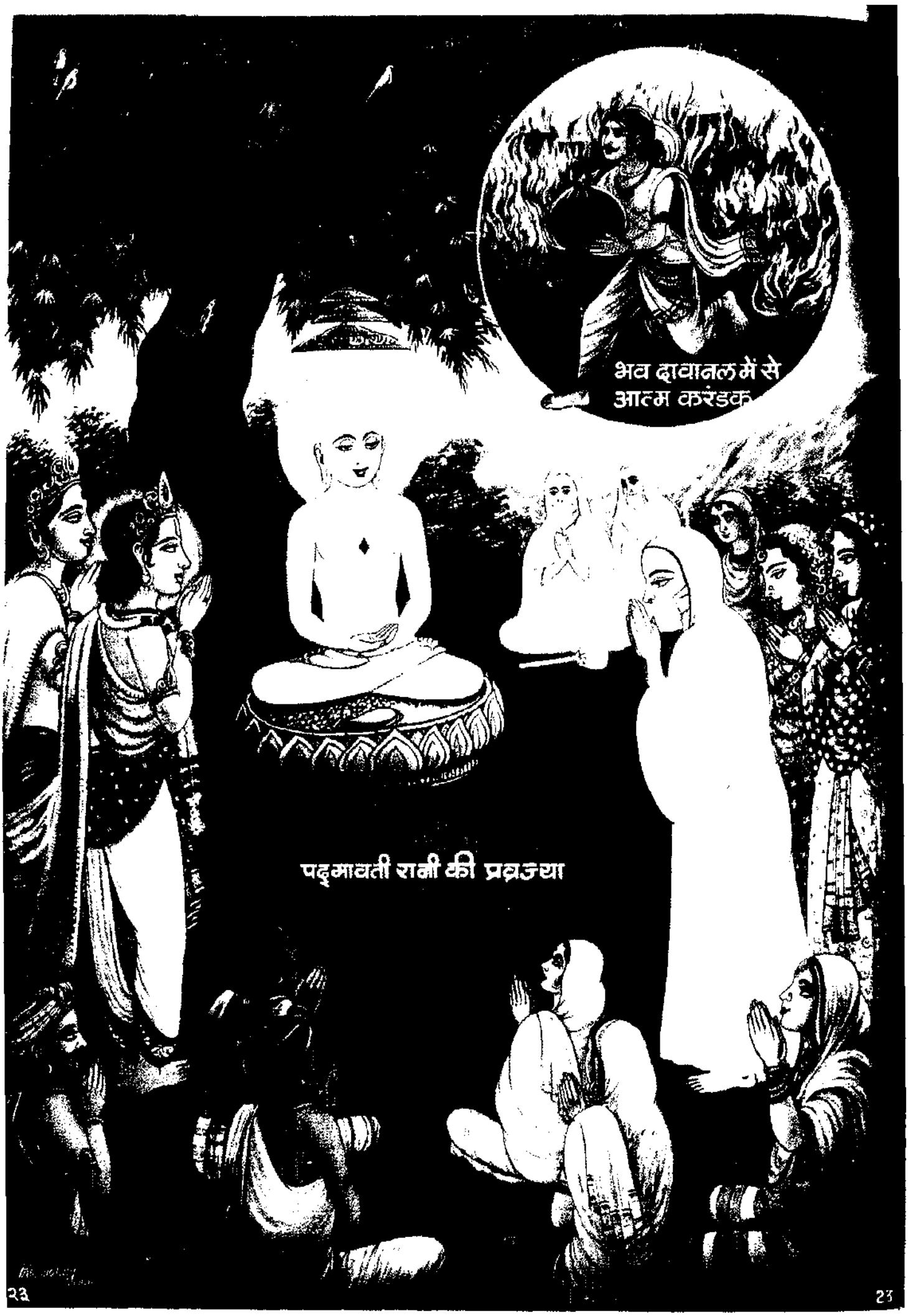

23

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फिर कृष्ण वासुदेव पद्मावती महारानी को आगे करके भगवान अरिष्टनेमि के पास आये और तीन बार प्रदक्षिणा करके वंदन नमस्कार किया । वंदन नमस्कार करके इस प्रकार बोले–

हे भगवन् ! यह पद्मावती देवी मेरी पटरानी है, यह मेरे लिए इष्ट, कान्त, प्रिय एवं मनोज्ञ है, और मन के अनुकूल चलने वाली है, अभिराम (सुन्दर) है । हे भगवन् ! यह मेरे जीवन में श्वासोच्छ्वास के समान मुझे प्रिय है, मेरे हृदय को आनन्द देने वाली है । इस प्रकार की स्त्री-रत्न उदुम्बर (गूलर) के पुष्प के समान सुनने के लिये भी दुर्लभ है, तब देखने की तो बात ही क्या है ! हे देवानुप्रिय ! मैं ऐसी अपनी प्रिय पत्नी की भिक्षा शिष्यणी के रूप में आपको देता हूँ । आप इसे स्वीकार करें ।

कृष्ण वासुदेव की प्रार्थना सुनकर भगवान अरिष्टनेमि बोले--"देवानुप्रिय ! तुम्हें जिस प्रकार सुख हो वैसा करो ।"

तब उस पद्मावती देवी ने ईशान कोण में जाकर स्वयं अपने हाथों से अपने शरीर पर धारण किये हुए सभी आभूषण एवं अलंकार उतारे और स्वयं ने ही अपने केशों का पंचमुष्टिक लोच किया । फिर भगवान अरिष्टनेमि के पास आकर वंदना की । वंदन नमस्कार करके इस प्रकार बोली–हे भगवन् ! यह संसार जन्म, जरा, मरण आदि दुःख रूपी आग में जल रहा है, प्रदीप्त हो रहा है, अतः इन दुःखों की आग से छुटकारा पाने और जलती हुई आग से अपनी आत्मा को बचाने के लिए आप से संयम धर्म की दीक्षा अंगीकार करना चाहती हूँ । अतः कृपा करके मुझे प्रव्रजित कीजिये यावत् चारित्र धर्म की शिक्षा प्रदान कीजिए ।

Consecration Ceremony

Maxim 11 :

Then *Kṛṣṇa Vāsudeva* got seated *Padmāvatī Devī* on a special seat and she was bathed with water from one hundred eight pitchers of gold and conronated for consecration. Then, she was decorated with all kinds of ornaments, and was seated in the palanquin, which was

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

carried by one thousand men, moving through the central part of *Dwārakā* city. They reached *Sahasrāmravana*, which was situated on mount *Raivataka*. There *Padmāvatī Devī* got down from the palanquin.

Keeping queen *Padmāvatī* ahead of him, *Śrī Kṛṣṇa* came to *Bhagawāna Ariṣṭanemi* circumambulated him three times, bowed down and worshipped, then said thus–

O *Bhagawan* ! This *Padmāvatī Devī* is my chief queen. She is pleasing, charming, beloved, beautiful and enchanting to me. She is dear to me like life force. and is pleasing to my heart. This excellent woman is like a flower of wild fig tree (*gūlara*) which is such a rare object that it is very difficult to hear about, not to speak of seeing. O beloved as gods ! I offer unto you my such beloved wife, as a gift of woman disciple. Please, accept it.

Having heard the request of *Kṛṣṇa Vāsudeva* spoke thus *Bhagawāna Ariṣṭanemi*–O belved as gods ! Do, as you feel happy.

Then *Padmāvatī Devī* went to North-East direction, removed with her own hands her ornaments and also with her own hands tonsured her hairs in five attempts, then came to *Bhagawāna Ariṣṭanemi*, Bowing down and worshipping him she spoke–

O *Bhagawan* ! This world is burning in the fire of birth, death, oldage etc. Hence for liberation from the fire of all these miseries and for saving my soul from burning world, I intend to accept consecration. Therefore kindly take me into monk order and teach me the rules of right conduct–sagehood.

विवेचन

गूलर का फूल–गूलर बरगद की जाति का एक वृक्ष है इसका फूल अनेक वर्षों में किसी चांदनी रात में कभी-कभार वृक्ष पर खिलता है। इसलिए इसे दुर्लभ माना गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Elucidation

Flower of *wild fig tree*-Really wild fig tree is a tree of banyan tree class. After many years, flower blooms on it in any full moon night. So it is considered very difficult to see and obtain such flower.

सूत्र १२ :

तए णं अरहा अरिट्ठणेमी पउमावइं देविं सयमेव पव्वावेइ सयमेव जक्खिणीए अज्जाए सिस्सिणीं दलयइ ।

तत्थ णं सा जक्खिणी अज्जा पउमावइं देविं सयं पव्वावेइ, जाव संजमियव्वं, तए णं सा पउमावई जाव संजमइ ।

तए णं सा पउमावई अज्जा जाया ईरियासमिया जाव गुत्तबंभयारिणी ।

सूत्र १२ :

पद्मावती देवी द्वारा ऐसी प्रार्थना करने पर भगवान् अरिष्टनेमि ने स्वयमेव पद्मावती को प्रव्रजित करके, यक्षिणी आर्या को शिष्या के रूप में सौंप दिया ।

तब यक्षिणी आर्या ने पद्मावती देवी को स्वयं प्रव्रजित किया, और संयम में यत्न करने की शिक्षा दी । श्रमणी-धर्म की दीक्षा दी और संयम क्रिया में सावधानीपूर्वक यत्न करते रहने की हित शिक्षा देते हुए कहा–हे पद्मावती ! तुम संयम में सदा सावधान रहना ।

पद्मावती भी यक्षिणी गुरुणी की शिक्षा को स्वीकार करते हुए सावधानी-पूर्वक संयम पथ पर चलने का यत्न करने लगी । एवं ईर्या समिति आदि पांचों समिति से युक्त होकर यावत् गुप्त ब्रह्मचारिणी आर्या बन गई ।

Maxim 12 :

Considering such request of *Padmāvatī Devī*, *Bhagawāna Ariṣṭanemi* himself took her into sage order, made her a nun and gave her to chief nun (*āryā*) *Yakṣiṇī* as a woman disciple.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Then chief nun *Yakṣiṇī* herself took *Padmāvatī Devī* in nun-order, and taught her to practise restrain, consecrated her as a nun and inspir her to ever remain always careful in restrain activities, she said–O *Padmāvatī* ! You should always remain careful in practising restrain.

Padmāvatī nun also accepting the instructions of her teacher *Yakṣiṇī* began to go ahead on restrain path. She became circumspect with five circumspections like circumspection of movement etc., and became a guarded celibate.

सूत्र १३ :

तए णं सा पउमावई अज्जा जक्खिणीए अज्जाए अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारसअंगाइं अहिज्जइ । बहूहिं चउत्थ-छट्ठ-ट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्ध-मासखमणेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरइ ।

तए णं सा पउमावई अज्जा बहुपडिपुण्णाइं वीसं वासाइं सामण्णपरियायं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झोसेइ । झोसित्ता सट्ठिंभत्ताइं अणसणाइं छेदेइ, छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे जाव तमट्ठं आराहेइ। चरिमुस्सासेहिं सिद्धा । **(पढमं अज्झयणं समत्तं)**

सूत्र १३ :

तत्पश्चात् उस पद्मावती आर्या ने अपनी यक्षिणी गुरुणी के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया । साथ ही उपवास-बेले-तेले-चौले-पचोले-पन्द्रह दिन और महीने तक की विविध प्रकार की तपस्या से वह अपनी आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी ।

इस तरह पद्मावती आर्या ने पूरे बीस वर्ष तक चारित्र-धर्म का पालन किया । अन्त में एक मास की संलेखना की और साठ भक्त का अनशन पूर्ण करके जिस कार्य (मोक्ष-प्राप्ति) के लिए संयम स्वीकार किया था, उसकी आराधना करते हुए अन्तिम श्वासोच्छ्वास के बाद (देह त्यागकर) सिद्ध-बुद्ध और मुक्त हो गई । **(प्रथम अध्ययन समाप्त)**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

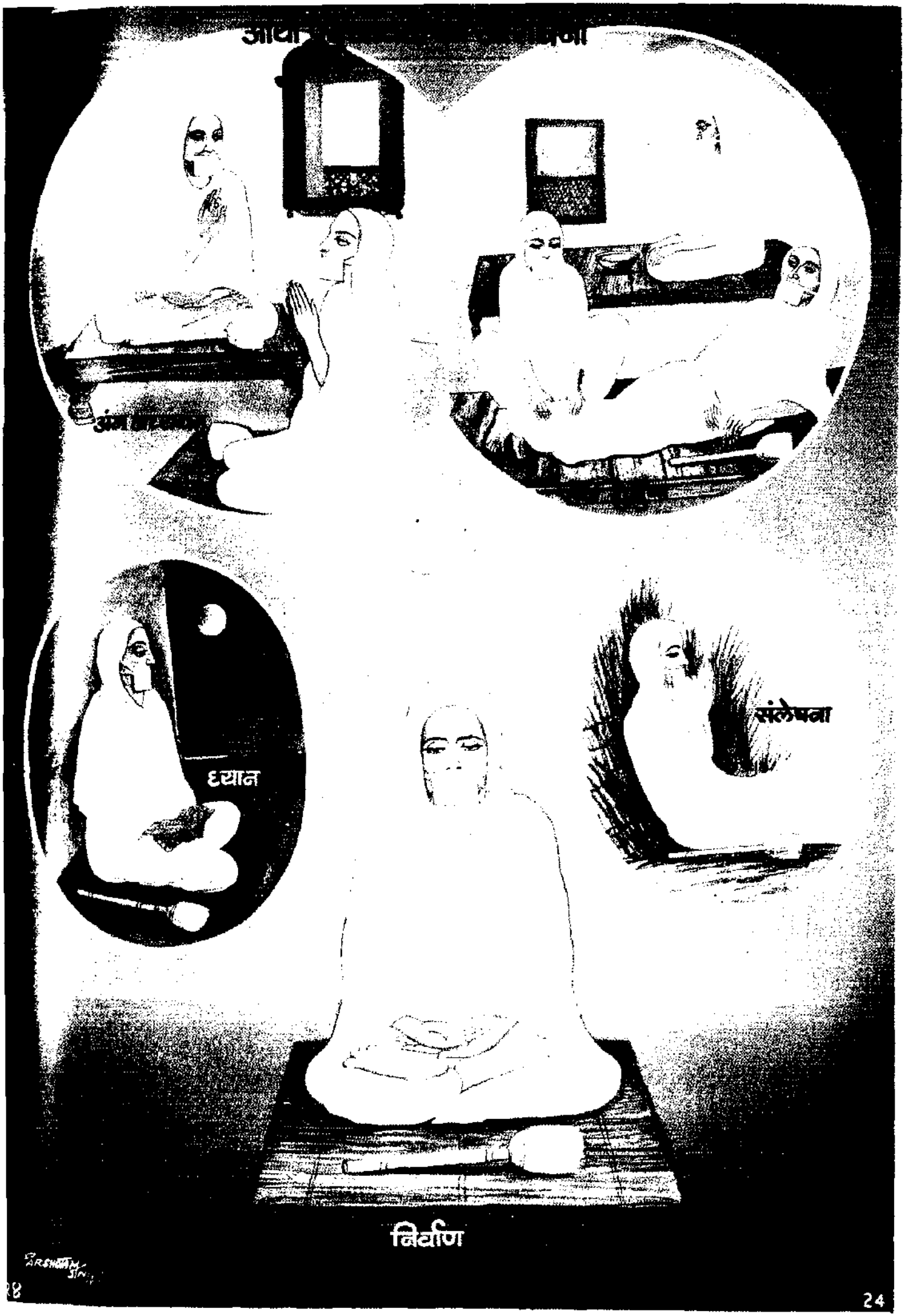

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रक्रम २४ :

पद्मावती की चारित्र आराधना

आर्या पद्मावती ने दीक्षा लेकर गुरुणी यक्षा आर्या के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। वृद्ध-ग्लान तपस्विनी श्रमणियों की अग्लान भाव से सेवा-शुश्रूषा की। अनेक प्रकार की कठोर तपस्या एवं ध्यान आदि करके अन्त में मासिक संलेखना संथारापूर्वक शरीर छोड़कर निर्वाण प्राप्त किया।

(वर्ग ५/अध्य. १)

Illustration No. 24 :

Conduct propiliation of *Padmāvatī*

Becoming consecrated *Āryā Padmāvatī* learnt eleven holy scripture from teacher and chief nun *Ārya Yakṣā*, and served old and penancer-nuns cordially. Practising several types of penances and meditation, in the end she accepted one month's *Saṁlekhanā Saṁthārā*, left the body and became beatified.

(Sec. 5/Ch. 1)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Thereafter that *Padmāvatī* nun (*śramaṇī*) studied *Sāmāyika* etc., eleven scriptures (*aṅga*) from her teacher chief nun *Yakṣiṇī*. Along with she practised fast penance of one, two, three, four, five days', fifteen days', one month's, and various types of austerities.

Thus nun *Padmāvatī* practised conduct of nun upto twenty years. In the end she observed *saṁlekhanā* of one month i.e., fast of sixty diets and (obtained salvation) the aim for which she had accepted restrain, with her last exhale-inhale relinquishing body, she became beatified and salvated. **[First chapter concluded]**

अध्ययन २–८

गौरी आदि की दीक्षा

सूत्र १४ :

उक्खेवओ य अज्झयणस्स ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई णयरी । रेवयए पव्वए, णंदणवणे उज्जाणे । तत्थ णं बारवईए णयरीए कण्हे वासुदेवे राया होत्था, तस्स णं कण्हस्स वासुदेवस्स गोरी देवी, वण्णओ ।

अरहा अरिट्ठणेमी समोसढे । कण्हे णिग्गए । गोरी जहा पउमावई तहा णिग्गया, धम्मकहा, परिसा पडिगया, कण्हे वि पडिगए । तए णं सा गोरी जहा पउमावई तहा णिक्खंता जाव सिद्धा ।

एवं गन्धारी,[३] लक्खणा,[४] सुसीमा,[५] जम्बवई,[६] सच्चभामा,[७] रुप्पिणी,[८] अट्ठ वि पउमावई सरिसयाओ अट्ठ अज्झयणा ।

(इति २-८ अध्ययनानि)

सूत्र १४ :

आर्य जम्बू ने पूछा–हे भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने प्रथम अध्ययन के जो भाव कहे वे आपके श्रीमुख से मैंने सुने । अब दूसरे एवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगे के अध्ययनों में क्या भाव कहे हैं ? कृपा करके इस अध्ययन का उत्क्षेपक–भाव बताइये ।

श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा–हे जम्बू ! उस काल उस समय में द्वारका नगरी थी, उसके समीप एक रैवतक नाम का पर्वत था । उस पर्वत पर नन्दनवन नाम एक मनोहारी एवं विशाल उद्यान था । इस द्वारका नगरी में श्रीकृष्ण वासुदेव राज्य करते थे । उन कृष्ण वासुदेव की "गौरी" नाम की महारानी थी, जो वर्णन करने योग्य थी ।

एक समय उस नन्दनवन उद्यान में भगवान् अरिष्टनेमि पधारे । कृष्ण वासुदेव भगवान के दर्शन करने के लिए गये । जन परिषद भी धर्म सुनने के लिए गई । गौरी रानी भी पद्मावती रानी के समान प्रभुदर्शन के लिये गई । भगवान ने धर्मोपदेश दिया । धर्मोपदेश सुनकर जन परिषद् अपने-अपने घर गई । कृष्ण वासुदेव भी अपने राजभवन में लौट गये । तत्पश्चात् "गौरी" देवी पद्मावती रानी की भांति विरक्त होकर दीक्षित हुई यावत् सिद्ध हो गई ।

इसी तरह अन्य ३. गांधारी, ४. लक्ष्मणा, ५. सुसीमा, ६. जाम्बवती, ७. सत्यभामा, एवं ८. रुक्मिणी के भी छः अध्ययन पद्मावती के समान समझना चाहिए । ये सभी एक समान प्रव्रजित होकर सिद्ध-बुद्ध और मुक्त हुईं । ये सभी श्रीकृष्ण वासुदेव की पटरानियाँ थीं ।

(२-८ अध्ययन समाप्त)

Chapters 2-8

Maxim 14 :

Ārya Jambū asked *Sudharmā Swāmī*–O *Bhagawan* ! I have heard attentively from you, the subject matter expressed by *Bhagawāna Mahāvīra* of the first chapter of fifth section. Now please tell me the subject matter of second and further chapters as described by *Bhagawāna Mahāvīra.*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Śrī Sudharmā Swāmī told–O *Jambū* ! At that time and at that period, there was a city named *Dwārakā*. Near it was mountain *Raivataka*. At that mountain there was a vast garden named *Nandanavana*. *Kṛṣṇa Vāsudeva* was ruling over *Dwārakā* city. That *Kṛṣṇa Vāsudeva* had a queen named *Gaurī*. She was describable.

Once *Bhagawāna Ariṣṭanemi* came to that *Nandanavana* garden. *Kṛṣṇa Vāsudeva* went to bow down and worship him. General public also went to listen to religious discourse. Queen *Gaurī* also went to see and worship like queen *Padmāvatī*. *Bhagawāna* delivered sermon. General congregation returned after hearing sermon. *Kṛṣṇa Vāsudeva* also went back to his palace. Thereafter, like queen *Padmāvatī*, *Gaurī Devī* also accepted consecration being disinclined to worldly enjoyments and was beatified–emancipated.

In the same way further six chapters–3. *Gāndhārī*, 4. *Lakṣmaṇā* 5. *Susīmā*, 6. *Jāmbavatī* 7. *Satyabhāmā* and 8. *Rukmiṇī* should be known as that of *Padmāvatī*.

The description of all these eight chapters should be known like that of *Padmāvatī*. All these were consecrated and salvated alike, these were the chief queens of *Kṛṣṇa Vāsudeva*.

[2-8 chapters concluded]

नवम अध्ययन

मूलश्री

सूत्र १५ :

उक्खेवओ य णवमस्स ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईए णयरीए रेवयए पव्वए, णंदणवणे उज्जाणे, कण्हे राया । तत्थ णं बारवईए णयरीए कण्हस्स

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वासुदेवस्स पुत्ते जंबवईए देवीए अत्तए संबे णामं कुमारे होत्था । अहीण पडिपुण्ण-पंचिंदियसरीरे ।

तस्स णं संबस्स कुमारस्स मूलसिरी णामं भारिया होत्था, वण्णओ ।

अरहा अरिट्ठणेमी समोसढे ।

कण्हे णिग्गए । मूलसिरी वि णिग्गया । जहा पउमावई । जं णवरं देवाणुप्पिया ! कण्हं वासुदेवं आपुच्छइ जाव सिद्धा ।

सूत्र १५ :

श्री जम्बू स्वामी ने कहा–हे भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर ने आठवें अध्ययन के जो भाव कहे, वे मैंने आपके श्रीमुख से सुने । आगे श्रमण भगवान महावीर ने नवमें अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ? यह कृपाकर बतलाइये ।

श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा–हे जम्बू ! उस काल उस समय में द्वारका नगरी के पास रैवतक नाम का पर्वत था । जहां एक नन्दनवन उद्यान था । वहां कृष्ण वासुदेव राज्य करते थे । उन कृष्ण वासुदेव के पुत्र और रानी जाम्बवती देवी के आत्मज शाम्ब नाम के कुमार थे, जो पांचों इन्द्रियों से परिपूर्ण सर्वांग सुन्दर शरीर वाले थे । उन शाम्ब कुमार के मूलश्री नाम की भार्या थी, जो वर्णन करने योग्य थी (अत्यन्त सुन्दर एवं कोमलांगी थी) ।

एक समय अर्हत् अरिष्टनेमि वहां पधारे । कृष्ण वासुदेव उनके दर्शनार्थ गये । मूलश्री देवी भी "पद्मावती" के पूर्व वर्णन के समान प्रभु के दर्शनार्थ गई । भगवान ने धर्मोपदेश दिया, धर्मकथा कही । जिसे सुनकर जन-परिषद एवं श्रीकृष्ण तो अपने-अपने घर लौट गये । मूलश्री ने वहीं रुककर भगवान से प्रार्थना की, हे भगवन् ! मैं कृष्ण वासुदेव की आज्ञा लेकर आपके पास श्रमण धर्म में दीक्षित होना चाहती हूँ ।

भगवान ने कहा–हे देवानुप्रिये ! जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करों ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके बाद "मूलश्री" अपने भवन को लौटी । मूलश्री के पति श्री शाम्बकुमार पहले ही प्रभुचरणों में दीक्षित हो चुके थे, अतः मूलश्री अपने श्वसुर श्री कृष्ण वासुदेव की आज्ञा लेकर पद्मावती के समान दीक्षित हुई । एवं उन्हीं के समान तप-संयम की आराधना करके सिद्ध पद को प्राप्त हुई । **(नवम अध्ययन समाप्त)**

Chapter 9

Mūlaśrī

Maxim 15 :

Jambū Swāmī asked with reverence-Reverend Sir ! I have heard from you what *Bhagawāna Mahāvīra* described as subject matter of eighth chapter. Now please tell me the subject matter of ninth chapter as expressed by *Bhagawāna Mahāvīra.*

Śrī Sudharmā Swāmī uttered–O *Jambū* ! At that time and at that period, there was a city named *Dwārakā,* near *Raivataka* mountain and at that mountain was *Nandanavana* garden. *Kṛṣṇa Vāsudeva* was the ruler of that zone.

Śāmbakumāra was the son of *Kṛṣṇa Vāsudeva* and his queen *Jāmbavatī*. That prince *Śāmbakumāra* had all the five senses, and his body was beautiful. That *Śāmba Kumāra* had a wife named *Mūlaśrī*. She was tender and beautiful so was describable.

Once *Arhat Aristanemi* came there. *Kṛṣṇa Vāsudeva* went to bow down and worship him. *Mūlaśrī* also went to *Bhagawāna* like *Padmāvatī*. *Bhagawāna* bestowed sermon and religious discourse. Hearing that *Kṛṣṇa Vāsudva* and general people went back to their places. *Mūlaśrī* stayed their and requested–O *Bhagawan* ! Getting permission from *Kṛṣṇa Vāsudeva*, I intend to enter sage (nun) order in presence of you.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Bhagawāna said–O beloved as gods ! Do as you feel happy.

After that *Mūlaśri* returned to her house. *Śāmba Kumāra*, husband of *Mūlaśrī*, had been consecrated in presence of *Bhagawāna*, so she asked permission from her father-in-law, *Śrī Kṛṣṇa Vāsudeva* and getting his permission accepted consecration like *Padmāvatī*. Like *Padmāvatī* she was also beatified by propiliating restrain and austerity.

[Chapter nine concluded]

अध्ययन १०

एवं मूलदत्ता वि ।

(दस अज्झयणा) (इति पंचम वर्ग समाप्त)

"मूलश्री" के ही समान "मूलदत्ता" का भी सारा वृतान्त जानना चाहिये ।

(दस अध्ययन समाप्त)

(पंचम वर्ग समाप्त)

Chapter 10

The whole description of *Mūladattā*–should be known like that of *Mūlaśrī*.

[Chapter ten concluded]

[Section five completed]

卐

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षष्ठम वर्ग

सूत्र १ :

जइ णं भंते समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंतगडदसाणं पंचमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, छट्ठस्स णं भंते ! वग्गस्स के अट्ठे पण्णत्ते ? एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स छट्ठस्स वग्गस्स सोलस अज्झयणा पण्णत्ता । तं जहा–

मंकाई किंकमे चेव मोग्गरपाणी य कासवे ।

खेमए धितिधरे चेव केलासे हरिचन्दणे ॥१॥

वारत्त सुदंसण पुण्णभद्दे सुमणभद्दे सुपइट्ठे मेहे ।

अइमुत्ते य अलक्खे अज्झयणाणं तु सोलसयं ॥२॥

सूत्र १ :

आर्य जम्बू–हे भगवन् ! मैंने अष्टम अंग अंतकृद्दशा के पांचवें वर्ग का भाव सुना, अब कृपया बताएँ कि छठे वर्ग में श्रमण भगवान् महावीर ने क्या भाव कहे हैं ?

श्री सुधर्मा स्वामी–हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने छठे वर्ग के सोलह अध्ययन कहे हैं, जो इस प्रकार हैं–

१. मंकाई, २. किंकम, ३. मुद्गरपाणि, ४. काश्यप,
५. क्षेमक, ६. धृतिधर, ७. कैलाश, ८. हरिचन्दन,
९. वारत्त, १०. सुदर्शन, ११. पूर्णभद्र, १२. सुमनभद्र,
१३. सुप्रतिष्ठ, १४. मेघ गाथापति, १५. अतिमुक्त कुमार एवं
१६. अलक्ष्य कुमार ।

आर्य जम्बू–हे भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर ने छठे वर्ग के १६ अध्ययन कहे हैं तो प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ बताया है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

SIXTH SECTION

Maxim 1 :

Ārya Jambū humbly said to *Śrī Sudharmā Swāmī*–O *Bhagawan* ! I have heard the subject matter of fifth section. Now please tell me what subject matter of sixth section was preached by *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra* ?

Śrī Sudharmā Swāmī–O *Jambū* ! *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra* has expressed sixteen chapters of sixth section. The names of these sixteen chapters are as follows–

1. Maṅkāī, 2. Kiṅkama, 3. Mudgarapāṇi, 4. Kāśyapa, 5. Kṣemaka, 6. Dhṛtidhara, 7. Kailāśa, 8. Haricandana, 9. Wāratta, 10. Sudarśana. 11. Pūrṇabhadra, 12. Sumanabhadra, 13. Supratiṣṭha, 14. Megha trader 15. Atimuktakumāra and, 16. Alakṣyakumāra.

प्रथम अध्ययन : मंकाई

सूत्र २ :

जइ णं भंते ! सोलस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे, गुणसिलए-चेइए, सेणिए राया । तत्थ णं मंकाई णामं गाहावई परिवसइ; अड्ढे जाव अपरिभूए ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे आइगरे गुणसिलए जाव विहरइ । परिसा णिग्गया ।

तए णं से मंकाई गाहावई इमीसे कहाए लद्धट्ठे जहा पण्णत्तीए गंगदत्ते, तहेव इमो वि जेट्ठपुत्तं कुडुंबे ठवित्ता पुरिससहस्स-वाहिणीए सीयाए णिक्खंते ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाव अणगारे जाए ईरियासमिए जाव गुत्तबंभयारी ।

तए णं से मंकाई अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ ।

सेसं जहा खंदयस्स । गुणरयणं तवोकम्मं सोलसवासाइं परियाओ तहेव विपुले सिद्धे । **(पढमं अज्झयणं)**

सूत्र २ :

आर्य सुधर्मा स्वामी–हे जम्बू ! उस काल उस समय में राजगृह नामक नगर था। वहां गुणशीलक नाम का चैत्य (उद्यान) था । उस नगर में श्रेणिक राजा राज्य करते थे ।

वहां मंकाई नाम का एक गाथापति रहता था। जो अत्यन्त समृद्ध और सबको आधारभूत यावत् अपरिभूत अर्थात् समाज में, जाति में जिसका कोई अपमान या तिरस्कार नहीं कर सके, ऐसा था ।

उस काल उस समय में धर्म की आदि करने वाले श्रमण भगवान महावीर गुणशीलक नामक उद्यान में पधारे ।

प्रभु का आगमन सुनकर जन परिषद् दर्शनार्थ एवं धर्मोपदेश श्रवणार्थ आई ।

मंकाई गाथापति ने भगवान के आगमन का वृत्तान्त सुना तो उनके दर्शन करने एवं धर्मोपदेश सुनने के लिये अपने घर से निकला । भगवान ने धर्मोपदेश दिया, जिसे सुनकर मंकाई गाथापति को संसार से वैराग्य हो गया। इसका सभी वर्णन भगवती सूत्र में वर्णित गंगदत्त श्रावक की तरह जानना चाहिए । अर्थात्–उसने अपने घर आकर अपने ज्येष्ठ पुत्र को घर का भार सौंपा और शिविका (पालकी) में बैठकर श्रमण दीक्षा अंगीकार करने हेतु भगवान की सेवा में आया ।

यावत् वह अणगार हो गया। ईर्या समिति आदि पांच समितियों से युक्त एवं गुप्तियों से गुप्त ब्रह्मचारी बन गया ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके बाद मंकाई मुनि ने श्रमण भगवान महावीर के गुणसम्पन्न तथारूप स्थविरों के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और स्कंदक के समान गुणरत्न संवत्सर तप का आराधन किया । (गुणरत्न संवत्सर तप का वर्णन गौतम अणगार के प्रकरण प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन में देखें ।)

सोलह वर्ष की दीक्षा पर्याय पाली और अन्त में विपुल गिरि पर स्कन्दक जी के समान ही संथारादि करके यावत् सिद्ध हो गये ।

(प्रथम अध्ययन समाप्त)

Chapter 1 : Mankāī

Maxim 2 :

Ārya Jambū asked *Śrī Sudharmā Swāmī*–O *Bhagawan* ! If *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra* has preached sixteen chapters of sixth section then what subject matter he told of first chapter ?

Ārya Sudharmā Swāmī began to narrate–O *Jambū* ! At that time and at that period, there was a city named *Rājagṛha*. In that city was *Guṇaśīlaka* garden. King *Śreṇika* was ruling over that city.

In that city *Maṅkāī* trader (*gāthāpati*) inhabited. He was too rich, like a support to all and was such that in society and clan none could disregard and dishonour him.

At that time and at that period, founder (promoter) of religion, *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra* came and stayed in *Guṇaśīlaka* garden.

Having heard of coming of *Prabhu* public congregation came and gathered for seeing and hearing his sermon.

When *Maṅkāī* trader heard about coming of *Bhagawāna* then he came out of his house to see and hear the sermon of *Prabhu*. *Bhagawāna* preached religious doctrines, hearing which *Maṅkāī* became disinclined to world and worldy pleasures. Its full description should be known like

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Gaṅgadatta śrāvaka (householder) which has been described in *Bhagawatī Sūtra* (16 – 5)–meaning–coming home he bestowed the full responsibility of home (family, trade etc.) to his eldest son and riding on a palanquin came in service (presence) of *Bhagawāna* for accepting consecration until he became houseless mendicant, circumspect by five circumspections viz., circumspection of movement etc., and practising three incognitoes of mind, speech and body, he became guarded celibate.

After that *Maṅkāī* monk studied *Sāmāyika* etc., eleven holy scriptures (*aṅgas*) from the elder sages of *Bhagawāna Mahāvīra* and practised *Guṇaratna saṁvatsara* penance. The description of this austerity should be known from first chapter of first section in the episode of *Gautama* houseless mendicant.

He practised consecration upto sixteen years, in the end of life accepted *saṁthārā* and attained salvation at *Vipula* mountain, like *Skandakajī*. **[First chapter concluded]**

द्वितीय अध्ययन

सूत्र ३ :

दोच्चस्स उक्खेवओ, किंकमे वि एवं चेव जाव विपुले सिद्धे ।

सूत्र ३ :

दूसरे अध्ययन में "किंकम" गाथापति का वर्णन है । वे भी मंकाई गाथापति के समान ही प्रभु महावीर के पास प्रव्रजित होकर विपुल गिरि पर सिद्ध, बुद्ध और सर्व दुःखों से मुक्त हो गये ।

Chapter 2

Maxim 3 :

In the second chapter there is the description of *Kiṁkama* trader. He also accepted consectration near (in presence of)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Bhagawāna Mahāvīra, like trader *Maṅkāī* and salvated at mountain *Vipula* until became free from all miseries.

[Second chapter concluded]

तृतीय अध्ययन

अर्जुन मालाकार (मुद्गरपाणि)

सूत्र ४ :

तच्चस्स उक्खेवओ । एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे गुणसिलए चेइए, सेणिए राया । चेल्लणा देवी ।

तत्थ णं रायगिहे णयरे अज्जुणए णामं मालागारे परिवसइ । अड्ढे जाव अपरिभूए । तस्स णं अज्जुणयस्स बंधुमई णामं भारिया होत्था । सुकुमाल पाणि-पाया ।

तस्स णं अज्जुणयस्स मालागारस्स रायगिहस्स णयरस्स बहिया एत्थ णं महं एगे पुप्फारामे होत्था । कण्हे जाव णिकुरंबभूए दसद्धवण्ण-कुसुमकुसुमिए, पासाइए ।

तस्स णं पुप्फारामस्स अदूरसामंते तत्थ णं अज्जुणयस्स मालागारस्स अज्जय-पज्जय-पिइपज्जयागए अणेगकुलपुरिस-परंपरागए मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्था ।

पोराणे दिव्वे, सच्चे जहा पुण्णभद्दे ।

तत्थ णं मोग्गरपाणिस्स पडिमा एगं महं पलसहस्स-णिप्फण्णं अयोमयं मोग्गरं गहाय चिट्ठइ ।

सूत्र ४ :

आर्य जम्बू–हे भगवन ! श्रमण भगवान महावीर ने छठे वर्ग के दूसरे अध्ययन का जो भाव कहा है वह मैंने सुना । अब तीसरे अध्ययन का प्रभु ने क्या अर्थ कहा है ? कृपाकर वह भी बताइये ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री सुधर्मा स्वामी–हे जम्बू ! उस काल में राजगृह नाम का नगर था, वहां गुणशीलक नामक उद्यान था. उस नगर में राजा श्रेणिक राज्य करते थे, उनकी रानी का नाम चेलना था ।

उस राजगृह नगर में अर्जुन नाम का एक माली था । वह धनी (आढ्य) तथा अपराभूत था । उसकी पत्नी का नाम बन्धुमती था, जो अत्यन्त सुन्दर और कोमल थी ।

उस अर्जुनमाली का राजगृह नगर के बाहर एक बड़ा पुष्पाराम (फूलों का बगीचा) था । वह बगीचा नीले एवं सघन पत्तों से आच्छादित होने के कारण आकाश में चढ़ी घनघोर घटाओ के समान श्यामकान्ति से युक्त प्रतीत होता था । उसमें पाँचों वर्णों के फूल खिले हुए थे । वह बगीचा हृदय को प्रसन्न एवं प्रफुल्लित करने वाला एवं बड़ा दर्शनीय था ।

उस पुष्पाराम यानी फुलवाड़ी के समीप ही मुद्गरपाणि नामक यक्ष का यक्षायतन (मन्दिर) था, जो उस अर्जुनमाली के पिता, पितामह आदि पूर्वजों से चली आई कुल परम्परा से सम्बन्धित था । वह पूर्णभद्र चैत्य के समान पुराना, दिव्य एवं सत्य प्रभाव वाला था ।

उसमें "मुद्गरपाणि" नामक यक्ष की एक प्रतिमा थी, जिसके हाथ में एक हजार पल-परिमाण (वर्तमान तोल के अनुसार लगभग ६२.५० सेर तदनुसार लगभग ५७ किलो) भार वाला लोहे का एक मुद्गर था ।

Chapter 3

ARJUNA Mudgarapāṇi

Maxim 4 :

Ārya Jambū said politely to *Ārya Sudharmā Swāmī*–O *Bhagawaa* ! I have heard the subject matter of second chapter from you, as described by *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra*. Now please tell me the subject matter of third chapter–what has he said ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Srī Sudharmā Swāmī began to narrate–O *Jambū* ! At that time and at that period there was a city named *Rājagṛha*. In that city was *Guṇaśīlaka* garden. King *Śreṇêka* was ruler of that city. Name of his chief queen was *Celaṇā*.

A gardener or garland maker, named *Arjuna* was the resident of that city. He was rich and unsurpasable. The name of his wife was *Bandhumatī*. She was tender and much beautiful.

That *Arjuna* garland-maker had a big flower-garden outside the city *Rājagṛha*. That garden was covered by dense blue leaves. So it seemed as the dense clouds in the sky. Flowers of five colours bloomed in it. So that garden was heart-pleasing eye-capturing and worth seeing.

Near that garden was a sanctuary of deity (god) *Yakṣa Mudgarapāṇi*. That deity had devolved upon him from a line of many ancestors of the family from father, grand father etc. Ancient, divine and true influensive, like the sanctuary of *Pūrṇabhadra* deity.

In that sanctuary there was an idol of deity (*Yakṣa*) *Mudgarapāṇi* having held the iron mace weighing one thousand *palas* (according to modern weights about 57 kilogram heavy) in his hand.

सूत्र ५ :

तए णं से अज्जुणए मालागारे बालप्पभिइं चेव मोग्गरपाणि-जक्खस्स भत्ते यावि होत्था । कल्लाकल्लिं पच्छिपिडगाइं गिण्हइ, गिण्हित्ता रायगिहाओ णयराओ पडिणिक्खमइ; पडिणिक्खमित्ता जेणेव पुप्फारामे तेणेव उवागच्छइ; उवागच्छित्ता पुप्फुच्चयं करेइ,

करित्ता; अग्गाइं वराइं पुप्फाइं गहाय जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स महरिहं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुप्फच्चयणं करेइ; करित्ता जाणुपायपडिए पणामं करेइ, करित्ता तओ पच्छा रायमग्गंसि वित्तिं कप्पेमाणे विहरइ ।

सूत्र ५ :

अर्जुनमाली बचपन से ही उस मुद्गरपाणि यक्ष का पक्का भक्त (अनन्य उपासक) था । प्रतिदिन बांस की छबड़ी (डलिया) लेकर वह राजगृह नगर से बाहर स्थित अपनी उस फुलवाड़ी में जाता और फूलों को चुन-चुनकर एकत्रित करता था।

फिर उन चुने हुए फूलों में से उत्तम-उत्तम फूलों से उस मुद्गरपाणि यक्ष की भक्ति भावपूर्वक अर्चना करता था और भूमि पर दोनों घुटने टेककर उसे प्रणाम करता था । इसके बाद राजमार्ग के किनारे बाजार में बैठकर उन फूलों को बेचकर अपनी आजीविका उपार्जन करता हुआ सुखपूर्वक वह अपना जीवन बिता रहा था ।

Maxim 5 :

Arjuna garland-maker from his childhood was fervent devotee of that deity. Every morning, he took bamboo basket, went out of the city *Rājagṛha*, arrived at his flower-garden, plucked and made collection of flowers.

Then he took the foremost and best flowers approached the sanctuary of deity *Mudgarapāṇi*, devotedly worshipped him, made the flower-offering of best quality, bowed falling over his knees and afterwards would go on highway and sitting there on a side, he would sell his flowers. Thus he was passing his life happily.

सूत्र ६ :

तत्थ णं रायगिहे णयरे ललिया णामं गोट्ठी परिवसइ, अड्ढा जाव अपरिभूया, जं कय-सुकया यावि होत्था ।

तए णं रायगिहे णयरे अण्णया कयाइं पमोए घुट्ठे यावि होत्था । तए णं से अज्जुणए मालागारे 'कल्लं पभूयतरएहिं पुप्फेहिं कज्ज' इति कट्टु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पच्चूसकालसमयंसि बंधुमईए भारियाए सद्धिं पच्छिपिडगाइं गिण्हइ गिण्हित्ता, सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता रायगिहं णयरं मज्झं मज्झेणं णिगच्छइ, णिगच्छित्ता जेणेव पुप्फारामे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बंधुमईए भारियाए सद्धिं पुप्फुच्चयं करेइ ।

गोष्ठिक पुरुषों का अनाचरण

सूत्र ६ :

उस राजगृह नगर में "ललिता" नाम की एक गोष्ठी (मित्र मण्डली) रहती थी जो अत्यन्त समृद्ध तथा अपराभूत–किसी से हार मानने वाली नहीं थी और जो वह कर दे वो ही ठीक है ऐसी आज्ञा भी उसे प्राप्त थी ।

(किसी समय नगर के राजा का कोई हित कार्य सम्पादन करने के कारण राज़ा ने उस मित्र मण्डली पर प्रसन्न होकर अभयदान दे दिया कि वे अपनी इच्छानुसार कोई भी कार्य करने में स्वतंत्र हैं । राज्य की ओर से उन्हें संरक्षण था, इस कारण यह गोष्ठी बहुत उच्छृंखल और स्वच्छन्द बन गई थी ।)

एक दिन राजगृह में एक प्रमोद=हर्ष उत्सव मनाने की घोषणा हुई । इस पर अर्जुनमाली ने अनुमान लगाया कि 'कल इस उत्सव के अवसर पर फूलों की बहुत भारी मांग होगी' इसलिये उस दिन वह प्रातःकाल जल्दी उठा और बांस की डलिया लेकर अपनी पत्नी बंधुमती के साथ जल्दी घर से निकलकर नगर में होता हुआ फुलवाड़ी में पहुँचा और अपनी पत्नी के साथ फूलों को चुन-चुनकर एकत्रित करने लगा ।

Maxim 6 :

Here in *Rājagṛha* city dwelt a bunch of friends, named *Lalitā*, which was very rich and unsurpassed *i.e.*, none can defeat that gang. That gang also possessed the royal mandate that 'what ever the members of this gang do is quite correct.'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(Perhaps this gang had done some good to the ruler of the city. Pleased he had passed such mandate that 'these gangsters are free to do as they like.' They had the patronage of the ruler. So this gang (members of gang) became quite free, mischievous and wicked.)

One day, in the city an announcement was made to celebrate a pleasure festival–ceremony. Then that garland-maker–gardener *Arjuna* thought that tomorrow the demand of flowers would be very much. Having this idea he awoke early in the morning that day and taking his bamboo-baskets, went out from house early with his wife *Bandhumati*, moving through the city reached his flower-garden. There, with his wife, he began to collect flowers, plucking from plants.

सूत्र ७ :

तए णं तीसे ललियाए गोट्ठीए छ गोट्ठिल्ला पुरिसा जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागया अभिरममाणा चिट्ठंति ।

तए णं से अज्जुणए मालागारे बंधुमईए भारियाए सद्धिं पुप्फुच्चयं करेइ; करित्ता अग्गाइं वराइं पुप्फाइं गहाय जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ ।

तए णं ते छ गोट्ठिल्ला पुरिसा अज्जुणयं मालागारं बंधुमईए भारियाए सद्धिं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता अण्णमण्णं एवं वयासी–एवं खलु देवाणुप्पिया ! अज्जुणए मालागारे बंधुमईए भारियाए सद्धिं इहं हव्वमागच्छइ; तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अज्जुणयं मालागारं अवओडय-बंधणयं करित्ता बंधुमईए भारियाए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणाणं विहरित्तए ।

त्ति कट्टु एयमट्ठं अण्णमण्णस्स पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता कवाडंतरेसु णिलुक्कंति, णिच्चला, णिप्फंदा, तुसिणीया पच्छण्णा चिट्ठंति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस समय पूर्वोक्त "ललिता" गोष्ठी के छः पुरुष मुद्गरपाणि यक्ष के यक्षायतन में आकर आमोद-प्रमोद एवं परस्पर खेल-कूद, हंसी-मजाक करने लगे ।

उधर अर्जुनमाली अपनी पत्नी बन्धुमती के साथ फूल संग्रह करके उनमें से उत्तम फूलों को लेकर मुद्गरपाणि यक्ष की पूजा करने के लिये यक्षायतन की ओर बढ़ा ।

उन छः गोष्ठिक पुरुषों ने अर्जुनमाली को बंधुमती भार्या के साथ यक्षायतन की ओर आते हुए देखा, देखकर परस्पर विचार विमर्श करके निश्चय किया–हे मित्रो ! यह अर्जुनमाली अपनी बंधुमती भार्या के साथ इधर ही आ रहा है। हम लोगों के लिए यह अच्छा अवसर है, कि ऐसे मौके पर इस अर्जुनमाली को तो औंधी मश्कियों (दोनों हाथों को पीठ पीछे) से बलपूर्वक बांधकर एक ओर पटक दें, और फिर इसकी इस सुन्दर स्त्री बंधुमती के साथ खूब मन इच्छित काम-क्रीड़ा करें ।

इस प्रकार परस्पर यह निश्चय करके वे छहों उस यक्षायतन के किवाड़ों के पीछे छिपकर खड़े हो गये और उन दोनों के यक्षायतन के भीतर प्रविष्ट होने की श्वास रोककर चुपचाप प्रतीक्षा करने लगे ।

Maxim 7 :

At that time the six members of *Lalitā* gang came to the shrine (sanctuary) of *Mudgarapāṇi* deity and began to enjoy rejoicings and merriments.

On other side, garland-maker *Arjuna* gathered flowers, taking best flowers moved towards the shrine with his wife *Bandhumatī*.

Six gangsters saw *Arjuna* coming to the shrine with his wife *Bandhumatī*. Seeing them, gangsters discussed with one-another and decided–Friends ! this garland-maker *Arjuna* is coming here with his wife *Bandhumatī*. It is a

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रक्रम २५ :

अर्जुन मालाकार उद्यान में

राजगृह के बाहर उद्यान में अर्जुन मालाकार अपनी पत्नी बन्धुमती के साथ सुबह-सुबह ही फूल चुनता है। तब वहाँ बैठे छह बदमाशों (गोष्ठिक पुरुषों) की नजर उसकी सुन्दर पत्नी पर पड़ी। वे वृक्षों की ओट में छिप गये और अपनी मनोकामना पूरी करने का मौका देखने लगे।

(वर्ग ६/अध्य. ३)

Illustration No. 25 :

Arjuna, the garland maker in his garden

Arjuna, the garland maker plucks flowers with his wife *Bandhumatī*, from his garden situated outside the city *Rajagṛaha*, early in the morning. Then six rascals (*gosthika* persons) saw his beautiful wife. They hid themselves behind trees and wished to seek chance to accomplish their evil desire.

(Sec. 6/Ch. 3)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

good opportunity for us, we must bind *Arjuna* fast–by twisting the arms and head and tying them to the back, fell him and then enjoy sexual pleasures according to our desire with his beautiful and tender wife *Bandhumatī*.

Thus deciding, all the six gangsters hid behind the doors of shrine, stood hidden and waited silently for them to come.

सूत्र ८ :

तए णं से अज्जुणए मालागारे बंधुमईए भारियाए सद्धिं जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता आलोए पणामं करेइ, करित्ता महरिहं पुप्फुच्चयणं करेइ; करित्ता, जाणुपायपडिए पणामं करेइ ।

तए णं ते छ गोट्ठिल्ला पुरिसा दवदवस्स कवाडंतरेहिंतो णिग्गच्छंति, णिग्गच्छित्ता, अज्जुणयं मालागारं गेण्हंति; गिण्हित्ता अवओडय-बंधणं करेंति, करित्ता बंधुमईए मालागारीए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति ।

तए णं तस्स अज्जुणयस्स मालागारस्स अयमज्झत्थिए समुप्पण्णे–एवं खलु अहं बालप्पभिइं चेव मोग्गरपाणिस्स भगवओ कल्लाकल्लिं जाव वित्तिं कप्पेमाणे विहरामि ।

तं जइ णं मोग्गरपाणि जक्खे इह सण्णिहिए होंते से णं किं ममं एयारूवं आवत्तिं पावेज्जमाणं पासंते ? तं णत्थि णं मोग्गरपाणि जक्खे इह सण्णिहिए सुव्वत्तंणं एस कट्ठे ।

सूत्र ८ :

इधर अर्जुनमाली अपनी बंधुमती भार्या के साथ यक्षायतन में प्रविष्ट हुआ और भक्तिपूर्वक प्रफुल्लित नेत्रों से मुद्गरपाणि यक्ष की ओर देखा प्रणाम किया । फिर चुने हुए उत्तमोत्तम फूल उस पर चढ़ाकर दोनों घुटने भूमि पर टेककर साष्टांग प्रणाम करने लगा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसी समय मौका देखकर शीघ्रता से उन छह गोष्ठिक पुरुषों ने किवाड़ों के पीछे से निकलकर अर्जुनमाली को पकड़ लिया और उसकी औंधी मुश्कें बांधकर उसे एक ओर पटक दिया। फिर उसकी पत्नी बंधुमती मालिन के साथ विविध प्रकार से काम-क्रीड़ा करने लगे ।

अपनी आँखों के सामने यह घोर दुराचार देखकर अर्जुनमाली के मन में यह विचार आया–देखो, मैं अपने बचपन से ही इस मुद्गरपाणि को अपना इष्टदेव मानकर इसकी प्रतिदिन भक्तिपूर्वक पूजा करता आ रहा हूँ । इसकी पूजा करने के बाद ही इन फूलों को बेचकर अपना जीवन-निर्वाह करता आ रहा हूँ ।

तो यदि मुद्गरपाणि यक्ष देव यहां वास्तव में ही होता तो क्या मुझे इस प्रकार विपत्ति में पड़ा देखकर चुप रहता ? इसलिए निश्चय ही मुद्गरपाणि यक्ष यहां नहीं है । यह तो मात्र काष्ठ का पुतला है ।

Maxim 8 :

Arjuna garland-maker entered the shrine of *Mudgarapāni* deity with his wife *Bandhumatī*, reverred and bowed down on seeing it, made flower-offerings and bowed down falling upon his knees.

In the meanwhile seeing best opportunity, all of a sudden, those six fellows came out from behind the doors, caught *Arjuna* garland-maker, bound him fast and made him fall aside. Then began to enjoy sexual pleasures to the fullest and by various postures and methods with *Bandhumatī*, the wife of *Arjuna* garland-maker.

Seeing such a mean misdeed (license) before his own eyes, such thoughts aroused in the mind of garland-maker *Arjuna*–Thus indeed, from my childhood, I go on reverring *Mudgarapāṇi* deity, considering as my favourite god. After its reverence, I carry on my business. Had there been deity *Mudgarapāṇi* really present, would he remain silent seeing me in such a tyranny ? Therefore

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रक्रम २६ :

गोष्ठिक पुरुषों द्वारा उपद्रव

दृश्य १—अर्जुन और उसकी पत्नी अपने कुल-देवता मुद्गरपाणि यक्ष की फूलों से अर्चना पूजा करने लगे तब वे छहों बदमाश किवाड़ों की ओट में छिप गये। मौका देखने लगे।

दृश्य २—मौका पाकर बदमाशों ने अर्जुन को पकड़ लिया, उसकी उल्टी मुश्कें बाँध दीं और लगे पत्नी के साथ दुराचार करने ·····।

(वर्ग ६/अध्य. ३)

Illustration No. 26 :

Misdeed by six rascals

Scene 1. When *Arjuna* and his wife began to worship their tutelary deity–*Mudgarapāṇi Yakṣa* (deity) offering him flowers, then all the six rascals hid themselves behind the door-leafs.

Scene 2. Getting chance rascals bound *Arjuna* and began to have sexual enjoyment with *Bandhumatī*.

(Sec. 6/Ch. 3)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

deity *Mudgarapāṇi* is not present here. It is only a puppet of wood.

सूत्र ९ :

तए णं से मोग्गरपाणिजक्खे अज्जुणयस्स मालागारस्स अयमेयारूवं अज्झत्थियं जाव वियाणित्ता, अज्जुणयस्स मालागारस्स सरीरयं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता तडतडस्स बंधाइं छिंदइ, छिंदित्ता तं पलसहस्सणिप्फण्णं अयोमयं मोग्गरं गिण्हइ, गिण्हित्ता ते इत्थिसत्तमे छ पुरिसे घाएइ ।

तए णं से अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा जक्खेणं अणाइट्ठे समाणे रायगिहस्स णयरस्स परिपेरंतेणं कल्लाकल्लिं इत्थिसत्तमे छ पुरिसे घाएमाणे विहरइ ।

सूत्र ९ :

तब मुद्गरपाणि यक्ष ने अर्जुनमाली के इस प्रकार के मनोभावों को जानकर उसके शरीर में प्रवेश किया और उसके बन्धनों को तड़ातड़ तोड़ डाला ।

अब उस मुद्गरपाणि यक्ष से आविष्ट उस अर्जुनमाली ने उस हजार पल भार वाले लोहमय मुद्गर को हाथ में लेकर घुमाया और अपनी बंधुमती भार्या सहित उन छहों गोष्ठिक पुरुषों को उस मुद्गर प्रहार से मार डाला ।

इस प्रकार इन सातों प्राणियों को मारकर मुद्गरपाणि यक्ष से आविष्ट (वशीभूत) वह अर्जुनमाली राजगृह नगर की बाहरी सीमा के पास चारों ओर ६ पुरुष और १ स्त्री–कुल मिलाकर ७ प्राणियों की प्रतिदिन हत्या करते हुए घूमने लगा ।

Maxim 9 :

Knowing such types of mental thoughts of *Arjuna* garland-maker deity *Mudgarapāṇi* entered in his body and shattered off his bonds.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Then *Arjuna* garland-maker, possessed by deity *Mudgarapāṇi* took hold of that iron mace weighing one thousand *palas* (about 57 kilogram heavy) holding in his hand moved round and killed those six gangsters,along with his wife *Bandhumatī*, by its strokes.

Thus killing those seven persons, that *Arjuna* garland-maker possessed by deity *Mudgarapāṇi*, began to move round about external boundary of *Rājagṛha* city killing six men and one woman everyday.

सूत्र १० :

तए णं रायगिहे णयरे सिंघाडग जाव महापहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ–एवं खलु देवाणुप्पिया ! अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा जक्खेणं अणाइट्ठे समाणे रायगिहे बहिया इत्थिसत्तमे छ पुरिसे घाएमाणे विहरइ ।

तए णं से सेणिए राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे कोडुंबियपुरिसं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी–

एवं खलु देवाणुप्पिया ! अज्जुणए मालागारे जाव घाएमाणे विहरइ । तं मा णं तुब्भे केइ तणस्स वा कट्ठस्स वा पाणियस्स वा, पुप्फफलाणं वा अट्ठाए सइरं णिगच्छउ । मा णं तस्स सरीरस्स वावत्ती भविस्सइ ।

त्ति कट्टु दोच्चं पि तच्चं पि घोसणं घोसेह; घोसित्ता खिप्पामेव ममेयं पच्चप्पिणह ।

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पच्चप्पिणंति ।

अर्जुन का आतंक

सूत्र १० :

उस समय राजगृह नगर के शृंगाटकों में, राजमार्गों आदि सभी स्थानों में, बहुत से लोग परस्पर इस प्रकार बोलने लगे–हे देवानुप्रियो ! अर्जुनमाली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुद्गरपाणि यक्ष के वशीभूत होकर राजगृह नगर के बाहर एक स्त्री और छह पुरुष, इस प्रकार सात व्यक्तियों को प्रतिदिन मारता हुआ घूम रहा है।

जब श्रेणिक राजा ने यह बात सुनी तो उन्होंने अपने सेवक पुरुषों को बुलाया और उनसे इस प्रकार कहा–

हे देवानुप्रियो ! राजगृह नगर के बाहर अर्जुनमाली यावत् छह पुरुषों और एक स्त्री इस प्रकार सात व्यक्तियों को प्रतिदिन मारता हुआ घूम रहा है। इसलिये तुम सारे नगर में मेरी आज्ञा को इस प्रकार प्रसारित करो कि कोई घास के लिये, काष्ठ, लकड़ी, पानी अथवा फल-फूल के लिये राजगृह नगर से बाहर न निकले। (यदि वे कहीं बाहर निकले तो ऐसा न हो कि) उनके शरीर का विनाश हो जाए।

हे देवानुप्रियो ! इस प्रकार दो-तीन बार घोषणा करके मुझे सूचित करो।

इस प्रकार राजाज्ञा पाकर राज्याधिकारियों ने राजगृह नगर में घूम-घूम कर उपर्युक्त राजाज्ञा की घोषणा की और घोषणा करके राजा को पुनः सूचित कर दिया।

Horror of Arjuna

Maxim 10 :

At that time, at the triangular paths, highways and all other open places of *Rājagṛha* city many people used to say to one another–O beloved as gods ! garland-maker *Arjuna*, being possessed by deity *Mudgarapāṇi*, is murdering six men and one woman–thus seven persons daily, moving outside the city *Rājagṛha*.

When king *Śreṇika* came to know about this, then he called his chamberlains and ordered them–

O beloved as gods ! *Arjuna* garland-maker, wandering outside *Rājagṛha* city is murdering 7 persons–six men and one woman everyday. Therefore you announce my order by these words–that no one should go out of city for taking

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

grass, wood, fuel, water and flowers, fruits etc. If any body goes out of the city, it is possible that his body may be destroyed *i.e.*, he may be murdered.

O beloved as gods ! Thus announce this declaration twice and thrice in whole city and report to me soon.

Then those chamberlains announced the royal mandate twice and thrice wandering in the whole city and reported to the king that his order had been carried out.

सूत्र ११ :

तत्थ णं रायगिहे णयरे सुदंसणे णामं सेट्ठी परिवसइ; अड्ढे जाव अपरिभूए । तए णं से सुदंसणे समणोवासए यावि होत्था । अभिगयजीवाजीवे जाव विहरइ ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसढे जाव विहरइ ।

तए णं रायगिहे णयरे सिंघाडग जाव महापहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ–जाव एगस्स वि आयरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए ?

सूत्र ११ :

उस राजगृह नगर में सुदर्शन नाम के एक सेठ रहते थे जो बहुत धनाढ्य यावत् अपराभूत थे । वे श्रमणोपासक थे और जीव-अजीव आदि नव तत्वों के ज्ञाता, यावत् श्रमणों को निर्दोष आहार आदि का प्रतिलाभ देने वाले थे ।

उस काल उस समय में श्रमण भगवान महावीर स्वामी विहार करते हुए राजगृह नगर में पधारे और बाहर उद्यान में ठहरे ।

भगवान के आगमन का समाचार सुनकर राजगृह नगर के शृंगाटक, राजमार्ग आदि स्थानों में बहुत से नागरिक लोग परस्पर इस प्रकार वार्तालाप करने लगे–(हे देवानुप्रियो) श्रमण भगवान महावीर स्वामी यहां पधारे हैं, जिनके नाम गोत्र के सुनने मात्र से भी महान पुण्य फल होता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, तो उनके दर्शन करने, वाणी सुनने तथा उनके द्वारा प्ररूपित धर्म का विपुल अर्थ ग्रहण करने से जो फल होता है, उसका तो कहना ही क्या? (वह तो अवर्णनीय है)।

Maxim 11 :

In that city *Rājagṛha* lived a richman named *Sudarśana*. He was too much wealthy and could not be surpassed by any one. He was worshipper of sages and well-versed in elements like soul and non-soul etc., giver of pure food-water etc., to monks.

At that time and at that period *Bhagawāna Mahāvīra*, wandering village to village, arrived in the city *Rājagṛha* and stayed in the garden situated outside of the city.

Having heard of the information about arrival of *Bhagawāna*, the numerous citizens of *Rājagṛha* city gathering at triangualar ways and highways said thus to one another–(O beloveds as gods) *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra* has arrived here. By hearing his name only one gets the fruits of great merit, then by seeing him, hearing his discourse and accepting the doctrines preached by him the fruit one gets, what to say about that ? (that cannot be described).

विवेचन

सुदर्शन सेठ के परिचय में–**अभिगय जीवाजीवे जाव विहरइ**–पाठ से, भगवती सूत्र २/५ में वर्णित श्रावकों के वर्णन अनुसार समझना चाहिए, यह सूचना दी गई है। उक्त स्थान पर श्रावक की धार्मिक विशेषताएं मनन करने योग्य हैं, जो इस प्रकार हैं–

"वे श्रमणोपासक–श्रावक थे और जीव-अजीव के अतिरिक्त पुण्य और पाप के स्वरूप को भी जानते थे। इसी प्रकार आस्रव, संवर, निर्जरा, क्रिया (कर्मबंध की कारणभूत पच्चीस प्रकार की क्रियाओं), अधिकरण (कर्मबंध का साधन–शस्त्र) तथा बंध और मोक्ष के स्वरूप के भी ज्ञाता थे। किसी भी कार्य में वे दूसरों की सहायता की अपेक्षा नहीं रखते थे। निर्ग्रन्थ प्रवचन में इतने दृढ़ थे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि देव, असुर, यक्ष, राक्षस आदि भी उन्हें निर्ग्रन्थ प्रवचन से विचलित नहीं कर सकते थे। उन्हें निर्ग्रन्थ प्रवचन में शंका, कांक्षा, विचिकित्सा (फल में सन्देह) नहीं थी । उन्होंने शास्त्र के परमार्थ को समझ लिया था । वे शास्त्र का अर्थ–रहस्य निश्चित रूप से धारण किए हुए थे। उन्होंने शास्त्र के सन्देहजनक स्थलों को ज्ञानियों से पूछकर उनका विशेष रूप से निर्णय कर लिया था । उनकी हड्डियाँ और मज्जा सर्वज्ञ देव के धर्म-अनुराग से अनुरक्त हो रही थीं । निर्ग्रन्थ प्रवचन पर उनका अटूट प्रेम था । उनकी ऐसी श्रद्धा थी कि–आयुष्मन् ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही सत्य है, परमार्थ है, परम सत्य है, अन्य सब अनर्थ (असत्यरूप) हैं। उनकी उदारता के कारण उनके भवन के दरवाजे की अर्गला ऊँची रहती थी, अर्थात् द्वार सबके लिये खुला रहता था । वे जिसके घर में या अन्तःपुर में जाते उसमें प्रीति एवं विश्वास उत्पन्न किया करते थे । वे शीलव्रत (पाँचों अणुव्रत), गुणव्रत, विरमण (रागादि से निवृत्ति), प्रत्याख्यान, पौषध, उपवास आदि का पालन करते तथा चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन परिपूर्ण पौषधव्रत किया करते थे । श्रमणों निर्ग्रन्थों को निर्दोष अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार, वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण, पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक, औषध और भेषज आदि का दान करते हुए महान् लाभ प्राप्त करते थे, तथा स्वीकार किये तप-कर्म के द्वारा अपनी आत्मा को भावित–वासित करते हुए विचरण कर रहे थे ।

Elucidation

In the introduction of *Śudarśana* words are given in original text *abhigaye jīvājīve java viharaī*. By these words should be understood the life and conduct of house-holders as described in *Bhagawatī Sūtra* (2/5). The special religious faculties are to be considered deeply. These are as follows and *Sudarśana Śreṣṭhī* was opulent with all these qualities.

He was worshipper of sages and religious, virtuous house-holder. Beside the knower of soul and non-soul he was also well versed in conception of merits and demerits. In the same way, he was conversant about influx of *karmas*, checking of *karmas*, shedding off *karmas*, activities (causes of bondage of *karmas*–twentyfive types of activities), supports (means of *karma*-bondage) and the concept of bondage of *karmas* and salvation. He did not seek assistance of any other in any work. He was so firmly steady in Jain doctrines (*Nirgrantha pravacana*–preachings of *tīrthaṁkaras)* that even gods, semigods, deities, demons etc., could not distract him. He had neither doubt nor desire and no suspense about the fruits of religion and religious activities. He had grasped the ultimte meaning of holy scriptures. He had retained the secret meanings of scriptures in a definite way. He had specially decided the suspicious points of

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

scriptures, enquiring from wise persons. His veins and bones were engrossed with the religious affection of omniscient's preachings. He had unbreakable love toward preachings of *tirthaṁkara*. He had such faith that the preachings of *Arihanta* are true, ultimate truth, out-topping and all others are without base (*untrue*). On account of his generosity the door-bolt of his house remained always high meaning his door always remained open for all. Whenever he entered any body's house and even in his seraglio, he generated love and trust in him. He observed householder's five small vows, virtuous vows and disinclination to attachment, refutation (*pratyākhyāna*), *pauṣadha*, fast penance etc., and full *pauṣadha* on the eighth, fourteenth, and fifteenth days of the lunar month. He earned advantage by giving faultless food, water, eatables, tasty things, cloths, utensils, blanket, duster (*rajoharaṇa*), *pīṭha*, *phalaka*, bed, *saṁsatāraka*, medicine etc., to sages. He used to purify his soul by practising the accepted penanaces etc.

Life of *Sudarśan* was opulent with these ideal virtues of a religious householder.

सूत्र १२ :

तए णं तस्स सुदंसणस्स बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म अयं अज्झत्थिए जाव समुप्पण्णे ।

एवं खलु समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ । तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि, णमंसामि ।

एवं संपेहेइ संपेहित्ता जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं जाव एवं वयासी–एवं खलु अम्मयाओ ! समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ । तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि णमंसामि जाव पज्जुवासामि ।

तए णं तं सुदंसणं सेट्ठिं अम्मापियरो एवं वयासी–एवं खलु पुत्ता ! अज्जुणए मालागारे जाव घाएमाणे विहरइ, तं मा णं तुमं पुत्ता ! समणं भगवं महावीरं वंदए णिगच्छाहि, मा णं तव सरीरयस्स वावत्ती भविस्सइ ।

तुमं णं इहगए चेव समणं भगवं महावीरं वंदाहि णमंसाहि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तए णं सुदंसणे सेट्ठी अम्मापियरं एवं वयासी–

किण्णं अहं अम्मयाओ ! समणं भगवं महावीरं इहमागयं इह पत्तं इह समोसढं इह गए चेव वंदिस्सामि णमंसिस्सामि ? तं गच्छामि णं अहं अम्मयाओ !

तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणं भगवं महावीरं वंदामि जाव पज्जुवासामि ।

सूत्र १२ :

उस दिन बहुत से नागरिकों के मुख से राजगृह में भगवान् के पधारने का समाचार सुनकर उस सुदर्शन सेठ के मन में इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ–

निश्चय ही, श्रमण भगवान महावीर नगर में पधारे हैं, और बाहर गुणशीलक उद्यान में विराजमान हैं, इसलिये मैं जाऊँ और उन श्रमण भगवान महावीर को वन्दन नमस्कार करूँ ।

ऐसा सोचकर सुदर्शन अपने माता-पिता के पास आये और हाथ जोड़कर इस प्रकार बोले–हे माता-पिता ! श्रमण भगवान महावीर स्वामी नगर के बाहर उद्यान में विराज रहे हैं, अतः मैं चाहता हूँ कि उनकी सेवा में जाऊँ और उन्हें वन्दन नमस्कार करूँ ।

सुदर्शन के मुख से यह बात सुनकर माता-पिता ने इस प्रकार कहा–हे पुत्र ! इस नगर के बाहर अर्जुनमाली छह पुरुष और एक स्त्री इस तरह सात व्यक्तियों को नित्य प्रति मारता हुआ घूम रहा है । इसलिए हे पुत्र ! तुम श्रमण भगवान महावीर को वंदन करने के लिए नगर के बाहर मत निकलो । नगर के बाहर निकलने से संभव है, तुम्हारे शरीर को कोई हानि हो जाये इसलिये यही अच्छा है कि तुम यहीं से श्रमण भगवान महावीर को वन्दन नमस्कार कर लो ।

तब सुदर्शन सेठ अपने माता-पिता से इस प्रकार बोले–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हे माता-पिता ! जब श्रमण भगवान महावीर यहां नगर में पधारे हैं। बाहर उद्यान में विराजे हैं, धर्म सभा में समवसृत हुए हैं तो मैं उनको यहीं से वंदना नमस्कार करूँ, यह कैसे हो सकता है ?

इसलिये माता-पिता ! आप मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं वहीं जाकर श्रमण भगवान महावीर को वन्दना करूँ, नमस्कार करूँ, यावत् उनकी पर्युपासना करूँ ।

Maxim 12 :

Thus having heard the news of arrival of *Bhagawāna* outside *Rājagṛha* city, from many persons, such thoughts aroused in the mind of *Sudarśana Śreṣṭhī*.

Definitely, *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra* has come to *Rājagṛha* and is staying in *Guṇaśīlaka* garden, which is situated out of city. Therefore I should go and bow down and worship him.

Thinking such, *Sudarśana* came to his parents and with folded hands spoke thus unto them–O parents ! *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra* has been staying in the garden, outside of city. Hence I intend to go in his service and should bow down and worship him.

Hearing this, parents said to *Sudarśana*–O beloved son ! out of the city *Arjuna* garland-maker murdering seven persons–six men and one woman everyday, is wandering. So our beloved son ! You must not go out of city for bowing down and worshipping *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra.* If you go out of city, it is possible that your body may be injured. Therefore it is better that you bow down and worship *Bhagawāna* from here.

Then *Sudarśana* said to his parents–When *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra* has come here and staying in the garden outside of city, then how it is possible that I bow down and worship him from here ? So, O parents ! Please allow me that I go there and bow down, worship and serve him.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र १३ :

तए णं तं सुदंसणं सेट्ठिं अम्मापियरो जाहे णो संचायंति, बहूहिं आघवणाहिं जाव परूवेत्तए ।

तए णं से अम्मापियरो ताहे अकामया चेव सुदंसणं सेट्ठिं एवं वयासी–

अहासुहं देवाणुप्पिया !

तए णं से सुदंसणे सेट्ठी अम्मापिईहिं अब्भणुण्णाए समाणे ण्हाए सुद्धप्पावेसाइं जाव सरीरे, सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता, पायविहारचारेणं रायगिहं णयरं मज्झं मज्झेणं णिगच्छइ, णिगच्छित्ता मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणस्स अदूरसामंतेणं जेणेव गुणसिलए चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

तए णं से मोग्गरपाणिजक्खे सुदंसणं समणोवासयं अदूरसामंतेणं वीईवयमाणं पासइ, पासित्ता आसुरत्ते तं पलसहस्सणिप्फण्णं अयोमयं मोग्गरं उल्लालेमाणे उल्लालेमाणे जेणेव सुदंसणे समणोवासए तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

सूत्र १३ :

उस सुदर्शन सेठ को माता-पिता जब अनेक प्रकार की युक्तियों से भी नहीं समझा सके, तब माता-पिता ने अनिच्छापूर्वक इस प्रकार कहा–

हे पुत्र ! फिर जिस प्रकार तुम्हें सुख उपजे वैसा करो !

इस प्रकार सुदर्शन सेठ ने माता-पिता से आज्ञा प्राप्त करके स्नान किया और धर्मसभा में जाने योग्य शुद्ध वस्त्र धारण किये । फिर अपने घर से निकला और पैदल ही राजगृह नगर से चलकर मुद्गरपाणि यक्ष के यक्षायतन से न अति दूर और न अति निकट से होते हुए गुणशीलक उद्यान की ओर, जहां श्रमण भगवान महावीर विराजते थे, उधर बढ़ने लगे ।

सुदर्शन सेठ को अपने यक्षायतन के पास से निकलते देखकर वह मुद्गरपाणि यक्ष (यक्षाविष्ट अर्जुन मालाकार) बड़ा क्रुद्ध हुआ । वह अपने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हजार पल के वजन वाले लोह मुद्गर को घुमाते हुए उसकी ओर आने लगा ।

Maxim 13 :

When parents could not prevail upon and could not stop *Sudarśana*, by many devices and declarations then unwillingly they said–O son ! Do, as you feel happy.

Thus getting permission of parents, *Sudarśana Sreṣṭhī* bathed and put on clean clothes fit for religious assembly. Then he went out from his house. Walking on-foot he went out of *Rājagṛha* city. Passing not too far nor too near from sanctuary of *Mudgarapāni* deity he began to go to *Guṇasīlaka* garden, where *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra* was staying.

Visualising *Sudarśana Śreṣṭhī* passing nearby his sanctuary that *Mudgarapāni* deity (garland-maker *Arjuna* possessed by deity) became very much angry. Brandishing his iron mace weighing one thousand *palas* (57 kilogram), he walked forward towards him.

सूत्र १४ :

तए णं से सुदंसणे समणोवासए मोग्गरपाणिं जक्खं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता अभीए, अतत्थे, अणुव्विग्गे, अक्खुब्भिए, अचलिए, असंभंते, वत्थंतेणं भूमिं पमज्जइ, पमज्जित्ता करयल परिग्गहियं सिरसावत्तं दसनहं अंजलिं मत्थए कट्टु एवं वयासी–णमोत्थु णं अरिहंताणं भगवंताणं जाव संपत्ताणं ।

णमोत्थुणं समणस्स जाव संपाविउकामस्स ।

पुव्विं च णं मए भगवओ महावीरस्स अंतिए थूलए पाणाइवाए पच्चक्खाए जावज्जीवाए-थूलए मुसावाए, थूलए अदिण्णादाणे, सदारसंतोसे कए जावज्जीवाए, इच्छापरिमाणे कए जावज्जीवाए तं इयाणिं पि णं तस्सेव अंतियं सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, सव्वं मुसावायं, सव्वं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अदिण्णादाणं, सव्वं मेहुणं, सव्वं परिग्गहं पच्चक्खामि जावज्जीवाए। सव्वं कोहं जाव मिच्छादंसणसल्लं पच्चक्खामि जावज्जीवाए। सव्वं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं चउव्विहं पि आहारं पच्चक्खामि जावज्जीवाए।

जइ णं एत्तो उवसग्गाओ मुच्चिस्सामि तो मे कप्पइ पारेत्तए। अह णं एत्तो उवसग्गाओ न मुच्चिस्सामि तओ मे तहा पच्चक्खाए चेव त्ति कट्टु सागारं पडिमं पडिवज्जइ।

सुदर्शन का सागारी प्रतिमा ग्रहण

सूत्र १४ :

उस समय उस क्रुद्ध मुद्गरपाणि यक्ष को अपनी ओर आता देखकर सुदर्शन श्रमणोपासक वहीं ठहर गये। मृत्यु की संभावना को जानकर भी किंचित् भी—भय, त्रास, उद्वेग अथवा क्षोभ को प्राप्त नहीं हुए। उनका हृदय तनिक भी विचलित अथवा भयाक्रान्त नहीं हुआ। उन्होंने निर्भय होकर अपने वस्त्र के अंचल से भूमि का प्रमार्जन किया। फिर पूर्व दिशा की ओर मुँह करके बैठे। बैठकर बाएं घुटने को ऊँचा किया और दोनों हाथ जोड़कर मस्तक पर अंजलि पुट रखा। इसके बाद इस प्रकार बोले—नमस्कार हो अरिहन्त भगवान यावत् मोक्ष प्राप्त सिद्धों को।

नमस्कार हो श्रमण यावत् भविष्य में मुक्ति पाने वाले प्रभु महावीर को।

मैंने पहले श्रमण भगवान महावीर के पास स्थूल प्राणातिपात का आजीवन त्याग (प्रत्याख्यान) किया, स्थूल मृषावाद का त्याग किया, स्थूल अदत्तादान का त्याग किया, स्वदार-सन्तोष और इच्छा-परिमाण रूप स्थूल परिग्रह विरमण व्रत जीवन-भर के लिये ग्रहण किया, अब उन्हीं भगवान महावीर स्वामी की साक्षी से संपूर्ण प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और सम्पूर्ण परिग्रह का सर्वथा आजीवन त्याग करता हूँ। क्रोध, मान, माया, लोभ यावत् मिथ्यादर्शन शल्य तक १८ पापस्थानों का भी सर्वथा आजीवन त्याग करता हूँ। सब प्रकार का अशन, पान, खादिम और स्वादिम इन चारों प्रकार के आहार का त्याग करता हूँ!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रक्रम २७ :

सुदर्शन पर आक्रमण

दृश्य १—सुनसान वीरान मार्ग पर सुदर्शन को अकेला आता देखकर मुद्गरपाणि यक्षावेष्ठित अर्जुन मुद्गर घुमाता हुआ उसे मारने के लिए दौड़ा।

दृश्य २—उस मुद्गरपाणि का उपसर्ग देखकर सुदर्शन ने भूमि साफ करके, एक घुटना टेककर भगवान महावीर का स्मरण किया, वन्दना की और सागारी संथारा ग्रहण कर लिया। सुदर्शन के तेज प्रभाव के समक्ष अर्जुन स्तंभित-सा रह गया। मुद्गर ऊपर उठा रह गया।

(वर्ग ६/अध्य. ३)

Illustration No. 27 :

Aggression against *Sudarśana*

Scene 1. Finding *Sudarśana* coming on lonely path, murderer *Arjuna*, possessed by deity *Mudagarapāṇi* embellishing his mace ran to kill him.

Scene 2. Finding *Arjuna* coming towards him, *Sudarśana*, sitting down on ground remembered *Bhagawāna Mahāvīra*, bowed down to him and accepted *Sāgārī Saṁthārā*. Due to the influence of *Sudarśana*, *Arjuna* was stunned. Upward mace remained upward.

(Sec. 6/Ch. 3)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदि मैं इस घोर उपसर्ग से बच गया तो मुझे इस त्याग का पारणा करना कल्पता है । पर यदि इस उपसर्ग से न बच सकूँ तो मुझे इस प्रकार का सम्पूर्ण त्याग यावज्जीवन के लिए है ।

ऐसा निश्चय करके उन सुदर्शन सेठ ने उपर्युक्त प्रकार से सागारी-पडिमा अनशन व्रत धारण कर लिया ।

Acceptance of Sāgārī Pratimā by Sudarśana

Maxim 14 :

As *Sudarśana* householder saw that angry *Mudgarapāṇi* deity coming to him, he stopped at the place, he was. Though death was in front of him but he felt no fear neither sorrow. His heart was not frightened a bit but remained unafraid, unterrified, unalarmed, undisturbed, unmoved and unperturbed. He fearlessly cleansed the ground by the flap of his garment and sat down facing east direction, made his left knee upward, folding both the hands put on his forehead, After that spoke thus–

Homage to *Arihanta Bhagawāna* and all emancipated. *Homage to Śramaṇa* and all *to be emancipated in future Lord Mahāvīra.*

Even before, in presence of *Śramaṇa Bhagwāna Mahāvīra* I have accepted the vows of gross non-violence, truth, non-stealing, satisfaction in my own wife and limiting the desire of possessions–for my whole life. Now even, considering the presence of the same *Bhagawāna Mahāvīra*, I accept the full (great) vows of non-violence, truth, non-stealing, celibacy and non-possession. I also completely renounce anger, pride, deceit, greed, until false belief–eighteen types of sins for whole life. I also renounce all the four kinds of meals–food, water, eatables and nutrients (dainties)–for whole life.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

If I be delivered from this calamity, it behoves me to follow it up; if I be not delivered from this calamity, I have already renounced all these.

Decided such, *Sudarśana Śreṣṭhī*, accepted *Sāgārī Paḍimā*, fast penance in aforesaid manner.

सूत्र १५ :

तए णं से मोग्गरपाणि जक्खे तं पलसहस्स-णिप्फण्णं अयोमयं मोग्गरं उल्लालेमाणे उल्लालेमाणे जेणेव सुदंसणे समणोवासए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता नो चेव णं संचाएइ सुदंसणं समणोवासयं तेयसा समभिपडित्तए ।

तए णं से मोग्गरपाणिजक्खे सुदंसणं समणोवासयं सव्वओ समंताओ परिघोलेमाणे परिघोलेमाणे जाहे नो चेव णं संचाएइ सुदंसणं समणोवासयं तेयसा समभिपडित्तए ।

ताहे सुदंसणस्स समणोवासयस्स पुरओ सपक्खिंख सपडिदिसिं ठिच्चा सुदंसणस्स समणोवासयं अणिमिसाए दिट्ठीए सुचिरं णिरिक्खइ ।

णिरिक्खित्ता अज्जुणयस्स मालागारस्स सरीरं विप्पजहाइ; विप्पज्जहित्ता तं पलसहस्सणिप्फण्णं अयोमयं मोग्गरं गहाय जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए ।

उपसर्ग निवारण

सूत्र १५ :

इधर वह मुद्गरपाणि यक्ष उस हजार पल के लोहमय मुद्गर को घुमाता-उछालता हुआ जहां सुदर्शन श्रमणोपासक था, वहां आया । परन्तु सुदर्शन श्रमणोपासक को अपने तेज से अभिभूत नहीं कर सका अर्थात् उसे किसी प्रकार से कष्ट नहीं पहुँचा सका ।

मुद्गरपाणि यक्ष सुदर्शन श्रावक के चारों ओर घूमता रहा और जब उसको अपने तेज से पराजित नहीं कर सका, उस पर मुद्गर नहीं उठा सका,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तब सुदर्शन श्रमणोपासक के बिल्कुल सामने खड़ा हो गया और अनिमेष दृष्टि से बहुत देर तक उन्हें देखता रहा ।

इसके बाद उस मुद्गरपाणि यक्ष ने सुदर्शन के तेज से पराजित होकर अर्जुनमाली के शरीर को छोड़ दिया और उस हजार पल वाले लौहमय मुद्गर को लेकर जिस दिशा से आया था, उसी दिशा की ओर चला गया ।

End of Trouble

Maxim 15 :

That *Mudgarapāṇi* deity came to the sage-worshipper *Sudarśana* brandishing his iron mace weighing one thousand *palas*. But he could not overpower him, meaning could not hurt him.

Mudgarapāṇi deity moved oft and on round about *Sudarśana* sage-worshipper and when could not overpower him by his strength, could not even raise his mace upon him, then he stood in front of *Sudarśana* sage-worshipper and began to gaze him with unwinking eyes for a long time.

Thereafter overpowered by the spiritual strength of *Sudarśana*, that *Mudgarapāṇi* deity, left the body of *Arjuna* garland-maker and taking his iron mace weighing one thousand *palas* returned to the direction from which he had come.

सूत्र १६ :

तए णं से अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा जक्खेणं विप्पमुक्के समाणे धस त्ति धरणियलंसि सव्वंगेहिं णिवडिए ।

तए णं से सुदंसणे समणोवासए णिरुवसग्गमिति कट्टु पडिमं पारेइ ।

तए णं से अज्जुणए मालागारे तओ मुहुत्तंतरेणं आसत्थे समाणे उट्ठेइ; उट्ठित्ता सुदंसणं समणोवासयं एवं वयासी–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! के ? कहिं वा संपत्थिया ?"

तए णं से सुदंसणे समणोवासए अज्जुणयं मालागारं एवं वयासी–

एवं खलु देवाणुप्पिया ! अहं सुदंसणे णामं समणोवासए, अभिगयजीवाजीवे गुणसिलए चेइए समणं भगवं महावीरं वंदिउं संपत्थिए ।

सूत्र १६ :

मुद्गरपाणि यक्ष से मुक्त होते ही वह अर्जुन मालाकार "धस" इस प्रकार के शब्द के साथ धड़ाम से भूमि पर गिर पड़ा ।

तब सुदर्शन श्रमणोपासक ने स्वयं को उपसर्ग मुक्त हुआ जानकर सागारी त्याग-प्रत्याख्यान रूपी अपनी प्रतिज्ञा को पाला (और अपना ध्यान खोला)। इधर वह अर्जुन मालाकार मुहूर्त भर (कुछ समय) के पश्चात् आश्वस्त एवं स्वस्थ होकर उठा और सुदर्शन श्रमणोपासक को सामने देखकर इस प्रकार बोला–हे देवानुप्रिय ! आप कौन हो, तथा कहां जा रहे हो ?

यह सुनकर सुदर्शन श्रमणोपासक अर्जुनमाली से इस प्रकार बोला–हे देवानुप्रिय ! मैं जीवादि नौ तत्वों का ज्ञाता सुदर्शन नाम का श्रमणोपासक हूँ और गुणशीलक उद्यान में श्रमण भगवान महावीर को वंदन नमस्कर करने जा रहा हूँ ।

Maxim 16 :

Abandoned by *Mudgarapāṇi* deity the garland-maker *Arjuna* fell on the ground with the sound of '*dhus*' with all his limbs.

Then *Sudarśana* sage-worshipper, finding himself free from calamity, completed his resolve of *Sāgārī* renouncements and refutals. He also completed his meditation.

Then that *Arjuna* garland-maker, on coming back to senses after awhile got up and seeing *Sudarśana* in front he spoke thus to him–O beloved as gods ! Who are you and where are you going ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुदगर पाणे
यक्ष का पलायन

अर्जुन ने वन्दना की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रक्रम २८ :

यक्ष पराभूत और अर्जुन को उद्‌बोधन

दृश्य १—सुदर्शन के तेज प्रभाव से परास्त हुआ मुद्‌गरपाणि यक्ष अर्जुन की देह से निकलकर भाग गया। अर्जुन भूमि पर धड़ाम से गिर पड़ा। तब सुदर्शन ने मधुर वचनों से पुकारते हुए उसे उठाया और सान्त्वना दी।

दृश्य २—अर्जुन के पूछने पर सुदर्शन ने बताया—मैं अपने धर्मगुरु भगवान महावीर की वन्दना करने जा रहा हूँ। अर्जुन ने कहा—मैं भी इन महापुरुष की वन्दना करके अपने घोर पापों का प्रायश्चित्त करना चाहता हूँ।

(वर्ग ६/अध्य. ३)

Illustration No. 28 :

Deity defeated and awakening of *Arjuna*

Scene 1. Defeated by the spiritual influence of *Sudarśana*, deity *Mudgarapāṇi* left the body of *Arjuna* and went away. *Arjuna* fell down on earth all of a sudden. Then *Sudarśana* picked him up and with sweet words consoled him.

Scene 2. When *Arjuna* asked *Sudarśana*, he told—I am going to bow down to my religious preacher *Bhagawāna Mahāvīra*. *Arjuna* also expressed his wish that he also wanted to bow down to *Bhagawāna* and repent for his severe sins.

(Sec. 6/Ch. 3)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Hearing these words *Sudarśana* spoke thus to *Arjuna* garland-maker–O beloved as gods ! I am, knower of nine elements, *Sudarśana* sage-worshipper. I am going to garden *Guṇaśīlaka*, to offer my respects to *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra*.

सूत्र १७ :

तए णं से अज्जुणए मालागारे सुदंसणं समणोवासयं एवं वयासी–तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! अहमवि तुमए सद्धिं समणं भगवं महावीरं वंदित्तए जाव पज्जुवासित्तए ।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह !

तए णं से सुदंसणे समणोवासए अज्जुणएणं मालागारेणं सद्धिं जेणेव गुणसिलए चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ; उवागच्छित्ता अज्जुणए णं मालागारेणं सद्धिं समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो जाव पज्जुवासइ ।

तए णं समणे भगवं महावीरे सुदंसणस्स समणोवासयस्स अज्जुणयस्स मालागारस्स तीसे य महइमहालियाए परिसाए मज्झगए विचित्तं धम्ममाइक्खइ । सुदंसणे पडिगए ।

अर्जुन भगवद् शरण में

सूत्र १७ :

यह सुनकर अर्जुनमाली सुदर्शन श्रमणोपासक से इस प्रकार बोला–हे देवानुप्रिय ! मैं भी तुम्हारे साथ श्रमण भगवान महावीर की वन्दना नमस्कार करना यावत् सेवा करना चाहता हूँ ।

श्रेष्ठी सुदर्शन ने कहा–हे देवानुप्रिय ! जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो । विलम्ब मत करो !

इसके बाद वह सुदर्शन श्रमणोपासक अर्जुनमाली के साथ जहां गुणशीलक उद्यान में श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, वहां आया और अर्जुनमाली के साथ श्रमण भगवान महावीर को तीन बार प्रदक्षिणा पूर्वक वन्दन-नमस्कार कर उनकी सेवा करने लगा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने सुदर्शन श्रमणोपासक, अर्जुनमाली (और उस विशाल सभा के सम्मुख) धर्म देशना दी। सुदर्शन धर्म देशना सुनकर अपने घर लौट गया ।

Arjuna under the refuge of Bhagawāna

Maxim 17 :

Hearing this *Arjuna* garland-maker said to *Sudarśana* sage-worshipper–O beloved as gods ! I too want to accompany you and bow down and worship *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra.*

Sudarśana accorded–Do as you feel happy. But do not delay.

Thereafter *Arjuna* with *Sudarśana* reached *Guṇaśīlaka* garden. There he thrice bowed down and worshipped *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra.*

Then *Bhagawāna Mahāvīra* bestowed sermon to *Arjuna*, *Sudarśana* and huge public congregation. Listening sermon, *Sudarśana* returned to his home.

सूत्र १८ :

तए णं से अज्जुणए मालागारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ एवं वयासी–सद्दहामि णं भंते ! णिग्गंथं पावयणं जाव अब्भुट्ठेमि ।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह !

तए णं से अज्जुणए मालागारे उत्तर पुरच्छिमे दिसिभाए अवक्कमइ; अवक्कमित्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ; करित्ता जाव अणगारे जाए जाव विहरइ ।

तए णं से अज्जुणए अणगारे जं चेव दिवसं मुण्डे जाव पव्वइए । तं चेव दिवसं समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ; वंदित्ता णमंसित्ता इमं एयारूवं अभिग्गहं उग्गिण्हइ–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रक्रम २९ :

भगवान महावीर की शरण में अर्जुन

दृश्य १—सुदर्शन के साथ अर्जुन मालाकार भी भगवान महावीर के समवसरण में आया। धर्म उपदेश सुना। अपने दुष्कर्मों पर पश्चात्ताप करते हुए उसने भगवान से प्रार्थना की—"भन्ते ! मेरे उद्धार और कल्याण का मार्ग बताइए।"

दृश्य २—भगवान महावीर द्वारा बताये हुए क्षमा एवं तप मार्ग को स्वीकार कर हत्यारा अर्जुन अब अणगार अर्जुन बन गया। भगवान के समक्ष हाथ जोड़कर उसने जीवनभर बेले-बेले (दो-दो दिन का उपवास) तप का संकल्प लिया और अपने कृत पापों का प्रक्षालन करने में जुट गया।

(वर्ग ६/अध्य. ३)

Illustration No. 29 :

Arjuna in the patronage of *Bhagawāna Mahāvīra*

Scene 1. Arjuna also went to the religious congregation of *Bhagawāna Mahāvīra* with *Sudarśana*. He listened religious discourse. Repenting for his sins *Arjuna* prayed to *Bhagawāna*—"*Bhante* ! Tell me the path of my reformation and deliverance."

Scene 2. Accepting the path of forgiveness and peace, as told by *Bhagawāna Mahāvīra*, murderer *Arjuna* became a houseless mendicant. Folding his hands to *Bhagawāna*, he accepted the *Bele-Bele* (two days' fast, only on third day to take food) penance for whole life, and began to shed off fruit of all his misdeeds.

(Sec. 6/Ch. 3)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कप्पइ मे जावज्जीवाए छट्ठं छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणस्स विहरित्तए ।

त्ति कट्टु अयमेयारूवं अभिग्गहं उग्गिण्हइ; उग्गिण्हित्ता जावज्जीवाए जाव विहरइ ।

सूत्र १८ :

तब अर्जुनमाली श्रमण भगवान महावीर के पास धर्मोपदेश सुनकर एवं हृदय में धारण कर बड़ा प्रसन्न हुआ, संतुष्ट हुआ। प्रभु महावीर से इस प्रकार निवेदन करने लगा–हे भगवन् ! मैं आप द्वारा कहे हुए निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ, रुचि करता हूँ, यावत् आपके चरणों में दीक्षा धारण कर अपने कृत पापों से मुक्त होना चाहता हूँ ।

प्रभु महावीर ने कहा–हे देवानुप्रिय ! जैसा तुम्हें सुख हो, वैसा करो ।

विलम्ब मत करो !

तब उस अर्जुनमाली ने ईशान कोण में जाकर स्वयं ही पंचमौष्टिक लुंचन किया, लुंचन करके वे अनगार हो गये, और संयम व तप पूर्वक विचरने लगे। अर्जुनमाली अब अर्जुन मुनि हो गये ।

इसके पश्चात् अर्जुन मुनि ने जिस दिन मुण्डित होकर प्रव्रज्या ग्रहण की, उसी दिन श्रमण भगवान महावीर के चरणों में उपस्थित होकर वंदना नमस्कार करके, इस प्रकार का अभिग्रह–दृढ़ संकल्प धारण किया–"आज से मैं निरन्तर बेले-बेले की तपस्या से जीवन पर्यन्त आत्मा को भावित करते हुए विचरूँगा ।"

ऐसा अभिग्रह जीवन भर के लिये स्वीकार कर अर्जुन अणगार राजगृह नगर में विचरने लगे ।

Maxim 18 :

Then *Arjuna* garland-maker, hearing and taking to heart the sermon of *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra* became very much glad and satisfied, and politely said to *Bhagawāna*–O *Bhagawan* ! I have faith, interest and belief in *Nirgrantha Pravacana*– the doctrines as

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

preached by you. I intend to accept consecration at your lotus feet so that I can be free from the sins done by me.

Prabhu said–Do, as you feel happy. Do not delay.

Then *Arjuna* garland-maker went to north-east direction, tonsured his hairs by his own five fists and became homeless mendicant. Now garland-maker *Arjuna* became *Arjuna* monk. He began to practise restrain and austerity.

Thereafter the day on which *Arjuna* monk accepted consecration with shaven head, he went to *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra*, bowed down and worshipped him and then accepted firm resolution of the sort–I will practise two days' fast penance (and third day to take meal) constantly till life.

Accepting such firm resolution *Arjuna* monk began to wander in *Rājagṛha* city.

सूत्र १९ :

तए णं से अज्जुणए अणगारे छट्ठक्खमणपारणयंसि पढमपोरिसीए सज्झायं करेइ, जहा गोयमसामी जाव अडइ ।

तए णं तं अज्जुणयं अणगारं रायगिहे णयरे उच्च-णीय जाव अडमाणं बहवे इत्थियाओ य पुरिसा य डहरा य महल्ला य जुवाणा य एवं वयासी– "इमेणं मे पिया मारिए, इमेणं मे माया मारिया, भाया, भगिणी, भज्जा, पुत्ते, धूया, सुण्हा मारिया, इमेणं मे अण्णयरे सयण-संबंधि-परियण मारिए" त्ति कट्टु अप्पेगइया अक्कोसंति अप्पेगइया हीलंति, णिंदंति, खिंसंति, गरिहंति, तज्जेंति, तालेंति ।

परीषह सहन : मोक्ष गमन

सूत्र १९ :

इसके पश्चात् अर्जुन अणगार बेले की तपस्या के पारणे के दिन प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करते हुए यावत् (इनकी चर्या गौतम स्वामी की तरह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रक्रम ३०:

महामुनि अर्जुन का अपूर्व तितिक्षा भाव

दृश्य १—अर्जुन अणगार पारणे के लिए जब राजगृह नगर में भिक्षा के लिए निकलते तो कोई कहता—इसने मेरे पिता की हत्या की है, कोई भाई, बहन, पत्नी, पुत्र आदि का हत्यारा बताकर उन पर पत्थर फेंकते, लाठी और बेंतों से पीटते, गालियाँ देते, दुर्वचन कहते। परन्तु अर्जुन अणगार सोचते—यह मेरे कृत कर्मों का ही फल है, क्षमा करना परम धर्म है। और वे शान्त रहते।

दृश्य २—छह मास तक कठोर तप करते हुए अपने पापकर्मों का नाश करके अर्जुन अणगार ने विपुलाचल पर्वत पर मासिक संथारापूर्वक मोक्ष प्राप्त किया।

(वर्ग ६/अध्य. ३)

Illustration No. 30 :

Matchless tolerance of sage *Arjuna*

Scene 1. When *Arjuna* monk went to *Rajagṛha* city for seeking food and water then some persons say—He has killed my father, some others say—He has killed my brother, sister, wife, son etc., they throw stones on him, beat him by canes and sticks, rebuke him. But monk *Arjuna* thinks—This is the fruition of my ill-deeds. Forgiveness is the highest virtue. And he remained calm.

Scene 2. By the penance of six months he exhausted all his *karmas*, and emancipated at *Vipulācala* mount with the *Saṁthārā* of one month.

(Sec. 6/Ch. 3)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जानना चाहिए) अर्थात् दूसरे प्रहर में ध्यान करके तीसरे प्रहर में राजगृह नगर में भिक्षार्थ भ्रमण करने लगे ।

उस समय उस अर्जुन मुनि को राजगृह नगर में उच्च-नीच-मध्यम कुलों में भिक्षार्थ घूमते हुए देखकर नगर के अनेक नागरिक स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध इस प्रकार कहते थे–

"इसने मेरे पिता को मारा है, इसने मेरी माता को मारा है, भाई को मारा है, बहन को मारा है, भार्या को मारा है, पुत्र को मारा है, कन्या को मारा है, पुत्रवधु को मारा है एवं इसने मेरे अमुक स्वजन सम्बन्धी परिजन को मारा है ।"

ऐसा कहकर कोई उन्हें गाली देता, कोई हीलना करता, अनादर करता, निन्दा करता, कोई जाति आदि का दोष बताकर झुंझला उठता, गर्हा करता, कोई भय बताकर तर्जना करता, और कोई थप्पड़, ईंट, पत्थर, लाठी आदि से भी मारता था ।

Troubles Conquered : Salvation Attained

Maxim 19 :

Thereafter *Arjuna* monk on the fast breaking day in the first *prahara* studied the scriptures, in the second did meditation and in the third *prahara* sallied forth for seeking meals from *Rājagṛha* city. (His conduct should be considered similar to that of Gautama Swami)

At that time seeing *Arjuna* mendicant wandering for seeking meals in the high-low and middle class families, many citizens–men-women, boys-oldmen used to say–

He has murdered my father, my mother, my brother, my sister, my wife, my son, my daughter, my daughter-in-law and other kith and kin etc.

Saying thus some abused him, some caviled at him, chided, censured, rebuked, reviled, look down upon him in contempt, some struck him by hand, brick, stone and stick etc.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र २० :

तए णं से अज्जुणए अणगारे तेहिं बहूहिं इत्थीहिं य पुरिसेहिं य डहरेहिं य मल्लेहिं य जुवाणएहिं य आओसेज्जमाणे जाव तालेज्जमाणे तेसिं मणसा वि अपउस्समाणे सम्मं सहइ, सम्मं खमइ, सम्मं तितिक्खइ, सम्मं अहियासेइ, सम्मं सहमाणे, खममाणे, तितिक्खमाणे, सम्मं अहियासमाणे रायगिहे णयरे उच्च-णीय-मज्झिमकुलाइं अडमाणे जइ भत्तं लभइ तो पाणं ण लभइ, जइ पाणं लभइ तो भत्तं ण लभइ ।

तए णं से अज्जुणए अणगारे अदीणे, अविमणे, अकलुसे, अणाइले, अविसाई, अपरितंतजोगी, अडइ ।

अडित्ता रायगिहाओ णयराओ पडिणिक्खमइ । पडिणिक्खमित्ता जेणेव गुणसिलए चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे जहा गोयमसामी जाव पडिदंसेइ; पडिदंसित्ता समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे अमुच्छिए अगिद्धे बिलमिव पण्णगभूएणं अप्पाणेणं तमाहारं आहारेइ ।

सूत्र २० :

इस प्रकार बहुत से स्त्री-पुरुषों, बच्चों, बूढ़ों और जवानों से आक्रोश, गाली एवं विविध प्रकार की ताड़ना-तर्जना आदि पाकर भी वे अर्जुन अणगार उन पर मन से भी द्वेष नहीं करते हुए उनके द्वारा दिये गये सभी परीषहों को समभावपूर्वक सहन करते (**सम्मं सहमाणे**) प्रतीकार कर सकने की स्थिति में होते हुए भी क्षमा भाव धारण करते (**खममाणे**) उन कष्टों को प्रसन्नतापूर्वक झेल लेते (**तितिक्खमाणे**) एवं निर्जरा का लाभ समझकर (**अहियासेमाणे**) हर्षानुभव करते। सम्यग् ज्ञान पूर्वक उन सभी संकटों को सहन करते, क्षमा करते, तितिक्षा रखते, और उन कष्टों को भी आत्म-लाभ का हेतु मानते हुए राजगृह नगर के छोटे-बड़े-मध्यम कुलों में भिक्षा हेतु भ्रमण करते। तब उन अर्जुन अणगार को कहीं कभी भोजन मिलता तो पानी नहीं मिलता, और पानी मिलता तो भोजन नहीं मिलता था ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैसी स्थिति में जो भी और जैसा भी अल्प स्वल्प मात्रा में प्रासुक भोजन उन्हें मिलता, उसे वे सर्वथा अदीन, अविमन, (शान्तचित्त) अकलुष, (मलिनता रहित), अविषाद–आकुलता–व्याकुलता रहित, समाधि भाव के साथ ग्रहण करते थे, अर्थात् दैन्य भाव नहीं लाते हुए, मन को मैला नहीं करते हुए, अशुभ भावों का वर्जन करते हुए, विषाद-खेद नहीं करते हुए, तनतनाट से रहित अर्जुन अणगार ने निर्मल भावों से भिक्षाचरी तप की आराधना की ।

इस प्रकार वे भिक्षार्थ भ्रमण करते । भ्रमण करके वे (वापस) राजगृह से निकलते और गुणशीलक उद्यान में, जहां श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, वहां आते और वहाँ आकर गौतम स्वामी की तरह भिक्षा में जो प्राप्त हुआ उस आहार-पानी प्रभु महावीर को दिखाते और दिखाकर उनकी आज्ञा पाकर मूर्च्छा रहित, जिस प्रकार बिल में सर्प सीधा ही प्रवेश करता है, उस प्रकार राग-द्वेष एवं आसक्ति रहित होकर उस आहार-पानी का सेवन करते थे ।

Maxim 20 :

Even after getting abuse, chide, rebuke, revile, contempt, struck etc., from many men, women, children, youths, aged persons, youngsters, *Arjuna* mendicant did not become wrathful towards them even in thought and bore all the calamities given by them with even mind. Although he was in a position to take revenge he adopted forgiveness, bore those troubles gladly and understanding the benefit of shedding off *karmas* felt happiness, he bore all those hardships engrossed with right knowledge, pardoned them and considering all those troubles as good for soul-uplift, wandered in high-low-middle class families of *Rājagṛha* city seeking meals. In these circumstances, smiling he got food, but did not get water and sometimes he got water but did not get food.

In this position whatever a little but faultless he got, he accepted without becoming sorrowful, despirited turbid, perturned, grieved, and remained in self-discipline, i.e., he

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

was never filled with despiritedness making mind fifthy, he was always avoiding inauspicious thoughts, was never becoming sorrowful, and remained contemplated by all the three activities (*Yoga*) of mind, speech and body, *Arjuna* mendicant practised seeking of alms for penance.

Thus he wandered for seeking alms. Wandering he came out of city, reached *Guṇaśīlaka* garden and came to *Śramaṇa Bhagawāna Mahavīra*. Like *Gautama Swāmī*, he showed that food and water to *Bhagawāna* and then getting his permission took meals without the feeling of myness, like-dislike and attachment, like a serpent entering in the hole.

सूत्र २१ :

तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइं रायगिहाओ णयराओ पडिणिक्खमइ; पडिणिक्खमित्ता बहिं जणवयविहारं विहरइ ।

तए णं से अज्जुणए अणगारे तेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं महाणुभागेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे बहुपडिपुण्णे छम्मासे सामण्ण-परियागं पाउणइ, अद्धमासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसेइ, तीसं भत्ताइं अणसणाइं छेदेइ; छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे जाव सिद्धे ।

(तइयं अज्झयणं समत्तं)

सूत्र २१ :

फिर श्रमण भगवान महावीर किसी दिन राजगृह नगर के उस गुणशीलक उद्यान से निकलकर बाहर जनपदों में विहार करने लगे ।

उस महाभाग अर्जुन मुनि ने उस उदार, श्रेष्ठ, पवित्र, भाव से ग्रहण किये गये महालाभकारी (**महाणुभागेणं**–विशिष्ट प्रभावशाली) विपुल तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए पूरे छः महीने मुनिधर्म का पालन किया । इसके बाद आधे मास (पन्द्रह दिन) की संलेखना से अपनी आत्मा को भावित कर तीस भक्त के अनशन को पूर्ण कर जिस कार्य के लिये मुनिधर्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रहण किया, उसको पूर्ण कर वे अर्जुन अणगार यावत् सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गये ।

Maxim 21 :

Then *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra* went out of *Guṇaśīlaka* garden and began to wander in other areas.

Then that extremely fateful *Arjuna* mendicant completed his six months' period of sagehood exercising himself the noble abundant zealous, specially beneficial penances fully well; and then adopted a fast penance of half-month *i.e.*, a fortnight, avoided thirty meals, accepted *saṁlekhanā* and attained the purpose for which he had accepted consecration, *i.e.* became beatified and salvated.

विवेचन

श्रेणिक चरित्र आदि ग्रंथों में लिखा है कि अर्जुनमाली के शरीर में मुद्गरपाणि यक्ष का पाँच मास १३ दिनों तक प्रवेश रहा । उससे उसने ११४१ व्यक्तियों का प्राणान्त किया । इसमें ९७८ पुरुष और १६३ स्त्रियाँ थीं । इससे स्पष्ट प्रमाणित होता है कि वह प्रतिदिन सात व्यक्तियों की हत्या करता रहा ।

यहाँ एक आशंका होती है कि जिस व्यक्ति ने इतना बड़ा प्राणिवध किया और पाप कर्म से आत्मा का महान् पतन किया, उस व्यक्ति को केवल छह मास की साधना से कैसे मुक्ति प्राप्त हो गई ?

उत्तर यह है कि तप में अचिन्त्य, अतर्क्य एवं अद्भुत शक्ति है। आगम कहता है "**भवकोडिसंचियं कम्मं तवसा निज्जरिज्जई ।**" अर्थात् करोड़ों भवों से संचित किये–बांधे कर्म भी तपश्चर्या द्वारा नष्ट किए जा सकते हैं ।

जब तीव्रतर तप की अग्नि प्रज्वलित होती है तो कर्मों के दल के दल सूखे घास-फूँस की तरह भस्मसात् हो जाते हैं ।

इसके अतिरिक्त प्रस्तुत प्रसंग में यह भी कहा जा सकता है कि अर्जुनमालाकार द्वारा जो वध किया गया, वह वस्तुतः यक्ष द्वारा किया गया वध था। अतएव मनुष्यवध योग्य कषाय परिणामों की तीव्रता उसमें संभव नहीं है । अर्जुन का हृदय सरल, मंदकषायी प्रतीत होता है, किन्तु यक्षावेश के कारण वह क्रोध में हत्यारा बन बैठा । **(तृतीय अध्ययन समाप्त)**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Elucidation

It is mentioned in *Śreṇika caritra* etc. (religious compositions) that the body of *Arjuna* garland-maker was possessed by deity *Mudgarapāṇi* upto five months and thirteen days. In this period he murdered 1141 persons. Among them were 978 men and 163 women. This clearly proves that every day he used to kill 7 persons.

Here one doubt arises that the person who had done such huge violence and degraded his soul to the lowest degree by this sinful deed, how could that man attain salvation by only six months' propiliation ?

This doubt can be rectified thus–that penance had unimaginable, unarguable and wonderful strength. As *Āgama* asserts–The ill-deeds (*karmas*) accumulated even in millions of births can be exhausted by penance.

When the fire of most excessive penance burns then the army of *karmas* is reduced to ashes like dry grass and straw.

Besides this, it can also be said in this context that the murder done by *Arjuna* garland-maker, was really done by the deity. Therefore, the extremity of passions, responsible for killing persons, was not possible in *Arjuna* garland-maker. The heart of *Arjuna* garland-maker was simple and less-affected, but due to the possession of deity (*Yakṣa*) he turned to a murderer or assassin.

[Third chapter concluded]

चतुर्थ अध्ययन

सूत्र २२ :

उक्खेवओ चउत्थस्स अज्झयणस्स ।

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे गुणसिलए चेइए ।

तत्थ णं सेणिए राया । कासवे णामं गाहावई परिवसइ । जहा मंकाई सोलसवासा परियाओ, विपुले सिद्धे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र २२ :

जम्बू स्वामी ने पूछा–हे भगवन् ! छठे वर्ग के तीसरे अध्ययन में प्रभु महावीर ने जो भाव कहे, वे मैंने सुने । अब चौथे अध्ययन में प्रभु ने क्या भाव परमाये हैं ? वह कृपाकर मुझे बताइये ।

सुधर्मा स्वामी कहते हैं–हे जम्बू ! उस काल उस समय राजगृह नगर में गुणशीलक नामक उद्यान था । वहां श्रेणिक राजा राज्य करता था । वहां कश्यप नाम का एक गाथापति रहता था । उसने मंकाई की तरह सोलह वर्ष तक दीक्षा पर्याय का पालन किया और अन्त समय में विपुलगिरि पर जाकर संथारा आदि करके वह सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गया ।

(चतुर्थ अध्ययन समाप्त)

Chapter 4

Maxim 22 :

Jambū Swāmī asked politely–O *Bhagawan* ! I have heard the subject matter of third chapter of sixth section from you as preached by *Lord Mahāvīra*. Now please tell me, what subject matter was expressed by *Bhagawāna Mahāvīra* in the fourth chapter.

Sudharmā Swāmī narrated–O *Jambū* ! At that time and at that period there was a city named *Rājagṛha*. There was a garden named *Guṇaśīlaka*. King *Śreṇika* ruled there. There dwelt a trader (*gāthāpati*) named *Kaśyapa*. Like *Maṅkāī*, he became monk and practised consecration for 16 years and in the fag end of his life, he went to *Vipulagiri*, accepting *saṁthārā* was beatified and attained salvation. **[Fourth chapter concluded]**

पंचम अध्ययन

सूत्र २३ :

एवं खेमए वि गाहावई । णवरं, काकंदी णयरी । सोलसवासा परियाओ विपुले पव्वए सिद्धे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र २३ :

इसी प्रकार क्षेमक गाथापति का वर्णन समझें । विशेष इतना है कि वे काकन्दी नगरी के निवासी थे और सोलह वर्ष का उनका दीक्षा काल रहा । यावत् वे भी विपुलगिरि पर सिद्ध हुए । **(पांचवां अध्ययन समाप्त)**

Chapter 5

Maxim 23 :

Similar is the description of *Kṣemaka* trader. Excepting; he was the inhabitant of *Kākandī* city. His consecration period was of sixteen years until, he attained salvation at *Vipulagiri*.

[Fifth chapter concluded]

छठा अध्ययन

सूत्र २४ :

एवं धितिहरे वि गाहावई । काकंदी णयरी । सोलसवासा परियाओ जाव विपुले सिद्धे ।

सूत्र २४ :

ऐसे ही धृतिधर गाथापति का वर्णन समझना चाहिए । वे काकन्दी नगरी के निवासी थे, सोलह वर्ष तक निर्मल चारित्र पालकर वे भी विपुलगिरि पर सिद्ध हुए । **(छठवां अध्ययन समाप्त)**

Chapter 6

Maxim 24 :

In the same way should be known, the description of *Dhṛtidhara* trader. He was inhabitant of *Kākandī* city. Practising sixteen years, consecration period, he was liberated on *Vipulagiri*. **[Sixth Chapter concluded]**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सातवां अध्ययन

सूत्र २५ :

एवं केलासे वि गाहावई । णवरं, सागेए णयरे, वारस वासाइं परियाओ, विपुले सिद्धे ।

सूत्र २५ :

ऐसे ही कैलाश गाथापति भी थे । विशेष यह था कि ये साकेत नगर के रहने वाले थे, इन्होंने बारह वर्ष की दीक्षा पर्याय पाली और विपुलगिरि पर सिद्ध हुए । **(सातवां अध्ययन समाप्त)**

Chapter 7

Maxim 25 :

LIke this was *Kailāśa* trader. Excepting : he was inhabitant of *Sāketa* city. He practised consecration period of twelve years and was liberated on *Vipulagiri*.

[Seventh chapter concluded]

आठवां अध्ययन

सूत्र २६ :

एवं हरिचंदणे वि गाहावई । सागेए णयरे । वारस वासा परियाओ, विपुले सिद्धे ।

सूत्र २६ :

ऐसे ही आठवें हरिचन्दन गाथापति भी थे । वे भी साकेत नगर के निवासी थे, उन्होंने भी बारह वर्ष तक श्रमण धर्म का पालन किया और अन्त में विपुलगिरि पर सिद्ध हुए । **(आठवां अध्ययन समाप्त)**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Chapter 8

Maxim 26 :

Description of *Haricandana* trader was also as aforesaid. He was inhabitant of *Sāketa* city. His consecration period was of twelve years and was liberated at *Vipulagiri*.

[Eighth chapter concluded]

नवमां अध्ययन

सूत्र २७ :

एवं वारत्तए वि गाहावई । णवरं रायगिहे णयरे । बारस वासा परियाओ, विपुले सिद्धे ।

सूत्र २७ :

इसी तरह नवमें वारत्त गाथापति का वर्णन भी जानना चाहिए । विशेष यह था कि ये राजगृह नगर के रहने वाले थे । बारह वर्ष का चारित्र पालन कर विपुलगिरि पर सिद्ध हुए । **(नवमां अध्ययन समाप्त)**

Chapter 9

Maxim 27 :

Similar is the description of ninth trader whose name is *Vāratta*. Excepting; he was inhabitant of *Rājagṛha* city. His consecration period was of twelve years. He was liberated at *Vipulagiri*. **[Ninth Chapter concluded]**

दसवां अध्ययन

सूत्र २८ :

एवं सुदंसणे वि गाहावई । णवरं वाणियगामे णयरे । दूइपलासए चेइए, पंच वासा परियाओ, विपुले सिद्धे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र २८ :

दसवें सुदर्शन गाथापति का वर्णन भी इसी प्रकार समझ लेवें। विशेष यह था कि वाणिज्यग्राम नगर के बाहर द्युतिपलाश नाम का उद्यान था, वहां दीक्षित हुए । पांच वर्ष का निर्मल चारित्र पालकर विपुलगिरि पर सिद्ध हुए । **(दसवां अध्ययन समाप्त)**

Chapter 10

Maxim 28 :

Similar is the description of *Sudarśana* trader. Excepting; he accepted consecration in *Dyutipalāśa* garden which was situated outside the city *Vāṇijyagrāma*. He was consecrated there and after Practising pure conduct upto five years, he was liberated at *Vipulagiri*.

[Tenth chapter concluded]

ग्यारहवां अध्ययन

सूत्र २९ :

एवं पुण्णभद्दे वि गाहावई । वाणियगामे णयरे । पंच वासा परियाओ, विपुले सिद्धे ।

सूत्र २९ :

पूर्णभद्र गाथापति का वर्णन भी ऐसे ही समझना चाहिए । विशेष यह था कि वे वाणिज्यग्राम नगर के रहने वाले थे । पाँच वर्ष का चारित्र पालन कर वे भी विपुलाचल पर सिद्ध हुए । **(ग्यारहवां अध्ययन समाप्त)**

Chapter 11

Maxim 29 :

Similar is the description of trader *Pūrṇabhadra*. Excepting; he was inhabitant of city named *Vāṇijyagrāma*. After Practising faultless sage-conduct upto five years he was liberated at *Vipulagiri*. **[Eleventh chapter concluded]**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बारहवां अध्ययन

सूत्र ३० :

एवं सुमणभद्दे वि गाहावई । सावत्थी णयरी । बहुवासाइं परियाओ, विपुले सिद्धे ।

सूत्र ३० :

सुमनभद्र गाथापति का वर्णन भी इसी प्रकार समझना चाहिए । ये श्रावस्ती नगरी के निवासी थे । बहुत वर्षों तक मुनि धर्म का पालन कर विपुलगिरि पर सिद्ध हुए । **(बारहवाँ अध्ययन समाप्त)**

Chapter 12

Maxim 30 :

Similar is the description of trader *Sumanabhadra*. Excepting; he was inhabitant of city *Śrāvastī*. He practised sage order for many years and was liberated at *Vipulagiri*.

[Twelfth chapter concluded]

तेरहवां अध्ययन

सूत्र ३१ :

एवं सुपईट्ठे वि गाहावई । सावत्थी णयरी । सत्तावीसं वासा परियाओ, विपुले सिद्धे ।

सूत्र ३१ :

ऐसे ही सुप्रतिष्ठ गाथापति का वर्णन समझ लेना चाहिए । ये भी श्रावस्ती नगरी के रहने वाले थे, और सत्ताईस वर्ष तक श्रमण चारित्र-पालन कर विपुलगिरि पर सिद्ध हुए । **(तेरहवां अध्ययन समाप्त)**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Chapter 13

Maxim 31 :

Similar is the case of trader *Supratiṣṭha*. He was inhabitant of *Śrāvastī* city. After practising sagehood upto twenty seven years, he was liberated at *Vipulagiri*.

[Thirteenth chapter concluded]

चौदहवाँ अध्ययन

सूत्र ३२ :

एवं मेहे वि गाहावई । रायगिहे णयरे । बहूहिं वासाइं परियाओ, विपुले सिद्धे ।

सूत्र ३२ :

मेघ गाथापति का वर्णन भी ऐसे ही समझना चाहिये। ये राजगृह नगर के निवासी थे और बहुत वर्षों तक चारित्र धर्म का पालनकर विपुलगिरि पर सिद्ध हुए। **(चौदहवां अध्ययन समाप्त)**

Chapter 14

Maxim 32 :

The same is the description of *Megha* trader. Excepting; he was inhabitant of *Rājagṛha* city. He practised sage conduct for many years and attained salvation at *Vipulagiri*.

[Fourteenth chapter concluded]

पन्द्रहवां अध्ययन : अतिमुक्तकुमार

सूत्र ३३ :

उक्खेवओ पण्णरसमस्स अज्झयणस्स ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं वयासी–एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं पोलासपुरे णयरे, सिरीवणे उज्जाणे ।

तत्थ णं पोलासपुरे णयरे विजए णामं राया होत्था । तस्स णं विजयस्स रण्णो सिरी णामं देवी होत्था, वण्णओ । तस्स णं विजयस्स रण्णो पुत्ते सिरीए देवीए अत्तए अइमुत्ते णामं कुमारे होत्था सुकुमाले ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव सिरीवणे विहरइ ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई, जहा पण्णत्तीए जाव पोलासपुरे णयरे उच्च–णीय जाव अडइ ।

अतिमुक्तकुमार

सूत्र ३३ :

श्री जम्बू स्वामी ने पूछा–हे भगवन् ! चौदह अध्ययनों का भाव मैंने सुना । अब पन्द्रहवें अध्ययन में प्रभु ने क्या भाव कहा है, कृपा कर बतलाइये ।

आर्य सुधर्मा स्वामी कहते हैं–हे जम्बू ! उस काल, उस समय में पोलासपुर नामक नगर था । वहां श्रीवन नामक उद्यान था । इस नगर में विजय नाम का राजा था, उनकी श्रीदेवी महारानी थी जो वर्णनीय थी । महाराजा विजय का पुत्र और श्रीदेवी का आत्मज "अतिमुक्त" नाम का एक कुमार था, जो बड़ा सुकुमार, सुन्दर और दर्शनीय था ।

उस काल, उस समय, श्रमण महावीर के ज्येष्ठ शिष्य इन्द्रभूति, (उनका भगवती सूत्र में जैसे षष्ठ भक्त के पारणे के लिए भगवान से पूछकर भिक्षार्थ जाने का वर्णन किया गया है वैसे ही यहां भी समझना चाहिए यावत्) उस पोलासपुर नगर में छोटे-बड़े कुलों में सामूहिक भिक्षा हेतु भ्रमण करने लगे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Chapter 15
Atimuktakumāra

Maxim 33 :

Śrī Jambū Swāmī asked in polite words–O *Bhagawan* ! I have heard the subject matter of fourteen chapters. In fifteenth chapter what *Bhagawāna* had described, please tell me.

Ārya Sudharmā Swāmī began to narrate–O *Jambū* ! At that time and at that period, there was a city named *Polāsapura*. There was a garden, named *Śrīvana*. King *Vijaya* ruled there. His queen was *Śrīdevī*. She was describable. *Atimukta* was their son, who was tender, beautiful and worthy to be seen.

At that time and at that period *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra* wandering village to village arrived there and stayed in *Śrīvana* garden.

At that time and at that period, the eldest disciple of *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra, Indrabhūti* (as described in *Bhagavatī Sūtra*, on the day of breaking of two days' fast he used to go for seeking alms with the permission of *Bhagawānā*, such should be known here) began to wander in high-low-middle class houses of *Polāsapura* city for seeking alms.

सूत्र ३४ :

इमं च णं अइमुत्ते कुमारे ण्हाए जाव विभूसिए बहूहिं दारएहिं य दारियाहिं य, डिंभएहिं य डिंभियाहिं य कुमारएहिं य कुमारियाहिं य सद्धिं संपरिवुडे सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता जेणेव इंददुाणे तेणेव उवागए ।

तेहिं बहूहिं दारएहिं य दारियाहिं य डिंभएहिं य डिंभियाहिं य कुमारएहिं य कुमारियाहिं य सद्धिं संपरिवुडे अभिरममाणे अभिरममाणे विहरइ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र ३४ :

इधर अतिमुक्त कुमार स्नान करके यावत्, शरीर की विभूषा करके बहुत से **दारक**=सामान्य लड़के-लड़कियों, **डिंभक**=छोटी आयु वाले बालक बालिकाओं और **कुमार**=समान वय वाले कुमार कुमारियों के साथ अपने घर से निकले और निकलकर जहाँ इन्द्र स्थान यानी क्रीडास्थल था, वहां आये, वहां उन बालक-बालिकाओं के साथ वे बाल सुलभ खेल खेलने लगे।

Curiosity of Atimuktakumāra

Maxim 34 :

At the same time prince *Atimuktakumāra* after taking bath until anointing his body, surrounded by many little boys, girls, lads, lasses, youths-maidens came out of his house, reached *Indrasthāna*—play ground and began to play various types of games.

सूत्र ३५ :

तए णं भगवं गोयमे पोलासपुरे णयरे उच्च-णीय जाव अडमाणे इंदट्ठाणस्स अदूरसामंतेणं वीईवयइ।

तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं अदूरसामंतेणं वीईवयमाणं पासइ, पासित्ता जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागए। भगवं गोयमं एवं वयासी—के णं भंते ! तुब्भे, किं वा अडह ?

तए णं भगवं गोयमे अइमुत्तं कुमारं एवं वयासी—"अम्हे णं देवाणुप्पिया ! समणा णिग्गंथा इरियासमिया जाव बंभयारी उच्च-णीय जाव अडामो।"

तए णं अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं एवं वयासी—

"एह णं भंते ! तुब्भे, जण्णं अहं तुब्भं भिक्खं दवावेमि" त्ति कट्टु भगवं गोयमं अंगुलीए गिण्हइ ; गिण्हित्ता, जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रक्रम ३१ :

गौतम स्वामी एवं अतिमुक्तकुमार

दृश्य १—बच्चों के साथ क्रीड़ा करते हुए अतिमुक्तकुमार ने राजमार्ग पर गौतम स्वामी को आते देखा तो उनसे पूछा—आप कौन हैं? किसलिए इधर भ्रमण कर रहे हैं?

गौतम स्वामी ने अपना परिचय देकर कहा—मैं शुद्ध भिक्षा के लिए इधर आया हूँ।

दृश्य २—अतिमुक्तकुमार ने कहा—आप भिक्षा के लिए मेरे भवन पर पधारिए। मेरी माता आपको भिक्षा देगी। और उसने गौतम स्वामी की अँगुली पकड़ ली।

राजमाता श्रीदेवी यह दृश्य देखकर मुग्ध हो उठती है। उसने सामने आकर गौतम स्वामी का स्वागत किया।

(वर्ग ६/अध्य. १५)

Illustration No. 31 :

Gautama Swāmī and *Atimuktakumāra*

Scene 1. Atimuktakumāra, playing with his playmates, saw *Gautama Swāmī* going on royal road, then asks him—Who are you ? Why are you wandering ?

Gautama Swāmī after giving his identity said—I am wandering for seeking faultless alms.

Scene 2. Atimuktakumāra said—For alms, please come to my palace. My mother will give you alms.

And he held up the finger of *Gautama Swāmī*. Queen *Śrīdevī* becomes very much glad at this sight. She comes forward and honoured *Gautama Swāmī*.

(Sec. 6/Ch. 15)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गौतम स्वामी

राजकुमार अतिमुक्तक

श्री देवी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तए णं सिरीदेवी भगवं गोयमं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठ-तुट्ठ जाव आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता, जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागया ।

भगवं गोयमं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ, णमंसइ, वंदित्ता, णमंसित्ता विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेइ, जाव पडिविसज्जेइ ।

सूत्र ३५ :

उस समय भगवान गौतम पोलासपुर नगर के छोटे-बड़े कुलों में यावत् भ्रमण करते हुए उस क्रीडा-स्थल के पास से जा रहे थे, तब अतिमुक्तकुमार उनको पास से जाते हुए देखकर शीघ्र ही भगवान गौतम के पास आये और उनसे इस प्रकार बोले–

हे पूज्य ! आप कौन हैं, और इस तरह किसलिए घूम रहे हैं ?

तब भगवान गौतम ने अतिमुक्त कुमार को इस प्रकार उत्तर दिया– "देवानुप्रिय ! हम श्रमण निर्ग्रन्थ, ईर्यासमिति के धारक, गुप्त ब्रह्मचारी हैं, और छोटे बड़े कुलों में भिक्षार्थ भ्रमण करते हैं ।"

यह सुनकर अतिमुक्त कुमार भगवान् गौतम से इस प्रकार बोले–"हे भगवन् ! आप आओ । मैं आपको भिक्षा दिलाता हूँ ।" ऐसा कहकर अतिमुक्त कुमार ने भगवान गौतम की अंगुली पकड़ी और उनको जहां अपना घर था, वहां ले आये ।

महारानी श्रीदेवी भगवान् गौतम को आते देखकर बहुत ही प्रसन्न हुई यावत् आसन से उठकर जिधर से भगवान गौतम आ रहे थे, उनके सम्मुख आई, और भगवान गौतम को तीन बार प्रदक्षिणा करके वंदना की, नमस्कार किया । फिर विपुल (श्रेष्ठ-उत्तम) अशन-पान-खादिम और स्वादिम से प्रतिलाभ दिया, यावत् विधिपूर्वक विसर्जित किया ।

Maxim 35 :

At that time Reverend *Gautama* seeking alms from high-low-middle class families of *Polāsapura* city was passing near that play-ground. Then watching him, passing nearby

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Atimuktakumāra quickly came to *Gautama Swāmī* and said–O reverend sir ! who are you and why are you wandering like this ?

Then Reverend *Gautama* replied to *Atimuktakumāra* in these sweet words–O beloved as gods ! We are sages, non-attached monks, heedful in walking and fully celebate. I am wandering in high-low-middle class families for alms.

Hearing this *Atimuktakumāra* spoke to Reverend *Gautama* thus–O reverend ! you please come with me so that I may get you alms.

So saying he held Reverend *Gautama* by finger and took him to his own house.

As soon as queen *Śrīdevī* saw Reverend *Gautama* coming to her house, she became very glad, got up from her seat, came to the Reverend *Gautama* circumambulated him thrice, bowed down and worshipped him and then gave him best meals–food, water, eatables and dainties in plenty and respectfully saw him off.

सूत्र ३६ :

तए णं से अइमुत्ते कुमारे गोयमं एवं वयासी-"कहि णं भंते ! तुब्भे परिवसह ?"

तए णं भगवं गोयमे अइमुत्तं कुमारं एवं वयासी–

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम धम्मायरिए धम्मोवएसए भगवं महावीरे आइगरे जाव संपाविउकामे, इहेव पोलासपुरस्स णयरस्स बहिया सिरिवणे उज्जाणे अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ, तत्थ णं अम्हे परिवसामो ।"

तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं एवं वयासी–गच्छामि णं भंते ! अहं तुब्भेहिं सद्धिं समणं भगवं महावीरं पायवंदए ?

अहासुहं देवाणुप्पिया !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र ३६ :

इसके बाद भगवान गौतम से अतिमुक्तकुमार यों बोले–हे देवानुप्रिय ! आप कहां रहते हैं ?''

भगवान गौतम ने अतिमुक्त कुमार को उत्तर दिया–''हे देवानुप्रिय ! मेरे धर्माचार्य और धर्मोपदेशक भगवान महावीर धर्म की आदि करने वाले यावत् मोक्ष के कामी इसी पोलासपुर नगर के बाहर श्रीवन उद्यान में मर्यादानुसार अवग्रह (आज्ञा आदि) लेकर संयम एवं तप से आत्मा को भावित कर विचरते हैं, हम वहीं रहते हैं ।''

तब अतिमुक्त कुमार भगवान गौतम से इस प्रकार बोले–हे पूज्य ! क्या मैं आपके साथ भगवान महावीर को वंदन करने चलूँ ?

श्री गौतम स्वामी ने कहा–हे देवानुप्रिय! जैसा तुम्हें सुख हो ।

Maxim 36 :

Thereafter prince *Atimuktakumāra* asked Reverend *Gautama*–O beloved as gods ! Where do you live ?

Reverend *Gautama* answered–O beloved as gods ! My religious precepter and religious preacher *Bhagawāna Mahāvīra*, promoter (beginner) of religion and desirous of attaining salvation, is staying abiding himself with restrain and austerity. He is staying here in *Śrīvana* garden. outside the city of *Polāsapura*, after taking proper permission, we all stay there.

Then *Atimuktakumāra* said to Reverend *Gautama*–Reverend Sir ! Can I come with you to bow down to *Bhagawāna Mahāvīra* ?

Gautama Swāmī said–O beloved as gods ! Do as it pleases you.

सूत्र ३७ :

तए णं से अइमुत्ते कुमारे गोयमेणं सद्धिं जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ ; उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो, आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ जाव पज्जुवासइ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तए णं भगवं गोयमे जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागए । जाव पडिदंसेइ, पडिदंसित्ता, संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

तए णं समणे भगवं महावीरे अइमुत्तस्स कुमारस्स धम्मकहा ।

तए णं से अइमुत्तेकुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ जं णवरं–

देवाणुप्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि ।

तए णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए जाव पव्वयामि ।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह ।

सूत्र ३७ :

तब अतिमुक्त कुमार गौतम स्वामी के साथ श्रमण भगवान महावीर स्वामी के पास आये, आकर श्रमण भगवान महावीर को तीन बार प्रदक्षिणा की और वंदना करके पर्युपासना करने लगे ।

इधर गौतम भगवान महावीर के समीप आये और उन्हें लाया हुआ आहार पानी दिखा कर पारणा किया यावत् संयम तथा तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे ।

तब श्रमण भगवान महावीर ने अतिमुक्त कुमार को धर्म कथा सुनाई । धर्म कथा सुनकर और उसे धारण कर अतिमुक्त कुमार बड़े प्रसन्न हुए और बोले–

हे देवानुप्रिय ! मुझे आपकी धर्मदेशना बहुत ही प्रिय और रुचिकर लगी, मैं अपने माता-पिता से पूछकर फिर आपकी सेवा में श्रमण दीक्षा ग्रहण चाहता हूँ ।

भगवान बोले–हे देवानुप्रिय! जैसे तुम्हें सुख हो वैसे करो । पर धर्म कार्य में प्रमाद मत करो ।

Maxim 37 :

Then *Atimuktakumāra* came to *Bhagawāna Mahāvīra* with *Gautama Swāmī*, and thrice circumabulating

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

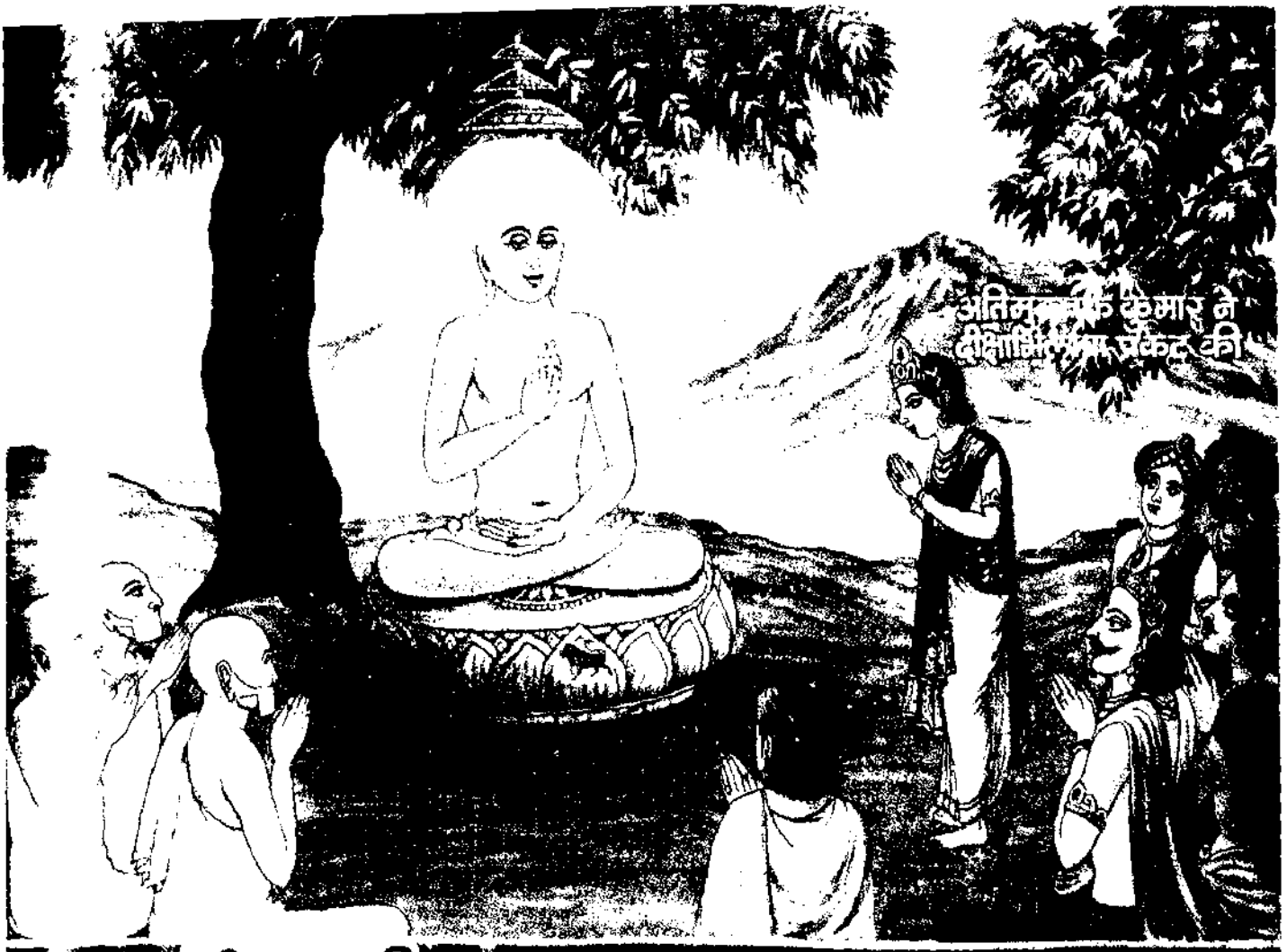

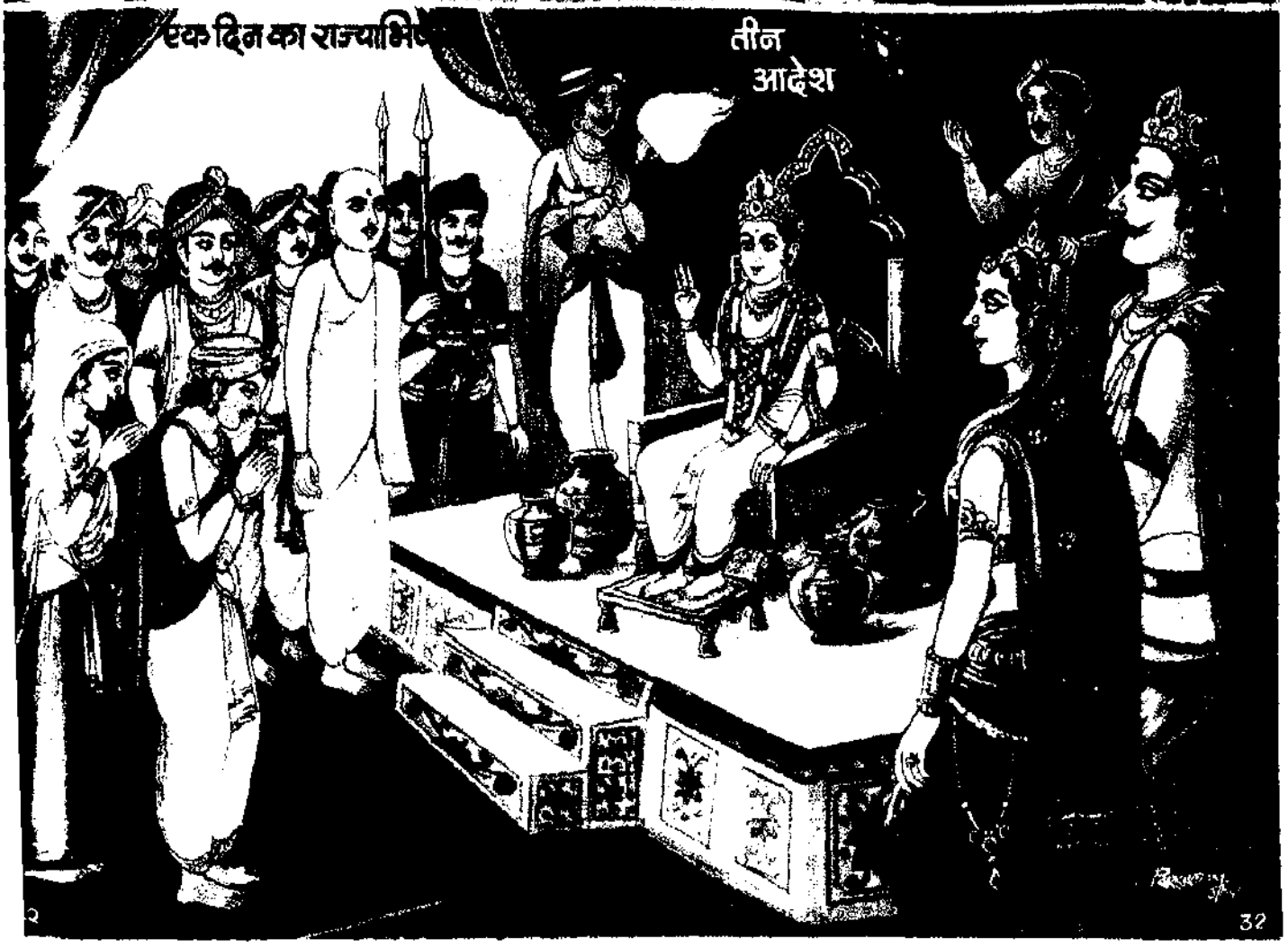

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रक्रम ३२ :

अतिमुक्तकुमार : प्रभु-दर्शन और वैराग्य

दृश्य १—गौतम स्वामी के साथ आये हुए राजकुमार अतिमुक्तकुमार ने भगवान महावीर की वन्दना की। धर्म उपदेश सुना तो उसका हृदय आत्म-कल्याण के लिए जागृत हो गया।

दृश्य २—अतिमुक्तकुमार का एक दिवसीय राज्याभिषेक, पीछे माता-पिता खड़े हैं। आदेश पूछने पर अतिमुक्तकुमार ने कहा—मेरे दीक्षा अभिषेक के लिए, राजकोष से तीन लाख स्वर्ण-मुद्राएँ निकालो। एक लाख के रजोहरण, एक लाख के पात्र तथा एक लाख स्वर्ण-मुद्रा देकर नाई को बुलाओ, मैं दीक्षा के लिए केश-मुण्डन करवाऊँगा।

(वर्ग ६/अध्य. १५)

Illustration No. 32 :

Atimuktakumāra : Seeing *Bhagawāna* and apathy

Scene 1. Coming along with *Gautama Swāmī*, prince *Atimuktakumāra* bowed down to *Bhagawāna Mahāvīra* and heard religious discourse. His heart awakened for self-welfare.

Scene 2. Coronation of *Atimuktakumāra*. Standing behind are his parents. On asking for orders *Atimuktakumāra* said—Take out three lakh gold coins from royal treasure. Buy the holy broom (*rajoharaṇa*) for one lakh, monk's utensils for one lakh and pay one lakh gold coins to barber. After being tonsured I will accept consecration.

(Sec. 6/Ch. 15)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Bhagawāna bowed down and worshipped and sat near the Loard.

Now *Gautama* came to *Bhagawāna Mahāvīra*, showed him the meals he had brought and then took it. He later absorbed his soul in penance and constraint.

In the mean time *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra* told religious discourse to *Atimuktakumāra*. Hearing and taking to heart that discourse he became very glad and uttered–

O beloved as gods ! Your discourse is very interesting and dear to me. It touched my heart. Taking permission of my parents I intend to enter the sage order accepting consecration at your feet.

Bhagawāna said–Do, as you feel happy, O beloved as gods ! but do not delay in auspicious deed.

सूत्र ३८ :

तए णं से अइमुत्ते कुमारे जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागए ; जाव पव्वइत्तए ।

अइमुत्तं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी–

"बाले सि ताव तुमं पुत्ता ! असंबुद्धे सि तुमं पुत्ता ! किण्णं तुमं जाणासि धम्मं ?"

तए णं से अइमुत्ते कुमारे अम्मापियरो एवं वयासी–एवं खलु अहं अम्मयाओ, जं चेव जाणामि, तं चेव ण जाणामि; जं चेव ण जाणामि, तं चेव जाणामि ।

तए णं तं अइमुत्तं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी–

"कहं णं तुमं पुत्ता ! जं चेव जाणासि तं चेव ण जाणासि, जं चेव ण जाणासि तं चेव जाणासि ?"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतिमुक्तकुमार के प्रश्नोत्तर

सूत्र ३८ :

इसके पश्चात् अतिमुक्त कुमार अपने माता-पिता के पास आकर, उन्हें नमस्कार करके बोले–हे माता-पिता ! मैंने भगवान के श्रीमुख से धर्म सुना है, वह मुझे अत्यन्त प्रिय लगा है अतः आपकी आज्ञा पाकर मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ ।

इस पर माता-पिता बहुत ही उदास होकर अतिमुक्त कुमार से इस प्रकार बोले–हे पुत्र ! अभी तुम बालक हो, असंबुद्ध (तुम्हारी ज्ञान शक्ति विकसित नहीं हुई है) हो । अभी धर्म को तुम क्या जानो ?

अतिमुक्त कुमार ने कहा–"हे माता-पिता ! मैं जिसको जानता हूँ, उसको नहीं जानता और जिसको नहीं जानता हूँ, उसको जानता हूँ ।"

माता-पिता आश्चर्यपूर्वक बोले–पुत्र ! तुम जिसको जानते हो, उसको नहीं जानते और जिसको नहीं जानते, उसको जानते हो, यह कैसे ? इसका क्या अर्थ है ?

Question-answers between Atimuktakumāra and his parents

Maxim 38 :

Thereafter, *Atimuktakumāra* came to his parents, bowed down and said–I have heard the religious discourse from *Bhagawāna*. It was very interesting to me. By your permission I intend to accept consecration.

Then parents became very sad and said to *Atimuktakumāra*–O son ! Still you are a child. Your intelligence is undeveloped. What do you know about religion ?

Atimuktakumāra replied–Parents ! What I know, I do not know and what I do not know, I know.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Parents said with astonishment–Son ! What you know, you do not know and what you do not know, you know. How is it ? What is its meaning ?

सूत्र ३९ :

तए णं से अइमुत्ते कुमारे अम्मापियरो एवं वयासी–"जाणामि अहं अम्मयाओ ! जहा जाएणं अवस्सं मरियव्वं, ण जाणामि अहं अम्मयाओ ! काहे वा कहिं वा कहं वा केवच्चिरेण वा ?

ण जाणामि अहं अम्मयाओ ! केहिं कम्माययणेहिं जीवा णेरइय-तिरिक्ख जोणिय-मणुस्स-देवेसु उववज्जंति, जाणामि णं अम्मयाओ ! जहा सएहिं कम्माययणेहिं जीवा णेरइय जाव उववज्जंति ।

एवं खलु अहं अम्मयाओ ! जं चेव जाणामि तं चेव ण जाणामि, जं चेव ण जाणामि तं चेव जाणामि । तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए जाव पव्वइत्तए ।

तए णं अइमुत्तं कुमारं अम्मापियरो जाहे णो संचाएंति बहूहिं आघावणाहिं जाव तं इच्छामो ते जाया ! एगदिवसमवि रज्जसिरिं पासेत्तए ।

तए णं से अइमुत्ते कुमारे अम्मा-पिउ-वयणमणुवत्तमाणे तुसिणीए संचिट्ठइ । अभिसेओ जहा महाब्बलस्स णिक्खमणं ।

जाव सामाइयमाइयाइं एक्कारसअंगाइं अहिज्जइ; बहुवासाइं सामण्णपरियाओ गुणरयणं जाव विपुले सिद्धे ।

(पण्णरसं अज्झयणं समत्तं)

सूत्र ३९ :

तब अतिमुक्त कुमार इस प्रकार बोले–हे माता-पिता ! मैं जानता हूँ कि जो जन्मा है, उसको अवश्य मरना होगा, पर यह नहीं जानता कि कब, कहाँ किस प्रकार और कितने दिनों के बाद मरना होगा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फिर मैं यह भी नहीं जानता कि जीव किन कर्मों के कारण नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवयोनि में उत्पन्न होते हैं, पर इतना जानता हूं कि जीव अपने ही कृत-कर्मों के कारण नरक यावत् देवयोनि में उत्पन्न होते हैं ।

इस प्रकार निश्चय ही माता-पिता ! मैं जिसको जानता हूँ, उसी को नहीं जानता और जिसको नहीं जानता उसी को जानता हूँ । अतः हे माता-पिता ! मैं आपकी आज्ञा होने पर प्रव्रज्या लेना चाहता हूँ ।

अतिमुक्तकुमार को माता-पिता जब बहुत-सी युक्ति प्रयुक्तियों से समझाने में समर्थ नहीं हुए, तो बोले–हे पुत्र ! हम एक दिन के लिये तुम्हारी राज्य लक्ष्मी की शोभा देखना चाहते हैं । अर्थात् तुम्हारा राज्याभिषेक करना चाहते हैं ।

अब अतिमुक्त कुमार माता-पिता के वचन का अनुवर्तन (अनुसरण) करके मौन रहे । फिर महाबल के समान उनका राज्याभिषेक हुआ । फिर भगवान के पास दीक्षा लेकर सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया । बहुत वर्षों तक श्रमण चारित्र का पालन किया । गुणरत्न तप का आराधन किया । यावत् विपुलाचल पर सिद्ध हुए ।

(पन्द्रहवां अध्ययन समाप्त)

Maxim 39 :

Atimuktakumāra replied–Parents ! I know that one who is born, has to die; but I do not know when, where, in what manner and after what length of time he will die.

Again I do not know after what types of deeds (*karmas*) souls take birth in hellish, animal, human and god state; but I definitely know that souls take birth in hellish, animal, human and god state due to their own deeds (*karmas*).

Hence it is definite; parents ! that what I know, the same I do not know and what I do not know, the same I know. Therefore, parents ! I intend to accept consecration with your permission.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीक्षा के लिए प्रस्थान

भगवान के पास दीक्षाग्रहण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रक्रम ३३ :
अतिमुक्तकुमार की दीक्षा-शोभायात्रा

दृश्य १—मस्तक पर चोटी रखकर बाकी केश मुंडन कर अतिमुक्तकुमार ने राजमुकुट धारण किया। एक सहस्र पुरुष वाहिनी विशाल शिविका में एक ऊँचे आसन पर दीक्षार्थी राजकुमार बैठा है। उनकी दाहिनी ओर राजमाता श्रीदेवी हंस चिन्हांकित पट शाटक लेकर भद्रासन पर बैठी है। बाई तरफ पात्र–रजोहरण आदि लेकर धायमाता बैठी है।

दृश्य २—भगवान महावीर के समवसरण में पहुँचकर कुमार ने आभरण अलंकारों का त्याग कर मुनिवेश पहना और प्रभु-चरणों में उपस्थित होकर संयम दीक्षा प्रदान करने की प्रार्थना की। माता-पिता ने प्रभु से प्रार्थना करते हुए कहा–हमारा यह अत्यन्त प्रिय पुत्र संसार भय से उद्विग्न हो गया है। इसे शिष्य रूप में स्वीकार करने की कृपा कीजिए।

(वर्ग ६/अध्य. १५)

Illustration No. 33 :
Consecration procession of *Atimuktakumāra*

Scene 1. Keeping only top-knot on head, tonsured *Atimuktakumāra* wore crown. Prepared for consecration *Atimuktakumāra* is sitting on a high seat in the palanquin, which is to be carried by one thousand men. In his right side queen *Śrīdevī* is sitting on a leisure seat, with a goose marked cloth in her hands. On left side nurture-mother is sitting taking holy broom, utensils etc., the sage-symptoms.

Scene 2. Reaching the religious assembly of *Bhagawāna Mahāvīra, Atimuktakumāra* put off all the ornaments, royal dress etc., and put on sage-robe, approached *Bhagawāna* and prayed for consecration. Parents said praying to *Bhagawāna*–Our this dear son became distressed by the fear of world. Please accept him as your disciple and oblige us.

(Sec. 6/Ch. 15)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रक्रम ३४ :

अतिमुक्त मुनि : जल में पात्ररूपी नाव

एक बार महावर्षा होने पर बाल-मुनि अतिमुक्त स्थविरों के साथ स्थण्डिल भूमि को गये। वहाँ बरसाती पानी के एक छोटे नाले को देखकर, नाले पर मिट्टी की पाल बाँधी और अपना पात्र जल में छोड़कर हर्षित होकर कहने लगे–यह मेरी नाव तैर रही है। बाल-मुनि की यह क्रीड़ा देखकर स्थविर श्रमण अप्रसन्न हुए और उन्हें बिना कहे ही भगवान महावीर के पास चले आये।

(भगवती सूत्र ५/४ के अनुसार)

Illustration No. 34 :

Atimukta sage : *Pātra* (utensil) as boat in water

Once it rained cats and dogs. Boy sage *Atimukta* went for discharging urine and stool in open ground with elder sages. In the way, seeing a rainy drain he stoppd there, checked the flow of water by clay and leaving his own utensil in water, gladfully began to say–My boat is swimming. Seeing such play of boy-sage, the elder sages became displeased and saying nothing to the boy-sage came to *Bhagawāna Mahāvīra*.

(According to *Bhagawatī Sūtra* 5/4)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

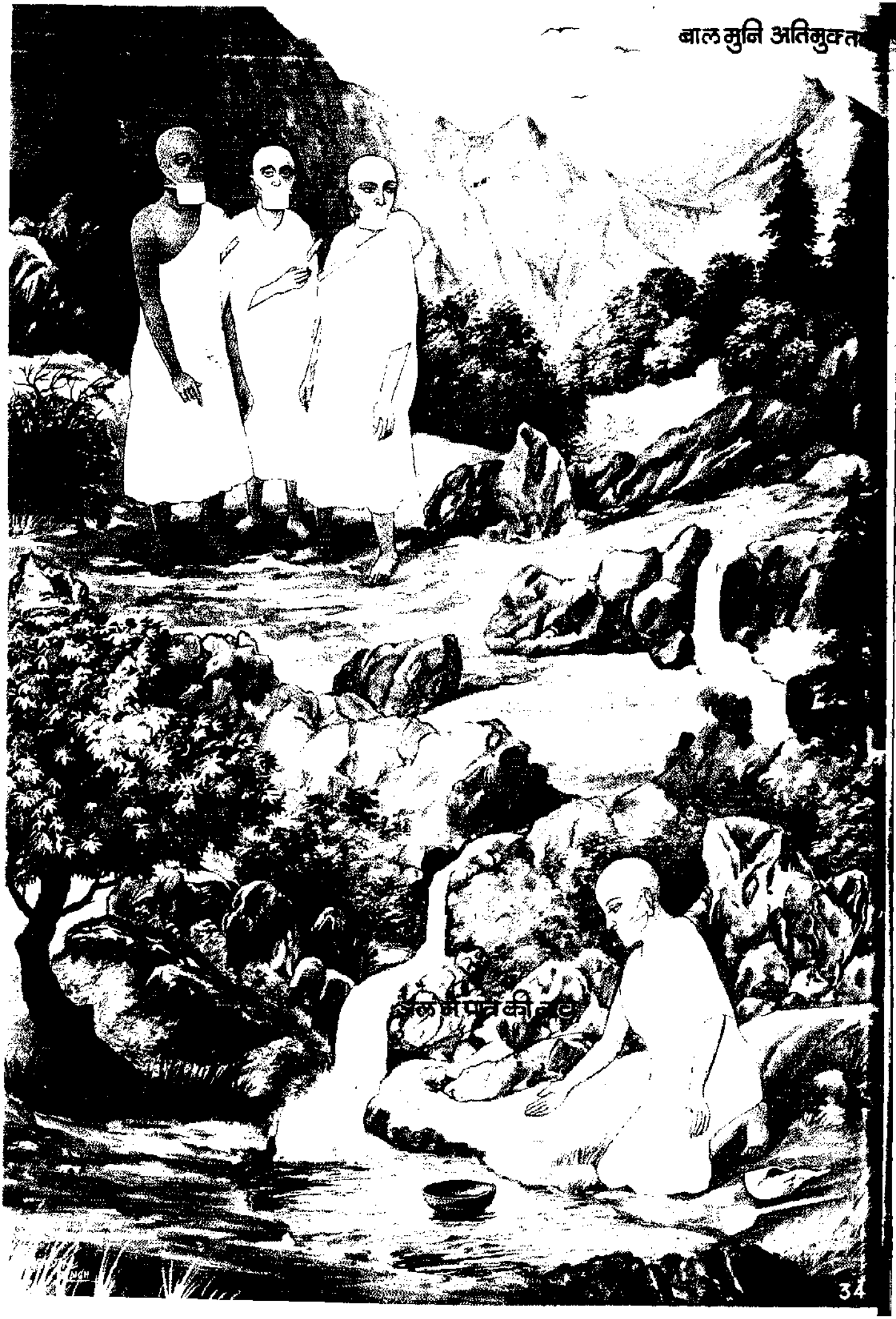

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

When parents could not prevail upon *Atimuktakumāra* by various reasons and arguments, they spoke–Son ! We desire to see your royal splendour may be for even one day *i.e.*, we want to coronate you.

Then *Atimuktakumāra* remained silent at the words of his parents. Then his anointment ceremony was celebrated like *Mahābala*. Then he accepted consecration in presence of *Bhagawāna Mahāvīra*, studied *Sāmāyika* etc., eleven holy scriptures (*aṅgas*), practised sage conduct for many years and observed *Guṇaratna Saṁvatsara* austerity until he was beatified on *Vipulagiri*.

विवेचन

अतिमुक्त कुमार के जीवन संबंधी अंतगडसूत्र के इस वर्णन के अतिरिक्त भगवती सूत्र के पांचवें शतक, चतुर्थ उद्देशक में मुनि अतिमुक्त के जीवन की एक घटना का बड़ा सुन्दर विवेचन मिलता है । यहां आवश्यक होने से मूल पाठ का भावानुवाद दिया जा रहा है–

श्रमण भगवान महावीर स्वामी के शिष्य अतिमुक्त कुमार नाम के श्रमण थे । वे प्रकृति से भद्र और विनीत थे । वे अतिमुक्त कुमार श्रमण किसी दिन महावर्षा बरसने पर अपना रजोहरण तथा पात्र लेकर बाहर स्थंडिल हेतु (शौच निवृत्ति के लिए) गये । जाते हुए अतिमुक्त कुमार श्रमण ने मार्ग में बहते हुए पानी के एक छोटे नाले को देखा । देखकर उन्होंने उस नाले की मिट्टी की पाल बांधी । इसके बाद जिस प्रकार नाविक अपनी नाव को पानी में छोड़ता है, उसी तरह उन्होंने भी अपने पात्र को उस पानी में छोड़ा और "यह मेरी नाव है, यह मेरी नाव है"–ऐसा कहकर पात्र को पानी में तिराते हुए क्रीडा करने लगे । अतिमुक्त कुमार श्रमण को ऐसा करते हुए देखकर स्थविर मुनि उन्हें कहे बिना ही चले आए और श्रमण भगवान महावीर स्वामी से उन्होंने पूछा–

भगवन् ! आपका शिष्य अतिमुक्त कुमार श्रमण कितने भव करने के बाद सिद्ध होगा ? यावत् सब दुःखों का अन्त करेगा ?

श्रमण भगवान महावीर स्वामी उन स्थविर मुनियों को सम्बोधित करके कहने लगे–हे आर्यो ! प्रकृति से भद्र यावत् प्रकृति से विनीत मेरा अंतेवासी अतिमुक्त कुमार, इसी भव में सिद्ध होगा यावत् सभी दुःखों का अन्त करेगा । अतः हे आर्यो ! तुम अतिमुक्त श्रमण की हीलना, निन्दा, खिंसना, गर्हा और अपमान मत करो । किन्तु तुम अग्लान भाव से अतिमुक्त कुमार श्रमण को ग्रहण करो, उसकी सहायता करो और आहार पानी के द्वारा विनयपूर्वक वैयावृत्य करो । अतिमुक्त कुमार श्रमण चरमशरीरी है और इसी भव में सब कर्मों का क्षय करने वाला है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण भगवान महावीर स्वामी द्वारा यह वृत्तान्त सुनकर उन स्थविर मुनियों ने श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार किया। फिर वे स्थविर मुनि अतिमुक्त कुमार श्रमण को अग्लान भाव से स्वीकार कर यावत् उनकी वैयावृत्य करने लगे।

(भगवती सूत्र ५/४)

पन्द्रहवां अध्ययन समाप्त

Elucidation

Besides this life sketch of *Atimuktakumāra* as related in *Antakṛddaśā Sūtra*, we also find one event in *Bhagavatī Sūtra* (5/4). Being interesting, necessary and important we are giving here the transliteration of original text of that episode.

Disciple of *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra*, was sage *Atimuktakumāra*. He was gentle and humble by nature. Once it rained cats and dogs. As rain stopped, *Atimuktakumāra* went for discharging stool and urine in an open land taking his holy broom and utensil with him.

In the way he saw a small rivulet full of water. First of all he made the fence of clay to stop the flow of water. After that as the sailor moves his boat in water of a river, in the same way he placed his utensil on the water of that small rivulet and began to float that utensil, uttering–"this is my boat, this is my boat." Thus sage *Atimuktakumāra* began to play.

Seeing sage *Atimuktakumāra* thus playing, the aged sages, speaking nothing to him, directly approached *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra* and bowing down and worshipping him, asked–

Bhagawan ! After how many births will your disciple sage *Atimuktakumāra* attain salvation ?

Bhagawāna told–My disciple sage *Atimuktakumāra* will attain liberation in this very life span and end all miseries. It is his last physical body. Therefore you must not regret, abuse and disgrace him, but serve him with decorum, help him and give assistance in food etc., *Atimuktakumāra* is going to exhaust his all *karmas* and attain salvation in this very life span.

Hearing all this, those aged sages bowed down and worshipped *Bhagawāna* and then began to look after sage *Atimuktakumāra*.

(–*Bhagavatī Sūtra* 5/4)

[Fifteenth Chapter concluded]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोलहवां अध्ययन

सूत्र ४० :

उक्खेवओ सोलसमस्स अज्झयणस्स ।

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणारसीए णयरीए काममहावणे चेइए । तत्थ णं वाणारसीए अलक्खे णामं राया होत्था ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ । परिसा णिग्गया ।

तए णं अलक्खे राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठतुट्ठ जहा कूणिए जाव पज्जुवासइ, धम्मकहा ।

तए णं से अलक्खे राया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए जहा उदायणे तहा णिक्खंते, णवरं जेट्ठं पुत्तं रज्जे अहिसिंचइ, एक्कारस अंगाइं ; बहुवासा परियाओ ; जाव विपुले सिद्धे ।

एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव छट्ठमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते ।

(इति छट्ठो वग्गो)

सूत्र ४० :

आर्य जम्बू ने कहा—हे भगवन ! पन्द्रहवें अध्ययन का भाव मैंने सुना । अब सोलहवें अध्ययन में प्रभु ने क्या अर्थ कहा है ? कृपा कर बताइये ।

श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं—हे जम्बू ! उस काल, उस समय में वाराणसी नगरी में काम महावन नामक उद्यान था । उस वाराणसी नगरी में अलक्ष नाम का राजा था ।

उस काल उस समय में श्रमण भगवान महावीर प्रभु उस उद्यान में पधारे । जन परिषद प्रभु-वन्दन को निकली ।

राजा अलक्ष भी प्रभु महावीर के पधारने की बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ, और कोणिक राजा के समान वह भी प्रभु महावीर की सेवा में उपासना करने लगा। प्रभु ने धर्म कथा कही ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तब अलक्ष राजा ने श्रमण भगवान महावीर के पास उदायन की तरह श्रमण दीक्षा ग्रहण की । विशेष बात यह रही कि उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य सिंहासन पर बिठाया । ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, बहुत वर्षों तक श्रमण चारित्र का पालन किया, अन्त में विपुलगिरि पर जाकर सिद्ध हुए । **(छट्ठा वर्ग समाप्त)**

Chapter 16

Maxim 40 :

Ārya Jambū said–*Bhagawan* ! I have heard the subject matter of fifteenth chapter. What has *Bhagawāna* described in sixteenth chapter ? Kindly tell me.

Sudharmā Swāmī began to narrate–At that time and at that period, there was a *Kāma Mahāvana* garden in *Vārāṇasī* city. *Alakṣa* was the king of *Vārāṇasī*.

At that time and at that period, *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra* arrived at that garden. Public congregation went out for bowing down to *Bhagawāna*.

King *Alakṣa* also became glad as he heard that *Bhagawāna Mahāvīra* had come and like king *Koṇika* he also began to serve and worship *Bhagawāna Mahāvīra*. *Bhagawāna* delivered religious discourse.

Then like *Udāyana*, king *Alakṣa* accepted sage consecration, in presence of *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra*. Excepting; he coronated his eldest son. *Alakṣa* studied eleven holy scriptures (*aṅgas*). practised sage conduct for many years and in the end he attained salvation on *Vipulagiri*.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन

जहा कूणिए–कूणिक राजा के समान भगवान का दर्शन करने आया–यह विस्तृत वर्णन औपपातिक सूत्र में है। विस्तार अन्तकृद्दशा महिमा में देखें ।

जहा उदायणे–जैसे वीतभय नगरी का राजा उदायन भगवान के पास दीक्षित हुआ। इसी प्रकार ..... । राजा उदायन का वर्णन भगवती सूत्र शतक १३, उद्देशक ७ में आया है ।

(देखें–अन्तकृद्दशा महिमा ।)

Elucidation

1 *Jahā Kūṇie*–Came to see *Bhagawāna* like king *Koṇika*. The detailed description of this can be got in *Aupapātika Sūtra*. Readers are requested to read *Antakṛddaśā Mahimā* for detailed study of this subject.

2. *Jahā Udāyaṇe*–as *Udāyana*, king of *Vītabhaya Pāṭana* was consecrated in presence of *Bhagawāna Mahāvīra* in the same way..... Description of king *Udāyana* can be got in *Bhagavatī Sūtra Śataka* 13 *uddeśaka* 4. For detailed study see *Antakṛddaśā Mahimā*.

[Chapter sixteenth concluded]

(Section 6 Completed)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सातवां वर्ग

सूत्र १ :

जइ णं भंते ! सत्तमस्स वग्गस्स उक्खेवओ जाव तेरस अज्झयणा पण्णत्ता । तं जहा–

नंदा[१] तहा नंदवई,[२] नंदोत्तर[३] नंदसेणिया[४] चेव ।
मरुया[५] सुमरुया[६] महमरुया,[७] मरुदेवा[८] य अट्ठमा ॥१॥
भद्दा[९] य सुभद्दा[१०] य, सुजाया[११] सुमणाइया[१२] ।
भूयदिण्णा[१३] य बोद्धव्वा, सेणिय-भज्जाण णामाइं ॥२॥

सूत्र १ :

श्री जम्बू स्वामी बोले–हे भगवन् ! छठे वर्ग का भाव मैंने सुना। अब सातवें वर्ग का प्रभु ने क्या अर्थ कहा है ? आप मुझे बताने की कृपा करें ।

श्री सुधर्मा स्वामी–सातवें वर्ग के तेरह अध्ययन कहे गये हैं, जो इस प्रकार हैं–

१. नन्दा, २. नन्दवती, ३. नन्दोत्तरा, ४. नन्दश्रेणिका, ५. मरुता, ६. सुमरुता, ७. महामरुता, ८. मरुदेवा, ९. भद्रा, १०. सुभद्रा, ११. सुजाता, १२. सुमनायिका, १३. भूतदत्ता ।

ये सब राजा श्रेणिक की रानियां थीं ।

SEVENTH SECTION

Maxim 1 :

Jambū Swāmī said–*Bhagawan* ! I have heard attentively the subject matter of sixth section. What has *Bhagawāna* said in Seventh Section; Kindly tell me.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Sudharmā Swāmī told–O *Jambū* ! *Bhagawāna* has narrated thirteen chapters in seventh section. Names of these are–

1. Nandā 2. Nandavatī 3. Nandottarā, 4. Nandaśreṇikā, 5. Marutā 6. Sumarutā 7. Mahāmarutā 8. Maruddevā, 9. Bhadrā, 10. Subhadrā, 11. Sujātā, 12. Sumanāyikā and 13. Bhūtadattā.

All these were the queens of king *Śreṇika.*

सूत्र २ :

जइ णं भंते ! सत्तमस्स वग्गस्स तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे, गुणसिलए चेइए, सेणिए राया, वण्णओ ।

तस्स णं सेणियस्स रण्णो णंदा णामं देवी होत्था, वण्णओ ।

सामी समोसढे । परिसा णिग्गया । तए णं सा णंदा देवी इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणी जाव हट्ठतुट्ठा कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ । सद्दावित्ता जाणं दुरूहइ ; जहा पउमावई । जाव एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता बीसं वासाइं परियाओ जाव सिद्धा ।

एवं तेरस वि णंदागमेण णेयव्वाओ ।

णिक्खेवओ । (इति सत्तमो वग्गो)

सूत्र २ :

हे भगवन् ! प्रभु ने सातवें वर्ग के तेरह अध्ययन कहे हैं, तो प्रथम अध्ययन का श्रमण भगवान महावीर ने यावत् मुक्ति प्राप्त प्रभु ने क्या अर्थ फरमाया है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा–हे जम्बू ! उस काल उस समय में राजगृह नाम का नगर था । उसके बाहर गुणशीलक नाम का उद्यान था । वहां श्रेणिक नाम के राजा राज्य करते थे । उस श्रेणिक राजा की नंदा नाम की रानी थी, जो वर्णन करने योग्य थी ।

प्रभु महावीर राजगृह नगर के उद्यान में पधारे । जन परिषद वंदन करने को गयी । उस समय नन्दा देवी भगवान के आगमन की खबर सुनकर बहुत प्रसन्न हुई और उसने आज्ञाकारी सेवकों को बुलाकर धार्मिक रथ लाने की आज्ञा दी । पद्मावती की तरह इसने भी दीक्षा ली यावत् ग्यारह अंगों का अध्ययन किया । बीस वर्ष तक श्रमण पर्याय का पालन किया, यावत् अन्त में सिद्ध हुई ।

इसी प्रकार नन्दवती आदि के सभी अध्ययन नंदा के समान हैं । यह निक्षेपक है–समान वर्णन समझना चाहिए ।

इस प्रकार हे जम्बू ! भगवान् ने सातवें वर्ग का यह भाव फरमाया है । (कथा अनुसार यह नन्दा रानी अभयकुमार की माता थी।)

(सातवां वर्ग समाप्त)

Maxim 2 :

Jambū Swāmī said, *Bhagawan* ! If *Bhagawāna* mentioned thirteen chapters in seventh section then what was the subject matter of first chapter as described by *Bhagawāna Mahāvīra.*

Sudharmā Swāmī told–O *Jambū* ! At that time and at that period there was a city named *Rājagṛha.* At the outskirt of that city was *Guṇaśīlaka* garden. King *Śreṇika* ruled there. *Nandā* was the queen of king *Śreṇika.* She was describable.

Lord Mahāvīra came and stayed at the garden. Public congregation went to bow down to him.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

At that time *Nandā* became very happy on, hearing the news that *Bhagawāna* was staying in the garden. She called the chamberlains and ordered them to bring religious chariot.

She also accepted consecration, like *Padmavatī*, studied eleven holy scriptures (*aṅgas*), practised sagehood for twenty years, and in the end became emancipated.

Like this are the remaining twelve chapters *Nandavatī* and others. They should be considered similar in description.

Thus, O *Jambū* ! *Bhagawāna* expressed the subject matter of Seventh Section.

(According to recital queen *Nandā* was the mother of *Abhayakumāra*.)

[Seventh Section Completed]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अष्टम वर्ग

सूत्र १ :

जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं सत्तमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते । अट्ठमस्स णं भंते ! वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता । तं जहा–

काली,[१] सुकाली,[२] महाकाली,[३] कण्हा,[४] सुकण्हा,[५] महाकण्हा[६] ।

वीरकण्हा[७] य बोद्धव्वा, रामकण्हा[८] तहेव य ॥

पिउसेणकण्हा[९] णवमी, दसमी महासेणकण्हा[१०] य ।

जइ णं भंते ! अट्ठमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

सूत्र १ :

श्री जम्बू स्वामी ने पूछा–हे भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने सातवें वर्ग के जो भाव फरमाये, वे आपके श्रीमुख से मैंने सुने । कृपापूर्वक कहिये कि आठवें वर्ग में प्रभु ने किन भावों का प्रतिपादन किया है ?

सुधर्मा स्वामी–हे जम्बू ! आठवें वर्ग में श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने दस अध्ययन फरमाये हैं–

१. काली २. सुकाली, ३. महाकाली, ४. कृष्णा, ५, सुकृष्णा, ६. महाकृष्णा, ७. वीरकृष्णा, ८. रामकृष्णा, ९, पितृसेनकृष्णा, और १०. महासेनकृष्णा ।

जम्बू स्वामी ने पूछा–हे भगवन् ! भगवान ने आठवें वर्ग के दस अध्ययन फरमाये हैं, तो प्रथम अध्ययन के क्या भाव परमाये हैं ? कृपाकर बताइए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

EIGHTH SECTION

Maxim 1 :

Śrī Jambū Swāmī asked–O *Bhagawan* ! I have heard from you the subject matter of seventh section as described by *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra*. Now please tell the subject matter as expressed by *Bhagawāna* in eighth section.

Śrī Sudharmā Swāmī told–O *Jambū* ! In eighth section *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra* described ten chapters. Names of these are–

1. Kālī, 2. Sukālī, 3. Mahākālī, 4. Kṛṣṇā, 5. Sukṛṣṇā 6. Mahākṛṣṇā, 7. Vīrakṛṣṇā 8. Rāmakṛṣṇā, 9. Pitṛsenakṛṣṇā and 10. Mahāsenakṛṣṇā.

Jambū Swāmī asked–If *Bhagawāna* described ten chapters in eighth section then what had he told in first chapter ? Kindly tell me.

प्रथम अध्ययन

सूत्र २ :

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा णामं णयरी होत्था, पुण्णभद्दे चेइए ।

तत्थ णं चम्पाए णयरीए कोणिए राया वण्णओ। तत्थ णं चंपाए नयरीए सेणियस्स रण्णो भज्जा; कोणियस्स रण्णो चुल्लमाउया काली णामं देवी होत्था, वण्णओ ।

जहा णंदा सामाइयमाइयाइं एक्कारसअंगाइं अहिज्जइ, बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठमेहिं जाव अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

सूत्र २ :

श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा–उस काल, उस समय में चम्पा नामक नगरी थी, पूर्णभद्र नामक यक्षायतन था । कोणिक राजा का शासन चल रहा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

था । श्रेणिक महाराज की भार्या एवं कोणिक महाराज की छोटी माता काली नामक रानी थी ।

नन्दा के समान उसने दीक्षा ग्रहण की । सामायिक आदि (छह आवश्यकों के साथ) ग्यारह अंगों का अध्ययन किया एवं उपवास, बेला, तेला आदि विविध तपस्याओं से आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी ।

Chapter 1

Maxim 2 :

Sudharmā Swāmī told–O *Jambū* ! At that time and at that period, there was a city named *Campā*, a sanctuary of *Pūrṇabhadra* deity, King *Koṇika* was ruling. There was a queen named *Kālī*, consort of king *Śreṇika* and younger step mother of king *Koṇika*.

She accepted consecration, like queen *Nandā*. She studied *Sāmāyika* (containing six necessary section) etc., eleven holy scriptures (*aṅgas*) and began to wander engrossing her soul with one day fast, two days' fast, three days' fast, etc. and various types of penances.

विवेचन

नन्दा रानी आदि के वर्णन में राजगृह नगरी तथा राजा श्रेणिक का उल्लेख है और यहां पर चम्पा नगरी तथा कोणिक राजा का । इससे पता चलता है कि काली आदि का यह वर्णन राजा श्रेणिक के देहावसान के पश्चात् पितृ-शोकग्रस्त राजा कोणिक ने राजगृह को छोड़कर चम्पानगरी को अपनी राजधानी बनाई, उसके बाद का है ।

काली आदि दसों रानियों को वैराग्य उत्पन्न होने के पीछे जो घटना घटी, वह निरयावलिका सूत्रानुसार इस प्रकार है–

मगधेश्वर श्रेणिक ने अपने जीवन काल में, चेलना के लघु पुत्र हल्ल और विहल्ल कुमार को देवनामी हार और सिंचानक हाथी उपहार के रूप में दिये थे । वे कुमार अपने अन्तःपुर के साथ इन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोनों वस्तुओं का उपभोग करते हुए आनन्द से रह रहे थे । चम्पा के निवासी उनके सुखी जीवन, तथा हार और हाथी के उपभोग की प्रशंसा करते रहते थे कि 'हल्ल, विहल्लकुमार वास्तव में राज्य लक्ष्मी का सुख भोग रहे हैं । राजा कोणिक तो सिर्फ राज्य का भार ढोता है, कोणिक की पटरानी पद्मावती ने जनता की बात को सुनकर महाराज कोणिक से निवेदन किया–'ये दोनों वस्तुएँ हार व हाथी तो राजचिन्ह हैं अतः आपको शोभा देती हैं ।' कोणिक ने उत्तर दिया–'पिताजी ने ये मेरे छोटे भाइयों को उपहार रूप में दी हैं, ये उनसे मांगना उचित नहीं हैं ।' परन्तु पटरानी के अति आग्रह से राजा कोणिक ने विवश होकर हल्ल विहल्ल कुमार को इन दोनों वस्तुओं को लौटाने के लिये आज्ञा दे दी ।

हल्ल-विहल्लकुमार ने नम्रता से उत्तर दिया कि–बंधु ! अगर आप इनके बदले हमको राज्य का एक भाग देवें तो हम इनको आपको दे सकते हैं ।

राजा कोणिक ने राज्य का बंटवारा करने से इंकार कर दिया, और बलपूर्वक हार-हाथी लेना चाहा ।

हल्ल-विहल्लकुमार को कोणिक के विचारों का पता चल गया । तब वे अपने परिवार, सेना, कोष, हार और हाथी सहित चुपचाप अपने नाना चेटक राजा के पास चले गये । कोणिक को हल्ल-विहल्लकुमार के चुपचाप चम्पा से चले जाने की वार्ता ज्ञात होने पर बहुत क्रोध आया । उसने अपने नाना राजा चेटक को हार, हाथी सहित हल्ल विहल्लकुमार को लौटाने के लिये सन्देश भेजा । चेटक राजा न्याय का पक्षधर था, उसने जवाब दिया कि वे उसकी बात तब मानने को सहमत हैं, जब वह हल्ल-विहल्लकुमार को अपना आधा राज्य दे देवें ।

इस शर्त को अमान्य करके राजा कोणिक ने चेटक राजा की नगरी वैशाली पर आक्रमण कर दिया । कोणिक नृप के साथ उसके दस विमाता-पुत्र भाई कालिकुमार आदि सेनापति के रूप में युद्ध के मैदान में आये । भयंकर नर-संहार हुआ । वे दसों सेनापति चेटक राजा के बाणों से काल के ग्रास हो गये ।

इस बीच भगवान महावीर का चम्पानगरी में समवशरण हुआ । काली आदि दसों ही महारानियों ने भगवान से पूछा–वे अपने पुत्रों का युद्ध से लौटने पर मुँह देख सकेंगी या नहीं ? प्रभु ने उनके युद्ध में काम आने की बात बताई । इस पर वे सभी दसों रानियां संसार की असारता को समझकर विरक्त हुईं और दीक्षित हो गईं ।

Elucidation

In the description of queen *Nandā* etc., the names of king *Śreṇika* and *Rājagṛha* city are given and here *Campā* city and king *Koṇika* are referred. It

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

clearly shows that this description of queen *Kālī* etc., is after the death of king *Śreṇika*. Being in sorrow at the death of his father *Śreṇika*, King *Koṇika* left *Rājagṛha* and made *Campā* his capital. So these episodes of queens *Kālī* etc., happened after the death of king *Śreṇika*.

The event which excited the apathy of *Kālī* etc., according to *Nirayāvalikā Sūtra*, is as follows–

Monarch of *Magadha*, King *Śreṇika*, in his life time, had given two valuable things as gift–1. Necklace given by god (*Devanāmī hāra*) and 2. elephant *Sinćānaka* or *Secanaka*, to the two younger sons, named *Halla* and *Vihalla* born of queen *Celanā*. Both princes, enjoining these things, with their harems, were living in pleasure. The inhabitants of *Campā* city used to praise their happy life, necklace and elephant, saying that–verily *Halla* and *Vihalla Kumāras* are enjoying the royality (*rājya-lakṣmī*), king *Koṇika* is only bearing the burden of kingdom.

Padmāvatī, the chief queen of *Koṇika* heard these views of public then she requested her husband king *Koṇika*–Necklace and elephant–both are the signs of kingdom, therefore, these are for you only.

Koṇika replied–My father had given these two valuable things–Necklace and elephant–to my younger brothers, so it is not proper to ask these things from them.

But chief queen *Padmāvatī* insisted then under compulsion, *Koṇika* ordered his younger brothers to return that necklace and elephant.

Princes *Halla* and *Vihalla* gave a polite answer–Elder brother ! If you want to take these things, then please give us a part of kingdom.

Koṇika denied the division of kingdom, and tried to take Necklace and elephant by force.

Halla-Vihalla knew the scheme of *Koṇika*. Then they stealthily ran away to their maternal grandfather king *Ceṭaka* taking with them all their army, treasure, seraglio, necklace and elephant. When *Koṇika* came to know that *Halla-Vihalla* had stealthily run away from *Campā* city then he was filled with wrath. He had sent message to his maternal grand father to send back princes *Halla-Vihalla* with divine necklace and *Sinćānaka* elephant. *Ceṭaka* was a just man. He replied that if *Koṇika* gives half of his kingdom to princes *Halla* and *Vihalla* then he could accept the proposal.

Denying this proposed *Koṇika* attacked Vaisali capital city of *Ceṭaka*. With king *Koṇika* his ten step brothers *Kālikumāra* etc., came as army-commanders in battle field. Millions of men were killed these ten brothers were killed by the arrows of *Ceṭaka*.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

During this period *Bhagawāna* arrived at *Campā* city. All the queens Kāli and others asked *Bhagawāna*–Can we see the faces of our sons, when they return from battle field or not ? The *Lord* told that their sons had died in war.

Hearing this all the ten queens thought that life is momentary, so disinclined to world, became consecrated.

सूत्र ३ :

तए णं सा काली अज्जा अण्णया कयाइं जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागया; उवागच्छित्ता एवं वयासी–इच्छामि णं अज्जाओ ! तुब्भेहिं अब्भनुण्णाया समाणी रयणावलिं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए ।

"अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह ।"

तए णं सा काली अज्जा अज्जचंदणाए अब्भनुण्णाया समाणी रयणावलिं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ ।

काली आर्या का रत्नावली तप

सूत्र ३ :

एक बार काली आर्या ने आर्या चन्दनबाला के पास आकर वंदना नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया–

हे आर्ये ! आपकी आज्ञा प्राप्त होने पर मैं रत्नावली नामक तप को अंगीकार करके विचरना चाहती हूँ ।

साध्वी प्रमुखा चन्दनबालाजी ने अनुज्ञा प्रदान करते हुए कहा–देवानुप्रिये ! जैसा सुख हो वैसा करो, विलम्ब मत करो ।

तब आज्ञा प्राप्त कर आर्या काली ने रत्नावली नामक तप विशेष की इस प्रकार आराधना की–

Ratnāvalī Penance of Āryā Kālī

Maxim 3 :

Once *Ārya Kālī* approached *Āryā Candanabālā*, Bowing down and worshipping her, she requested–O *Ārye* ! I intend to accept *Ratnāvalī* penance, if you permit me.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Chief nun *Candanabālā* permitting *Āryā Kālī* said–O beloved as gods ! Do as you please; but do not make any delay in auspicious deeds.

Getting permission *Āryā Kālī* propiliated *Ratnāvalī* penance in this way–

सूत्र ४ :

तं जहा-

चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,

पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,

पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,

पारित्ता अट्ठछट्ठाइं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,

पारित्ता, चउत्थं करेइ करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,

पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,

पारित्ता, अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,

पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,

पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,

पारित्ता चोद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,

पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,

पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,

पारित्ता वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,

पारित्ता बावीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामुणियं पारेइ,

पारित्ता चउवीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,

पारित्ता छब्बीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पारित्ता अट्ठावीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,
पारित्ता तीसइमं करेइ करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,
पारित्ता बत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,
पारित्ता चोत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,
पारित्ता चोत्तीसं छट्ठाइं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,
पारित्ता चोत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,
पारित्ता बत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,
पारित्ता तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,
पारित्ता अट्ठावीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,
पारित्ता छव्वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,
पारित्ता चउवीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,
पारित्ता बावीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,
पारित्ता वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,
पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,
पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,
पारित्ता चोद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,
पारित्ता बारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,
पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,
पारित्ता अट्ठमं करेइ करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,
पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,
पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पारित्ता अट्ठछट्ठाइं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ

पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,

पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,

पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ ।

एवं खलु सा रयणावलीए तवोकम्मस्स पढमा परिवाडी, एगेणं संवच्छरेणं तिहिं मासेहिं बावीसाए य अहोरत्तेहिं अहासुत्तं जाव आराहिया भवइ ।

सूत्र ४ :

उपवास (चतुर्थ भक्त) किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त (विगय सहित) पारणा किया। पारणा करके, बेला (षष्ट भक्त) किया, फिर पारणा किया। पारणा करके तेला (अष्टम भक्त) किया, फिर पारणा किया । पारणा करके, आठ बेले किये, फिर पारणा किया । पारणा करके, उपवास किया, फिर पारणा किया । पारणा करके, बेला किया, फिर पारणा किया । पारणा करके तेला किया, फिर पारणा किया । पारणा करके, (दशम) चोला किया, फिर पारणा किया । पारणा करके (द्वादशम) पंचोला किया, फिर पारणा किया । पारणा करके, छह दिन का उपवास (चतुर्दश भक्त) किये, फिर पारणा किया । पारणा करके सात दिन का उपवास किया फिर पारणा किया । पारणा करके, आठ उपवास किये, फिर पारणा किया । पारणा करके, नव उपवास किये, फिर पारणा किया । पारणा करके, दश उपवास किये, पुनः पारणा किया । पारणा करके, ग्यारह उपवास किये, पुनः पारणा किया । पारणा करके, बारह उपवास किये, पुनः पारणा किया । पारणा करके, तेरह उपवास किये, पुनः पारणा किया । पारणा करके, चौदह उपवास किये, पुनः पारणा किया । पारणा करके, पन्द्रह उपवास किये, पुनः पारणा किया । पारणा करके, सोलह दिन का उपवास किया, (चौंतीस भक्त) पुनः पारणा किया । पारणा करके चौंतीस बेले किये, फिर पारणा किया । पारणा करके पुनः सोलह दिन का उपवास (चौंतीस भक्त) किये, पुनः पारणा किया । पारणा करके, पन्द्रह उपवास किये, फिर पारणा किया । पारणा करके चौदह उपवास किये, पारणा किया । पारणा करके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेरह उपवास किये, फिर पारणा किया । पारणा करके, बारह उपवास किये, फिर पारणा किया । पारणा करके, ग्यारह उपवास किये, फिर पारणा किया । पारणा करके, दस उपवास किये, फिर पारणा किया । पारणा करके, नव उपवास किये, फिर पारणा किया । पारणा करके, आठ उपवास किये, फिर पारणा किया । पारणा करके, सात उपवास किये, फिर पारणा किया । पारणा करके छह उपवास किये, फिर पारणा किया । पारणा करके, पंचोला किया, फिर पारणा किया । पारणा करके, चोला किया, पारणा किया, करके, तेला किया, फिर पारणा किया । पारणा करके बेला किया फिर पारणा किया । पारणा करके, उपवास किया, फिर पारणा किया । करके आठ बेले किये, फिर पारणा किया । पारणा करके तेला किया, फिर पारणा किया, करके बेला किया, फिर पारणा किया । पारणा करके, उपवास किया, और पश्चात् सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया ।

इस प्रकार काली आर्या ने रत्नावली तप की एक परिपाटी (लड़ी) की आराधना की । रत्नावली तप की यह एक परिपाटी एक वर्ष, तीन महीने और बाईस दिन में पूर्ण होती है । (इस परिपाटी में तीन सौ चौरासी दिन तपस्या के और अट्ठासी दिन पारणा के होते हैं । इस प्रकार कुल चार सौ बहत्तर दिन होते हैं ।)

Maxim 4 :

She fasted upto four meals i.e. one day fast; broke it with all kinds of meals (with butter sweets etc.,); then two days' fast, broke it and took meal; then three day's fast, took meals; eight two days's fast, took meals; then one day fast, took meals; then two days' fast took meals; three days' fast, took meals; four days' fast, took meals; five days' fast, took meals; six days' fast, took meals; seven days' fast, took meals; eight days' fast, took meals; nine days' fast, took meals; ten days' fast, took meals; eleven days' fast, took meals, twelve days' fast, took meals; thirteen days' fast, took meals; fourteen days' fast, took meals; fifteen days' fast, took meals; sixteen days' fast, took meals; and

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

then she practised thirtyfour two days' fast, took meals after each fast and then sixteen days' fast, took meals; fifteen days' fast, took meals; fourteen days' fast, took meals; thirteen days' fast, took meals; twelve days' fast, took meals, eleven days' fast, took meals; ten days' fast, took meals; nine days' fast, took meals; eight days' fast, took meals; seven days' fast, took meals; six days' fast, took meals; five days' fast, took meals; four days' fast, took meals; three days' fast, took meals; two days' fast, took meals, one day fast, took meals; eight two days' fast, took meals; after each fast three days' fast, took meals; two days' fast, took meals; one day fast and then took meals of all the four types according to her desire and need.

Thus *Āryā Kāḷī* completed one series of *Ratnāvalī* penance. This one series of *Ratnāvalī* penance took one year, three months and twentytwo days to complete. In this series there were three hundred eightyfour days of penance and eightyeight days of taking meal.

सूत्र ५ :

तयाणंतरं च णं दोच्चाए परिवाडिए चउत्थं करेइ, करित्ता विगइवज्जं पारेइ,

पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता विगइवज्जं पारेइ,

एवं जहा पढमाए परिवाडीए तहा बीयाए वि, णवरं सव्वत्थ पारणगए विगइवज्जं पारेइ, जाव आराहिया भवइ ।

तयाणंतरं च णं तच्चाए परिवाडीए चउत्थं करेइ, करित्ता अलेवाडं पारेइ सेसं तहेव । एवं चउत्था परिवाडी, णवरं सव्वत्थ पारणाए आयंबिलं पारेइ । सेसं तं चेव ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पढमम्मि सव्वकामपारणयं, बीइयए विगइवज्जं ।
तइयम्मि अलेवाडं, आयंबिलओ चउत्थम्मि ॥

तए णं सा काली अज्जा रयणावलिं तवोकम्मं पंचहिं संवच्छरेहिं दोहिं य मासेहिं अट्ठावीसाए य दिवसेहिं अहासुत्तं जाव आराहित्ता जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागया, उवागच्छित्ता अज्जचंदणं वंदइ, णमंसइ; वंदित्ता, णमंसित्ता बहूहिं चउत्थ छट्ठट्ठम दसम-दुवालसेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ ।

सूत्र ५ :

इसके बाद काली आर्या ने रत्नावली तप की दूसरी परिपाटी प्रारम्भ की। उन्होंने पहले उपवास किया, उपवास का पारणा विगय रहित अर्थात् दूध, दही, घी, तेल और मीठा इन पांचों विगयों को छोड़ते हुए किया । इस प्रकार उपवास का पारणा करके बेला किया, पारणा किया । इस दूसरी परिपाटी के सभी पारणों में पांचों विगयों का त्याग रखा ।

इस प्रकार पहली परिपाटी के समान ही इस दूसरी परिपाटी का आराधन किया जाता है । विशेषता यही है कि पारणों में विगयों का सेवन वर्जित रहता है । बाकी तपस्या का क्रम एक समान ही है ।

इसके पश्चात् तीसरी परिपाटी में वह काली आर्या उपवास करती है, और लेप रहित पारणा करती है । शेष पहले के समान है । ऐसे ही काली आर्या ने चौथी परिपाटी की आराधना की । इसमें विशेषता यह है कि पारणे के दिन आयम्बिल करती है। शेष उसी प्रकार है । (देखिए चार्ट नं. २)

गाथार्थ–प्रथम परिपाटी में सर्वकामगुणयुक्त एवं दूसरी में विगय रहित पारणा किया । तीसरी में लेप रहित और चौथी परिपाटी में आयंबिल से पारणा किया ।

इस भांति काली आर्या ने संपूर्ण रत्नावली तप की आराधना की । इसमें पाँच वर्ष दो महीने और अट्ठाईस दिनों का समय लगा । तप आराधन करने के पश्चात् जहाँ आर्या चंदना थी, वहाँ आई और आर्या चन्दना को वन्दन नमस्कार किया ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तदनन्तर बहुत से उपवास, बेले, तेले, चोला, पंचोला आदि तप से अपनी आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी ।

Maxim 5 :

After that *Āryā Kālī* began the second series of *Ratnāvalī* penance. She observed one day fast, breaking one day fast penance she took meals devoid of milk, curd, ghee, oil and sweet–*vigayas*. After that she observed two days' fast and then took meals without all the five *vigayas* and so on. In this second series she avoided all the five *vigayas*.

Thus second series she observed like first series. Excepting; *vigayas* were not taken. The order of penance is the same as that of first series.

After this *Kālī Āryā* observed third series of fast. In it took she meals without smearing of *vigayas*. All else was same as first series. She also practised fourth series. In this on the day she took meals, she practised *āyambila* penance. Rest is the same. (See Table 2)

Meaning of Couplet–In the first series all types of meals according to desire and need. In the second taking meals devoid of *vigayas*. In the third taking meals even without smearing of *vigayas*; and in the fourth observing of *Āyambila* in stead of meal taking.

Thus *Kālī Āryā* propiliated complete *Ratnāvalī* penance. It took five years, two months and twentyeight days to perform. After practising this penance in due order, she came to *Āryā Candanā* and bowed down and woshipped her.

Thereafter *Kāḷī Āryā* began to wander engrossed her soul in various kinds of fast penances like–one day, two days', three days', four days', five days' etc.

सूत्र ६ :

तए णं सा काली अज्जा तेणं ओरालेणं तवोकम्मेणं सुक्का जाव धमणिसंतया जाया यावि होत्था । से जहा णामाए इंगाल सगडी वा जाव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुहुय हुयासणे इव भासरासिपलिच्छण्णा तवेणं तेएणं तव तेयसिरीए अईव अईव उवसोभेमाणी चिट्ठइ ।

काली आर्या की अन्तिम साधना

सूत्र ६ :

इतनी तपस्या करने के बाद काली आर्या उस कठोर घोर तपस्या से सूख गई, मांस सूखकर उसकी नसें प्रत्यक्ष साफ दिखने लगीं । अर्थात् उसके शरीर का रक्त-मांस प्रायः सूख गया, सिर्फ हड्डियों का ढांचा मात्र रह गया । जैसे कोयले से भरी गाड़ी में चलते समय आवाज निकलती है, वैसे उठते-बैठते, चलते-फिरते काली आर्या की हड्डियाँ भी कड़-कड़ बोलने लगीं । फिर भी होम की हुई अग्नि के समान एवं भस्म से ढकी हुई आग जैसे भीतर से प्रज्वलित रहती है वैसे तपस्या के तेज की शोभा से आर्या काली का शरीर अत्यन्त शोभायमान हो रहा था ।

Last Propiliation of Kālī Āryā

Maxim 6 :

Due to these hard and rigorous penances *Kālī Āryā* became lean and thin. Her veins became visible clearly– meaning blood and flesh of her body had dried up and her body was reduced to skeleton of bones only. As the cart full of coal makes sound while moving, so was the position of her body. Moving, sitting, standing, her bones made the sound of cracking, *i.e., khada-khada* still then, as the sacrificial fire, and fire covered by ashes, remains burning inside; so by the flames of penance the body of *Āryā Kālī* was full of lustre.

सूत्र ७ :

तए णं तीसे कालीए अज्जाए अण्णया कयाइं पुव्वरत्तावरत्तकाले अयमज्झत्थिए । जहा खंदयस्स चिंता जाव-अत्थि उट्ठाणे कम्मे, बल वीरिए, पुरिसक्कार-परक्कमे, सद्धा धिई संवेगे वा ताव मे सेयं कल्लं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाव जलंते अज्जचंदणं अज्जं आपुच्छित्ता अज्ज चंदणाए अज्जाए अब्भणुण्णायाए समाणीए संलेहणा झूसणा झूसियाए भत्त-पाण-पडियाइक्खियाए कालं अणवकंखमाणीए विहरित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कल्लं जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अज्जचंदणं अज्जं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी–

इच्छामि णं अज्जाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी संलेहणा जाव विहरित्तए ।

अहा सुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह ।

तओ काली अज्जा अज्जचंदणाए अज्जाए अब्भणुण्णाया समाणी संलेहणा झूसणा झूसिया जाव विहरइ ।

सा काली अज्जा अज्जचंदणाए अज्जाए अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारसअंगाइं अहिज्जित्ता बहुपडिपुण्णाइं अट्ठ संवच्छराइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ णग्गभावे जाव चरिमुस्सासणीसासेहिं सिद्धा ।

(पढमं अज्झयणं)

सूत्र ७ :

फिर किसी दिन रात्रि के पिछले प्रहर में काली आर्या के हृदय में स्कन्दक मुनि के समान इस प्रकार विचार उत्पन्न हुआ–"इस कठोर तप साधना के कारण मेरा शरीर अत्यन्त कृश हो गया है, तथापि जब तक मेरे इस शरीर में उत्थान (उठने बैठने की शक्ति) कर्म, (संयम क्रियाएं करने की क्षमता) बल, वीर्य (जीवनी शक्ति) और पुरुषाकार (पुरुषार्थ-अदीन भावना) पराक्रम है, मन में श्रद्धा, धैर्य एवं वैराग्य है, तब तक मेरे लिये उचित है कि कल सूर्योदय होने के पश्चात् मैं चन्दना आर्या को पूछकर उनकी आज्ञा प्राप्त होने पर संलेखना झूसणा का सेवन करती हुई भक्तपान का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्याग करके मृत्यु को नहीं चाहती हुई अर्थात् जीवन और मरण की इच्छा से रहित निष्काम विचरण करूँ ।

ऐसा सोचकर वह अगले दिन सूर्योदय होते ही जहाँ आर्या चन्दना थी, वहां आई और आर्या चन्दना को वन्दना नमस्कार कर इस प्रकार बोली–

हे आर्ये ! आपकी आज्ञा हो तो मैं संलेखणा-झूसणा करते हुए विचरना चाहती हूँ ।

आर्या चन्दना ने कहा–हे देवानुप्रिये ! जैसा तुम्हे सुख हो, वैसा करो । सत्कार्य साधन में विलम्ब मत करो ।

तब आर्या चन्दना की आज्ञा पाकर काली आर्या संलेखना-झूसणा करती हुई विचरने लगी ।

काली आर्या ने आर्या चन्दना के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया था और पूरे आठ वर्ष तक चारित्र धर्म का पालन करके एक मास की संलेखना से आत्मा को झूषित (कर्म रहित, निर्मल बनाकर) कर, साठ भक्त का अनशन पूर्ण कर, जिस हेतु से संयम ग्रहण किया था उसी निर्ममत्व भाव (नग्न भावं) से उसको अन्तिम श्वासोच्छ्वास तक पूर्ण करके वह काली आर्या सिद्ध-बुद्ध और मुक्त हो गई ।

(प्रथम अध्ययन समाप्त)

Maxim 7 :

Again, any day, like monk *Skandaka*, these thoughts arose in the mind of *Āryā Kālī*–Though my body has become lean, thin and reduced, yet, until, in my body are *utthāna*, *karma*, *bala*, *vīrya*, *puruṣākāra* and *parākrama*; faith, steadiness and detachment in mind; it would be proper for me that the next day after sun rise I should go to *Āryā Candanā* and taking her permission accept *saṁthārā*, renounce food, water and every kind of meals, not wishing death (becoming devoid of the wish of life and death), fix myself in soul virtues.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Thinking thus, next day as the sun rose *Āryā Kālī* approached *Āryā Candanā*, Bowing down and worshipping her she said–

"O *Ārye* ! If you allow me, I want to accept *saṁlekhanā-Jhūsaṇā*.

Āryā Candanā allowing her request, said :

O beloved as gods ! Do as you feel happy ; but do not delay in auspicious deeds.

Getting permission of *Āryā Candanā*, *Āryā Kālī* accepted last penance of fast–starvation and emancipation (*saṁlekhanā-jhūsaṇā*).

Āryā Kālī had learnt *Sāmāyika* etc., eleven holy scriptures (*aṅgas*) from *Āryā Candanā* (before) and completed eight years of sage-conduct period. She emaciated (exhausting all *karma*, making her soul pure), by cutting off sixty meals and accepting restrain. With her last breath, she became beatified, emancipated and ended all miseries.

[*N. B.* Please see the chart of *Ratnāvalī* penance.]

[First chapter concluded]

द्वितीय अध्ययन

सुकाली आर्या : कनकावली तप

सूत्र ८ :

उक्खेवओ बीयस्स अज्झयणस्स ।

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा णामं णयरी, पुण्णभद्दे चेइए, कोणिए राया ।

तत्थ णं सेणियस्स रण्णो भज्जा कोणियस्स रण्णो चुल्लमाउया सुकाली णामं देवी होत्था ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जहा काली तहा सुकाली वि णिक्खंता जाव बहूहिं चउत्थ जाव अप्पाणं भावेमाणी विहरइ ।

तए णं सा सुकाली अज्जा अण्णया कयाइं जेणेव अज्जचंदणा अज्जा जाव ''इच्छामि णं अज्जाओ तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी कणगावली तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए ।''

एवं जहा रयणावली तहा कणगावली वि, णवरं तिसु ठाणेसु अट्ठमाइं करेइ, जहा रयणावलीए छट्ठाइं । एक्काए परिवाडीए संवच्छरो, पंचमासा बारस य अहोरत्ता । चउण्हं पंच वरिसा णव मासा अट्ठारस दिवसा । सेसं तहेव, णववासा परियाओ । जाव सिद्धा ।

सूत्र ८ :

दूसरे अध्ययन का उत्क्षेपक इस प्रकार है–

आर्य जम्बू स्वामी ने कहा–हे भगवन् ! आठवें वर्ग के दूसरे अध्ययन में प्रभु महावीर ने क्या भाव फरमाये हैं ? कृपया बताइये ।

श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा–हे जम्बू ! उस काल उस समय में चम्पा नाम की नगरी थी, वहां पूर्णभद्र उद्यान (चैत्य) था, कोणिक नाम का राजा वहां राज्य करता था । उस नगरी में श्रेणिक राजा की रानी और कोणिक राजा की छोटी माता सुकाली नाम की देवी थी ।

काली की तरह सुकाली भी वैराग्य प्राप्त कर प्रव्रजित हुई और बहुत से उपवास आदि तप से आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी ।

फिर वह सुकाली आर्या अन्यदा किसी दिन आर्या चन्दना के पास आकर इस प्रकार बोली–''हे आर्ये ! आपकी आज्ञा होने पर मैं कनकावली तप को अंगीकार करके विचरना चाहती हूँ ।''

महासती आर्या चन्दना की आज्ञा पाकर सुकाली आर्या ने रत्नावली तप के समान कनकावली तप की आराधना की । विशेषता इसमें यह थी कि तीनों स्थानों पर अष्टम–तेले किये, जबकि रत्नावली तप में बेले किये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाते हैं । एक परिपाटी में एक वर्ष, पांच महीने और बारह अहोरात्रियां लगती हैं ।

इस एक परिपाटी में ८८ दिन का पारणा और १ वर्ष २ मास और १४ दिन का तप होता है । चारों परिपाटी का काल पाँच वर्ष नौ महीने और अठारह दिन होते हैं । शेष वर्णन काली आर्या के समान है । नव वर्ष तक चारित्र का पालन कर यावत् वह भी सिद्ध बुद्ध और मुक्त हो गई । (देखिए चार्ट नं. ३) **(द्वितीय अध्ययन समाप्त)**

Chapter 2

Maxim 8 :

Introduction to the second chapter is like this–

Ārya Jambū Swāmī said–O *Bhagawan* ! What was the subject matter expressed by the *Lord* in the second chapter of eighth section ? Please tell me.

Sudharmā Swāmī told–O *Jambū* ! At that time and at that period there was a city named *Campā*. In it there was situated *Pūrṇabhadra* garden (sanctuary). King *Koṇika* was ruling there. There lived queen *Sukālī* consort of king *Śreṇika* and younger step mother of king *Koṇika*.

Sukālī also accepted consecration like queen *Kālī* and began to wander engrossing her soul by many types of fast penances.

Then one day *Āryā Sukālī* came to *Āryā Candanā* and spoke–O *Ārye* ! If you permit me I intend to wander practising *Kanakāvalī* penance.

Getting permission of chief nun *Āryā Candanā*, *Ārya Sukālī* practised *Kanakāvalī* penance, like penance of *Ratnāvalī*. Excepting; on the three occasions she practised three days' fast, while in *Ratnāvalī* two days' fast was practised. It takes the period of one year, five months and twelve days to complete one series.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

In this one series eightyeight days are of taking meals and one year, two months, fourteen days are of fast.

The time period of all the four series is of five years, nine months, eighteen days.

Remaining description is similar to that of *Āryā Kālī*. Practising nun-conduct upto nine years, she became beatified. **[Second chapter completed]**

तृतीय अध्ययन

महाकाली आर्या : लघुसिंहनिष्क्रीड़ित तप

सूत्र ९ :

एवं महाकाली वि ! णवरं खुड्डागं सीहणिक्कीलियं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ । तं जहा–

चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

बारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
चउद्दसमं करेइ करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
बारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
बारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
छट्ठं करेइ करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
चउत्थं करेइ करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तहेव चत्तारि परिवाडीओ । एक्काए परिवाडीए छम्मासा सत्त य दिवसा । चउण्हं दो वरिसा अट्ठावीस य दिवसा जाव सिद्धा ।

सूत्र ९ :

जम्बू स्वामी ने सुधर्मा स्वामी से पूछा–हे भगवन् ! आठवें वर्ग के तीसरे अध्ययन का भगवान ने क्या भाव फरमाया है ?

सुधर्मा स्वामी ने कहा–हे जम्बू ! तीसरे अध्ययन में महाकाली रानी का वर्णन है । वह श्रेणिक राजा की भार्या और कोणिक राजा की छोटी माता थी । उन्होंने भी सुकाली रानी के समान दीक्षा धारण की और **लघुसिंह-निष्क्रीड़ित** नामक तप किया ।

वह इस प्रकार है–सर्वप्रथम उपवास किया, पारणा किया, (इसकी भी पहली परिपाटी के सभी पारणों में विगयों का सेवन वर्जित नहीं था) फिर बेला किया, फिर पारणा करके उपवास किया । फिर पारणा करके तेला किया । इस प्रकार आगे बेला, चोला, तेला, पचोला, चोला, छह, पाँच, सात, छह, आठ, सात, नौ और आठ किये ।

फिर नौ, सात, आठ, छह, सात, पाँच, छह, चार, पाँच, तीन, चार, दो, तीन, उपवास, दो और उपवास किया । इस प्रकार लघुसिंह निष्क्रीड़ित तप की एक परिपाटी की ।

एक परिपाटी में छह महीने और सात दिन लगे । जिसमें पारणे के तेतीस दिन और तपस्या के पाँच मास और तीन दिन हुए । इस प्रकार महाकाली आर्या ने चार परिपाटी की, जिसमें दो वर्ष और अट्ठाईस दिन लगे ।

इस प्रकार महाकाली आर्या ने लघुसिंह निष्क्रीड़ित तप की सूत्रोक्त विधि से आराधना की । तत्पश्चात् महाकाली आर्या ने अनेक प्रकार की फुटकर तपस्याएँ कीं। अन्त में संथारा करके सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करके मोक्ष को प्राप्त हुई । (देखिए चार्ट नं. ४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Chapter 3

Maxim 9 :

Jambū Swāmī asked *Sudharmā Swāmī*–O *Bhagawan* ! What was subject matter told by *Bhagawāna* in the third chapter of eighth section.

Sudharmā Swāmī told–O *Jambū* ! In the third chapter, there is the description of queen *Mahākālī*. She was consort of king *Śreṇika* and younger step mother of *king Koṇika*. She accepted consecration like queen *Sukālī* and practised *Laghu singhaniṣkrīḍita* penance.

Details of that penance are like this. First of all she practised one day fast then took meals (In the first series of this penance, the practiser takes meals with all five kinds of *vigayas.)* After breaking fast next day she practised two days' fast and took meals, then one day fast penance, next day took meals. Then three days' fast and took meals. Then, she practised two, four, three, five, four, six, five, seven, six, eight, seven, nine and eight days' fast penance.

Thereafter, she practised nine, seven, eight, six, seven, five, six, four, five, three, four, two, three, one, two and one days' fast penance. In this way she accomplished one series of *Laghu singha niṣkrīḍita* fast penance.

One series took the time period of six months and seven days. Among them thirty three days were of taking meals and five months, three days were of fast penance.

Thus, *Mahākālī Āryā* practised four series of this penance and it took two years and twentyeight days.

In this way, *Mahākālī Āryā* practised smaller lion's play (*Laghu singha niṣkrīḍita)* penance in aforesaid manner. Afterwards she practised various types of miscellaneous penances. In the fag end of her life she accepted *sainthārā* and exhausting all the *karmas*, became beatified.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन

आर्या महाकाली ने लघुसिंहनिष्क्रीड़ित तप की आराधना की थी । प्रस्तुत सूत्र में इसे **खुड्डाग सीहनिक्कीलियं** कहा है, जिसका अर्थ है–जिस प्रकार गमन करता हुआ सिंह अपने अतिक्रान्त मार्ग को पीछे मुड़कर फिर देखता है और फिर आगे चलता है । इसे सिंहावलोकन भी कहते हैं । उसी प्रकार जिस तप में अतिक्रमण किए हुए उपवास के दिनों को फिर से सेवन करके आगे बढ़ा जाए ।

सिंहनिष्क्रीड़ित तप दो प्रकार का होता है, एक लघुसिंहनिष्क्रीड़ित और दूसरा महासिंहनिष्क्रीड़ित तप। प्रस्तुत अध्ययन में वर्णित आर्या महाकाली ने लघुसिंहनिष्क्रीड़ित तप की आराधना की । अगले अध्ययन में वर्णित कृष्णा आर्या ने महासिंहनिष्क्रीड़ित तप किया है ।

(तृतीय अध्ययन समाप्त)

Elucidation

Āryā Mahākālī practised *Laghu-siṅgha-niṣkrīḍita* penance, which is mentioned in present *sūtra* as *khuḍḍāga Sīha nikkiliyaṁ*. It denotes that as the lion, while walking, visualises the path he has passed by turning back and then moves forward–that is called as retrospection. In the same way, during this penance the practiser moving forward jumps in due order, then returns and practises that, e.g. a penancer observing five days' fast jumps on seven days' fast then he returns and practises six days' fast.

Siṅgha-niṣkrīḍita penance is of two kinds–1. *Laghu siṅgha-niṣkrīḍita* penance and 2. *Mahā-siṅgha niṣkrīḍita* penance. Described in present chapter *Āryā Mahākālī* propiliated *Laghu Siṅgha niṣkrīḍita* penance. As described in next chapter *Āryā Kṛṣṇā* practised *Mahā Siṅgha-niṣkrīḍita* penance.

[Third chapter concluded]

चतुर्थ अध्ययन

कृष्णा आर्या : महासिंह निष्क्रीड़ित तप

सूत्र १० :

एवं कण्हा वि । णवरं महासीहणिक्कीलियं तवोकम्मं जहेव खुड्डागं । णवरं चोत्तीसइमं जाव णेयव्वं, तहेव ऊसारेयव्वं एक्काए परिवाडीए एगं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वरिसं, छम्मासा अट्ठारस य दिवसा । चउण्हं छ वरिसा, दो मासा, बारस य अहोरत्ता, सेसा जहा कालीए, जाव सिद्धा ।

सूत्र १० :

इसी प्रकार कृष्णा रानी का भी चौथा अध्ययन समझना चाहिए । महाकाली से इसमें विशेषता यह है कि इन्होंने महासिंह-निष्क्रीड़ित तप किया । लघुसिंह निष्क्रीड़ित तप से इसमें इतनी विशेषता है कि एक से लेकर १६ तक तप किया जाता है और उसी प्रकार उतरा जाता है । एक परिपाटी में एक वर्ष छह महीने और अठारह दिन लगते हैं । चारों परिपाटियों में छह वर्ष, दो महीने और बारह दिन (अहोरात्रि) लगते हैं ।

शेष वर्णन काली आर्या के समान ही है । अन्त में संथारा संलेखना करके यह काली आर्या की तरह सिद्ध बुद्ध और मुक्त हो गई । (देखिए चार्ट नं. ५)

(चतुर्थ अध्ययन समाप्त)

Chapter 4

Maxim 10 :

In the same way we should understand the fourth chapter. relating to queen *Kṛṣṇā*. Excepting; *Kṛṣṇā Āryā* practised *Mahā siṅgha niṣkriḍita* (greater lion's play) penance. Difference of this penance from *Laghu siṅgha-niṣkīḍita* penance is that in this penance it is carried upto 16 days' fast in ascending order and then it is carried down upto one day fast in descending order. One series takes time period of one year, six months, eighteen days. So all the four series are completed in six years, two months, twelve days.

Remaining description is similar to that of *Kālī Āryā*. In the later period, she accepted *saṁthārā* and attained salvation like *Kāḷī Āryā*. (See Table 5)

[Fourth chapter completed]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचम अध्ययन

सुकृष्णा आर्या : सप्त सप्तमी भिक्षु प्रतिमा

सूत्र ११ :

एवं सुकण्हा वि, णवरं सत्तसत्तमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। पढमे सत्तए एक्केक्कं भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ एक्केक्कं पाणगस्स ।

दोच्चे सत्तए दो दो भोयणस्स दो दो पाणगस्स ।

तच्चे सत्तए तिण्णि तिण्णि भोयणस्स तिण्णि तिण्णिपा णगस्स ।

चउत्थे चउ, पंचमे पंच, छट्ठे छ, सत्तमे सत्तए सत्त दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेइ, सत्त पाणगस्स ।

एवं खलु एयं सत्तसत्तमियं भिक्खुपडिमं एगूणपण्णाए राइंदिएहिं एगेण य छण्णउएणं भिक्खासएणं अहासुत्तं जाव आराहित्ता जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागया ।

अज्जचंदणं अज्जं वंदइ, णमंसइ, वंदित्ता, णमंसित्ता एवं वयासी– "इच्छामि णं अज्जाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी अट्ठट्ठमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए ।"

अहासुहं देवाणुप्पिए ! मा पडिबंधं करेह ।

तए णं सा सुकण्हा अज्जा अज्जचंदणाए अज्जाए अब्भणुण्णाया समाणी अट्ठट्ठमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ।

पढमे अट्ठए एक्केक्कं भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ एक्केक्कं पाणगस्स दत्तिं, जाव अट्ठमे अट्ठए अट्ठट्ठ भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ अट्ठट्ठ पाणगस्स ।

एवं खलु अट्ठट्ठमियं भिक्खुपडिमं चउसट्ठीए राइंदिएहिं दोहिं य अट्ठासीएहिं भिक्खासएहिं अहासुत्तं जाव आराहित्ता, नव-नवमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पढमे नवए एक्केक्कं भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ एक्केक्कं पाणगस्स, जाव नवमे नवए नव-नव-दत्तिं भोयणस्स पडिगाहेइ नव-नव पाणगस्स ।

एवं खलु नव-नवमियं भिक्खुपडिमं एकासीइ राइंदिएहिं चउहिं पंचोत्तरेहिं, भिक्खासएहिं अहासुत्तं जाव आराहित्ता ।

दस-दसमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ।

पढमे दसए एक्केक्कं भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ एक्केक्कं पाणगस्स- जाव दसमे दसए दस-दस भोयणस्स दस-दस पाणगस्स ।

एवं खलु एयं दस-दसमियं भिक्खुपडिमं एक्केणं राइंदियसएणं अद्धछट्ठेहिं भिक्खासएहिं अहासुत्तं जाव आराहेइ ।

आराहित्ता बहूहिं चउत्थ जाव मास-द्धमास-विविह-तवोकम्मेहि अप्पाणं भावेमाणी विहरइ ।

तए णं सा सुकण्हा अज्जा तेणं ओरालेणं जाव सिद्धा ।

पंचम अध्ययन

सूत्र ११ :

इसी प्रकार पांचवें अध्ययन में सुकृष्णा देवी का भी वर्णन समझना चाहिये । यह भी श्रेणिक राजा की रानी और कोणिक राजा की छोटी माता थी । इसने भगवान का उपदेश सुनकर श्रमण दीक्षा अंगीकार की । इसमें विशेषता यह है कि आर्या चन्दनबाला की आज्ञा प्राप्त कर आर्या सुकृष्णा "सप्त-सप्तमिका" भिक्षु प्रतिमा रूप तप अंगीकार करके विचरने लगी, जिसकी विधि इस प्रकार है–

प्रथम सप्ताह में एक दत्ति (दाती–अखंडधारा) भोजन की और एक ही दत्ति पानी की ग्रहण की जाती है । 'दत्ति--का अर्थ है दाता एक वार में या एक ही अंखड धारा में जितना देता है वह एक दत्ति कहलाती है । दूसरे सप्ताह में दो-दो दत्ति भोजन की और दो-दो दत्ति पानी की, तीसरे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्ताह में तीन दत्ति भोजन की और तीन पानी की, चौथे सप्ताह में चार-चार, पांचवें सप्ताह में पाँच-पाँच, छठे में छह-छह, और सातवें सप्ताह में सात दत्ति भोजन की ली जाती हैं, तथा सात ही दत्ति पानी की ग्रहण की जाती हैं ।

इस प्रकार उनचास (४९) रात-दिन में एक सौ छियानवे (१९६) भिक्षा की दत्तियाँ होती हैं ।

सुकृष्णा आर्या ने सूत्रोक्त विधि के अनुसार इसी "सप्त-सप्तमिका" भिक्षु प्रतिमा तप की सम्यग् आराधना की । इसमें आहार-पानी की सम्मिलित रूप से प्रथम सप्ताह में सात दत्तियाँ हुई, दूसरे सप्ताह में चौदह, तीसरे सप्ताह में इक्कीस, चौथे सप्ताह में अट्ठाईस, पाँचवें सप्ताह में पैंतीस, छठे सप्ताह में बियालीस और सातवें सप्ताह में उनचास दत्तियाँ हुईं । इस प्रकार सभी मिलाकर कुल एक सौ छियानवें (१९६) दत्तियाँ हुईं । (देखिए चार्ट नं. ६)

इस तरह सूत्रानुसार इस प्रतिमा का आराधन करके सुकृष्णा आर्या, आर्या चन्दनबाला के पास आई और उन्हें वंदन नमस्कार करके इस प्रकार बोली–

हे आर्ये ! आपकी आज्ञा होने पर मैं "अष्ट-अष्टमिका" भिक्षु प्रतिमा तप अंगीकार करके विचरना चाहती हूँ ।

आर्या चन्दना ने कहा–"हे देवानुप्रिये ! जैसा तुम्हें सुख हो, वैसा करो । धर्म कार्य में प्रमाद मत करो ।"

फिर वह सुकृष्णा आर्या, चन्दना आर्या की आज्ञा प्राप्त होने पर अष्ट-अष्टमिका भिक्षु प्रतिमा अंगीकार करके विचरने लगी ।

इस तप में प्रथम अष्टक में एक-एक दत्ति भोजन की और एक-एक दत्ति पानी की ग्रहण की जाती है । यावत् इसी क्रम से दूसरे अष्टक में प्रतिदिन दो दत्तियाँ आहार की और दो ही दत्तियाँ पानी की ली जाती हैं । इसी प्रकार क्रम से आठवें अष्टक में आठ दत्ति आहार और आठ दत्ति पानी की ग्रहण की जाती हैं । इस प्रकार अष्ट अष्टमिका भिक्षु प्रतिमा तपस्या चौंसठ (६४) दिन-रात में पूर्ण होती है । जिसमें आहार-पानी की दो सौ अट्ठासी (२८८) दत्ति होती हैं । सुकृष्णा आर्या ने सूत्रोक्त विधि से इस अष्ट अष्टमिका प्रतिमा का आराधन किया । (देखिए चार्ट नं. ७)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके बाद आर्या चन्दना की आज्ञा प्राप्त कर उसने नवनवमिका भिक्षु प्रतिमा अंगीकार की । प्रथम नवक में एक दत्ति आहार और एक दत्ति पानी की ग्रहण की । इस क्रम से नौवें नवक में नौ दत्तियाँ आहार की और नौ दत्तियाँ पानी की ग्रहण कीं । यह "नवनवमिका" भिक्षु प्रतिमा इक्यासी (८१) दिन-रात में पूरी हुई । इसमें आहार-पानी की चार सौ पांच (४०५) दत्तियाँ हुईं । इस नवनवमिका भिक्षु प्रतिमा का सुकृष्णा आर्या ने सूत्रोक्त विधि के अनुसार आराधन किया । (देखिए चार्ट नं. ८)

इसके पश्चात् सुकृष्णा आर्या ने दशदशमिका भिक्षु प्रतिमा अंगीकार की । इसके प्रथम दशक में एक दत्ति भोजन की और एक दत्ति पानी की ग्रहण की । इस प्रकार क्रमशः दसवें दशक में दस दत्ति भोजन की और दस दत्ति पानी की ग्रहण की । यह दशदशमिका भिक्षु प्रतिमा एक सौ (१००) दिन-रात में पूर्ण होती है । इसमें आहार पानी की सम्मिलित रूप से पाँच सौ पचास (५५०) दत्तियाँ होती हैं । इस प्रकार इन भिक्षु प्रतिमाओं कां सूत्रोक्त विधि से आराधन किया । (देखिए चार्ट नं. ९)

फिर सुकृष्णा आर्या उपवासादि से लेकर अर्द्धमासखमण और मासखमण आदि विविध प्रकार की तपस्या से आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी । इस उदार एवं घोर तपस्या के कारण सुकृष्णा आर्या अत्यधिक दुर्बल हो गयी । अन्त में संथारा करके सम्पूर्ण कर्मों का क्षय कर सिद्धगति को प्राप्त हुई । **(पांचवाँ अध्ययन समाप्त)**

Chapter 5

Āryā Sukṛṣṇā; Propiliation of Sage (Nun)-Resolution

Maxim 11 :

Similarly should be known the description of *Sukṛṣṇādevī*, in fifth chapter. She was also the consort of king *Śreṇika* and younger step mother of king *Koṇika*. Having heard the sermon of *Bhagawāna Mahāvīra*, she accepted sage (nun) consecration. Excepting; she began to wander, accepting seven-sevens sage (nun) resolution penance with the permission of *Āryā Candanabālā*.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Its method is as follows–

During first week (seven days) one dole (*datti meaning unbroken flow of food and water given by a giver*) of food and one dole (*datti*) of water is accepted every day. During second week two doles of meals and two doles of water. During third week three-three, in fourth four-four, in fifth five-five in sixth six-six and in seventh seven-seven doles of meals and water are accepted.

Thus in these fortynine days, one hundred ninetysix doles of alms are taken by practiser.

Sukṛṣṇā Āryā practised sapt-saptamika seven-sevens in proper way sage firm-resolution according to the schedule of *sūtras*. During first week, there become seven doles of meals and water combinedly, during second week fourteen, in third twentyone, in fourth twentyeight, in fifth thirty five, in sixth fortytwo, in seventh fortynine. Totalling all these there became one hundred ninetysix *dattis*-doles. (See Table 6)

Thus practising this firm resolution (*pratimā*) penance according to the schedule of *sūtra Āryā Sukṛṣṇā* went to *Āryā Candanabālā*, bowed down and worshipped her and then she said–

O *Ārye* ! I intend to wander, accepting eight-eighth (sage) firm resolution, if you permit me.

Āryā Candanā spoke–O beloved as gods ! Do, as it pleases you; but do not be negligent in religious deeds.

Then *Āryā Sukṛṣṇā* getting the permission of *Āryā Candanā* accepted the eight-eighth nun firm resolution penance and began to wander.

During this penance in the first eight days one dole of meals and one dole of water is taken everyday, in second eight days two doles of meals and water is taken. In this order in

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

last eight days eight doles of meals and eight doles of water is taken. In all, this penance takes sixty four days to perform and total doles combined meals and water are two hundred eightyeight each. *Āryā Sukṛṣṇā* performed this penance according to the schedule of *sūtra* in due order. (See Table 7)

After this, with the permission of *Äryā Candanā* she accepted nun firm resolution penance of nine-nines. During first nine days she took one dole of meals and one dole of water everyday. In this order she took nine doles of meals and nine doles of water in ninth-nine penance, for nine days.

In all, this penance took eightyone day to perform and total doles, counting both meals and water, were four hundred five each. *Āryā Sukṛṣṇā* performed this nun firm resolution nine-nines penance according to the schedule prescribed in *sūtras*. (See Table 8)

Then *Āryā Sukṛṣṇā* accepted the nun firm resolution penance of ten-tens. During the first ten days she took one dole of meals and one dole of water everyday. Then increasing it she took ten doles of meals and ten doles of water everyday in the last ten days of this penance. This penance was completed in one hundred days and the total number of doles, counting doles of meals and water both, becomes five hundred fifty each. (See Table 9)

Thus she practised these nun firm-resolution, penances according to the schedule prescribed in *sūtras*.

Then *Āryā Sukṛṣṇā* began to wander engrossing her soul with various types of penances like–one day fast and increasing upto fortnight and full month's fast penances. Due to these rigorous penances she became too weak. At the fag end of life she accepted *saṁthārā* and exhausting all *karmas* became beatified.

[Fifth chapter concluded]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षष्ठ अध्ययन

सूत्र १२ :

एवं महाकण्हा वि । णवरं खुड्डागं सव्वओभद्दं पडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ । तं जहा–

चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

एवं खलु एयं खुड्डाग-सव्वओभद्दस्स तवोकम्मस्स पढमं परिवाडिं तिहिं मासेहिं दसहिं दिवसेहिं अहासुत्तं जाव आराहित्ता ।

दोच्चाए परिवाडीए चउत्थं करेइ, करित्ता विगइवज्जं पारेइ, पारित्ता जहा रयणावलीए तहा एत्थ वि चत्तारि परिवाडीओ । पारणा तहेव । चउण्हं कालो संवच्छरो मासो दस य दिवसा । सेसं तहेव जाव सिद्धा ।

छठा अध्ययन

महाकृष्णा : लघुसर्वतोभद्रतप

सूत्र १२ :

इसी प्रकार राजा श्रेणिक की भार्या और राजा कोणिक की छोटी माता महाकृष्णा रानी ने भी भगवान के पास दीक्षा अंगीकार की । महाकृष्णा आर्या चन्दनबाला आर्या की आज्ञा लेकर "लघु सर्वतोभद्र" तप करने लगी । उसकी विधि इस प्रकार है–

सर्वप्रथम, उन्होंने उपवास किया और पारणा किया । (विगय विना त्यागे) पारणा करके बेला किया । पारणा करके तेला किया । इसी प्रकार चोला, पचोला किया, फिर तेला, चोला, पचोला, उपवास एवं बेला किया । फिर पचोला, उपवास, बेला, तेला, चोला किया । फिर बेला, तेला, चोला,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पचोला उपवास किया । फिर चोला, पचोला, उपवास, बेला एवं तेला किया । इस प्रकार महाकृष्णा आर्या ने लघु सर्वतोभद्र तप की पहली परिपाटी पूरी की । (देखिए चार्ट नं. १०)

इस प्रकार यह लघु सर्वतोभद्र तप, कर्म की प्रथम परिपाटी तीन महीने और दस दिनों में पूर्ण होती है । इसकी सूत्रानुसार सम्यग् रीति से आराधना करके आर्या महाकृष्णा ने इसकी दूसरी परिपाटी में उपवास और विगयरहित पारणा किया ।

जैसे रत्नावली तप में चार परिपाटियाँ बताई गईं वैसे ही इसमे भी चार परिपाटियाँ होती हैं । पारणा भी ऐसे ही समझना चाहिये ।

इसकी पहली परिपाटी में पूरे सौ दिन लगे, जिनमें पच्चीस दिन पारणे के और पिचहत्तर दिन तपस्या के हुए। क्रम से इतने ही दिन दूसरी, तीसरी एवं चौथी परिपाटी के हुए । इस तरह इन चारों परिपाटियों का सम्मिलित काल एक वर्ष, एक मास और दस दिन हुआ ।

पहली परिपाटी में पारणा बिना विगय त्यागे किया ।

दूसरी परिपाटी के पारणे में बिगय का त्याग किया ।

तीसरी परिपाटी के पारणे में विगय के लेपमात्र का भी त्याग कर दिया ।

चौथी परिपाटी में आयंबिल किया ।

इस प्रकार इस तप की सूत्रोक्तविधि से आर्या महाकृष्णा ने आराधना की और अन्त में संलेखनाा-संथारा करके सभी कर्मों का क्षय कर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गईं ।

Chapter 6

Mahākṛṣṇā : Laghu Sarvatobhadra penance (Small fourfold penance)

Maxim 12 :

In the same way, consort of king *Śreṇika* and younger step mother of king *Koṇika*, queen *Mahākṛṣṇa* also

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

accepted consecration in presence of *Bhagawāna Mahāvīra.*

Āryā Mahākṛṣṇā with the permission of *Āryā Candanā* began to practise *Laghu Sarvatobhadra* penance. The method of this penance is as follows–

First of all she observed one day fast and next day broke it up, took food without renouncing *vigayas*. Then observed two days' fast, in the same way observed three days', four days; five days' fast; again observed three days', four days', five days', one day and two days' fast penance. Then observed five days', one day, two days', three days' and four days' fast. Then observed two days', three days' four day', five days' and one day fast, again four days', five days' one day', two days' and three days' fast. Thus *Āryā Mahākṛṣṇā* completed the first series of small Sarvatobhadra penance. (See Table 10)

This first series takes the time period of three months and ten days.

Practising this series according to schedule prescribed by *sūtras* and in due order *Āryā Mahākṛṣṇā* observed one day' fast in second series of this penance and took food avoiding *vigayas*.

As four series are told in *Ratnāvalī* penance, so are the four series in this penance also. Taking food should also be known similar to that one.

The first series was performed in one hundred days, among these twentyfive days were of taking meals and seventyfive days were of fast penance. Same is the number of days in second, third and fourth series. Thus the time period of all the four series is one year one month and ten days.

In first series she took meals without renouncing *vigayas*, in second avoiding *vigayas*, in third even without smearing of *vigayas* and in fourth taking of *āyambila* gruel.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

In this way *Āryā Mahākṛṣṇā* propiliated this penance according to the schedule prescribed in *sūtras*. In the later period of life she accepted *saṁlekhanā– saṁthārā*, exhausted all the *karmas* and was liberated , beatified, completely free of all miseries.

विवेचन

"खुड्डिय सव्वओभद्दं पडिमं" में क्षुल्लक शब्द महद् की अपेक्षा से है । सर्वतोभद्र तप दो प्रकार का है–एक महद् दूसरा लघु । यह लघु है, इस बात को प्रकट करने के लिए क्षुल्लक शब्द का प्रयोग किया गया है । गणना करने पर जिसके अंक सम अर्थात् बराबर हों, विषम न हों, जिधर से गणना की जाए उधर से ही समान हों उसे सर्वतोभद्र कहते हैं । इसमें एक से लेकर पाँच तक के अंक दिये जाते हैं । चारों ओर से जिधर से चाहें गिन लें, सभी ओर से योग की १५ ही संख्या होती है । एक से पांच तक सभी ओर से गिनने पर एक जैसी संख्या रहने से इसे सर्वतोभद्र कहा जाता है । यह प्रस्तुत यंत्र से स्पष्ट होता है । **(छठा अध्ययन समाप्त)**

Elucidation

Khuḍḍiya Savvaobhaddaṁ Paḍimaṁ–In this phrase word *khuḍḍiya* (Sanskṛta form *kṣullaka)* is given. It is in comparison to great (*mahad.*). Really word *Kṣullaka* means small or smaller than that, i.e., *mahad.* Thus (*Sarvatobhadra)* penance is of two kinds–one great and another small. Here described penance is small, to make clear this the word *Kṣullaka* (small) is given.

The figures counted from any side or all sides horizontal or vertical, the sum total of figures should be the same, that is called magic square. In this small fivefold (magic square) one to five figures are given. Counting all these numbers from any side the total we get is fifteen.

As clarified by figures the penancer practise penance in the same way e.g., one day fast, two days' fast upto five days' fast. So this penance has been termed as magic square or *sarvatobhadra* penance.

This can be clearly understood by the square given here.

[Sixth chapter completed]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सातवाँ अध्ययन

सूत्र १३ :

एवं वीरकण्हा वि । णवरं महालयं सव्वओभद्दं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ । तं जहा–

चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता । पढमा लया ।

दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता । बीया लया ।

सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता । तइया लया ।

अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता । चउत्थी लया ।

चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता-

पंचमी लया ।

छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता-

छट्ठी लया ।

दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता-

सत्तमी लया ।

एक्काए कालो अट्ठमासा पंच य दिवसा । चउण्हं दो वासा अट्ठमासा वीसं दिवसा । सेसं तहेव जाव सिद्धा ।

आर्या वीर कृष्णाः महा सर्वतोभद्रतप

सूत्र १३ :

इसी प्रकार वीरकृष्णा रानी का चरित्र भी जानना चाहिये । यह भी श्रेणिक राजा की भार्या तथा कोणिक राजा की छोटी माता थी । इन्होंने भी दीक्षा अंगीकार की और आर्या चन्दनबाला से आज्ञा लेकर "महासर्वतोभद्र" तप का आराधन किया ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसकी विधि इस प्रकार है–

सबसे पहले उपवास किया । फिर बेला किया । इसी क्रम से तेला, चोला, पचोला, छह और सात किये। या प्रथम लता हुई ।

फिर चोला किया, पारणा किया, इसी प्रकार पचोला, छः, सात, उपवास, बेला और तेला किया । यह दूसरी लता हुई ।

फिर सात किये, पारणा किया, उपवास, बेला, तेला, चोला, पचोला और छह किये यह तीसरी लता हुई ।

फिर तेला किया, पारणा किया, पूर्वोक्त क्रम से फिर चोला किया पारणा किया, क्रमशः पचोला, छः, सात, उपवास और बेला किया । यह चौथी लता हुई ।

आगे पूर्वोक्त क्रम से तप और बीच में पारणा करते हुए छः, सात, उपवास, बेला, तेला, चोला और पचोला किया । यह पांचवीं लता हुई ।

फिर बेला, तेला, चोला, पचोला, छः, सात और उपवास किया । यह छठी लता हुई ।

फिर पचोला, छः, सात, उपवास किया, बेला, तेला और चोला किया । यह सातवीं लता हुई ।

इस प्रकार सात लता की एक पारेपाटी हुई । (देखिए चार्ट नं. ११)

इसमें आठ मास और पांच दिन लगे । जिनमें उनपचास (४९) दिन पारणे के और छः मास सोलह दिन (१९६ दिन) तपस्या के हुए । इसकी प्रथम परिपाटी में पारणों में विगय का सेवन वर्जित नहीं था । दूसरी परिपाटी में पारणे में विगय का त्याग किया । तीसरी परिपाटी में लेप मात्र का भी त्याग कर दिया और चौथी परिपाटी में, पारणे में आयम्बिल किया ।

चारों परिपाटियों को पूर्ण करने में दो वर्ष, आठ मास और बीस (९८०) दिन लगे । उसने इस तप का (सूत्रोक्त) विधि से आराधन किया । यावत् सिद्ध गति प्राप्त की । **(सातवां अध्ययन समाप्त)**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Chapter 7

Maxim 13 :

Likewise the life-sketch of queen *Vīrakṛṣṇā* should be known. She was also consort of king *Śreṇika* and younger step mother of king *Koṇika*. She also accepted consecration and with the permission of *Āryā Candanabālā* practised great magic square (*Mahāsar vatobhadra*) penance.

The method of this penance is like this–

First of all she observed one day fast then two days' fast and in this order three days', four days', five days', six days' and seven days' fast penance was observed.

It became first branch.

Then, she observed four days' fast, took meals and further in this order observed–five days', six days', seven days', one day', two days' and three days' fast penance.

It became second branch.

Then, she observed seven days' fast took meals and in this order observed–one day, two days', three days', four days', five days', and six days' fast.

It made third branch.

Then, she observed three days' fast, took meals and in the aforesaid order she observed four days', five days', six days' seven days', one day and two days' fast,

It is fourth branch.

Then in aforesaid order practising fast penance and in between taking meals observed–six days', seven days', one day, two days', three days', four days' and five days' penance.

It is fifth branch

Then practised two days', three days', four days', five days', six days', seven days', and one day' fast.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

It is sixth branch

Then observed five days', six days', seven days', one day', two days', three days' and four days' fast.

This is seventh branch.

Thus seven branches make one series.

This first series was completed in eight months and five days. Among them she took meals in fortynine days and penanced one hundred ninetysix days. During this first series *vigayas* were not avoided. while taking meals. Taking meals in second series *vigayas* were avoided, in third series even the smearing of *vigayas* was avoided and in fourth on day of taking meals *āyambila* was dyaned

In completion of all the four series she took the time period of two years eight months and twenty days (980 days). She practised this penance according to the schedule prescribed by *sūtras* in proper way and in the end of life was beatifie

[Seventh chapter concluded]

आठवाँ अध्ययन

सूत्र १४ :

एवं रामकण्हा वि । णवरं भद्दोत्तरपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ, तं जहा–

दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता-

पढमा लया ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र १४ :

रामकृष्णा आर्या का चरित्र भी इसी प्रकार है । यह भी श्रेणिक राजा की रानी और कोणिक राजा की छोटी माता थी । दीक्षा ली और आर्या चन्दनबाला की आज्ञा प्राप्त कर "भद्रोत्तर प्रतिमा" तप किया । (भद्रोत्तर प्रतिमा का अर्थ है–भद्र-कल्याण की प्रदाता, उत्तर-प्रधान । यह प्रतिमा परम कल्याणप्रद होने से भद्रोत्तर प्रतिमा कही जाती है ।) उसकी विधि इस प्रकार है–

सर्वप्रथम पचोला किया । पारणा किया । फिर क्रमशः छः किये, पारणा किया, पिर क्रमशः सात, आठ और नौ किये । प्रथम परिपाटी के सभी पारणों में विगयों का सेवन वर्जित नहीं था । यह प्रथम लता हुई ।

Chapter 8

Rāmakṛṣṇā : Bhadrottara firm resolution

Maxim 14 :

The life sketch of *Rāmakṛṣṇā Devī* is also similar as aforesaid in previous chapters. She also was the consort of king *Śreṇika* and younger step mother of king *Koṇika*. She accepted consecration and with the permission of *Āryaā Candanabālā*, practised *Bhadrottara Pratimā* penance. In *Bhadrottara Pratimā* the word *Bhadrottara* is composed by two words–*Bhadra* and *uttara*. *Bhadra* means welfare and *uttara* denotes chief. Thus the whole word *Bhadrottara* means–giver of chief and utmost welfare or salvation to the soul. That is as follows–

First of all she observed five days' fast, took meal. Then observed six days' fast, took meal; then seven, eight and nine days' fast, took meals in between.

It is first branch.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र १५ :

सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता-बीया लया ।

बीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता-तइया लया ।

चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता-चउत्थी लया ।

अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता-

पंचमी लया ।

एक्काए कालो छम्मासा वीसा य दिवसा । चउण्हं दो वरिसा दो मासा वीसं य दिवसा । सेसं तहेव जहा काली जाव सिद्धा ।

सूत्र १५ :

फिर सात, आठ, नौ, पाँच और छह किये । यह दूसरी लता हुई ।

फिर नौ, पाँच, छह, सात और आठ उपवास किये । यह तीसरी लता हुई ।

फिर छह, सात, आठ, नौ और पाँच उपवास किये । यह चौथी लता हुई ।

फिर आठ, नौ, पांच, छह और सात किये । यह पांचवीं लता हुई ।

इस तरह पांचों लताओं की एक परिपाटी हुई । ऐसी चार परिपाटियाँ इस तप में होती हैं । एक परिपाटी में छह मास और बीस दिन लगे एवं चारों परिपाटियों में दो वर्ष, दो मास और बीस दिन लगे ।

रामकृष्णा आर्या भी काली आर्या के समान सभी कर्मों का क्षय करके सिद्ध-पद को प्राप्त हुई । (देखिए चार्ट नं. १२) **(आठवाँ अध्ययन समाप्त)**

Maxim 15 :

Then she observed seven, eight, nine, five and six days' fast.

It was second branch.

Then she observed nine, five, six, seven, and eight fasts.

It was third branch.

Then she observed six, seven, eight, nine and five fasts.

It was fourth branch.

Then she observed eight, nine, five, six and seven fasts.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

It was fifth branch.

All these five branches made a series. Such four series are in this penance. One series took six months and twenty days. So all the four series were completed in two years, two months and twenty days.

During first series *vigayas* were not renounced in meels, in second *vigayas* were avoided, in third even smearing of *vigayas* was avoided and in fourth *āyambila* was observed on day meant for taking meals after fast..

Āryā Rāmakṛṣṇā practised this penance in due order. Like *Āryā Kālī* exhausting all *karmas*, she was beatified. (See Table 12)

[Eighth chapter concluded]

नवम अध्ययन

सूत्र १६ :

एवं पिउसेणकण्हा वि । णवरं, मुत्तावलिं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ । तं जहा–

चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
बावीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
चउवीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
छव्वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
अट्ठावीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
बत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता
चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चोतीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

बत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

एवं ओसारेइ जाव चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ । एक्काए कालो एक्कारस मासा पण्णरस य दिवसा । चउण्हं तिण्णि वरिसा दस य मासा । सेसं तहेव जाव सिद्धा ।

अध्ययन ९

मुक्तावली तप-आराधना

सूत्र १६ :

इसी प्रकार आर्या पितृसेनकृष्णा का वर्णन जानना चाहिये । वह राजा श्रेणिक की रानी और कोणिक राजा की छोटी माता थी । इन्होंने दीक्षा अंगीकार की और आर्या चन्दनबाला की आज्ञा लेकर मुक्तावली तप किया । इसकी विधि इस प्रकार है–

सर्वप्रथम उपवास किया । पारणा किया । (इसकी भी पहली परिपाटी में पारणों में विगयों का सेवन वर्जित नहीं है ।) फिर बेला किया । पारणा किया । फिर उपवास किया । पारणा किया । फिर तेला किया । इस प्रकार बीच में एक-एक उपवास करती हुई पितृसेन कृष्णा आर्या पन्द्रह उपवास तक बढ़ी । फिर उपवास । बाद में सोलह । सोलह के बाद उपवास और फिर उपवास किया ।

फिर इसी प्रकार पश्चानुपूर्वी से अर्थात् आगे बढ़े, फिर पीछे आये, फिर आगे बढ़े इस प्रकार मध्य में एक-एक उपवास करती हुई जिस प्रकार चढ़ी थी, उसी प्रकार पन्द्रह उपवास से एक उपवास तक क्रम से उतरी । इस प्रकार मुक्तावली तप की एक परिपाटी समाप्त हुई ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काली आर्या के समान इसकी चारों परिपाटियाँ पूर्ण कीं । एक परिपाटी में ग्यारह महीने और पन्द्रह दिन लगे और चारों परिपाटियों में तीन वर्ष और दस महीने लगे । इसमें ११४० दिन तप के और २४० दिन पारणा के हुए । अन्त में संलेखना संथारा किया और समस्त कर्मों का क्षय करके सिद्ध पद को प्राप्त हुई । (देखिए चार्ट नं. १३)

Chpater 9

Pitrasenakṛṣṇā : Propiliation of Muktāvalī Penance

Maxim 16 :

So is the description of *Pitrasenakṛṣṇā*. She was the consort of king *Śreṇika* and younger step mother of king *Koṇika*. She accepted conseeration and propiliated *Muktāvalī* penance with the permission of *Āryā Candanabālā*. That is as follows–

First of all she observed one day' fast then took meals; (in this first series *vigayas* are not excluded in meals) then she observed two days' fast, took meals; then one day fast, took meals; then three days' fast. In this way, observing one day' fast in between *Āryā Pitrasenakṛṣṇā* ascended upto fifteen days' fast then one day fast, again sixteen days' fast and after it, again sixteen days' fast, one day' fast took meals and then again she observed one day' fast.

Then, likewise, according to *Paścānupūrvī* (i.e. to go forward and then come backward and then again to go forward) and in between observing one day' fast, as she ascended, in the same way descended from fifteen days' fast to one day' fast in due order.

Thus, she completed one series of *Muktāvalī* penance.

Like *Kālī Āryā*, she completed four series of this fast penance.

One series of this penance took eleven months and fifteen days to complete. So four series were completed in three

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

years and ten months. Among them were eleven hundred forty (1140) days of penance and two hundred forty days of taking meals. (See Table 13)

In the end she accepted *sanlekhanā–santhūrī* and was emancipated.

विवेचन

मुक्तावली शब्द का अर्थ है–मोतियों का हार । जिस प्रकार मोतियों का हार बनाते समय उन मोतियों की स्थापना की जाती है, उसी प्रकार जिस तप में उपवासों की स्थापना की जाए उस तप को मुक्तावली तप कहते हैं । स्पष्टता हेतु चित्र देखिये । **(नौवाँ अध्ययन समाप्त)**

Elucidation

The word *Muktāvali* means necklace of pearls. As pearls are established while preparing a necklace, in the same way fasts are established in this penance. So it is called *Muktāvalī* penance.

For clear understanding see the illustration. **[Nineth chapter completed]**

दसम अध्ययन

सूत्र १७ :

एवं महासेणकण्हा वि । णवरं आयंबिलवड्ढमाणं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ । तंजहा–

आयंबिलं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ करित्ता

बे आयंबिलाइं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता

तिण्णि आयंबिलाइं करेइ करित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता

चत्तारि आयंबिलाइं करेइ करित्ता चउत्थं करेइ करित्ता

पंच आयंबिलाइं करेइ करित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता

छ आयंबिलाइं करेइ करित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकोत्तरियाए वुड्ढीए आयंबिलाइं वड्ढंती, चउत्थंतरियाइं जाव आयंबिलसयं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ ।

तए णं सा महासेणकण्हा अज्जा आयंबिलवड्ढमाणं तवोकम्मं चोद्दसेहिं वासेहिं तिहि य मासेहिं वीसहि य अहोरत्तेहिं अहासुत्तं जाव सम्मं काएणं फासेइ जाव ।

आराहित्ता, जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अज्जचंदणं अज्जं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता बहूहिं चउत्थेहिं जाव भावेमाणी विहरइ ।

तए णं सा महासेणकण्हा अज्जा तेणं ओरालेणं जाव उवसोभेमाणी उवसोभेमाणी चिट्ठइ ।

तए णं तीसे महासेणकण्हाए अज्जाए अण्णया कयाइं पुव्वरत्तावरत्तकाले चिंता जहा खंदयस्स जाव अज्जचंदणं अज्जं आपुच्छइ जाव संलेहणा । कालं अणवकंखमाणी विहरइ ।

तए णं सा महासेणकण्हा अज्जा अज्जचंदणा अज्जाए अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारसअंगाइं अहिज्जित्ता बहुपडिपुण्णाइं सत्तरस वासाइं परियायं पालइत्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ जाव तमट्ठं आराहेइ । चरिम उस्सास-णीसासेहिं सिद्धा बुद्धा ।

अट्ठ य वासा आदी, एकोत्तरियाए जाव सत्तरस ।
एसो खलु परियाओ सेणियभज्जाण णायव्वो ॥

महासेनकृष्णाः आयम्बिल वर्धमान तप

सूत्र १७ :

इसी प्रकार महासेनकृष्णा का वर्णन भी जानना चाहिये । वह राजा श्रेणिक की रानी और कोणिक राजा की छोटी माता थी। दीक्षा ली और आर्या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चन्दनबाला की आज्ञा पाकर उसने "आयम्बिल-वर्द्धमान" नामक तप किया। इसकी विधि इस प्रकार है--

सर्वप्रथम आयम्बिल किया। दूसरे दिन उपवास किया। फिर दो आयम्बिल किये। फिर उपवास किया। फिर तीन आयम्बिल किये। फिर उपवास किया। फिर चार आयम्बिल किये, फिर उपवास किया तथा पांच आयम्बिल किये। फिर उपवास किया। फिर छः आयम्बिल किये। फिर उपवास किया। इस प्रकार एक-एक आयम्बिल बढ़ाते हुए मध्य में एक-एक उपवास करते हुए एक सौ आयम्बिल तक किये। फिर उपवास किया। इस प्रकार आयम्बिल वर्द्धमान नामक तप पूरा किया।

इस प्रकार महासेनकृष्णा आर्या ने चौदह वर्ष, तीन मास और बीस दिन में "आयम्बिल वर्द्धमान" नामक तप का सूत्रोक्त विधि से आराधन किया। इसमें आयम्बिल के पांच हजार पचास दिन तथा उपवास के एक सौ दिन होते हैं। इस तप में चढ़ना ही है, उतरना नहीं। इसमें १४ वर्ष दस दिन आयम्बिल के व १०० दिन उपवास के हैं। (देखिए चार्ट नं. १४)

इसके बाद महासेनकृष्णा आर्या, आर्या चन्दनबाला के पास आई और वंदन नमस्कार किया। इसके बाद उपवास आदि बहुत-सी तपश्चर्या करती हुई अपनी आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी। उन कठिन तपस्याओं के कारण वह अत्यन्त दुर्बल हो गई, तथापि आन्तरिक तप-तेज के कारण वह अत्यन्त शोभित होने लगी।

एक दिन पिछली रात्रि के समय महासेनकृष्णा आर्या ने स्कन्दक के समान चिन्तन किया--मेरा शरीर तपस्या से कृश हो रहा है, तथापि अभी तक मुझमें उत्थान, बल, वीर्य आदि हैं। इसलिये कल सूर्योदय होते ही आर्या चन्दनबाला के पास जाकर उनसे आज्ञा लेकर संथारा करूँ। तदनुसार दूसरे दिन सूर्योदय होते ही आर्या चन्दनबाला के पास जाकर वन्दन नमस्कार करके संथारे के लिये आज्ञा मांगी। आज्ञा लेकर संथारा ग्रहण किया और मरण की आकांक्षा नहीं करती हुई, धर्मध्यान में तल्लीन रहने लगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महासेनकृष्णा आर्या ने चन्दनबाला आर्या से सामायिक आदि (छः आवश्यकों के साथ) ग्यारह अंगों का अध्ययन किया । सत्तरह वर्ष तक चारित्र पर्याय का पालन किया तथा एक मास की संलेखना से आत्मा को भावित करती हुई, साठ भक्तों के अनशन से छेदित कर, अन्तिम श्वासोच्छ्वास में अपने सम्पूर्ण कर्मों का क्षय कर सिद्ध बुद्ध हुई अर्थात् मोक्ष प्राप्त किया ।

इन दस आर्याओं में प्रथम काली आर्या ने आठ वर्ष तक चारित्र पर्याय का पालन किया । दूसरी सुकाली आर्या ने नौ वर्ष तक चारित्र पर्याय का पालन किया । इस प्रकार क्रमशः उत्तरोत्तर एक-एक रानी के चारित्र पर्याय में एक-एक वर्ष की वृद्धि होती गई । अन्तिम दसवीं रानी महासेनकृष्णा आर्या ने सतरह वर्ष तक चारित्र पर्याय का पालन किया । ये सभी राजा श्रेणिक की रानियां तथा कोणिक राजा की छोटी माताएँ थीं ।

(दसवां अध्ययन समाप्त)

Chapter 10

Mahāsenakṛṣṇā Āyambila Vardhamāna Tapa

Maxim 17 :

Same is the description of queen *Mahāsenakṛṣṇā*. She also was the consort of king *Śreṇika* and younger step mother of king *Koṇika*. She accepted consecration and with the permission of *Āryā Candanabālā*, she practised *Āyambila Vardhamāna* penance. That is as follows–

First of all she observed one *āyambila*, next day one fast; then two *āyambilas* and next day one fast, then three *āyambilas* and next day fast, then four *āyambilas*, next day fast, then five *āyambilas*, next day fast, then six *āyambilas* and next day fast; in this way increasing one *āyambila* and in between fast, she practised one hundred *āyambilas* and then fast. Thus she completed *Āyambila Vardhamāna* penance.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Thus *Āryā Mahāsenakṛṣṇā* completed *Āyambila Vardhamāna* penance in fourteen years, three months and twenty days according to the schedule prescribed by *sūtras* and in proper manner. Among this, the days of *āyambilas* are 5050 and that of fasts are 100 days. Thus total days are 5150. In this penance, there is only ascending; and no descending. In this penance fourteen years and ten days are of *āyambila* and hundred days are of fast.

After this *Āryā Mahāsenakṛṣṇā* went to *Āryā Candanabālā* and bowed to her. Then she (*Āryā Mahāsenakṛṣṇā*) began to wander engrossing her soul by many types of penances e.g., fast etc. She became too weak due to those rigorous penances but she seemed lustrous by the internal flame of austerities.

Once, in the last hours of night, like *Skandaka*, *Āryā Mahāsenakṛṣṇā* pondered deeply–though my body has become lean, thin and reduced, yet, until, in my body are *utthāna, bala, vīrya* etc., it would be proper for me that, as the sun rises, I go to *Āryā Candanabālā* and taking her permission accept *saṁthārā*. Accordingly, next day, as the sun rose she went to *Āryā Candanabālā*, bowed down respected her, and asked her permission for *saṁthārā*. Getting permission she accepted *saṁthārā* and without desire of death, she engrossed herself in auspicious-religious meditation.

Āryā Mahāsenakṛṣṇā learnt *Sāmāyika* etc. (six essentials), and eleven holy scriptures (*aṅgas*) from *Āryā Candanabālā*, practised nun-conduct upto seventeen years and engrossing her soul by one month's *saṁthārā*, cutting off sixty meals, exhausting all *karmas*, with her last breath became emancipated i.e., attained salvation. (See Table 14)

Among these ten *āryās*, the first *Āryā Kālī* practised nun-conduct upto eight years; the second *Āryā Sukālī* upto nine years. In this way, one after another, consecration period increased by one year of every queen (*āryā*). Last

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

tenth *Āryā Mahāsenakṛṣṇā* observed consecration period for seventeen years. All these were the consorts of king *Śreṇika* and younger step mothers of king *Koṇika*.

[Tenth chapter concluded]

उपसंहार

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि ।

अंतगडदसाणं अंगस्स एगो सुयक्खंधो । अट्ठवग्गा । अट्ठसु चेव दिवसेसु उद्दिसिज्जंति ।

तत्थ पढम बितियवग्गे दस-अट्ठ उद्देसगा । तइयवग्गे तेरस उद्देसगा । चउत्थ-पंचम वग्गे दस-दस उद्देसगा । छट्ठ वग्गे सोलस उद्देसगा । सत्तमवग्गे तेरस उद्देसगा, अट्ठमवग्गे दस उद्देसगा । सेसं जहा णायाधम्मकहाणं ।

सिरि अंतगडदसांग सुत्तं समत्तं ।

हे जम्बू ! अपने शासन की अपेक्षा से धर्म की आदि करने वाले श्रमण भगवान महावीर स्वामी–जो मोक्ष को प्राप्त हैं, उन्होंने आठवें अंग अन्तगडदशा सूत्र का यह भाव प्ररूपित किया है । भगवान् से जैसा मैंने सुना, उसी प्रकार तुम्हें कहा है ।

इस अन्तकृद्दशा सूत्र में एक श्रुतस्कन्ध है, और आठ वर्ग हैं । आठ दिनों में इसका वाचन होता है ।

इसमें प्रथम और दूसरे वर्ग के दस एवं आठ अध्ययन हैं । तीसरे वर्ग में तेरह अध्ययन (उद्देशक) हैं । चौथे और पांचवें वर्ग में दस-दस अध्ययन हैं । छठे वर्ग में सोलह अध्ययन हैं । सातवें वर्ग में तेरह और आठवें वर्ग में दस अध्ययन हैं । कुल ९० अध्ययन हैं।

शेष वर्णन ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र में है ।

(श्री अन्तकृद्दशा सूत्र समाप्त)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चार्ट (Table) 1

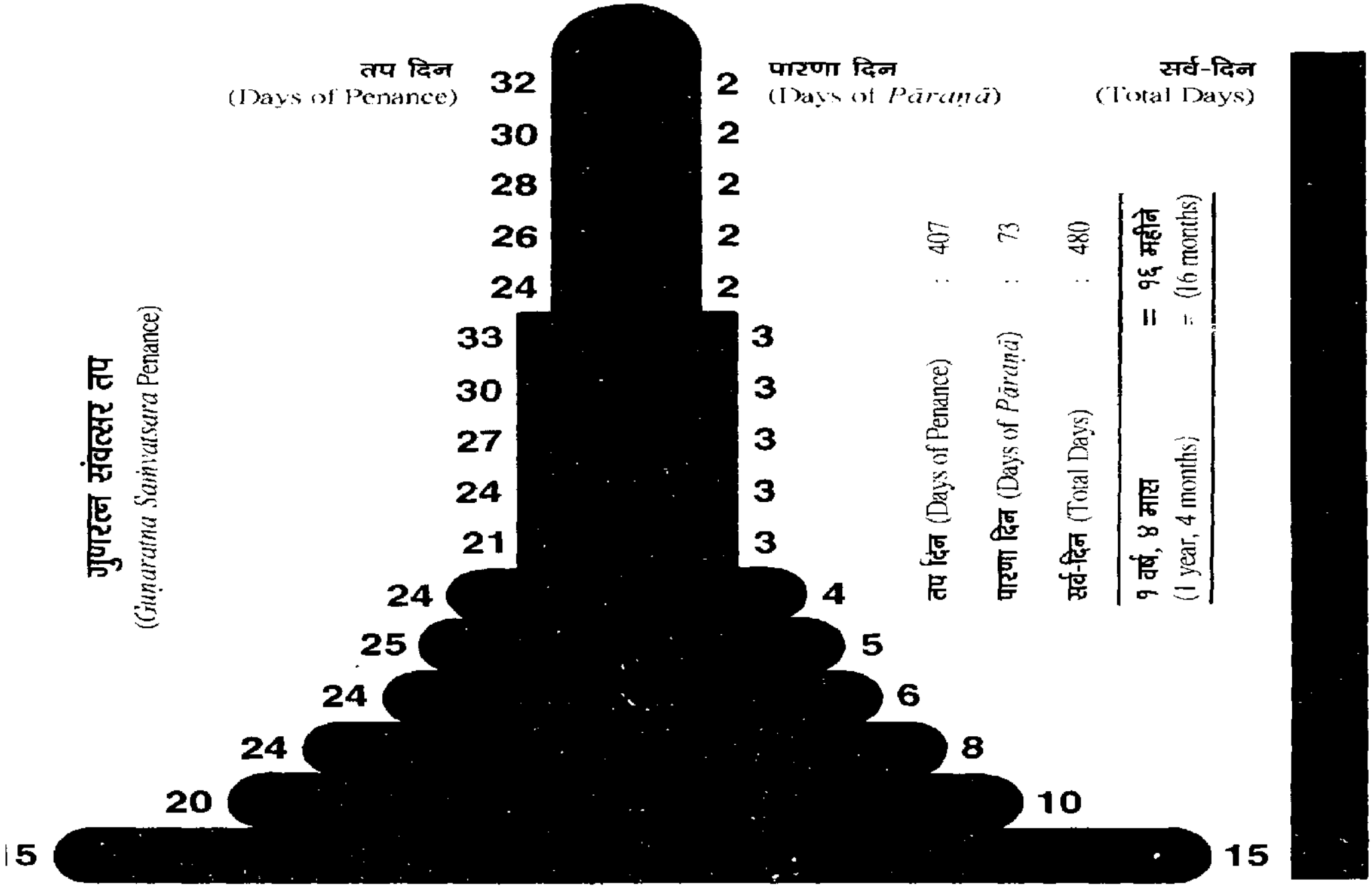

प्रसंग : वर्ग १, अध्ययन १, पृष्ठ २८-३३ : गौतम अणगार का वर्णन
(Reference : Section 1, Chapter 1, Page 28-33 : Description of ascetic *Gautama*)

www.jainelibrary.org
For Private & Personal Use Only
Jain Education International

रत्नावली
(*Ratnāvalī*)

तपस्या काल (Time period of Penance)

एक परिपाटी का काल : १ वर्ष, ३ मास, २२ दिन
(Time period of one series : 1 year, 3 months, 22 days)

चार परिपाटी का काल : ५ वर्ष, २ मास, २८ दिन
(Time period of four series : 5 years, 2 months, 28 days)

तप के दिन (Days of Penance)

एक परिपाटी के तपोदिन : १ वर्ष, २४ दिन
(Days of Penance of one series : 1 year, 24 days)

चार परिपाटी के तपोदिन : ४ वर्ष, ३ मास, ६ दिन
(Days of Penance of four series : 4 years, 3 months, 6 days)

पारणे (*Pāraṇās*)

एक परिपाटी के पारणे : ८८
(*Pāraṇās* of one series : 88)

चार परिपाटी के पारणे : ३५२
(*Pāraṇās* of four series : 352)

प्रसंग :

वर्ग ८, अध्ययन १, पृष्ठ २४४-२४६ :
काली आर्या ने इस तप की आराधना की।

(Reference :
Section 8, Chapter 1, Page 244-246 :
Āryā Kālī practised of this penance.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चार्ट (Table) 3

कनकावली
(Kanakāvalī)

तपस्या काल (Time period of Penance)	**एक परिपाटी का काल : १ वर्ष, ५ मास, १२ दिन** (Time period of one series : 1 year, 5 months, 12 days) **चार परिपाटी का काल : ५ वर्ष, ९ मास, १८ दिन** (Time period of four series : 5 years, 9 months, 18 days)
तप के दिन (Days of Penance)	**एक परिपाटी के तपोदिन : १ वर्ष, २ मास, १४ दिन** (Days of Penance of one series : 1 year, 2 months, 14 days) **चार परिपाटी के तपोदिन : ४ वर्ष, ९ मास, २६ दिन** (Days of Penance of four series : 4 years, 9 months, 26 days)
पारणे (*Pāraṇās*)	**एक परिपाटी के पारणे : ८८** (*Pāraṇās* of one series : 88) **चार परिपाटी के पारणे : ३५२** (*Pāraṇās* of four series : 352

प्रसंग : वर्ग ८, अध्ययन २, पृष्ठ २५० : सुकाली आर्या ने इस तप की आराधना की।
(Reference : Section 8, Chapter 2, Page 250 : *Āryā Sukālī* practised of this penance.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चार्ट (Table) 4

तपस्या काल (Time period of Penance)	एक परिपाटी का काल : ६ माह, ७ दिन (Time period of one series : 6 months, 7 days)
	चार परिपाटी का काल : २ वर्ष, २८ दिन (Time period of four series : 2 years, 28 days)
तप के दिन (Days of Penance)	एक परिपाटी के तपोदिन : ५ मास, ४ दिन (Days of Penance of one series : 5 months, 4 days)
	चार परिपाटी के तपोदिन : १ वर्ष, ८ मास, १६ दिन (Days of Penance of four series : 1 year, 8 months, 16 days)
पारणे (*Pāraṇās*)	एक परिपाटी के पारणे : ३३ (*Pāraṇās* of one series : 33)
	चार परिपाटी के पारणे : १३२ (*Pāraṇās* of four series : 132)

प्रसंग : वर्ग ८, अध्ययन ३, पृष्ठ २५५ : महाकाली आर्या ने इस तप की आराधना की।
(Reference : Section 8, Chapter 3, Page 255 : *Mahākālī Āryā* practised of this penance.)

चार्ट (Table) 11

1	2	3	4	5	6	7
4	5	6	7	1	2	3
7	1	2	3	4	5	6
3	4	5	6	7	1	2
6	7	1	2	3	4	5
2	3	4	5	6	7	1
5	6	7	1	2	3	4

प्रसंग : वर्ग ८, अध्ययन ७, पृष्ठ २७३ : वीर कृष्णा आर्या का वर्णन
(Reference : Section 8, Chapter 7, Page 273 : Description of *Ārya Virakṛṣṇā*)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

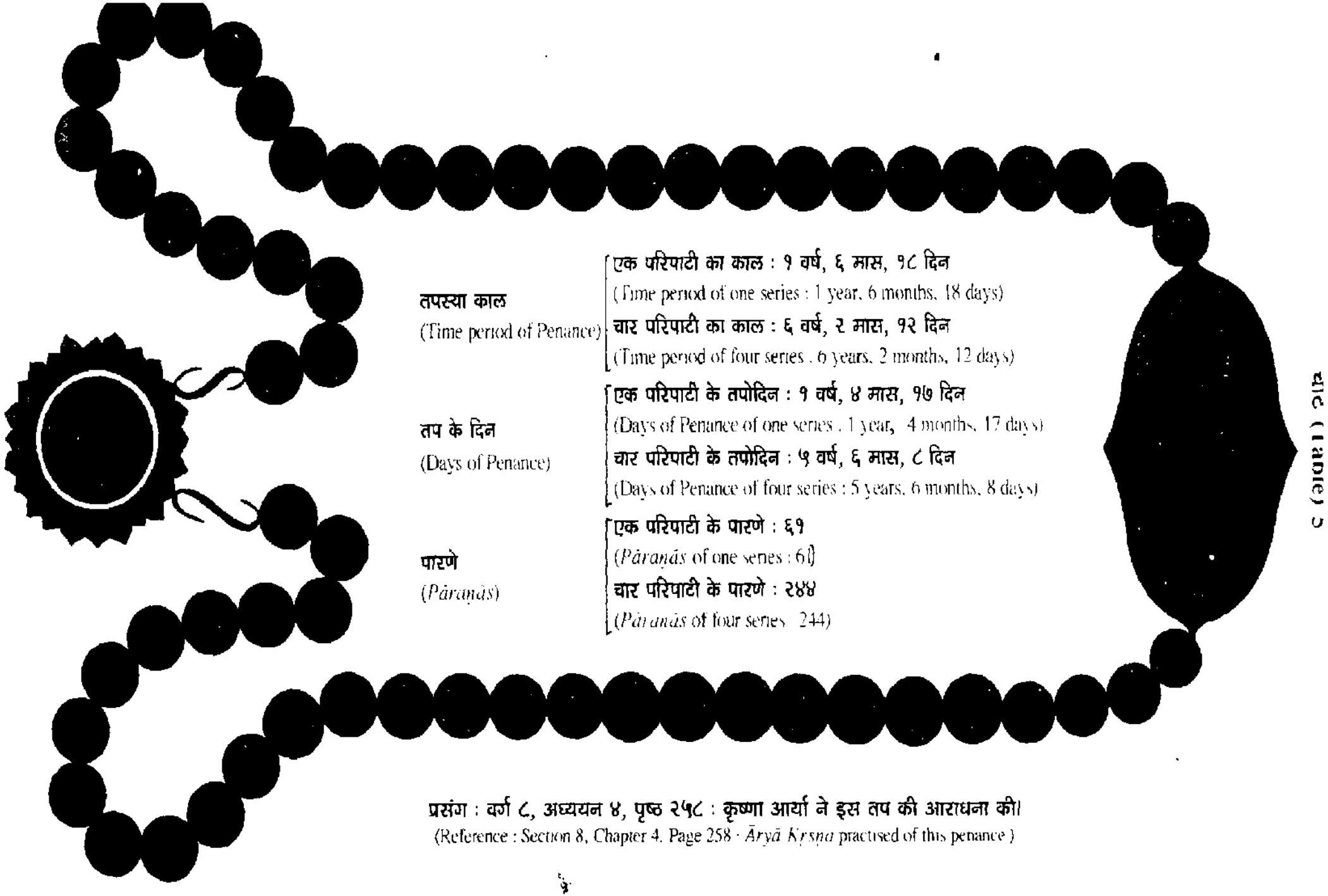

तपस्या काल
(Time period of Penance)

एक परिपाटी का काल : १ वर्ष, ६ मास, १८ दिन
(Time period of one series : 1 year, 6 months, 18 days)
चार परिपाटी का काल : ६ वर्ष, २ मास, १२ दिन
(Time period of four series : 6 years, 2 months, 12 days)

तप के दिन
(Days of Penance)

एक परिपाटी के तपोदिन : १ वर्ष, ४ मास, १७ दिन
(Days of Penance of one series : 1 year, 4 months, 17 days)
चार परिपाटी के तपोदिन : ५ वर्ष, ६ मास, ८ दिन
(Days of Penance of four series : 5 years, 6 months, 8 days)

पारणे
(*Pāraṇās*)

एक परिपाटी के पारणे : ६१
(*Pāraṇās* of one series : 61)
चार परिपाटी के पारणे : २४४
(*Pāraṇās* of four series : 244)

चित्र (Table) ८

प्रसंग : वर्ग ८, अध्ययन ४, पृष्ठ २५८ : कृष्णा आर्या ने इस तप की आराधना की।
(Reference : Section 8, Chapter 4, Page 258 · *Āryā Kṛṣṇa* practised of this penance)

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

Jain Education International

For Private & Personal Use Only

www.jainelibrary.org

चार्ट (Table) 6

1	1	1	1	1	1	1
2	2	2	2	2	2	2
3	3	3	3	3	3	3
4	4	4	4	4	4	4
5	5	5	5	5	5	5
6	6	6	6	6	6	6
7	7	7	7	7	7	7

प्रसंग : वर्ग ८, अध्ययन ५, पृष्ठ २६१ :
सुकृष्णा आर्या ने इस तप की आराधना की।

(Reference : Section 8, Chapter 5, Page 261 :
Ārvā Sukṛṣṇā practised of this penance.)

चार्ट (Table) 7

अष्ट-अष्टमिका भिक्षु प्रतिमा
(*Aṣta-Aṣtamikā* nun firm-resolution)

1	1	1	1	1	1	1	1
2	2	2	2	2	2	2	2
3	3	3	3	3	3	3	3
4	4	4	4	4	4	4	4
5	5	5	5	5	5	5	5
6	6	6	6	6	6	6	6
7	7	7	7	7	7	7	7
8	8	8	8	8	8	8	8

६४ दिवस, २८८ दत्तियाँ
(64 Days, 288 *Dattis*)

प्रसंग : वर्ग ८, अध्ययन ५, पृष्ठ २६१ :
सुकृष्णा आर्या का वर्णन

(Reference : Section 8, Chapter 5, Page 261
Description of *Āryā Sukṛṣṇā*)

चार्ट (Table) 8

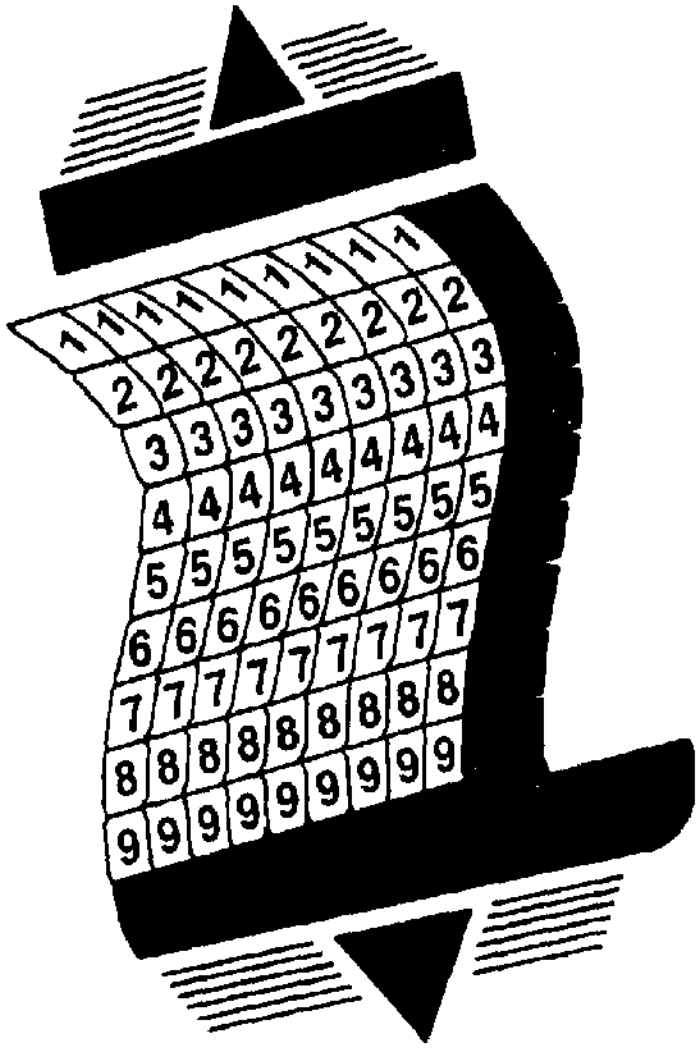

प्रसंग : वर्ग ८, अध्ययन ५, पृष्ठ २६२ :
सुकृष्णा आर्या का वर्णन

(Reference : Section 8, Chapter 5, Page 262
Description of *Āryā Sukṛṣṇā*)

Jain Education International

For Private & Personal Use Only

www.jainelibrary.org

चार्ट (Table) 9

1	1	1	1	1	1	1	1	1	1
2	2	2	2	2	2	2	2	2	2
3	3	3	3	3	3	3	3	3	3
4	4	4	4	4	4	4	4	4	4
5	5	5	5	5	5	5	5	5	5
6	6	6	6	6	6	6	6	6	6
7	7	7	7	7	7	7	7	7	7
8	8	8	8	8	8	8	8	8	8
9	9	9	9	9	9	9	9	9	9
10	10	10	10	10	10	10	10	10	10

प्रसंग : वर्ग ८, अध्ययन ५, पृष्ठ २६२ : सुकृष्णा आर्या का वर्णन
(Reference : Section 8, Chapter 5, Page 262 : Description of *Āryā Sukṛṣṇā*)

चार्ट (Table) 10

1	2	3	4	5
3	4	5	1	2
5	1	2	3	4
2	3	4	5	1
4	5	1	2	3

प्रसंग : वर्ग ८, अध्ययन ६, पृष्ठ २६७ : महाकृष्णा आर्या का वर्णन
(Reference Section 8, Chapter 6, Page 267 : Description of *Āryā Mahākṛṣṇā*)

चार्ट (Table) 12

भद्रोत्तर प्रतिमा (*Bhadrottara* firm-resolution)

5	6	7	8	9
7	8	9	5	6
9	5	6	7	8
6	7	8	9	5
8	9	5	6	7

प्रसंग : वर्ग ८, अध्ययन ८, पृष्ठ २७६ : रामकृष्णा आर्या का वर्णन
(Reference Section 8, Chapter 8, Page 276 Description of *Āryā Rāmakṛṣṇā*)

तप दिन : १७५, पारणे : २५
(Days of Penance : 175, *Pāraṇās* 25)

चार्ट (Table) 13

मुक्तावली
(*Muktāvalī*)

तपस्या काल (Time period of Penance)	**एक परिपाटी का काल : ११ मास, १५ दिन** (Time period of one series : 11 months, 15 days) **चार परिपाटी का काल : ३ वर्ष, १० मास** (Time period of four series : 3 years, 10 months)
तप के दिन (Days of Penance)	**एक परिपाटी के तपोदिन : २८५ दिन** (Days of Penance of one series : 285 days) **चार परिपाटी के तपोदिन : ३ वर्ष, २ मास** (Days of Penance of four series : 3 years, 2 months)
पारणे (*Pāraṇās*)	**एक परिपाटी के पारणे : ६०** (*Pāraṇās* of one series : 60) **चार परिपाटी के पारणे : २४०** (*Pāraṇās* of four series : 240)

प्रसंग : वर्ग ८, अध्ययन ९, पृष्ठ २८२ : पितृसेन कृष्णा आर्या का वर्णन

(Reference : Section 8, Chapter 9, Page 282 : Description of *Āryā Pitrasena Kṛṣṇā*)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Conclusion

O *Jambū* ! From the point of view of his own religious order, the exponent of religion, *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra Swāmī*. who is now salvated, has expressed the subject matter of eighth *aṅga–Antakṛd-daśā Sūtra*. As I listened from *Bhagawāna*, so I have told you.

Antakṛddaśā Sūtra has one Book (*Śrutaskandha*) and eight sections. These are read in eight days.

Among these in first and second sections there are ten and eight chapters respectively. In third section there are thirteen chapters (*uddeśakas*). Fourth and fifth sections contain ten chapters each. In sixth section sixteen chapters, in seventh section thirteen and in eighth section there are ten chapters.

Remaining description is in *Jñātādharmakathāṅga sūtra*.

[Eighth section completed.

[Antakṛd-daśa Sūtra ended]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International

For Private & Personal Use Only

www.jainelibrary.org

टेबिल नं. 14 आयम्बिले वर्धमान तप

आयंबिल	उपवास	आयंबिल	उपवास	आयंबिल	उपवास	आयंबिल	उपवास	आयंबिल	उपवास	आयंबिल	उपवास	आयंबिल	उपवास	आयंबिल	उपवास	आयंबिल	उपवास	आयंबिल	उपवास
1	1	2	1	3	1	4	1	5	1	6	1	7	1	8	1	9	1	10	1
11	1	12	1	13	1	14	1	15	1	16	1	17	1	18	1	19	1	20	1
21	1	22	1	23	1	24	1	25	1	26	1	27	1	28	1	29	1	30	1
31	1	32	1	33	1	34	1	35	1	36	1	37	1	38	1	39	1	40	1
41	1	42	1	43	1	44	1	45	1	46	1	47	1	48	1	49	1	50	1
51	1	52	1	53	1	54	1	55	1	56	1	57	1	58	1	59	1	60	1
61	1	62	1	63	1	64	1	65	1	66	1	67	1	68	1	69	1	70	1
71	1	72	1	73	1	74	1	75	1	76	1	77	1	78	1	79	1	80	1
81	1	82	1	83	1	84	1	85	1	86	1	87	1	88	1	89	1	90	1
91	1	92	1	93	1	94	1	95	1	96	1	97	1	98	1	99	1	100	1

महासेन कृष्णा आर्य ने इस तप की आराधना की।

वर्ग 8 अ 10 पृष्ठ 285

आगमों का अनध्यायकाल

(स्व. आचार्यप्रवर श्री आत्माराम जी म. द्वारा सम्पादित नन्दीसूत्र से उद्धृत)

स्वाध्याय के लिए आगमों में जो समय बताया गया है, उसी समय शास्त्रों का स्वाध्याय करना चाहिए। अनध्यायकाल में स्वाध्याय वर्जित है।

मनुस्मृति आदि स्मृतियों में भी अनध्यायकाल का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वैदिक लोग भी वेद के अनध्यायों का उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार अन्य आर्ष ग्रन्थों का भी अनध्याय माना जाता है। जैनागम भी सर्वज्ञोक्त, देवाधिष्ठित तथा स्वरविद्या संयुक्त होने के कारण, इनका भी आगमों में अनध्यायकाल वर्णित किया गया है, जैसे कि–

दसविहे अंतलिक्खिए असज्झाए पण्णत्ते, तं जहा–उक्कावाते, दिसिदाघे, गज्जिते, विज्जुते, निग्घाते, जुवते, जक्खालित्ते धूमिता, महिता, रयउग्घाते।

दसविहे ओरालिए असज्झाए, तं जहा–अट्ठी, मंसं, सोणिते, असुतिसामंते, सुसाणसामंते, चंदोवराते, सूरोवराते, पडणे, रायवुग्गहे, उवस्सयस्स अंतो ओरालिए सरीरगे। –स्थानाङ्गसूत्र, स्थान १०

नो कप्पति निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा चउहिं महापाडिवएहिं सज्झायं करित्तए, तं जहा–आसाढपाडिवए, इंदमहपाडिवए, कत्तिअपाडिवए सुगिम्हपाडिवए।

नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा, चउहिं संझाहिं सज्झायं करेत्तए, तं जहा–पढिमाते, पच्छिमाते मज्झण्हे, अड्ढरत्ते।

कप्पइ निग्गंथाणं वा, निग्गंथीण वा, चाउक्कालं सज्झायं करेत्तए, तं जहा–पुव्वण्हे अवरण्हे, पओसे, पच्चूसे। –स्थानाङ्गसूत्र, स्थान ४, उद्देशक २

उपरोक्त सूत्रपाठ अनुसार, दस आकाश से सम्बन्धित, दस औदारिक शरीर से सम्बन्धित, चार महाप्रतिपदा, चार महाप्रतिपदा की पूर्णिमा और चार सन्ध्या, इस प्रकार बत्तीस अनध्याय (काल) माने गए हैं, जिनका संक्षेप में निम्न प्रकार से वर्णन है, जैसे–

आकाश सम्बन्धी दस अनध्याय

१. **उल्कापात-तारापतन**–यदि महत् तारापतन हुआ है तो एक प्रहर पर्यन्त शास्त्र स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

२. **दिग्दाह**–जब तक दिशा रक्तवर्ण की हो अर्थात् ऐसा मालूम पड़े कि दिशा में आग-सी लगी है, तब भी स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

३. **गर्जित**–बादलों के गर्जन पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

४. **विद्युत**–बिजली चमकने पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु गर्जन और विद्युत का अस्वाध्याय चातुर्मास में नहीं मानना चाहिए। क्योंकि वह गर्जन और विद्युत प्रायः ऋतु स्वभाव से ही होता है। अतः आर्द्रा से स्वाति नक्षत्र पर्यन्त अनध्याय नहीं माना जाता।

५. **निर्घात**–बिना बादल के आकाश में व्यन्तरादिकृत घोर गर्जन होने पर या बादलों सहित आकाश में कड़कने पर दो प्रहर तक अस्वाध्याय काल है।

६. **यूपक**–शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया की सन्ध्या चन्द्रप्रभा के मिलने को यूपक कहा जाता है। इन दिनों प्रहर रात्रि पर्यन्त अस्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

७. **यक्षादीप्त**–कभी किसी दिशा में बिजली चमकने जैसा, थोड़े-थोड़े समय पीछे जो प्रकाश होता है वह यक्षादीप्त कहलाता है। अतः आकाश में जब तक यक्षाकार दीखता रहे तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

८. **धूमिका कृष्ण**–कार्तिक से लेकर माघ तक का समय मेघों का गर्भमास होता है। इसमें धूम्र वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुंध पड़ती है। वह धूमिका-कृष्ण कहलाती है। जब तक यह धुंध पड़ती रहे, तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

९. **मिहिकाश्वेत**–शीतकाल में श्वेत वर्ण का सूक्ष्म जलरूप धुंध मिहिका कहलाती है। जब तक यह गिरती रहे, तब तक अस्वाध्यायकाल है।

१०. **रज उद्घात**–वायु के कारण आकाश में चारों ओर धूलि छा जाती है। जब तक यह धूलि फैली रहती है स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

उपरोक्त दस कारण आकाश सम्बन्धी अस्वाध्याय हैं।

औदारिक सम्बन्धी दस अनध्याय

११-१२-१३. **हड्डी, माँस और रुधिर**–पंचेन्द्रिय तिर्यंच की हड्डी, माँस और रुधिर यदि सामने दिखाई दें, तो जब तक वहाँ से यह वस्तुएँ उठाई न जाएँ तब तक अस्वाध्याय है। वृत्तिकार आसपास के ६०० हाथ तक इन वस्तुओं के होने पर अस्वाध्याय मानते हैं।

इसी प्रकार मनुष्य सम्बन्धी अस्थि, माँस और रुधिर का भी अनध्याय माना जाता है। विशेषता इतनी है कि इनका अस्वाध्याय सौ हाथ तक तथा एक दिन-रात का होता है। स्त्री के मासिक धर्म का अस्वाध्याय तीन दिन तक। बालक एवं बालिका के जन्म का अस्वाध्याय क्रमशः सात एवं आठ दिन पर्यन्त का माना जाता है।

१४. **अशुचि**–मल-मूत्र सामने दिखाई देने तक अस्वाध्याय है।

१५. **श्मशान**–श्मशान भूमि के चारों ओर सौ-सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय माना जाता है।

१६. **चन्द्र-ग्रहण**–चन्द्र-ग्रहण होने पर जघन्य आठ, मध्यम बारह और उत्कृष्ट सोलह प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

१७. **सूर्य-ग्रहण**–सूर्य-ग्रहण होने पर भी क्रशः आठ, बारह और सोलह प्रहर पर्यन्त अस्वाध्यायकाल माना गया है।

१८. **पतन**–किसी बड़े मान्य राजा अथवा राष्ट्र पुरुष का निधन होने पर जब तक उसका दाह-संस्कार न हो तब तक स्वाध्याय न करना चाहिए। अथवा जब तक दूसरा अधिकारी सिंहासनारूढ़ न हो तब तक शनैः-शनैः स्वाध्याय करना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९. **राजव्युद्ग्रह**–समीपस्थ राजाओं में परस्पर युद्ध होने पर जब तक शान्ति न हो जाए, तब तक उसके पश्चात् भी एक दिन-रात्रि स्वाध्याय नहीं करें।

२०. **औदारिक शरीर**–उपाश्रय के भीतर पंचेन्द्रिय जीव का वध हो जाने पर जब तक कलेवर पड़ा रहे, तब तक तथा १०० हाथ तक यदि निर्जीव कलेवर पड़ा हो तो स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

अस्वाध्याय के उपरोक्त दस कारण औदारिक शरीर सम्बन्धी कहे गये हैं।

२१-२८ **चार महोत्सव और चार महाप्रतिपदा**–आषाढ़-पूर्णिमा, आश्विन-पूर्णिमा, कार्तिक-पूर्णिमा और चैत्र-पूर्णिमा ये चार महोत्सव हैं। इन पूर्णिमाओं के पश्चात् आने वाली प्रतिपदा को महाप्रतिपदा कहते हैं। इसमें स्वाध्याय करने का निषेध है।

२९-३२. **प्रातः, सायं, मध्याह्न और अर्ध-रात्रि**–प्रातः सूर्य से एक घड़ी पहले तथा एक घड़ी पीछे। सूर्यास्त होने से एक घड़ी पहले तथा एक घड़ी पीछे। मध्याह्न अर्थात् दोपहर में (१२ बजे) एक घड़ी आगे और एक घड़ी पीछे एवं अर्ध-रात्रि में भी एक घड़ी आगे तथा एक घड़ी पीछे स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार अस्वाध्याय काल टालकर दिन-रात्रि में चार काल की स्वाध्याय करना चाहिए।

卐

Appropriate Time for Study of Scriptures

Holy books should be studied only at a time as prescribed in the scriptures. There are times when this study is prohibited.

In scriptures like Manusmriti etc. also the prohibited time has been described. Vedic people also mention about this period in the Vedas. Other Aryan holy books also agree to this particular period. Jain scriptures too, as they have been associated with the omnipresent and established by the *devas*, are prohibited to be studied in that particular period, e.g.

As per the above scripture study, prohibited periods are ten relating to symptoms in the sky, ten relating to the physical body, four relating to first day of the fortnight, four relating to full moon of the fortnight, four relating to waned moon of the fortnight.

Thus, 32 periods are forbidden which are briefly described below :

Relating to symptoms in the sky

1. If an important star has fallen, then the study is forbidden for three hours.

2. If there is red colour in the sky then the study shouldn't be done.

3. No study for 6 hours after thunder of clouds.

4. For three hours after lightening, study is not allowed.

5. If there is thunder without clouds in the sky or if there is crackling with presence of clouds, then study is forbidden for 6 hours.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

6. The evening time of 1st, 2nd and 3rd day of the fortnight when the moon waxes, is forbidden for the study.

7. Till the time when the after glow of lightening is visible in any direction, study should not be done.

8. From October to January, there is fog. Till the time there is fog, study is forbidden.

9. During winters, there is five fog of white colour. Till the time there is fog, that is forbidden time.

10. Due to air movement, if there is a dust in the air, then the study is not allowed.

Relating to the Physical Body

11-12-13. Till bone, flesh or blood of any five sensed being is visible, study is not to be done. Similarly, human bone, flesh and blood is also considered ominous for study. Their presence forbids study for 3 days.

14. Presence of stool and urine prohibits study.

15. 66.6 ft. around a funeral place is unfit for study.

16. Study is prohibited during lunar eclipse.

17. Study is prohibited during solar eclipse.

18. Till the funeral of a big king or national leader after his death, study is prohibited.

19. Till the time when peace prevails after a fight between two neighbouring kings, study is forbidden for 24 hours.

20. **Physical Body**–In case a five-sensed animal dies or is killed in the *upashraya* (the place where monks/nuns are staying), scriptures should not be studied till the dead body is there. If the dead body is lying at a distance upto 100 *hath*, then also the scriptures cannot be studied.

The above mentioned ten taboos relate to physical body.

21-28. **Four auspicious days and four *phatipadas* (the days prolongs the auspicious day)**–Fifteenth days of the bright fortnight (i.e. the days of full moon) in Ashadh (June), Ashvin (September), Kartik (October) and Chaitra (March) are known as *Mahotsava* (Auspicious days). The day immediately followings are *mahapratipada*. Scriptures should not be studied in these eight day.

29-32. Scriptures should not be studied for 24 minutes immediately preceding and immediately following the sunrise, the noon, the sunset and midnight.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तकृद्दशा महिमा

(अन्तकृद्दशासूत्र से सम्बन्धित विविध विशिष्ट प्रसंग, विषय स्पष्टीकरण, ग्राम, नगर आदि का परिचय)

लेखक
श्री सुयश मुनि

सम्पादक
श्रीचन्द सुराना 'सरस'

अंग्रेजी अनुवाद
श्री सुरेन्द्र बोथरा

卐

ANTAKRIDDAŚĀ MAHIMĀ

THE IMPORTANCE OF ANTAKRIDDAŚĀ

(Various important incidents, explanations about the themes, details about places like cities, villages, etc. included in Antakriddasha Sutra)

By
Shri Suyash Muni

Edited by
Srichand Surana 'Saras'

English Translation by
Shri Surendra Bothara

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयानुक्रम

क्रम	अध्याय	पृष्ठ
१.	अन्तकृद्दशासूत्र : अन्तर्-बाह्य परिचय	२९७
२.	अन्तक्रिया : अर्थ और उदाहरण	३१३
३.	तीन महान् युग-प्रवर्तक	३३२
४.	विविध तप : विधि-विधान और उद्देश्य	३५०
५.	संलेखना-संथारा : एक पर्यालोचन	३६८
६.	प्रतिमा योग	३८४
७.	निदान	४०२
८.	अन्तकृद्दशासूत्र में वर्णित प्रसिद्ध नगर, उद्यान आदि	४१६
९.	अन्तकृद्दशासूत्र में संकेतित/सन्दर्भित प्रसिद्ध व्यक्तित्व	४२८
१०.	विविध प्रसंग	४६९

CONTENTS

No.	Chapter	Page
1.	Antakriddasha Sutra : A Detailed Introduction	305
2.	Antakriya : Meaning and Examples	323
3.	Three Great Epoch-makers	341
4.	Various Austerities : Procedures, Codes and Purpose	359
5.	Sanlekhana-Santhara : A Study	376
6.	Pratima Yoga	393
7.	Nidan (Volition)	409
8.	Famous Cities, Gardens etc. Described in Antakriddasha Sutra	422
9.	The Famous Characters, Mentioned in Antakriddasha Sutra	449
10.	Miscellaneous Topics	479

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्याय १

अन्तकृद्दशा सूत्र : अन्तर्-बाह्य परिचय

मानवीय आकांक्षा

अनादिकाल से मानव की एक ही अदृश्य इच्छा रही है, वह है सुख-प्राप्ति की, दुःखों का अन्त करने की। यद्यपि यह इच्छा प्राणी मात्र में है, जैसा कि भगवान महावीर ने कहा है–"**सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता, सव्वे पाणा, सव्वे भूया, सुह साया, दुक्खा पडिकूला.....**

–संसार के सभी प्राणी सुख के अभिलाषी हैं, दुःख सभी को प्रतिकूल है, दुःख से बचना चाहते हैं और सुख पाना चाहते हैं।

मानव संसार का एक ऐसा समर्थ प्राणी है जो अपनी कुशल मेधा-शक्ति, उन्नत बल-वीर्य पराक्रम के अनुसार दुःखों का अन्त करने और सुख-प्राप्ति की दिशा में अग्रसर हो सकता है।

मानव की सभी प्रवृत्तियाँ दुःखों का अन्त करने की दिशा में अग्रसर हुई हैं। सुख-प्राप्ति के लिए ही उसने भौतिक और वैज्ञानिक उन्नति की। महल, बाग-बगीचे, स्कूटर, मोटर, वायुयान, स्पूतनिक, टी. वी. आदि का आविष्कार किया।

जीवन को उन्नतिशील बनाने के लिए उसने अनेक शास्त्रों की रचना की–अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र आदि। इनमें भी सुख-प्राप्ति के नियम और साधन ही निर्धारित किये।

'**मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना**' के अनुसार कुछ लोग भौतिक साधनों में सुख की खोज करते हुए भौतिकवादी बन गये तो कुछ ने स्वयं अपने अन्दर ही सुख की गवेषणा की और आत्मानुभव (self-realisation) में प्रवृत्त होकर आध्यात्मिकता की ओर मुड़ गये।

अति प्राचीनकाल–प्रागैतिहासिककाल से ही भारत आध्यात्मिकता-प्रधान रहा है। धर्म तथा आध्यात्मिकता की आदि (beginning) इसी पवित्र धरा पर हुई, जिसका श्रेय आदि तीर्थंकर ऋषभदेव से लेकर चरम (चौबीसवें) तीर्थंकर भगवान महावीर को है।

द्वादशांगी का महत्त्व

भगवान महावीर ने प्राणी मात्र के कल्याण के लिए जो उपदेश दिये, उन उपदेशों को महान् प्रज्ञावान गणधरों ने बारह अंगों में संकलित किया। यह बारह अंग ही द्वादशांगी कहलाते हैं।

द्वादशांगी की विशेषता यह है कि यह सर्वज्ञ द्वारा कथित है। सर्वज्ञ भगवान अर्थ-रूप वाणी बोलते हैं, उनके प्रमुख शिष्य गणधर उसे ग्रहण करके शासन के हित के लिए (प्राणी मात्र के कल्याण के लिए) निपुणतापूर्वक सूत्रों की रचना करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यही कारण है कि गणधरों द्वारा गूँथे हुए १२ अंगसूत्र भी कहे जाते हैं।

बारह अंग हैं–(१) आचारांग, (२) सूत्रकृतांग, (३) स्थानांग, (४) समवायांग, (५) भगवती–व्याख्याप्रज्ञप्ति, (६) ज्ञाताधर्मकथांग, (७) उपासकदशांग, (८) अन्तकृद्दशांग, (९) अनुत्तरौपपातिकदशा, (१०) प्रश्नव्याकरण, (११) विपाकसूत्र, और (१२) दृष्टिवाद। (यह बारहवाँ दृष्टिवाद अंग लुप्त हो चुका है।)

अन्तकृद्दशा : आठवाँ अंग

उपरोक्त क्रम से प्रस्तुत अन्तकृद्दशासूत्र द्वादशांगी का आठवाँ अंग या सूत्र है।

जैनदर्शन में ८ का अंक कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ लिए हुए है, जैसे–सिद्धों के आठ गुण हैं। आत्मा के आठ मूल गुण हैं। मंगल भी आठ हैं। प्रमाद स्थान भी आठ हैं और कर्म भी आठ हैं; जिन्हें नष्ट कर जीव बंधन से छुटकारा पाता है।

प्रस्तुत आठवें अंग में भी ऐसे साधकों का वर्णन है, जिन्होंने अपने संपूर्ण आठ कर्मों का विनाश करके अन्त में अपने लक्ष्य–मुक्ति की प्राप्ति की है।

नामकरण एवं शब्दार्थ

प्रस्तुत अंग का नाम अन्तकृद्दशांगसूत्र है। यह नाम चार शब्दों से मिलकर निष्पन्न हुआ है। वे शब्द हैं–(१) अन्तकृत्, (२) दशा, (३) अंग, और (४) सूत्र। इन चारों शब्दों के पृथक्-पृथक् रूप से अर्थ पर विचार करने से प्रस्तुत सूत्र के नामकरण का रहस्य स्पष्ट हो जायेगा।

१. अन्तकृत्

प्रस्तुत अंग के नाम का यह प्रथम शब्द है–अन्तकृत्। इसका अर्थ है–अन्त करने वाले–भवान्त, भव का अन्त करने वाले अथवा जन्म-मरण रूप संसार का अन्त करने वाले। जिस लक्ष्य के लिए साधना-मार्ग अपनाया जाता है, उस लक्ष्य को प्राप्त करने वाले (end-winners), संसार के सभी दुःखों का अन्त करके मुक्ति-सिद्धि प्राप्त करने वाले।

प्रस्तुत सूत्र का यह प्रथम शब्द सार्थक और सटीक है, क्योंकि इसमें उन साधक एवं साधिकाओं का, उनकी साधना, तपस्या आदि का वर्णन किया गया है, जिन्होंने अपना अन्तिम लक्ष्य मुक्ति (salvation) को पाकर अपना मानव-जीवन सफल किया और अनन्त, निराबाध सुख में लीन (beatified) हो गये।

२. दशा

प्रस्तुत अंगसूत्र के नाम का दूसरा घटक (शब्द) 'दशा' है। 'दशा' शब्द के कोशकारों ने अनेक अर्थ दिये हैं, जैसे–अवस्था, condition, state, degree, being आदि-आदि।

नन्दीसूत्र चूर्णि (पृ. ६८) में भी दशा का अर्थ अवस्था ही दिया गया है।

किन्तु यहाँ 'दशा' शब्द का सामान्य अर्थ, अवस्था ग्रहण करना उचित नहीं लगता। आध्यात्मिक प्रसंग और मोक्ष प्राप्त करने वाले साधकों का वर्णन इस सूत्र में होने के कारण सांसारिक अवस्था से मुक्त अवस्था प्राप्त करना ही इसका अर्थ लेना चाहिए। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है, भोगावस्था से योगावस्था

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की ओर गतिशील होना अथवा आत्मा का अपनी अशुद्ध अवस्था (दशा) से शुद्ध दशा-प्राप्ति की ओर प्रयासरत होना। दशा का यही अर्थ ग्रहण करना समुचित है।

दशा का दूसरा अर्थ है–जिस अंग आगम में दश अध्ययन हों, वह दशा कहलाता है। यह अर्थ समवायांग (प्रकीर्णक समवाय ९६), जिनदास गणी महत्तर की नन्दी चूर्णि (पत्र ६८) और हरिभद्रसूरि की नन्दीवृत्ति (पत्र ८३) में स्वीकार किया गया है और कहा गया है–प्रस्तुत सूत्र के प्रथम वर्ग के दस अध्ययनों के कारण इस सूत्र का नाम अन्तकृद्दशा है।

इस सूत्र के आठ वर्गों में से प्रथम, पंचम और अष्टम वर्ग में दस-दस अध्ययन हैं। आदि-मध्यम-अन्तिम की अपेक्षा से विचार करने पर यह दूसरा अर्थ भी माना जा सकता है।

३. अंग

अन्तकृद्दशांगसूत्र में निविष्ट तीसरा शब्द 'अंग' है।

यह विश्रुत है कि जैन तीर्थंकरों की वाणी को गणधरों ने बारह अंगों में संगुम्फित किया। वे सभी अंग कहलाते हैं। तीर्थंकर की वाणी होने से यह सूत्र भी अंग कहा गया।

४. सूत्र

अन्तकृद्दशांगसूत्र में प्रयुक्त चौथा शब्द 'सूत्र' है। सूत्र उसे कहा जाता है जिसमें अक्षर तो अल्प हों किन्तु उनका अर्थ विशाल हो; दूसरे शब्दों में, महान् अर्थ को गर्भित किये हुए अल्प अक्षरों की शब्द-रचना को सूत्र संज्ञा से अभिहित किया जाता है।

यह सर्वविदित है कि तीर्थंकर भगवान की वाणी महान् अर्थ से गर्भित होती है, जिसे गणधर अल्प शब्दों में निबद्ध करते हैं। इस अपेक्षा से प्रस्तुत आगम के लिए सूत्र शब्द भी सटीक है।

संक्षेप में अन्तकृत् + दशा + अंग + सूत्र–इन चार शब्दों के सम्मिलन से प्रस्तुत आगम का 'अन्तकृद्दशांगसूत्र' नाम निष्पन्न हुआ है, जो सटीक और अपनी विषय-वस्तु को प्रगट करने वाला तथा परिचयात्मक है। इस नाम की सार्थकता का परिचय इसमें वर्णित विषय-वस्तु से स्पष्टतया हो जाता है।

आगम का मुख्य परिचय

किसी भी ग्रन्थ के परिचय के लिये प्रमुख ९ अंगों अथवा घटकों को जानना अनिवार्य होता है–

(१) वर्ण्य-वस्तु (subject-matter), (२) इसमें कितने अध्याय आदि हैं और उनमें क्या वर्णन किया गया है, (३) ग्रन्थ का परिमाण, (४) इन सभी वर्णनों के स्रोत एवं साक्ष्य, (५) ग्रन्थ की भाषा, (६) शैली, (७) वर्णित विषय, (८) प्रेरणाएँ तथा शिक्षाएँ, और (९) महत्त्व। इन सभी के सम्यक् अध्ययन से किसी भी ग्रन्थ का सर्वांगीण परिचय प्राप्त किया जा सकता है।

इसी रीति से हम प्रस्तुत अन्तकृद्दशांगसूत्र का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ण्य-वस्तु के स्रोत एवं परिमाण

प्रस्तुत अंग आगम का परिचय चतुर्थ अंग समवायांग, समवायांग वृत्ति, नन्दीसूत्र-वृत्ति-चूर्णि आदि प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त होता है।

समवायांग में इस अंगसूत्र में दस अध्ययन और सात वर्ग का उल्लेख प्राप्त होता है; जबकि नन्दीसूत्र में आठ वर्गों का उल्लेख तो है परन्तु अध्ययनों का कोई कथन नहीं है कि इसमें कितने अध्ययन हैं।

समवायांग वृत्ति में आचार्य अभयदेव ने उक्त दोनों आगमों के कथन का सामंजस्य बिठाने का प्रयत्न किया है। उन्होंने कहा है कि प्रथम वर्ग के दस अध्ययन और शेष सप्त वर्ग–इस प्रकार ८ वर्ग हो जाते हैं और दोनों आगमों के कथन की संगति बैठ जाती है।

दिगम्बर परम्परा के आचार्य अकलंक ने तत्त्वार्थ राजवार्तिक[1] (तत्त्वार्थ सूत्र की टीका) में और आचार्य शुभचन्द्र ने अपने अंगपण्णत्ति[2] ग्रन्थ में दस नाम दिये हैं। कुछ पाठ-भेद के साथ ये नाम हैं–

(१) नमि, (२) मातंग, (३) सोमिल, (४) रामगुप्त, (५) सुदर्शन, (६) यमलोक, (७) वलीक, (८) कंबल, (९) पाल, और (१०) अंबष्ट-पुत्र।

साथ ही यह भी उल्लेख किया है कि प्रस्तुत अंग आगम में प्रत्येक तीर्थंकर के शासनकाल में होने वाले दस-दस अन्तकृत केवलियों का वर्णन है।

इसी का समर्थन जयधवलाकार वीरसेन और जयसेन ने भी किया है।[3] किन्तु वर्तमान में उपलब्ध अन्तकृद्दशांगसूत्र में सिर्फ भगवान अरिष्टनेमि और भगवान महावीर के युग के साधकों का वर्णन ही मिलता है। संभव है, काल-दोष के कारण अन्य तीर्थंकरों के युग के अन्तकृत् साधकों का वर्णन अनुपलब्ध हो गया हो। क्योंकि यह तो निर्विवाद तथ्य है कि द्वादशांगी हमें अति संक्षिप्त रूप में प्राप्त हुई है।

वर्तमान अन्तकृद्दशा का परिमाण

वर्तमान में जो अन्तकृद्दशांगसूत्र उपलब्ध है, उसमें आठ वर्ग और ९० अध्ययन तथा एक ही श्रुतस्कन्ध है। यही परिमाण नन्दीसूत्र में बताया गया है। अतः स्पष्ट है कि प्रस्तुत अग आगम नन्दीसूत्र वाचना के अनुसार है। इसमें ९०० श्लोक उपलब्ध होते हैं।

इन आठ वर्गों में क्रमशः दस, आठ, तेरह, दस, दस, सोलह, तेरह और दस अध्ययन हैं। इनमें से प्रथम पाँच वर्गों के ५१ अध्ययनों में भगवान अरिष्टनेमि के युग के उन साधक-साधिकाओं के जीवन-वृत्तों और संयम-साधना का वर्णन हुआ है, जिन्होंने अपने इसी भव से मुक्ति प्राप्त की। छठवें, सातवें, आठवें वर्गों के ३९ अध्ययनों में भगवान महावीर के युग में उसी भव से मुक्ति पाने वाले साधक-साधिकाओं का जीवन-वृत्त विवेचित हुआ है।

---

१. तत्त्वार्थ राजवार्तिक १/२०, पृष्ठ ७३

२. अंगपण्णत्ति ५१

३. कषाय प्राभृत, भाग १, पृष्ठ १३०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्य आगमों के समान प्रस्तुत आगम की भाषा भी अर्द्ध-मागधी है। आगमकारों द्वारा कहा गया है–अर्द्ध-मागधी भाषा तीर्थंकरों, गणधरों और देवों को प्रिय होती है। तीर्थंकर इसी भाषा में प्रवचन देते हैं। जन-जन की भाषा होने से यह लोकोपकारक और लोकप्रिय होती है। सभी श्रोता इसे सरलता से समझकर अपना आत्म-कल्याण कर सकते हैं।

शैली

प्रस्तुत आगम का निबन्धन कथात्मक होते हुए भी इसकी शैली प्रश्नोत्तरात्मक है। जम्बू स्वामी प्रश्न करते हैं सुधर्मा स्वामी से कि श्रमण भगवान महावीर ने अन्तकृद्दशासूत्र के अमुक अध्ययन में क्या कहा है तब सुधर्मा स्वामी उत्तर देते हुए उस अध्ययन की विषय-वस्तु का वर्णन करते हैं। इस वर्णन में वे पात्र, नगर आदि का वर्णन करते हुए उस व्यक्ति की संयम-साधना और मुक्ति-प्राप्ति तक का दिग्दर्शन कराते हैं।

सुधर्मा स्वामी अपने वर्णन का प्रारम्भ **'तेणं कालेणं तेणं समएणं'**–उस काल में, उस समय में, इन शब्दों से करते हैं। प्रस्तुत अन्तकृद्दशासूत्र के अतिरिक्त ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा, विपाकसूत्र और अनुत्तरौपपातिकसूत्र में भी यही शैली अपनाई गई है।

शब्द-रचना के सम्बन्ध में अर्द्ध-मागधी भाषा में दो रूप प्राप्त होते हैं–(१) व्यंजनान्त, और (२) स्वरान्त। उदाहरणार्थ–**परिवसति–परिवसइ वण्णतो–वण्णओ आगतो–आगओ** आदि। प्रस्तुत आगम में स्वरान्त शैली का अधिकांशतः प्रयोग हुआ है। स्वरान्त शब्द बोलने में सरल और सुनने में मधुर होते हैं।

आगम-लेखन की दो शैलियाँ उपलब्ध होती हैं–(१) अंक-योजना द्वारा संक्षिप्त पाठ, यथा–**'नमंसइ २ त्ता'** और 'जाव' शब्द द्वारा मध्यवर्ती पाठ को छोड़कर पुनरावृत्ति दोष से बचना, तथा (२) अंक-योजना को छोड़कर पूरा पाठ देना, यथा–**नमंसइ, नमंसित्ता।**

प्रथम अंक-योजना वाली संक्षिप्त शैली दुरूह है तो जाव शब्द न रखकर पूरा पाठ देना उबाऊ है।

वास्तव में शैली रोचक होनी चाहिए। रोचक शैली अथवा कहने के रुचिकर ढंग से श्रोता अथवा पाठक की रुचि बनी रहती है वह विषय-वस्तु को सरलता से हृदयंगम करके उससे प्रभावित होता है, प्रेरणा प्राप्त करता है।

रोचकता बढ़ाने के लिए कथानक के साथ देशकाल आदि का वर्णन भी आवश्यक होता है।

इस दृष्टि से प्रस्तुत आगम की शैली सुसंगठित, सुव्यवस्थित है। इसमें पात्रों के परिचय के साथ उनका चरित्र, वैभव, विवाह, प्राप्तदाय-पुरस्कार, प्रीतिदान आदि के साथ नगर, उद्यान, चैत्य, धर्मकथा, संसार-त्याग, भोगों से विरक्ति, संयमचर्या, तपाराधना, संलेखना, संथारा आदि का सर्वांगपूर्ण वर्णन किया गया है।

उक्त वर्णन शैली श्रोता अथवा पाठक के हृदय में धार्मिक भावनाओं को तरंगायित करती है। साथ ही कुछ ऐसे तथ्य भी उपलब्ध होते हैं, जो काफी महत्त्वपूर्ण हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैसे–भगवान महावीर के शासन में धर्म-साधना के द्वार प्रत्येक व्यक्ति के लिए खुले हुए थे। इनके धर्मसंघ में राजा-राजकुमार-रानियाँ प्रव्रजित हुईं तो मंकाई आदि वैश्य भी और अर्जुनमाली भी। सभी साधकों ने साधना द्वारा मुक्ति प्राप्त की।

साधु-गोचरी के विषय में भी स्पष्ट ज्ञात होता है कि वे केवल उच्च वर्ग से ही भिक्षा प्राप्त नहीं करते थे अपितु उच्च, मध्यम, निम्न सभी कुलों में भिक्षा-प्राप्ति के लिए जाते थे यानी समताभावी श्रमणों के हृदय में कुलों के प्रति कोई भेदभाव नहीं था।

साधकों के सम्बन्ध में कुछ विशिष्ट तथ्य

प्रस्तुत अंतकृद्दशासूत्र में ९० अन्तकृत् केवलियों का वर्णन हुआ है। उनके सम्बन्ध में कुछ विशिष्ट तथ्य ज्ञातव्य हैं। विभिन्न दृष्टियों से इनका वर्णन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

इन ९० साधकों में ७५ युवक थे, १ बालक और १४ वृद्ध।

९० में ५७ पुरुष थे तथा ३३ स्त्री साधिकाएँ।

५७ पुरुषों में ५५ साधु विवाहित थे और २ साधु कुमार (अविवाहित) अवस्था में प्रव्रजित हुए थे।

३३ स्त्रियों में २१ साध्वियों ने अपने पतियों से आज्ञा लेकर दीक्षा ग्रहण की, २ साध्वियों के पति पहले ही दीक्षित हो चुके थे तथा १० साध्वियों के पति का स्वर्गवास हो चुका था।

९० में ३५ साधु तथा ११ साध्वियाँ द्वारका नगर की, भद्दिलपुर के ६ श्रमण, राजगृह के ६ साधु तथा २२ साध्वियाँ, काकंदी के २ श्रमण, वाणिज्यग्राम के २ श्रमण, श्रावस्ती नगरी के २ श्रमण, पोलासपुर नगर के १ श्रमण, वाराणसी के १ श्रमण तथा साकेत नगर के १ श्रमण व १ साध्वी थे।

९० में यादव-कुल के ३५ साधु एवं १० साध्वियाँ, श्रेष्ठि-कुल (नाग गाथापति–सुलसा पुत्र) के ६ साधु, २३ साध्वियाँ क्षत्रिय-कुल की (राजा श्रेणिक की रानियाँ), राज-कुल के १ साधु, १ राजकुमार और गृहपति-कुल के १३ साधु तथा १ माली पुत्र (अर्जुनमालाकार) थे।

९० में ४१ साधु भगवान अरिष्टनेमि के शिष्य थे तथा १० श्रमणियाँ यक्षिणी आर्या की शिष्याएँ थीं एवं १६ श्रमण भगवान महावीर के शिष्य तथा २३ श्रमणियाँ आर्या चन्दनबाला की शिष्याएँ थीं।

९० में ३३ श्रमण और ३३ श्रमणियों ने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, १२ श्रमणों ने चौदह पूर्वों का, १० श्रमणों ने बारह अंगों का तथा २ समिति-गुप्तिधारी श्रमण अंतकृत केवली बनकर मुक्त हुए।

९० में ५५ श्रमणों ने एक मास के संथारे से तथा अर्जुनमालाकार एवं ३३ श्रमणियों ने तीस दिन के संथारे से मुक्ति प्राप्त की किन्तु मुनि गजसुकुमाल बिना संथारे के मुक्त हो गये।

९० में मुनि गजसुकुमाल की एक दिन-रात्रि, अर्जुनमालाकार की छह मास, २ साधकों की पाँच वर्ष, १३ श्रमणियों की बारह वर्ष, १६ की तेईस वर्ष, १ की सत्ताईस वर्ष, १० (श्रमणियों) की आठ से सत्रह वर्ष और ४ श्रमणों की बहुत वर्ष की संयम (दीक्षा) पर्याय रही।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९० में ४० श्रमणों ने शत्रुंजय पर्वत से, १५ श्रमणों ने विपुलगिरि से, ३३ श्रमणियों ने उपाश्रयों से तथा गजसुकुमाल मुनि ने महाकाल श्मशान से मुक्ति प्राप्त की। अर्जुनमालाकार ने किस स्थान से मुक्ति प्राप्त की इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता।

९० में ३२ श्रमणों ने बारह भिक्षु प्रतिमाओं की आराधना की, २३ ने गुणरत्न-संवत्सर तप किया तथा श्रमणियों ने रत्नावली, कनकावली आदि अनेक प्रकीर्णक तपों की आराधना की।

इस प्रकार प्रस्तुत सूत्र में वर्णित ९० श्रमण-श्रमणियों ने विभिन्न प्रकार की तपाराधना की और परिणामस्वरूप मुक्ति का वरण किया।

पंचाचार का वर्णन

भगवान महावीर ने ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार–इन पाँच प्रकार के आचारों का वर्णन किया है तथा ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप को मोक्षमार्ग बताया है। प्रस्तुत सूत्र में इन पाँचों का प्रक्रियात्मक रूप दिग्दर्शित हुआ है।

मोक्ष की साधना में दर्शन (सम्यग्दर्शन) का मूल स्थान है। देव-गुरु-धर्म पर अटल विश्वास ही सम्यग्दर्शन है। यह प्रस्तुत सूत्र में श्रेष्ठि सुदर्शन में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। भगवान महावीर के प्रति दृढ़ विश्वास का ही यह फल था कि उसकी आत्मा धर्म-तेज से जगमगा उठी और उस आत्म-धर्म तेज को यक्ष मुद्गरपाणि भी न सह सका, अर्जुनमाली के शरीर में से निकल भागा।

ज्ञान और दर्शन की आराधना सभी साधक-साधिकाएँ करते हैं, चारित्र का भी पालन करते हैं लेकिन जैसा कि उत्तराध्ययनसूत्र में कहा गया है–"**तवेण परिसुज्झई।**"–आत्मा तप से शुद्ध–विशुद्ध–परिशुद्ध होती है। अतः आत्म-शुद्धि के लिए तप एक महत्त्वपूर्ण रसायन है।

प्रस्तुत सूत्र में विभिन्न प्रकार के तपों का बड़ा ही रोमांचकारी और हृदयग्राही वर्णन हुआ है। श्रमणों और श्रमणियों की तपाराधना का वर्णन सुन-पढ़कर श्रोता-पाठक के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। उन साधक-साधिकाओं के प्रति श्रद्धा से मस्तक झुक जाता है। हृदय भाव-विभोर हो जाता है। भावुक हृदय में यही हिलोर उठती है–मैं भी ऐसी उत्कृष्ट तपोसाधना[1] में सक्षम हो सकूँ।

प्रस्तुत आगम की प्रेरणाएँ

(१) श्रेष्ठि सुदर्शन-जैसी अटल और प्रगाढ़ श्रद्धा तथा विश्वास देव-गुरु-धर्म के प्रति हो।

(२) मुनि गजसुकुमाल-जैसी कष्ट-सहिष्णुता, क्षमा भाव, उपसर्ग-सहन और समता भाव।

(३) अर्जुनमाली-जैसी तितिक्षा और क्षमा।

(४) वासुदेव श्रीकृष्ण-जैसा सेवा-सहयोग, धर्म-दलाली और अरिहंत-वचनों में विश्वास।

---

१. **नोट**–विभिन्न प्रकार के तप, भिक्षु प्रतिमाओं, प्रतिमा योग का विशद वर्णन इसी पुस्तक के आगामी अध्यायों में किया गया है। वहाँ देखें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(५) त्याग-वृत्ति श्रीकृष्ण वासुदेव की आठ अग्रमहिषियों के समान और तपाराधना राजा श्रेणिक की रानियों-जैसी।

इस प्रकार इस सूत्र में ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप और धर्म-पालन; दृढ़ विश्वास आदि की अनेक प्रेरणाएँ प्राप्त होती हैं।

उपसंहार

यद्यपि यह सूत्र संक्षिप्त है, छोटा है, आकार में लघु है; लेकिन सतसैया के दोहों के समान घाव गंभीर करता है, भावुक हृदय की भाव भूमि को आन्दोलित कर देता है, भोगमय जीवन को त्यागकर योग की बलवती प्रेरणा देता है। सर्वज्ञ कथित होने से इसका एक-एक शब्द महान् अर्थ से गर्भित है।

यही कारण है कि इस सूत्र का वाचन पर्युषण के आठ दिनों में किया जाता है जिससे भव्य आत्माएँ तपाराधना की ओर उन्मुख होकर अपनी आत्म-शुद्धि में प्रवृत्त होती हैं।

निष्कर्षतः यह सूत्र तपाराधना द्वारा आत्म-शुद्धि और मुक्ति-प्राप्ति का प्रबल प्रेरक है।

● ●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Chapter 1

Antakriddasha Sutra : A Detailed Introduction

Human Ambition

Since time immemorial the ultimate untold desire of man has been one only, and that is—to embrace happiness or to end sorrow. Every living being has this desire. As Bhagavan Mahavir has said—

"All beings in this world desire happiness; they all are averse to sorrow. They want to avoid sorrow and embrace happiness."

Man is one such resourceful being who can proceed towards ending sorrows and obtaining happiness with the help of his highly developed intelligence, power, vigour and courage.

All activities of man are directed at ending sorrows. The scientific and technological advances he made are directed at acquiring happiness. It is this desire that made him invent things like palaces, gardens, scooter, car, aeroplane, sputnik and television.

For a progressive life he made intellectual advancement and evolved economics, sociology, ethics, religion and the like. Here also the ways and means of acquiring happiness were evolved.

Every individual has his own ideas. Some explore happiness in physical comforts and become materialists. Others explore happiness within and indulging in inner experiences turn towards spiritualism.

Since prehistoric times India has given more stress on spiritualism. In fact this land has been the cradle of religions and spiritualism. The credit of this goes to the twenty four Tirthankars, from Bhagavan Rishabhdev, the first to Bhagavan Mahavir, the last.

The importance of *Dvadashangi*

The sermons Bhagavan Mahavir gave for the benefit of all beings were compiled by highly accomplished *Ganadhars* into twelve *Angas* (Jain canons). This twelve limbed work is known as *Dvadashangi*.

The speciality of *Dvadashangi* is that it is the spoken word of the omniscient. The tenets in the form of speech given by the omniscient Bhagavan are absorbed by *Ganadhars* (his principal disciples) and then they are skillfully converted into *Sutras* (aphorisms) for the benefit of the religious order and all beings.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

That is the reason that the 12 Angas woven by *Ganadhars* are also called *Sutras*.

The twelve *Angas* are—(1) *Acharanga*, (2) *Sutrakritanga*, (3) *Sthananga*, (4) *Samvayanga*, (5) *Bhagavati* or *Vyakhyaprajnapti*, (6) *Jnatadharmakathanga*, (7) *Upasakadashanga*, (8) *Antakriddashanga*, (9) *Anuttaraupapatikdashanga*, (10) *Prashna Vyakaran*, (11) *Vipaka Sutra*, and (12) *Drishtivad*. (the twelfth *Anga* is extinct.)

Antakriddasha Sutra : The Eighth *Anga*

In the above mentioned order this *Antakriddasha Sutra* is the eighth *Anga* or *Sutra* of the *Dvadashangi*.

In Jain philosophy the number 8 carries a special significance. For example—*Siddha* have eight virtues. Soul has eight basic attributes. Auspicious things are also eight. The types of *pramad* (state of inaction and delusion) are eight and are *karmas* destroying which a being is liberated.

It contains description of those seekers who destroyed all their eight types of *karmas* and in the end attained their goal of liberation.

The name and its meaning

The name of this *Anga* is *Antakriddasha Sutra*. It is made up of four words—(1) *Antakrit*, (2) *Dasha*, (3) *Anga*, and (4) *Sutra*. By considering the meanings of these four words from various angles, the theme conveyed by the name will be revealed.

1. *Antakrit*

The first word in the full name of this *Anga* is *Antakrit*. It means 'he who ends or terminates'. One who ends births or incarnations. In other words, those who terminate the cycles of rebirth or the world for himself; those who achieve the goal for which the path of spiritual practices is accepted; those who end all the sorrows of this world and attain liberation to become *Siddhas*.

This first word of this *Sutra* is very appropriate because the *Sutra* contains details about those seekers, their spiritual practices and austerities etc., who attained their ultimate goal of liberation, acquired the ultimate success in life as humans and transcended into the state of eternal bliss.

2. *Dasha*

The second constituent word in the name of the *Antakriddasha Sutra* is *Dasha*. This word has numerous meanings according to the language dictionary state, condition, degree, circumstance, period of life etc.

According to the *Nandi Sutra Churni* (Page 68) also the meaning of *Dasha* is condition.

But here it would not be proper to interpret *dasha* in its common meaning of condition or state. As this *Sutra* contains spiritual discussions and description of seekers who got

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

liberated. *dasha* should be interpreted specifically as the process of change of state from the mundane to the liberated. In other words, the movement from the state of mundane indulgence to the state of spiritual indulgence or to try to progress from the maligned state to the state of purity. It will be proper here to accept this meaning of the word *dasha*.

Another meaning of *dasha* is—the *Anga* which has ten chapters is called *dasha*. 'As the first section of this *Sutra* contains ten chapters, its name is *Antakriddasha Sutra*', this meaning has been accepted in *Samvayanga (Prakirnaka Samvaya* 96), *Nandi Churni* by Jinadas Gani Mahattar (leaf 68) and *Nandi Vritti* by Haribhadra Suri (leaf 83).

Of the eight sections of this *Sutra*, first, fifth and eighth have ten chapters each. With reference to its beginning, middle and end also, this second meaning is acceptable.

3. *Anga*

The third word in the name of *Antakriddasha Sutra* is *Anga*. It is a popular belief that the tenets propagated by Tirthankars were compiled into 12 *Angas* by *Ganadhars*. Each one of them is known as *Anga*. As it is a part of the knowledge directly given by Tirthankar this *Sutra* is also called *Anga*.

4. *Sutra*

The fourth word in the name of *Antakriddashanga Sutra* is *Sutra*. *Sutra* is that which has a small number of words but conveys a wide meaning. A voluminous or profound message condensed in a text formation using a few words is termed as *Sutra* (aphorism).

It is known to all that the sermon of a Tirthankar envelopes a wide range of meanings and the *Ganadhars* compile it in a few words. In this context the use of the word *Sutra* for this *Agam* is appropriate.

In brief the title of this *Agam* is made up of these four words *Antakrit* + *Dasha* + *Anga* + *Sutra*. The name is appropriate and conveys the theme of the work. The propriety of the name becomes all the more clear by study of its subject-matter.

INTRODUCTION OF THE *AGAM*

For the introduction of any book it is necessary to know about its important constituents—

(1) Subject-matter, (2) The number of sections or chapters it contains and their themes, (3) The size of the work, (4) The references and their sources, (5) Language of the book, (6) Style, (7) Subjects discussed, (8) Lessons and inspirations it imparts, and (9) Its importance. A proper study of these parts provides a comprehensive introduction of any work.

I present a brief introduction of this *Antakriddasha Sutra* accordingly.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

The subject-matter, volume and sources

The details about this *Agam* are available in ancient works like the fourth *Anga*, *Samvayanga* as well as in *Samvayanga Vritti*, *Nandi Sutra* and its *vritti*, *churni* etc.

In *Samvayanga* it is mentioned that this *Anga Sutra* has ten chapters and seven sections. However, in *Nandi Sutra* there is only a mention about its eight sections and nothing about its chapters.

In his *Samvayanga Vritti* Acharya Abhayadev has tried to find a compromise between these two views. He says that the ten chapters of the first section combined with remaining seven sections make eight sections. Thus the references from both the *Agams* become applicable.

Digambar Acharya Akalank, in his commentary on *Tattvarth Sutra*, *Tattvarth Rajavartik* (1/20, Page 73) and Acharya Shubhachandra in his *Angapannatti* (51) have given ten names. With slight textual differences these names are—

(1) Nami, (2) Matang, (3) Somil, (4) Ramagupta, (5) Sudarshan, (6) Yamlok, (7) Valik, (8) Kambal, (9) Pal, and (10) Ambasht Putra.

At the same time it is mentioned that in this *Anga* ten *Antakrit Kevalis*, each from the period of influence of all Tirthankars have been detailed.

The authors of *Jayadhavala*, Virsen and Jinasen, have also confirmed this (*Kashaya Prabhrit*, part 1, page 130). However, in the available manuscripts of *Antakriddasha Sutra* details only about the seekers from the periods of influence of Bhagavan Arishtanemi and Bhagavan Mahavir are available. It is possible that the ravages of time have obliterated the details about the rest of the seekers because this is an established fact that the *Dvadashangi* available to us is only in its brief form.

The volume of the exant *Antakriddasha Sutra*

The available *Antakriddasha Sutra* contains only one *Shrut Skandha*, eight sections and 90 chapters. *Nandi Sutra* also confirms this. Therefore it is clear that the available edition of this *Agam* is as mentioned in *Nandi Sutra*. It has 900 verses.

In the eight sections there are ten, eight, thirteen, ten, ten, sixteen, thirteen and ten chapters, in this order. Out of these, 51 chapters of the first five sections detail the life stories and spiritual practices of the ascetics of Bhagavan Arishtanemi's order, who got liberated during the birth under reference. In the remaining three sections are the similar details about 39 ascetics of Bhagavan Mahavir's order.

Language

Like other *Agams*, the language of this *Agam* is also Ardha-Magadhi Prakrit. The compilers of *Agams* have said that Tirthankars, *Ganadhars* and gods love Ardha-Magadhi

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

language. Tirthankars use this language for their sermons. As it is the language of the masses its use is popular and beneficial for the masses. All listeners can easily understand this language and work for their well being.

Style

Although the composition of this *Agam* is narrative, it is predominantly in question-answer style or dialogue style. Jambu Swami asks Sudharma Swami (in the chapter of *Antakriddasha Sutra* under reference) what has been told by Bhagavan Mahavir. In reply Sudharma Swami details the subject-matter of the chapter. This contains the description of characters, city and other details besides the story of the spiritual practices up to the point of liberation.

Sudharma Swami starts his narrative with the statement, "During that period and at that time..." Besides this work, the same style has also been used in *Jnatadharmakatha*, *Upasakdasha*, *Vipak Sutra* and *Anuttaraupapatik Sutra*.

In Ardha-Magadhi language, two word forms are available—(1) Ending with consonant, and (2) Ending with vowel. For example—*Parivasati* and *Parivasai*, *Vannato* and *Vannao*, *Agato* and *Agao* etc. In this *Agam* mostly the vowel-ending form has been used. These words are easy to recite and sweet to listen.

In the writing of *Agams*, two styles of contents are found—(1) Use of numeral reference with brief mentions of details, e.g. *'namamsai 2tta'* or *'java'* (etc. or as mentioned earlier). This was done to avoid repetitions. (2) Avoiding such numeral reference and giving complete text, e.g. *namamsai*, *namamsitta*.

The first style is difficult to understand and the second is boring due to repetitions.

It is better if the writing style is interesting, because it keeps the listener or reader spell-bound. He absorbs the message easily and gets impressed and inspired.

It is necessary to include stories and descriptions of surroundings including place and period.

From this angle the style of this *Agam* is well structured and systematic. It gives complete and compact description of the life, grandeur, matrimony, achievements, charities, gifts of and related to the characters of the stories, after introducing them. It goes further and details the cities, gardens, chaityas (religious centers), sermons, renunciation, detachment from mundane activities, conduct of discipline, austerities, ultimate vows, etc.

This style of narration triggers religious feelings of listeners and readers.

Besides this, many other important facts are also revealed. They include that the doors of Bhagavan Mahavir's religious order were open to all. In his religious order kings, queens, and princes as well as traders like Markai and aborigines like Arjunamali, all were

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

welcome. All the seekers got liberated through spiritual practices. About alms seeking it is clearly evident that the ascetics did not approach people of high status or caste only. In fact they sought alms from low, medium and high classes of people alike. It informs that the equanimous ascetics did not show any discrimination on the basis of status or caste.

Some important facts about Ascetics

In Antakrit-dasha Sutra 90 *Antakrit Kevalis* have been described. Some interesting statistics about them from various angles is given here under :

Of the 90, 75 were youths, 1 child and 14 elderly.

Of the 90, 57 were male and 33 female.

Of the 57 males, 55 were married and 2 were initiated as bachelors.

Of the 33 females, 21 became ascetics after getting permission from their husbands, the husbands of 2 were initiated before them and 10 were widows.

Of the 90, 35 male and 11 female ascetics belonged to Dvarka; 6 Shramans from Bhaddilpur; 6 male and 22 female ascetics from Rajgruha, 2 Shramans from Kakandi, 2 Shramans fromVanijyagram, 2 Shramans from Shravasti; 1 Shraman from Polaspur, 1 Shramans from Varanasi; and 1 Shraman and 1 Sramani from Saket.

Of the 90, 35 male and 10 female ascetics were from the Yadav clan; 6 male ascetic including Nag Gathapati (Sulasaputra) were from Merchant community; 23 female ascetics were from the Kshatriya caste (wives of king Shrenik); 1 male ascetic was from Rajkul; 1 was a prince; 13 male ascetics were from Grihapati clan; and 1 was from Mali clan (Arjun Malakar).

Of the 90, 41 Shramans were disciples of Bhagavan Arishtanemi, 10 Shramanis of Arya Yakshini, 16 Shramans of Bhagavan Mahavir and 23 Shramanis of Arya Chandanbala.

Of the 90, 33 Shramans and 33 Shramanis studied eleven *Angas;* 12 Shramans studied fourteen *Purvas;* 10 Shramans studied twelve *Angas* and 2 Shramans were only the observers of the codes of *Samiti* and *Gupti.*

Of the 90, 55 Shramans got liberated after an ultimate vow of one month, Arjun Malakar and 33 Shramanis after an ultimate vow of thirty days and ascetic Gajasukumal without an ultimate vow.

The period for which these 90 remained in ascetic life before getting liberated was as under—

Gajasukumal—one day and night; Arjun Malakar—six months; 2 Shramans—five years; 13 Shramanis—twelve years; 16 Shramans—twenty five years; 1 Shraman—twenty seven years; 10 Shramanis—eight to seventeen years; and 4 Shramans—many years.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Of the 90, 40 Shramans got liberated from Shatrunjaya hills, 15 Shramans from Vipulgiri. 33 Shramanis from *Upashrayas* and Gajasukumal from Mahakal cremation ground. No clear indication in this regard is available about Arjun Malakar.

Of the 90, 32 Shramans observed twelve *Bhikshu Pratima*, 23 Shramans observed *Gunaratna Samvatsar Tap* and the *Shramanis* observed various *Prakirnak* austerities including *Ratnavali, Kanakavali* etc.

This way the 90 ascetics detailed in this *Sutra* observed various types of austerities and consequently attained liberation.

DETAILS OF FIVE TYPES OF CONDUCT

Bhagavan Mahavir has mentioned about five types of codes of conduct, code of knowledge, perception, conduct, austerities and vitality. He has also said that knowledge, perception, conduct, vitality and austerities combined together lead to liberation. In this *Sutra* the applied form of these five is detailed.

In the endeavour towards liberation, *Darshan* (*Samyagdarshan* or right faith) plays the key role. To have unwavering faith in god, guru and *dharma* is called *Samyagdarshan*. This is clearly revealed in the story of merchant Sudarshan in this *Sutra*. His strong faith in Bhagavan Mahavir made his soul resplendent with the aura of *dharma*. Yaksha Mudgarpani could not tolerate its intensity and eloped from the body of Arjun Malakar.

All the ascetics work towards perfecting knowledge and faith. They also follow the codes of conduct. But, as is said in *Uttaradhyayan Sutra*, soul attains progressive purity with the help of austerities, therefore for purity of soul austerities act as an effective detergent.

In this *Sutra* various austerities have been described in eloquent and touching style. Listening to or reading the details about the austerities observed by Shramans and Shramanis enthrills the listener and reader. A feeling of respect for those seekers spontaneously arises and sentiments are stirred into waves of inspiration the inspiration that I may also reach those heights of austerities.

The inspirations this *Agam* contains

May I have feelings of—

(1) unwavering and profound faith and belief in god, guru and religion, like that of merchant Sudarshan.

(2) tolerance of pain and afflictions, feeling of clemency and equanimity like those of Gajasukumal.

(3) endurance and clemency like those of Arjuna Malakar.

(4) servitude, promotion of religion and belief in the word of Arihant like those of *Vaasudev* Shrikrishna.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(5) sacrifice like that of eight queens of *Vaasudev* Shrikrishna and indulgence in austerities like that of queens of king Shrenik.

This *Sutra* also provides numerous inspirational descriptions about knowledge, faith, conduct, observing religious codes and profound belief.

Conclusion

Although this *Sutra* is brief and small in size, it is deeply effective like couplets of *Satsai*. It stirs the religious feelings and provides intense inspiration to abandon mundane indulgences and accept the spiritual path. Being the sermon of the omniscient, every word of this work is pregnant with profound meaning.

That is the reason that this *Sutra* is recited during the eight days of the *Paryushan Parva* and worthy people are inspired towards indulging in austerities for purification of soul.

It can be conclusively stated that this *Sutra* evokes strong inspiration to endeavour for purity of soul and liberation through austerities.

●●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तक्रिया : अर्थ और उदाहरण

अन्तकृद्दशासूत्र शब्द के साथ एक अर्थ और भी जुड़ा है–अन्तक्रिया।

जैन सूत्रों में अन्तक्रिया शब्द बहुत प्रसिद्ध है। अन्तकृद्दशासूत्र, स्थानांगसूत्र, भगवतीसूत्र तथा प्रज्ञापनासूत्र में इसकी विस्तारपूर्वक चर्चा हुई है।

कुछ शब्द ऐसे हैं, जिनका अर्थ या भाव शब्द का अनुसरण करता है किन्तु कुछ शब्द ऐसे हैं, जिनका अर्थ जैसा दीखता है, वैसा नहीं होकर कुछ विशिष्ट भाव द्योतित करता है। अन्तक्रिया शब्द ऐसा ही शब्द है जिसका अर्थ शब्दानुलक्ष्यी कम, विशिष्ट क्रियालक्ष्यी अधिक है। सामान्यतः अन्तक्रिया शब्द का अर्थ है, अन्तिम क्रिया। प्राणी जब देह त्याग कर देता है, तब उसका शरीर निर्जीव हो जाता है, जिसे 'शव' कहते हैं। उस निर्जीव शरीर को जलाना या जल-प्रवाह में विसर्जित करना आदि जो अन्तिम संस्कार होता है, उसे 'अन्तक्रिया' कहा जाता है–यह लोक प्रचलित अर्थ है, किन्तु जैनदर्शन इस शब्द का अति सूक्ष्म और अत्यन्त भावयुक्त अर्थ करता है। इसलिए वहाँ अन्तक्रिया शब्द प्रायः निश्चयनय की दृष्टि से व्याख्यायित हुआ है, जिसे 'एवंभूतनय' भी कह सकते हैं, अर्थात् इस शब्द का वास्तविक और यथार्थ में परिणत अर्थ ही वहाँ 'अन्तक्रिया' शब्द से जाना गया है।

प्रज्ञापनासूत्र के वीसवें अन्तक्रिया पद में अन्तक्रिया के स्वरूप और चौबीस दण्डकों में कब, कौन जीव अन्तक्रिया करता है, इसका विस्तृत वर्णन है। टीकाकार आचार्य मलयगिरि ने वहाँ अन्तक्रिया के दोनों ही अर्थ किये हैं–पहला अर्थ है–**शरीरान्त**–एक भव के शरीरादि से छूटना–मरना तथा दूसरा अर्थ है–**भवान्त**–जन्म-मरण की परम्परा से मुक्त हो जाना–मोक्ष। जैसा कि टीका में कहा है–"**अन्तक्रियामिति अन्तः अवसानं। तच्च प्रस्तावादिह कर्मणामवसातव्यम्॥**" (वृत्ति पत्र ३९७) अन्तक्रिया–अर्थात् अवसान (समाप्ति/मरण) तथा प्रसंगानुसार सर्व कर्मों का नाश ! इस प्रकार प्रज्ञापनासूत्रगत वर्णन में अन्तक्रिया, मरण एवं मोक्ष दोनों ही अर्थों में घटित हुआ है। और दोनों दृष्टियों से वहाँ अन्तक्रिया का विचार किया गया है। किन्तु स्थानांगसूत्र में सिर्फ 'मोक्ष-प्राप्ति' अर्थ में ही चार अन्तक्रियाओं का वर्णन है।

शब्द का अर्थ

अन्तकृद्दशा एवं स्थानांगसूत्र के अनुसार अन्तक्रिया का अर्थ है–अन्तिम क्रिया। अर्थात् जिसके पश्चात् अन्य कोई क्रिया शेष नहीं रह जाती हो, वह है अन्तक्रिया। शरीर का चिता-संस्कार लौकिक दृष्टि से भले ही अन्तिम क्रिया हो, किन्तु दार्शनिक दृष्टि से वह अन्तिम क्रिया नहीं है, क्योंकि जिसे हम 'मृत्यु' कहते हैं, वह तो मात्र औदारिक या वैक्रिय शरीर को छोड़ना है।[1] मनुष्य और तिर्यंच के औदारिक शरीर हैं,

१. गीता के अनुसार भी यह मृत्यु पुराना वस्त्र छोड़कर नया वस्त्र धारण करने की तरह, पुराना देह त्यागकर नया देह धारण करना है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु इसके साथ ही सूक्ष्म रूप में दो शरीर निश्चित रूप में और भी हैं, वे हैं तैजस् और कार्मण। प्रत्येक संसारी प्राणी के साथ ये दो शरीर अनिवार्य रूप में रहते ही हैं। भोजन आदि का पाचन, शरीर की उष्णता आदि कार्य तैजस् शरीर का है तो जीव की लोकान्तर यात्रा, एक शरीर के बाद दूसरे शरीर की प्राप्ति वहाँ पर सुख-दुःख आदि का उपयोग यह सभी कार्मण शरीर के संयोग से होता है। मृत्युकाल में मनुष्य का स्थूल-औदारिक शरीर छूटता है, सूक्ष्म शरीर तैजस् और कार्मण शरीर उसके साथ ही रहते हैं। इस प्रकार मृत्यु का अर्थ सिर्फ औदारिक या वैक्रिय (स्थूल) शरीर का छूटना है। सूक्ष्म कार्मण शरीर के कारण पुनः स्थूल शरीर–औदारिक या वैक्रिय शरीर की प्राप्ति होती है–इस प्रकार यह चक्र चलता ही रहता है।

जब तक तैजस्-कार्मण शरीर नहीं छूटते, तब तक जन्म-मरण का अन्त नहीं होता, तो वास्तव में अन्तक्रिया भी नहीं होती, यह निश्चयनय की मान्यता है। सूक्ष्म शरीर का छूटना ही अन्तिम क्रिया या अन्तक्रिया होती है। इसलिए टीकाकार आचार्य अभयदेवसूरि ने कहा है–"**कर्मान्तस्य क्रिया-अन्त्य-क्रिया, कृत्स्न कर्मक्षयलक्षणाः।**" (भग. २/२ टीका) कर्म का अन्त करने वाली क्रिया अन्तक्रिया है, अर्थात् संपूर्ण कर्म क्षय रूप मोक्ष की प्राप्ति ही वास्तव में अन्तक्रिया है। इस प्रकार 'अन्तक्रिया' शब्द का प्रयोग उसके वास्तविक स्वरूप को प्रगट करने वाला है। अर्थात् यहाँ शब्द और अर्थ दोनों एक-दूसरे के बहुत निकट हैं।

अन्तक्रिया के चार प्रकार

प्रज्ञापना में पूछा गया है–

"**जीवेणं भन्ते ! अन्तकिरियं करेज्जा ?**

गोयमा ! अत्थे गइए करेज्जा ! अत्थे गइए णो करेज्जा !" –२०वाँ पद

भन्ते ! जीव अन्तक्रिया करता है ?

गौतम, कोई जीव अन्तक्रिया करता है, कोई जीव नहीं करता।

जो जीव अन्तक्रिया अर्थात् उसी भव से मोक्ष-प्राप्ति नहीं कर सकते, वे हैं–नारकी, असुरकुमार आदि चारों जाति के देव, पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रिय से लेकर विकलेन्द्रिय चतुरिन्द्रिय तक के जीव, तिर्यंच पंचेन्द्रिय तथा असंज्ञी मनुष्य आदि अन्तक्रिया नहीं करते, संज्ञी मनुष्यों में भी सिर्फ कर्मभूमिज मनुष्य तथा महाविदेह में जन्म लेने वाले मनुष्य ही अन्तक्रिया करते हैं।

इसका अभिप्राय है, चौबीस दण्डकों में मनुष्य और वह भी बहुत सीमित क्षेत्रवर्ती ही उस भव में कर्मों का क्षय कर मोक्ष प्राप्त कर सकता है। बाकी जीव उस भव से निकलकर मानव भव में आयेंगे और सभी प्रकार की अनुकूल सामग्री प्राप्त करेंगे तभी मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। मनुष्य-जन्म की यह सबसे बड़ी सार्थकता है।

उत्तराध्ययनसूत्र में इसीलिए तो कहा है–

चौरासी लाख जीवयोनियों में भटकता हुआ जीव अनन्त-अनन्त पुण्य का उदय होने पर, विशेष विशुद्धि–उज्ज्वलता होने पर ही मनुष्य गति में आता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"जीवा सोहि मणुप्पत्ता आययन्ति मणुस्सयं।"

मनुष्यगति प्राप्त होने पर भी सब अनुकूल-संयोग मिलने पर ही जीव अन्तक्रिया करने में समर्थ होता है।

● चार प्रकार की अन्तक्रिया

स्थानांगसूत्र के चौथे स्थान के प्रथम सूत्र में चार प्रकार की अन्तक्रियाओं का वर्णन है–

चत्तारि अन्तकिरियाओ पण्णत्ताओ।

तं जहा–तत्थ खलु इमा पढमा अन्तकिरिया

अप्प कम्म पच्चायाते यावि भवति।

से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, संजम बहुले, संवर बहुले, समाहि बहुले, लूहे,

तीरट्ठी, उवहाणवं दुक्खखवे तवस्सी।

तस्स णं णो तहप्पगारे तवे भवति, णो तहप्पगारा वेयणा भवति।

तहप्पगारे पुरिस जाते दीहेणे परियाएणं

सिज्झति, बुज्झति, मुच्चति, परिणिव्वाति, सव्व दुक्खाणमंतंकरेइ,

जहा–से भरहे राया चाउरंत चक्कवट्टी।

पढमा अन्तकिरिया।

चार प्रकार की अन्तक्रिया बताई हैं (होती हैं)।

प्रथम अन्तक्रिया

कोई पुरुष अल्पकर्मों के साथ (पूर्वजन्म में तप आदि द्वारा विशेष रूप में कर्मों का क्षय करने के कारण अल्प कर्म शेष रह गये हों, वैसा लघुकर्मी-हलुकर्मी जीव अल्पकर्मा कहा जाता है)। मनुष्य-जन्म को प्राप्त होता है। वह विरक्त होने पर, मुण्ड होकर (केश एवं कषायों को लुंचित करके) घर छोड़कर अनगार रूप में प्रव्रजित होता है।

वह संयम-बहुल, संवर-बहुल[1] (संयम एंव संवर की साधना में विशेष रूप में उद्यत) तथा समाधि-बहुल

---

१. संयम एवं संवर शब्द प्रायः समानार्थक होते हुए भी इनके स्वरूप में अंतर है। १७ प्रकार का संयम जहाँ बताया है, वहाँ संयम का स्वरूप है–पाँच इन्द्रिय, मन आदि को वश में करना तथा पृथ्वीकाय आदि षट्काय जीवों की रक्षा करना।

संवर का स्वरूप है–अठारह प्रकार के पापस्थानों के सेवन से आत्मा को रोकना, इन्द्रिय एवं कषायनिग्रह तथा पाँच आस्रव द्वारों का निरोध करना

–सचित्र अर्धमागधी कोष, भाग ४, पृष्ट ५६४, ५३४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है।[1] वह रूक्ष-स्नेह रागरहित होकर, तीर का अर्थी–संसार-समुद्र को पार करने का इच्छुक, उपधानवान् (श्रुताराधनापूर्वक तप करने वाला), दुःख को खपाने वाला तथा तपस्वी होता है।

• उसका न तो तथा प्रकार का घोर तप होता है, न तथा प्रकार की घोर वेदना होती है।

इस प्रकार का पुरुष–दीर्घकालीन मुनि-पर्याय के द्वारा दीर्घ संयम तक मुनि धर्म का पालन करता हुआ, सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त और परिनिवृत्त होता है। वह सब दुःखों का अन्त करता है।

इसका उदाहरण है–चक्रवर्ती भरत !

यह पहली अन्तक्रिया है–अल्पकर्म, अल्पवेदना तथा दीर्घकालीन मुनि-पर्याय वाले पुरुष की अन्तक्रिया।

चार प्रकार की अन्तक्रिया के उदाहरण

भरत चक्रवर्ती

ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र भरत षट्खंड के अधिपति चक्रवर्ती सम्राट् थे। उनकी ऋद्धि वैभव का कोई पार नहीं था। मनुष्य ही क्या, देवता भी उनकी आज्ञा का पालन करते थे। फिर भी राज्य-संपदा के प्रति, सांसारिक सुखों के प्रति उनके मन में अनासक्ति और उदासीनता थी। जिस प्रकार एक धाय माता दूसरों के बालकों का पालन-पोषण करती है, किन्तु मन में वह उन्हें अपना पुत्र नहीं मानती, न स्वयं को उनकी 'माँ' मानने की भूल करती है, उसी प्रकार चक्रवर्ती भरत षट्खण्ड राज्य का पालन-पोषण करते हुए भी स्वयं को उसका स्वामी नहीं मानते थे, वे मात्र राज्य के 'रक्षक' बनकर प्रजा का पुत्रवत् पालन करना अपना कर्त्तव्य समझते थे। इतनी निस्पृहता थी, भरत चक्रवर्ती के मन में।

कहते हैं, एक बार भगवान ऋषभदेव ने प्रवचन में कहा–"इस अवसर्पिणी काल में माता मरुदेवी प्रथम सिद्ध हुई, मैं प्रथम तीर्थंकर हूँ और भरत भी चरम-शरीरी है। इसी भव में मोक्ष जायेगा, वह अल्पकर्मी है।"

भगवान के इस कथन पर एक व्यक्ति को शंका हुई कि इतने बड़े विशाल साम्राज्य का स्वामी तो अल्पकर्मा है और मैं अत्यन्त गरीबी में गुजारा करने वाला महाकर्मा ? भगवान भी कैसे पक्षपाती हैं ?

चक्रवर्ती भरत को उस व्यक्ति की शंका का पता चला, उन्होंने उसे बुलाया और कहा–"यह तेल से लबालब भरा एक कटोरा हथेली पर रखकर समूची अयोध्या नगरी की परिक्रमा करके आओ, ध्यान रखना यदि एक बूँद भी तेल गिर गया तो इसका दण्ड–मृत्युदण्ड होगा।"

वह गरीब व्यक्ति तेल का भरा कटोरा लेकर चला। उसके पीछे पहरेदार चल रहे थे, नगर में कहीं नृत्य-गायन, कहीं हास्य-विनोद हो रहे थे, कहीं बाजारों में दुकानें सजी थीं, परन्तु उस चहल-पहल व रंगारंग में उसकी दृष्टि सिर्फ तेल के कटोरे पर ही टिकी रही, वह उसी तेल के कटोरे पर एकाग्र मन हुआ नगर में घूमता हुआ आया।

भरत चक्रवर्ती ने पूछा–"भ्रात ! तुमने शहर में क्या देखा ?"

---

१. समाधिस्तु प्रशमवाहिता–(टीका) चित्त की प्रशमधारा–शान्त और प्रसन्न मनःस्थिति समाधि है। सम-अधि अर्थात् मानसिक चिन्ताएँ जहाँ 'सम' हो गई हैं, विषमता समाप्त होकर समता का अनुभव करना समाधि है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"राजन् ! मैं क्या देख पाता? मुझे तो सिर्फ यह तेल का कटोरा ही दीख रहा था, बाकी कुछ भी मैंने नहीं देखा, क्योंकि इससे दृष्टि हटते ही तो तेल की बूँद गिरने का भय और तब मृत्यु मेरे सामने खड़ी थी। इसलिए मैं उसी पर एकाग्र बना चलता रहा।"

चक्रवर्ती भरत ने कहा–"बन्धु ! मैं भी इस राज्य में इसी भाँति जी रहा हूँ, सिर्फ अपनी आत्मा पर दृष्टि केन्द्रित करके जीवन-यात्रा पर चल रहा हूँ, यदि इस आत्मा से दृष्टि हट गई तो इधर-उधर संसार के राग-रंग में उलझ गया तो जन्म-मृत्यु का यह चक्र सिर पर घूमता नजर आयेगा। इसलिए मैं इतने बड़े विशाल साम्राज्य में अपने को लिप्त नहीं करता। इसलिए भगवान ने मुझे अल्पकर्मा बताया है। और अब, तुम अपने हृदय को टटोलो !"

चक्रवर्ती भरत की अनासक्ति एवं अल्पकर्मा होने की बात उसकी समझ में आ गई।

एक बार भरत चक्रवर्ती स्नान आदि करके अपने मण्डन-गृह में आये। शरीर पर आभूषण आदि धारण कर एक आदमकद शीशे में अपना सुसज्जित रूप देखकर प्रसन्न हो रहे थे। तभी दाहिने हाथ की अँगूठी की तरफ ध्यान गया। अँगूठी कहीं भूमि पर गिर पड़ी थी, खाली-खाली अँगुली शोभाहीन-सी दीखने लगी। चक्रवर्ती भरत सोचने लगे–'अरे ! इस सुन्दर सुसज्जित शरीर पर यह अँगुली कैसे शोभाहीन-सी दीख रही है? एक अँगूठी न होने से अँगुली की शोभा फीकी क्यों पड़ गई? क्या इस शरीर की सुन्दरता–शोभा, सब बाहरी आभूषणों से ही है? शरीर की अपनी कोई शोभा नहीं? सब कुछ कृत्रिम, पराया ओढ़ा हुआ सौन्दर्य है।' भरत महाराज की विचारधारा अन्तर्मुखी हो गई। एक-एक आभूषण उतारकर दर्पण में अपना रूप देखने लगे। दर्पण झूठ नहीं बोलता, जैसा रूप था, वही दर्पण में दीखा, सम्राट् भरत ने सोचा–'ओह ! मेरा यह सौन्दर्य तो बाह्य वस्तुओं से है।' बाहरी आभूषण हटते ही शरीर शोभाहीन दीखने लगा। इस प्रकार भरत चक्रवर्ती का ध्यान अन्तर्मुखी हो गया। शरीर की असारता, अनित्यता का चिन्तन करते-करते ही उन्हें बोधि प्राप्त हुई। भाव-चारित्र की परिणति हो गई और शीशमहल में ही केवली बन गये। फिर मुनि वेश धारणकर दीर्घकाल तक विचरण करके सुखे-सुखे मोक्ष प्राप्त किया।

आवश्यक मलयगिरि वृत्ति आदि प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित भरत चक्रवर्ती की यह कथा सूचित करती है कि भरत अत्यन्त अल्पकर्मी, अनासक्त वृत्ति के थे। उन्हें मोक्ष प्राप्त करने के लिए न तो कठोर या दीर्घकालीन तप करना पड़ा, न ही कठिन उपसर्ग या वेदना सहनी पड़ी। सुखपूर्वक दीर्घ संयम-यात्रा करते हुए मोक्षगामी हुए।

यह पहली अन्तक्रिया का उदाहरण है–**अल्प वेदना अल्प तपश्चरण किन्तु दीर्घकालीन संयम पर्याय** !

तीव्र वेदना : अल्पकालीन संयम-पर्याय

द्वितीय अन्तक्रिया

पहली अन्तक्रिया से ठीक विपरीत दूसरी अन्तक्रिया है। जिसमें "**महाकम्म पच्चायाते भवति।**"–अर्थात् वह बहुत कर्मों के साथ मनुष्य-जन्म धारण करता है, किन्तु अल्पसमय की संयम-साधना में ही घोर तप और घोर वेदना सहन करके सभी कर्मों का क्षय कर देता है। इसमें कर्मों की सघनता/प्रबलता तो होती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, किन्तु उस पर कठोर तपश्चरण, उग्र परीषह-सहन एवं निर्मल ध्यान की ऐसी तीव्र चोट भी पड़ती है कि बहुत अल्प समय में ही कर्मों के सघन बंधन क्षीण हो जाते हैं। उदाहरण के रूप में बताया है–"**जहा से गयसुकुमाले अणगारे।**"

जिस प्रकार उन गजसुकुमाल अणगार ने एक अहोरात्रि (अष्ट-प्रहर) की संयम-साधना में ही पुराने बँधे हुए प्रचुर कर्मों को भोगकर क्षय किया और मोक्ष प्राप्त हुए।

गजसुकुमाल

गजसुकुमाल का वर्णन अन्तकृद्दशासूत्र में आता है। वसुदेव राजा की रानी देवकी वासुदेव श्रीकृष्ण की माता थी। कृष्ण आदि पुत्रों का जन्म कंस की कारागार में होने से देवकी ने एक भी शिशु को अपनी गोद में नहीं खिलाया। सब सुख प्राप्त होते हुए भी देवकी पुत्र को गोद में खिलाने की ममता-वत्सलता के कारण सदा उदास रहती थी। माता की इच्छा पूर्ण करने के लिए मातृभक्त वासुदेव श्रीकृष्ण ने हरिणगमैषी देव की सहायता से अपना एक छोटा भाई माँगा। देवकी को पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। शिशु अत्यन्त कोमल होने के कारण उसका नाम रखा–गजसुकुमाल। बड़े ही प्यार-दुलार से उसका लालन-पालन हुआ।

द्वारिका में एक धनाढ्य ब्राह्मण परिवार रहता था, जिसका मुखिया था–सोमिल ! उसकी पत्नी सोमश्री थी तथा एक अत्यन्त रूपवती सुकुमार कन्या थी–सोमा।

एक बार भगवान अरिष्टनेमि द्वारिका नगरी में पधारे। वासुदेव श्रीकृष्ण प्रभु के दर्शन करने गये। मार्ग में अनेक कन्याओं के झुंड में सोमा को खेलते हुए देखा, वासुदेव को यह कन्या अपने प्रिय लघु बन्धु गजसुकुमाल के लिए बहुत ही उपयुक्त जोड़ी लगी। कन्या के पिता सोमिल विप्र को बुलाकर वासुदेव ने अपने छोटे भाई के लिए उसकी मँगनी कर ली। सोमिल तो धन्य-धन्य हो उठा। 'सोमा' वासुदेव के कन्याओं के अन्तःपुर में पहुँच गई। वहाँ राजकन्याओं के साथ उसका लालन-पालन होने लगा।

वासुदेव श्रीकृष्ण भगवान अरिष्टनेमि की धर्मसभा में पहुँचे, साथ में गजसुकुमाल भी थे। भगवान का धर्म-प्रवचन सुनते ही गजसुकुमाल प्रतिबुद्ध हो गए। माता-पिता से बहुत आग्रह करके दीक्षा लेने की स्वीकृति माँगी। देवकी ने कहा–"पुत्र ! तेरे बिना तो मैं एक दिन भी जी नहीं सकूँगी।" वासुदेव श्रीकृष्ण ने भी उसे अत्यन्त लाड़-प्यार से समझाया–"प्रव्रज्या की बात छोड़ दे, मैं तुझे द्वारिका का राजा बनाऊँगा, संसार के सब सुख तुझे प्राप्त होंगे।" परन्तु विरक्त हृदय गजसुकुमाल ने किसी की बात नहीं सुनी, अपने निश्चय पर दृढ़ रहे और कोमल कच्ची वय में ही भगवान अरिष्टनेमि के पास दीक्षा लेने को आतुर हो गये। उनके अत्याग्रह पर माता-पिता तथा वासुदेव श्रीकृष्ण को झुकना पड़ा। गजसुकुमाल का दीक्षा-समारोह (अभिनिष्क्रमण-महोत्सव) मनाया गया।

गजसुकुमाल भगवान अरिष्टनेमि के पास दीक्षित हो गये। जिस दिन दीक्षित हुए उसी दिन तीसरे प्रहर में भगवान से बारहवीं भिक्षु-प्रतिमा आराधना की आज्ञा लेकर महाकाल श्मशान में पहुँचे और प्रतिमा धारण कर कायोत्सर्ग में लीन खड़े हो गये।

संध्या के समय सोमिल समिधा आदि यज्ञ सामग्री लेकर श्मशान के पास होकर लौट रहा था। उसने गजसुकुमाल मुनि को मुण्डित सिर कायोत्सर्ग में लीन खड़ा देखा तो उसे क्रोध आ गया–"इसे यदि श्रमण ही बनना था तो मेरी निर्दोष पुत्री सोमा का जीवन क्यों बरबाद किया ?"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रोध में बेभान होकर उसने समीप के तालाब से गीली मिट्टी लेकर मुनि के सिर पर पाल बाँधी, एक चिता से अंगारे लेकर मुनि के सिर पर रख दिये और चला आया।

अंगारों के दाह से मुनि का नवमुण्डित सिर आग पर रखी हांडी के समान तपने लगा, उनका रक्त उबलने लगा। अत्यधिक वेदना और पीड़ा थी। लेकिन इस असह्य वेदना में भी मुनि गजसुकुमाल अपने समत्व में स्थिर रहे। अपकारी के प्रति भी दुर्भाव न किया, उसे भी क्षमा कर दिया।

क्षमावतार मुनि गजसुकुमाल आत्म-ध्यान में लीन रहे। उनके कर्मों के सभी बन्धन टूट गये। वे मुक्त हो गये।

इस प्रकार गजसुकुमाल ने मात्र आठ प्रहर की संयम-पर्याय में ही भवान्त कर दिया, अन्तक्रिया में सफल हुए।

यह दूसरी अन्तक्रिया का उदाहरण है।

महावेदना : दीर्घकालीन संयम-पर्याय

तृतीय अन्तक्रिया

तीसरी प्रकार की अन्तक्रिया में "**महाकम्मपच्चायाते यावि भवति ..... दीहेणं परियाएणं सिज्झति।**" अर्थात् वह अत्यधिक सघन कर्मों के साथ जन्म लेता है और दीर्घ समय की संयम-साधना में घोर वेदना भोगता है तथा सभी कर्मों का नाश कर देता है।

इसमें कर्मों की सघनता भी होती है और दीक्षा-पर्याय भी लम्बी होती है। दीर्घकाल तक वेदना का अनुभव तथा कष्ट, परीषह आदि समभाव से सहते हुए वह कर्मों के प्रबल बंधन को क्षीण कर पाता है। इसका उदाहरण है–"**जहा–से सणंकुमारे राया चाउरन्त चक्कवट्टी।**"–यथा चक्रवर्ती सनत्कुमार ने दीर्घकाल तक संयम-पर्याय का पालन किया, विविध प्रकार के कष्ट भोगे और सभी कर्मों का अन्त कर मुक्त हुए।

सनत्कुमार चक्रवर्ती

चक्रवर्ती सनत्कुमार का उल्लेख उत्तराध्ययनसूत्र के १८वें अध्ययन तथा त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र में प्राप्त होता है। आप इस अवसर्पिणी काल के चतुर्थ चक्रवर्ती सम्राट् हैं।

हस्तिनापुर नगर में महाराज अश्वसेन राज्य करते थे। उनकी महारानी का नाम सहदेवी था। महारानी ने एक रात चौदह महास्वप्न देखे और गर्भकाल पूरा होने पर एक सर्वांग सुन्दर, अतिशय शरीर-सौन्दर्य-संपन्न शिशु को जन्म दिया। उसका नाम सनत्कुमार रखा गया। काल-क्रमानुसार सनत्कुमार युवा होते-होते सभी पुरुषोचित कलाओं में निष्णात हो गया।

पिता के स्वर्गवास के उपरान्त सनत्कुमार हस्तिनापुर के राज-सिंहासन पर आसीन हुए। पुण्य-बल और भुज-बल के प्रताप से सभी राजाओं को विजित कर चक्रवर्ती की उपाधि धारण की।

सनत्कुमार चक्रवर्ती का शरीर-सौन्दर्य अनुपम था, रूप-संपदा असाधारण थी। एक बार प्रथम स्वर्ग के देवाधिपति सौधर्म इन्द्र ने उनके शरीर-सौष्ठव की प्रशंसा करते हुए अपनी देव-सभा में कहा–"भरत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षेत्र के चक्रवर्ती सनत्कुमार की रूप-संपदा अत्युत्तम है। उसका वर्णन जिह्वा से नहीं किया जा सकता। आँखों से देखकर ही अनुभव किया जा सकता है।''

एक मानव की यह प्रशंसा दो देवों को अतिशयोक्ति लगी। वे मानव-लोक में आये और ब्राह्मणों का रूप धारण कर चक्रवर्ती के महल में आये। उस समय चक्रवर्ती व्यायामशाला में व्यायाम कर रहे थे। ब्राह्मण वेशधारी देवों ने उन्हें देखकर कहा–''राजन् ! आपके रूप-सौन्दर्य की जैसी चर्चा सुनी थी, उससे भी अधिक सुन्दर है आपकी शारीरिक शोभा।''

चक्रवर्ती भी अपनी सुन्दरता की अनुपमता को जानते थे, उन्हें अपनी रूप-शोभा का अभिमान भी था। गर्व में भरकर बोले–''भूदेवो ! अभी तो मेरा तन धूलि धूसरित है। स्नान आदि तथा वस्त्राभूषणों से सज्जित होकर जब राजसभा में सिंहासन पर बैठूँ तब मेरे रूप को देखना। उस समय मेरा रूप पूरी तरह शोभित होगा।''

ब्राह्मण स्वीकृतिसूचक सिर हिलाकर चले आये।

चक्रवर्ती स्नान आदि से निवृत्त हुए, बहुमूल्य वस्त्राभूषण धारण किये और राजमुकुट से सुशोभित होकर सिंहासन पर आ विराजे। दोनों ब्राह्मण भी आ गये। चक्रवर्ती ने गर्वस्फीत स्वर में कहा–''ब्राह्मणो ! अब तुम मेरे रूप को देखो और बताओ मेरा शरीर-सौन्दर्य तुम्हें कैसा लगता है ?''

दोनों ब्राह्मणों ने निःश्वास फेंककर कहा–''राजन् ! क्या कहें ? कुछ कहा नहीं जाता। अपराध क्षमा करें। अब आपके शरीर-सौन्दर्य में वह बात नहीं रही। आपका शरीर सोलह रोगों का घर बन गया है। विश्वास न हो तो थूककर देख लें। आपके थूक में कीड़े कुलबुलाते हुए दृष्टिगोचर होंगे।''

चक्रवर्ती ने ऐसा ही किया। ब्राह्मणों का कथन सत्य था। उसका अपनी रूप-शोभा का घमंड चूर-चूर हो गया। शरीर को क्षण-विनश्वर जानकर वैराग्य धारण कर लिया, प्रव्रजित हो गये।

शरीर में रोगों ने प्रवेश तो कर ही लिया था रूखा-सूखा भोजन और कठोर तपश्चरण से रोग फूट पड़े। असह्य वेदना होने लगी। लेकिन मुनि सनत्कुमार समभाव से उस वेदना को सहते हुए, शरीर से निरपेक्ष रहकर तप-साधना से आत्म-विशुद्धि में लीन रहे।

देवराज ने अपनी देवसभा से पुनः मुनि की तितिक्षा की प्रशंसा करते हुए कहा–''मुनि सनत्कुमार की तितिक्षा धन्य है। यद्यपि तपःसाधना से उन्हें अनेक लब्धियाँ प्राप्त हो चुकी हैं। यदि वे चाहें तो अपने शरीर को निरोग कर सकते हैं। किन्तु शरीर से निरपेक्ष रहकर, असह्य वेदना भोगते हुए भी वे तप-साधना में तल्लीन हैं।''

वही दोनों देव पुनः परीक्षा के लिए आये। वैद्यों का रूप रखकर मुनिश्री के पास पहुँचे, औषधोपचार का बहुत आग्रह किया तब मुनि ने कहा–''वैद्यो ! शरीर-रोगों की मुझे कोई चिन्ता नहीं। मैं तो कर्म-रोग को मिटाने में लगा हुआ हूँ। शरीर के रोगों को तो मैं जब चाहूँ तभी मिटा सकता हूँ।''

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह कहकर मुनि सनत्कुमार ने अपनी एक अँगुली पर थूका। अँगुली निरोग होकर कुन्दन-सी चमकने लगी।

दोनों देव आश्चर्यचकित हो गये। अपने मूल रूप में प्रगट होकर मुनि की वन्दना की और [illegible] तितिक्षा तथा समाधिपूर्वक वेदना सहन करने की प्रशंसा करते हुए चले गये।

इस प्रकार मुनि सनत्कुमार सात सौ वर्षों तक तपस्या करते रहे तथा सभी कर्मों का क्षय किया।

सनत्कुमार ने दीर्घ समय तक घोर वेदना सहन करने के उपरान्त कर्मों का नाश किया।

यह तीसरी अन्तक्रिया का उदाहरण है।

चतुर्थ अन्तक्रिया

चौथे प्रकार की अन्तक्रिया वह होती है, जिसमें **"अप्पकम्म पच्चायाते यावि भवति ..... निरुद्धेणं परियाएणं सिज्झति।"**—अर्थात् वह (मानव) अत्यन्त अल्प कर्मों के साथ जन्म लेता है और अत्यल्प संयम-पर्याय (मन-वचन-काय-योगों के निरोध) से ही सिद्ध हो जाता है।

इस चौथी अन्तक्रिया में न किसी प्रकार की वेदना ही भोगनी पड़ती है और न दीर्घकाल तक संयम-पर्याय का ही पालन करना पड़ता है, यहाँ तक कि केवल-पर्याय भी अधिक समय तक नहीं रहती; कैवल्य-प्राप्ति के उपरान्त शीघ्र ही आयु समाप्त होने से जीव मुक्त हो जाता है। इसका उदाहरण है—**"जहा—सा मरुदेवा भगवति।"**—यथा मरुदेवी भगवती।

मरुदेवी ने किंचित् भी कष्ट नहीं भोगा, यहाँ तक कि व्यवहार दृष्टि से प्रव्रज्या भी धारण नहीं की, केवल भाव-दीक्षित रहीं और मुक्त हो गईं।

मरुदेवी माता

वर्तमान अवसर्पिणी काल के तीसरे आरे में जब यौगलिक सभ्यता का अन्तिम चरण चल रहा था, उस समय विनीता नगरी के प्रांगण में एक युगल उत्पन्न हुआ जिसमें पुरुष का नाम नाभिराय था और स्त्री का नाम था मरुदेवी।

उस समय यौगलिक परम्परा समाप्तप्रायः थी और कुलकर परम्परा चल रही थी। नाभिराय चौदहवें कुलकर थे।

मरुदेवी ने एक युगल को जन्म दिया। इनके नाम थे—(१) ऋषभदेव, और (२) सुमंगला।

ऋषभदेव वर्तमान अवसर्पिणी काल के प्रथम राजा, प्रथम केवली और प्रथम तीर्थंकर तथा जैनधर्म के प्रथम आदिकर्त्ता हुए हैं। मरुदेवी की ख्याति के प्रमुख आधार ऋषभदेव ही हैं। इसी कारण मरुदेवी प्रथम तीर्थंकर की जननी के रूप में प्रसिद्ध हैं।

ऋषभदेव ने असि, मसि, कृषि आदि का शिक्षण दिया, समाज-व्यवस्था, राज-व्यवस्था आदि का प्रवर्तन किया और फिर श्रमण-दीक्षा ग्रहण कर ली।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुत्र ऋषभदेव की चिन्ता में मरुदेवी व्याकुल रहने लगी। बार-बार भरत (चक्रवर्ती) से ऋषभदेव के समाचार मँगाने का आग्रह करती।

जब यह समाचार ज्ञात हुआ कि ऋषभदेव को केवलज्ञान प्राप्त हो गया और वे विनीता नगरी के बाह्य भाग में विराजमान हैं तो मरुदेवी के हर्ष का ठिकाना न रहा। उनसे मिलने के लिए हाथी पर सवार होकर चल पड़ी।

भगवान ऋषभदेव उस समय देव-निर्मित समवसरण में विराजमान थे। उनकी ऋद्धि देखकर मरुदेवी अभिभूत हो गई। उसके मन में विचार उठे--'मैं व्यर्थ ही चिन्ता करती थी। मेरा पुत्र तो बहुत बड़ी ऋद्धि का स्वामी बन गया है।'

समवसरण की शोभा और प्रभु के तीर्थंकरोचित ऐश्वर्य का चिन्तन करते-करते मरुदेवी भावों की गहराई में उतर गई। उसे अपना मोह निरर्थक लगने लगा, सांसारिक सम्बन्धों की निःसारता का भी भान हुआ। धर्मध्यान का चिन्तन चलते-चलते शुक्लध्यान की क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ हुई। घनघाती कर्मों की शृंखलाएँ टूट गईं और शेष कर्म भी निर्जीण हो गये। कैवल्य-प्राप्ति के कुछ क्षण बाद ही आयुष्य पूर्ण करके सिद्ध हो गईं।

भगवान ऋषभदेव ने कहा--"मरुदेवी सिद्ध हो गईं। इस अवसर्पिणी काल की ये प्रथम सिद्ध हैं।"

इस प्रकार मरुदेवी ने तनिक भी वेदना का वेदन नहीं किया, व्यावहारिक दृष्टि से संयम-साधना भी नहीं की और मुक्त हो गईं। वे अत्यल्प कर्मा थीं। यह चौथी अन्तक्रिया का उदाहरण है।

--जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, उसहचरियं
--त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र

●●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Chapter 2

Antakriya : Meaning and Examples

With the word *Antakriddasha Sutra* is attached one other meaning *antakriya* (the terminal act or act of termination).

This is a frequently used term in Jain scriptures. It has been discussed in detail in *Antakriddasha Sutra, Sthananga Sutra, Bhagavati Sutra* and *Prajnapana Sutra.*

There are some words where the meaning is in consonance with the etymology. There are some other words where the meaning is not as it appears to be; instead, it conveys some special nuance. *Antakriya* is one such word. Its meaning is less etymological and more inclined towards a special nuance. The normal etymological meaning of *antakriya* is *antim* (last) *kriya* (act). When a soul abandons its body, the body becomes lifeless and is called a corpse. The act of cremation or burial or casting it into water of that corpse is the last act and so it is called *antakriya.* Thus the popular meaning of this term is last-rites. But in Jain philosophy this word carries a subtle and pregnant meaning. There it has been defined with the help of *Nischaya Naya* or *Evambhoot Naya* (the viewpoint of ultimate reality).

In the twentieth chapter, titled *Antakriya,* of *Prajnapana Sutra,* there is a detailed description of the process of *antakriya* with reference to the 24 *Dandaks* (areas of punishment, which here indicates the classes of beings born in different areas or dimensions like earth, heavens, and hells). There, *acharya* Malayagiri, the commentator, (Tika), has given both the meanings of *antakriya.* The first meaning is : the end of the body acquired by the soul during a specific birth; or simply death. The second meaning is *bhavanta,* or end of *bhavas* (reincarnations or births), or termination of the cycles of rebirth; or simply liberation, as is mentioned in the commentary (Tika) "*Antakriya* means the end or death and in some other context destruction of all *karmas.*" Thus according to the mentions in *Prajnapana Sutra antakriya* has been used in its both meanings, death and liberation. And it has been discussed from both these viewpoints. But in *Sthananga Sutra* four *antakriyas* have been described only in context of the meaning liberation.

Meaning

According to *Antakriddasha* and *Sthananga Sutras* the meaning of *antakriya* is the last act, or the act after which all action seizes. From the mundane angle the last rites could be considered as the last act, but from the philosophical angle that is not the last act. This is because what we mundanely term as death is just abandoning the *Audarik* or *Vaikriya*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(physical) body (even according to the Gita like discarding old dress and wearing a new one death is nothing but discarding the old body for a new). Human beings and animals have physical bodies but besides these they certainly have two subtle bodies as well. They are *Taijas* (the radiant or the energy component of the constitution of a being) and the *Karman* (the *karmic* component of the constitution of a being). These two bodies are essential parts of a worldly being. The digestion of food, the body heat etc. are activities of the *Taijas* body. The rebirths, defining of new body, happiness and sorrow in the new life etc. are controlled by the *Karman* body. At the time of death it is only the gross *Audarik* body that is left here, the *Taijas* and *Karman* bodies accompany the soul. Thus death means abandoning the *Audarik* or gross physical body. Another *Audarik* body is acquired due to the subtle *Karman* body and this cycle of rebirth continues.

As long as the *Taijas* and *Karman* bodies are not left, there is no end to birth and death. Therefore, in fact death is not the last act according to the ultimate viewpoint. The leaving of the subtle bodies is in fact the last act or *antakriya*. That is why Acharya Abhayadev Suri has said the act of ending all *karmas* is the last act. Which means that liberation, as a consequence of ending of all karmas, is the last act. Thus the word *antakriya* has been used here to convey its true meaning. In other words the word and the meaning here have no ambiguity or contradiction.

Four Types of *Antakriya*

There is a question in *Prajnapana Sutra*—

Bhante, does a being do *antakriya*?

Gautam, some being does that and some do not.

The beings that are not capable of doing *antakriya*—or to get liberated in that particular incarnation—are the hell beings, four classes of gods including Asur Kumar, beings in the range of one sensed (earth bodied etc.) to four sensed (including deformed ones), five sensed animals and non-sentient human beings. Of the sentient beings too, only those born in *Karma Bhumi* (land of endeavour) and Mahavideh area do *antakriya*.

This means that of the 24 *Dandaks*, only human beings belonging to a very limited area can shed all *karmas* and get liberated in that particular incarnation. All the remaining beings will first incarnate as human beings and get liberated only when they get all favourable parameters. This is the most important advantage of being born as a human being.

That is why it is said in the *Uttaradhyayan Sutra*—

Wandering through incarnations as 8.4 million different types of beings, a being incarnates as a human being only when infinite meritorious *karmas* become effective and the soul attains a very high degree of purity.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Even after being born as a human being, he is able to do *antakriya* only when he gets all favourable conditions.

In the fourth chapter of *Sthanaṅga Sutra* four types of *antakriya* have been described.

There are four types of *antakriya*—

First *Antakriya*

If a soul is born as a human being with a very low density of *karmas* he is known as *Alpakarma*. This happens when, in his earlier births he sheds a larger part of the acquired *karmas* with the help of austerities and other such activities. Such *Alpakarma* individual soon gets detached and becomes an ascetic renouncing his social life, pulling out his hair and discarding passions.

He abounds in *samyam* (discipline of five sense organs and mind, and clemency for six types of beings) and *samvar* (avoid 18 types of sinful activities, get rid of passions and block the five sources of inflow of *karmas*) and *samadhi* (that depth of meditation where inner agitations are quashed and equanimity is attained). He is free of the adhesive of fondness, desirous of crossing the ocean of rebirth to reach the bank of liberation, annihilator of sorrows with the help of the study of canons and observer of austerities.

He neither indulges in very harsh austerities nor suffers acute afflictions.

Such person becomes *Siddha*, *Buddha* and liberated after leading a long and disciplined life as an ascetic. He ends all sorrows.

An example of this is Chakravarti Bharat. This is the first type of *antakriya*. The *antakriya* of a person having low *karma* density, minimum suffering, and long ascetic life.

EXAMPLES OF FOUR TYPES OF *ANTAKRIYA*

BHARAT *CHAKRAVARTI*

Bharat, the eldest son of Bhagavan Rishabhdev, was the *chakravarti* (emperor) of the area known as Bharat (six continents) in those days. His glory and grandeur had no limits Consisting of what to say of human beings even gods followed his word. In spite of all this he had an apathy and feeling of detachment for the regal wealth and mundane pleasures. A foster mother looks after children of others without considering them to be of her own and free of the illusion of thinking herself to be their real mother. In the same way *chakravarti* Bharat looked after his empire without considering himself to be the master. He considered it his duty as a guardian to provide a fatherly care to his people. So profound was the feeling of detachment in the mind of *chakravarti* Bharat.

It is believed that once in his discourse Bhagavan Rishabhdev said, "During this regressive cycle of time, mother Marudevi became the first *Siddha* (a liberated soul). I am the first Tirthankar and Bharat too is in his final incarnation. He is a man with very few *karmas* and shall get liberated during this birth."

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

A person had doubt about this statement—The emperor of such a large empire is a person with few *karmas* and I, a destitute, am a person with many *karmas*? How partial Bhagavan is?

When *chakravarti* Bharat came to know about this, he called the man, gave him a bowl filled to the brim with oil in his hand and said, "Walk around Ayodhya city and come back. Beware that if one single drop of oil is spilled you will be beheaded."

The poor man started his walk with the oil filled bowl in his hand. Behind him walked the king's guards. The city was full of interesting activities like singing and dancing, various other entertainments, decorated shops etc. But passing through all this hubbub, the man was only looking at the oil filled bowl in his hands. He walked around the city with all his attention focussed at the bowl.

When he came back, *chakravarti* Bharat asked, "Brother, what all did you see in the city?"

"Sire, how could I see anything? My eyes were looking at this bowl all the time. Had I looked anywhere else the oil would have spilled. The fear of death confronted me every moment. And therefore, I focussed all my attention on the bowl while going around the city."

Bharat *chakravarti* said, "Brother, I also live with this empire exactly in the same way. I am moving through this journey of life having all my attention focussed at my soul. If I shift my attention away from the soul and get distracted by the mundane pleasures and comforts, I will be caught in this cycle of life and death. That is why I take care not to get absorbed in this large empire. That is the reason Bhagavan Rishabhdev has called me a man with few *karmas*. And now please judge this for yourself."

The man understood the statement about *chakravarti* Bharat being a man with few *karmas*.

One day Bharat *chakravarti* came into his dressing room after his bath. After adorning himself with regal dress and ornaments he was pleased to look at his reflection in the full length mirror. Suddenly he looked at the index finger of his right hand. The usual ring was not on the finger. It must have fallen down. The finger looked bare and ordinary without the adornment. He thought, 'In contrast with the richly adorned body, this bare finger looks very ordinary. Why the finger has lost its grandeur just because of the absence of a ring? Is the body beautiful only when adorned with ornaments? Does it have no beauty of its own? All this beauty is unreal and superficial.' King Bharat indulged in introspection. He started putting off his adornments one by one and observed the result. A mirror reflects reality and the king was confronted with it now. He thought. 'Oh ! All this grandeur is superficial. My body has lost its glamour the moment it lost the ornaments.' The train of his thoughts took a turn. Pondering over the ephemeral and

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

worthless nature of the physical body, he got enlightened. His attitudes underwent a change from mundane to spiritual and he became an omniscient while still in his grand palace. After this he became an ascetic, led an itinerant life for a long time and got liberated.

This story of Bharat *chakravarti* from ancient scriptures like commentary on *Avashyak* by Malayagiri, reveals that Bharat was a person with few *karmas* and a detached attitude. He neither had to indulge in austerities for long nor had to suffer acute pain or afflictions in order to attain liberation. He got liberated after a long but pleasant ascetic life.

This is an example of the first type of *antakriya*—little suffering, simple austerities and long ascetic life.

Second *Antakriya*

The second *antakriya* is exactly opposite of the first one. Here a person is born with a heavy load of *karmas* but after a short ascetic life with harsh austerities and suffering acute afflictions, he sheds all these *karmas*. Although there is a high density of *karmas* but the blow of harsh austerities, tolerating acute afflictions and purity of meditation is also of very high intensity. That is why even the complex knots of *karmas* get loosened in no time.

An example of this type of *antakriya* is ascetic Gajasukumal, who destroyed all the dense and voluminous *karmas* and got liberated.

GAJASUKUMAL

The story of Gajasukumal is available in *Antakriddasha Sutra*. Queen Devaki, wife of king Vasudev, was Vaasudev Shrikrishna's mother. As Shrikrishna and all her other sons were born in the prison of Kamsa, she never had the satisfaction of fondling and caring of a child. Deprived of this pleasure she always remained sad. To fulfill his mother's desire, Shrikrishna sought help of Harinagameshi god. Devaki was blessed with a son due to this divine influence. As the child was very delicate he was named Gajasukumal and was brought up with loving care.

In Dvarka lived a rich Brahmin family. The head of the family was Somil and his wife was Somashri. The couple had a beautiful daughter named Soma.

Once Bhagavan Arishtanemi came to Dvarka. Vaasudev Shrikrishna went to pay homage to him. On the way he happened to see Soma playing around in a group of girls. Shrikrishna liked her very much and considered her to be a very suitable match for his younger brother Gajasukumal. He called the girl's father and made the engagement. Somil was honoured and happy. Soma was sent to Shrikrishna's palace to be brought up as a princess.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Shrikrishna then went to Bhagavan Arishtanemi's religious assembly with Gajasukumal. The moment Gajasukumal listened to the sermon he got enlightened. He beseeched his parents to allow him to get initiated into the order. Devaki said, "Son, in your absence I will not be able to live even for a day." Shrikrishna also tried to dissuade him affectionately, "Don't insist on becoming an ascetic. I will make you the king of Dvarka. You will live in comfort with all available pleasures in this world." But detached Gajasukumal paid no heed to all this. He was adamant to get initiated by Bhagavan Arishtaner. . even in that immature age. His parents and Shrikrishna had to yield to his intense desire. Gajasukumal was initiated with a grand ceremony.

The day Gajasukumal was initiated by Bhagavan Arishtanemi he sought permission to observe the twelfth *Bhikshu Pratima* (specific austere practices meant for ascetics) and went to the Mahakal cremation ground. There he observed the *Pratima* by standing in meditation drawing away all his attention from his body.

In the evening Somil was returning with a bundle of things used in *yajna* as offerings. When he passed through the cremation ground and saw ascetic Gajasukumal standing in deep meditation and with shaven head, he got infuriated. He thought, "If he had to become a *Shramaṇ*, why did he spoil the life of my innocent daughter, Soma?"

Anger made him lose all his reason. He took sticky mud from a nearby pond and raised little walls to form a pit on the bald head of the ascetic. He then took burning coal from a funeral pyre and filled the pit so made. Satisfied with this act of revenge he left.

The intense heat of the flaming coal scorched the bald head of the ascetic, like a pot placed on fire. His blood started boiling. This caused extreme agony. But ascetic Gajasukumal tolerated this with serene equanimity. He had no bad feelings for the tormentor. He was filled only with feelings of forgiving and clemency.

Ascetic Gajasukumal, the apostle of forgiveness continued his meditation and broke all the ties of *karmas*. He got liberated.

Thus Gajasukumal was able to do the *antakriya* only within 24 hours of becoming an ascetic.

This is an example of the second type of *antakriya*.

Third *Antakriya*

In the third type of *antakriya*, a person is born with extremely dense *karmas* and destroys all these *karmas* only after a long period of ascetic practices and suffering great pain.

Here the density of *karmas* is greater and so is the span of ascetic life. Only after tolerating pain, torments, and afflictions with equanimity for a long period he is able to

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

break the strong ties of *karmas*. An example of this type of *antakriya* is Sanatkumar *chakravarti*, who suffered a variety of afflictions during his long ascetic life, ended all *karmas* and got liberated.

SANATKUMAR *CHAKRAVARTI*

The story of Sanatkumar *chakravarti* is mentioned in the 18th chapter of *Uttaradhyayan Sutra* and *Trishashti Shalaka Purush Charitra*. He was the fourth *chakravarti* of this regressive cycle of time.

In Hastinapur ruled king Ashvasen. The name of his wife was Sahadevi. One night she saw fourteen great dreams auguring the birth of a *chakravarti*. After the pregnancy period she gave birth to an extremely beautiful and healthy child. He was named Sanatkumar. By the time he matured into a youth Sanatkumar had acquired expertise in all manly knowledge and skills.

After the death of his father, Sanatkumar ascended the throne of Hastinapur. With the help of his meritorious *karmas* and power he conquered all the other kings and got the title of *chakravarti*.

Sanatkumar *chakravarti* was extraordinarily handsome and attractive. Once the king of the *Saudharma* abode of gods, Saudharmendra, praising his personality uttered in his assembly, "Sanatkumar *chakravarti* of Bharat area is extremely handsome. His beauty cannot be described in words. It can only be experienced visually."

Two gods found this praise of a mortal to be an exaggeration. They descended on the earth in the form of Brahmins and went into Sanatkumar's palace. The *chakravarti* was working out in his gymnasium. The Brahmins commented, "O king, we find your physique even more beautiful than what we heard about."

The king was aware of his uniqueness and was proud of his personality. He replied with pride, "Brahmins, at the moment my body is covered with sand. See my beauty when I have taken my bath, adorned my body and sat on the throne in the assembly. That is the time when my appearance is at its resplendent best."

The Brahmins nodded and left.

The *chakravarti* took his bath, put on a gorgeous dress, ornaments and crown and went to the assembly. When he sat on the throne the Brahmins came. Sanatkumar asked with pride, "Brahmins, behold my grandeur and tell me how do you find my personality now?"

The two Brahmins said with reservations, "Sire, how to tell you? We are reluctant to reveal the truth. Please pardon us, but now your beauty is not as pure as before. Your body is now the abode of 16 ailments. If you do not believe, please spit and carefully watch the insects writhing in your phlegm."

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

The *chakravarti* did as told. The Brahmins were true. His pride of his beauty was shattered to pieces. Realizing the ephemeral nature of the human body he got detached and became an ascetic.

The body was already virus ridden, stale and dry food combined with austerities worsened the condition and the ailments aggravated. The pain was intolerable. But ascetic Sanatkumar tolerated all the pain with equanimity. Neglecting the body he continued the process of cleansing the soul through increased austerities and meditation.

The king of gods once again praised Sanatkumar, but this time for his exemplary tolerance, "Great is the tolerance of ascetic Sanatkumar. He has gained many powers due to his austerities. If he so desires he can get rid of all ailments. But he continues his spiritual practices without caring for his body or being effected by intolerable pain."

The same pair of gods came to test the ascetic. They took the form of doctors and tried their best to persuade the ascetic to take their treatment. The ascetic replied, "Doctors, I am not at all worried about my physical ailments. I am working to cure the ailment of *karmas* that hounds my soul. As regards the ailment of the body, I have the power to cure it instantaneously."

And the ascetic extended one of his ailing and deformed fingers and spit on it. That finger at once became perfect, healthy and glowing.

The gods were astonished. They regained their true divine form, paid homage to the great ascetic and left after paying rich tributes to his tolerance and spiritual endeavour.

This way ascetic Sanatkumar continued his practices for seven hundred years before shedding all *karmas*.

Sanatkumar destroyed his *karmas* by tolerating extreme pain for a long period.

This is the example of the third type of *antakriya*.

Fourth *Antakriya*

The fourth *antakriya* is that where a person is born with a low density of *karmas* and gets liberated soon after disciplining himself (blocking the inflow of *karmas* through mind, speech and body).

In this fourth *antakriya* one neither suffers any pain nor does he remain ascetic for a long period. Even the life after becoming omniscient is not much. Soon after omniscience follows liberation. The example of this is Marudevi Bhagavati.

Marudevi did not suffer any pain. She was not even formally initiated. She only accepted the initiation mentally and got liberated.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

MOTHER MARUDEVI

Around the third epoch of the current regressive cycle of time, when the era of twins was coming to an end, a pair was born in Vinita city. The male was named Nabhiraja and the female, Marudevi.

At that time the era of twins and *Kulakars* was at its fag end. Nabhiraja became the fourteenth *Kulakar*.

Marudevi gave birth to twins. There names were Rishabhdev and Sumangala.

Of the current regressive cycle of time Rishabhdev became the first king, the first *kevali*, the first Tirthankar and the first propagator of Jain religion. The fame of Marudevi is because of Rishabhdev because she is famous as the mother of the first Tirthankar.

Rishabhdev invented and perfected knowledge of sword (martial arts), ink (writing), farming, social system and state-craft. Later he became an ascetic and commenced his itinerant life.

Mother Marudevi was ever worried about the well being of her son, Rishabhdev. Time and again she sought news of her son from Bharat *chakravarti*.

When she got the news that Rishabhdev had attained *Keval-jnana* and is stationed outside Vinita city, she was filled with joy. She sat on an elephant and went to meet her son.

Bhagavan Rishabhdev was sitting in his divine religious assembly. When Marudevi saw his grandeur she was enchanted. She thought, 'I was worried for no reason. My son has acquired great power.'

The train of her thoughts about the grandeur of the divine pavilion and the Tirthankar took a turn towards deeper contemplations. She found her fondness worthless and became aware of the transient nature of mundane relations. The religious thoughts became more sublime and she transcended into pure meditation where the chain of *karmas* gets destroyed. The chain of obstructing *karmas* was destroyed and soon the residual *karmas* also came to an end. She attained *Keval-jnana* and within moments after that got liberated.

Bhagavan Rishabhdev said, "Marudevi has become a *Siddha*, the first *Siddha* of this regressive cycle of time."

Thus Marudevi did not have to suffer any pain. She did not do any formal ascetic practices and got liberated. She was born with few *karmas*. This is the example of the fourth *antakriya*.

Sources : 1. Jambudveep Prajnapti, Usahachariyam
2. Trishashti Shalaka Purush Charitra

●●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्याय ३

तीन महान् युग-प्रवर्तक

१. भगवान अरिष्टनेमि
२. वासुदेव श्रीकृष्ण
३. भगवान महावीर

युग-प्रवर्तक का अभिप्राय

युग-प्रवर्तक (man of the age) वह विशिष्ट मेधावी और प्रभावशाली तथा महाक्षमता-संपन्न व्यक्ति होता है जो युग की धारा को मोड़ने का, पुरानी प्रचलित परम्पराओं (traditions), अन्धविश्वासों, मूढ़ताओं (superstitions) में उचित संशोधन करके इस युग तथा आने वाले युगों के मानवों में नई प्रेरणा और जागृति का संचार करने की सामर्थ्य रखता है।

दूसरे शब्दों में युग-प्रवर्तक वह होता है जो अपने आचार-विचार, व्यवहार आदि क्रिया-कलापों द्वारा जनमानस को इस प्रकार प्रभावित करता है कि युगों-सैकड़ों-हजारों वर्ष बीत जाने पर भी उसका असर जन-जन पर, उनके जीवन पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता रहता है।

प्रत्येक सभ्य समाज की युगधारा (age current) द्विमुखी होती है–(१) आध्यात्मिक (spiritual), और (२) व्यावहारिक (practical)। अध्यात्ममुखी युगधारा आत्मोन्नति, आत्म-विशुद्धि और आत्म-मुक्ति से सम्बन्धित होती है और व्यवहारमुखी युगधारा सामाजिक, पारिवारिक, राजनीतिक–मानव के व्यवहार-जगत् को सफलतापूर्वक संचालन के लिए दिग्दर्शक यंत्र के समान होती है।

युगधारा के ये दो भेद भी स्थूल दृष्टि से किये जाते हैं। भारतीय सभ्यता–संस्कृति के सन्दर्भ में तो व्यावहारिक जगत् के युग-प्रवर्तक भी जीवन का अन्तिम लक्ष्य आत्म-मुक्ति ही निर्धारित करते हैं तथा व्यावहारिक जीवन में सफलता के उपरान्त मानव का चरम उत्कर्ष मुक्ति-प्राप्ति ही स्वीकार करते हैं और जन-जन के मन-मस्तिष्क को उसी लक्ष्य की ओर मोड़ते हैं।

अन्तकृद्दशा में उट्टंकित महान् युग-प्रवर्तक

द्वादशांगी का आठवाँ अंगसूत्र अन्तकृद्दशासूत्र कई दृष्टियों में सर्वांगपूर्ण आगम है। यह आध्यात्मिकता-प्रधान तो है ही, इसकी विषय-वस्तु ही अन्तकृत् केवलियों के जीवन के वर्णन से ओत-प्रोत है। इसमें आध्यात्मिक महापुरुषों, युग-प्रवर्तकों, तीर्थंकरों के वर्णन के साथ-साथ भौतिक धरातल के युग-प्रवर्तक का भी यथेष्ट उट्टंकन है।

अन्तकृद्दशासूत्र में तीन महान् युग-प्रवर्तकों का वर्णन है। इनमें दो आध्यात्मिक हैं–(१) तीर्थंकर अरिष्टनेमि, और (२) तीर्थंकर महावीर तथा एक लौकिक दृष्टि से युग-प्रवर्तक हैं–वासुदेव श्रीकृष्ण। इस प्रकार प्रस्तुत सूत्र में आध्यात्मिक और लौकिक–दोनों ही धरातल पाठक को प्राप्त होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ये दोनों ही महान् युग-प्रवर्तक और समकालीन थे। दोनों ही पारिवारिक दृष्टि से भी जुड़े हुए थे। अरिष्टनेमि श्रीकृष्ण के चचेरे भाई (cousin) थे। इन दोनों का ही भारत की वैदिक और श्रमण परम्परा में यशोगान हुआ है, पूज्य भाव से स्मरण किया गया है। हाँ, इतना अन्तर अवश्य है कि वैदिक परम्परा में श्रीकृष्ण का विस्तार रूप से वर्णन है, जबकि तीर्थंकर अरिष्टनेमि का अपेक्षाकृत बहुत कम है, फिर भी जहाँ-जहाँ उल्लेख हुआ वहाँ उनके प्रति पूज्य भाव ही प्रदर्शित हुआ है।

तीर्थंकर और वासुदेव

तीर्थंकर अरिष्टनेमि और वासुदेव श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में विशेष जानने से पहले 'तीर्थंकर' और 'वासुदेव' इन दो शब्दों का रहस्यार्थ जानना आवश्यक है।

वैदिक परम्परा के ग्रन्थों में 'तीर्थंकर' शब्द का अभाव है, यह शब्द कहीं भी प्रयुक्त नहीं हुआ है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद आदि में अरिष्टनेमि को तार्क्ष्य अरिष्टनेमि अवश्य कहा गया है। यह 'तार्क्ष्य' शब्द शाब्दिक दृष्टि से 'तीर्थंकर' शब्द के समीप है, क्योंकि शुक्ल यजुर्वेद के अध्याय ९, मंत्र २५ में अरिष्टनेमि (नेमिनाथ) को अध्यात्म-यज्ञ को प्रगट करने वाले, संसार के भव्य जीवों को सब प्रकार से यथार्थ उपदेश देने वाले और जिनके उपदेश से आत्मा बलवान होती है—ऐसा बताकर इन सर्वज्ञ नेमिनाथ (अरिष्टनेमि) के लिए आहुति समर्पित की गई है।

इसी प्रकार अन्यत्र भी नेमिनाथ (अरिष्टनेमि) के पूर्व (विशेषण रूप में) वैदिक परम्परा के अन्य ग्रन्थों में जहाँ-जहाँ भी 'तार्क्ष्य' शब्द प्रयोग हुआ वहाँ-वहाँ इस शब्द से 'पूज्य' अर्थ ही ध्वनित होता है।

फिर भी इतना तो सत्य है कि वैदिक ग्रन्थों में 'तीर्थंकर' शब्द का प्रयोग नहीं आता है।

'वासुदेव' शब्द का प्रयोग महाभारत तथा अन्य पुराण साहित्य तथा उत्तरकालीन वैदिक ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। वह श्रीकृष्ण के लिए ही है यानी वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण वासुदेव—इस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार वैदिक परम्परा के अनुसार एक ही वासुदेव श्रीकृष्ण हुए हैं।

यद्यपि डॉ. भाण्डारकर ने भक्ति सम्प्रदाय के प्रवर्तक और सात्वत अथवा भागवत धर्म के उपदेशक रूप में दो वासुदेवों की पृथक्-पृथक् परिकल्पना की; किन्तु लोकमान्य तिलक, हेमचन्द्र राय चौधरी, कीथ आदि विद्वानों ने इस मत को अस्वीकार करके निश्चित किया कि एक ही वासुदेव हुए हैं, जो श्रीकृष्ण के रूप में विख्यात हैं।

लेकिन जैन परम्परा के अनुसार तीर्थंकर और वासुदेव एक पदवी है जो पूर्वजन्म में तप द्वारा उपार्जित की जाती है। जिसे कोई भी जीव उपलब्ध कर सकता है। अन्तर इतना है कि वासुदेव कृतनिदान (संसार और सांसारिक सुखों की इच्छापूर्वक संकल्प करने वाले) होते हैं; जबकि तीर्थंकर कोई निदान नहीं करते।

जैन परम्परा के अनुसार इस अवसर्पिणी काल में ९ वासुदेव (वासुदेव पदवी धारी—दक्षिण भरतार्द्ध के स्वामी—अर्द्ध चक्रवर्ती) हुए हैं, जिसमें श्रीकृष्ण अन्तिम अथवा नौवें वासुदेव हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वासुदेव की यह विशेषता है कि कृतनिदान होने के कारण वे संयम-साधना नहीं कर सकते। जैन और वैदिक–दोनों ही परम्पराएँ इस विषय में एकमत जान पड़ती हैं। दोनों ही परम्पराओं में श्रीकृष्ण संयम-साधना नहीं करते। हाँ, कारण अलग-अलग हैं। जैन परम्परा उन्हें कृतनिदान मानती है और वैदिक परम्परा विष्णु का सोलह कला पूर्ण अवतार अथवा पूर्ण ब्रह्म; ऐसी दशा में इन्हें संयम साधना की आवश्यकता ही क्या है?

जैन परम्परा के तीर्थंकर, अवतार नहीं हैं। जैन परम्परा भी अवतारवादी नहीं है, इसके अनुसार भगवान अवतार नहीं लेते; अपितु उत्तारवादी हैं। जीव क्रमशः आत्म-विशुद्धि करता हुआ तप-साधना तथा जीवमात्र की कल्याण भावना रखता हुआ तीर्थंकर नाम-गोत्र का उपार्जन करता है तथा तीर्थंकर पदवी प्राप्त करता है।

इतना अवश्य है कि तीर्थंकर अतिशयों, प्रातिहार्यों से युक्त और सुशोभित होते हैं।

यही तीर्थंकरों की सामान्य सर्वज्ञों से विशेषता होती है।

तीर्थंकर अरिष्टनेमि और श्रीकृष्ण की समकालीनता

कुछ बुद्धिजीवी इस तथ्य में सन्देह प्रगट करते हैं और कहते हैं कि तीर्थंकर अरिष्टनेमि और श्रीकृष्ण समकालीन नहीं थे। इनकी यह धारणा भ्रमपूर्ण है। दोनों की समकालीनता के साक्ष्य वैदिक और जैन दोनों ही परम्पराओं में उपलब्ध होते हैं।

अष्टादश पुराणकार महर्षि वेदव्यास ने स्वरचित हरिवंशपुराण में अरिष्टनेमि को श्रीकृष्ण का चचेरा भाई (cousin) बताया है। आधुनिक काल के विद्वान् प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता राय चौधरी ने अपने ग्रन्थ 'वैष्णव धर्म के प्राचीन इतिहास' में भी यही मत स्थिर किया है।

विचारणीय तथ्य है कि क्या परस्पर चचेरे भाई समकालीन नहीं होते? इसका सर्वमान्य उत्तर एक ही है कि वे निश्चित रूप से समकालीन ही होते हैं। इसमें शंका करना व्यर्थ है।

जैन परम्परा में तीर्थंकर अरिष्टनेमि समुद्रविजय के पुत्र हैं और श्रीकृष्ण वसुदेव जी के, जो समुद्रविजय के सबसे छोटे भाई हैं। वैदिक परम्परा में श्रीकृष्ण के पिता का नाम तो वसुदेव ही है; किन्तु अरिष्टनेमि के पिता का नाम चित्रक दिया गया है। संभव है, समुद्रविजय का अपरनाम चित्रक हो। लेकिन इस नाम से कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता क्योंकि दोनों ही परम्पराएँ अरिष्टनेमि और श्रीकृष्ण–दोनों को परस्पर चचेरा भाई (cousin) स्वीकार करती हैं और इस तथ्य से यह स्वयं ही सिद्ध हो जाता है कि दोनों ही समकालीन थे।

तीर्थंकर अरिष्टनेमि की ऐतिहासिकता

कुछ समय पूर्व तक भगवान अरिष्टनेमि की ऐतिहासिकता संदिग्ध थी। भारतीय और पाश्चात्य विद्वान् उन्हें मात्र पौराणिक पुरुष मानते थे, ऐतिहासिक पुरुष नहीं। इसी प्रकार की धारणा श्रीकृष्ण और द्वारका नगरी के विषय में भी थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेकिन ज्यों-ज्यों नये-नये ऐतिहासिक और पुरातात्त्विक अन्वेषण आगे बढ़े, सन्देह का आवरणरूपी अन्धकार छँटता गया, सत्य का सूर्य चमकने लगा और भगवान अरिष्टनेमि एक ऐतिहासिक पुरुष थे, यह तथ्य स्वीकार किया जाने लगा।

भगवान अरिष्टनेमि की ऐतिहासिकता के प्राचीन प्रमाण तो अनेक हैं ही; साथ ही आधुनिक इतिहासकारों और मनीषियों ने भी उनकी ऐतिहासिकता असंदिग्ध रूप से स्वीकार की है।

वेदों, महाभारत, पुराणों आदि वैदिक संप्रदाय के ग्रन्थों में अरिष्टनेमि की स्तुति की गई है, उन्हें आहुति भी समर्पित की गई है।

जैन ग्रन्थों में तो अरिष्टनेमि तीर्थंकर का विशेष वर्णन है। ऋषिभाषित के ४५ अध्ययनों में वर्णित २० प्रत्येकबुद्ध भगवान अरिष्टनेमि के शासनकाल में ही हुए हैं।

प्रस्तुत अन्तकृद्दशा के प्रथम पाँच वर्गों में वर्णित ५१ अन्तकृत् केवली भी भगवान अरिष्टनेमि के ही शासनकाल में हुए हैं। इस सूत्र में श्रीकृष्ण, उनका राज्य-वैभव और द्वारका नगरी की विशालता तथा शोभा-सम्पन्नता का विशद वर्णन उपलब्ध होता है।

आधुनिक विद्वानों में भारत के पूर्व राष्ट्रपति और प्रसिद्ध दार्शनिक स्व. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने स्वीकार किया है कि यजुर्वेद में आदिनाथ, अजितनाथ और अरिष्टनेमि का उल्लेख उपलब्ध होता है।

कर्नल टॉड ने 'अनल्स ऑफ दी भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट' पत्रिका (जिल्द २३ पृष्ठ १२८) में अरिष्टनेमि के प्रति अपना अभिमत इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है–"मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में चार बुद्ध मेधावी पुरुष हुए हैं–उनमें से एक आदिनाथ हैं, दूसरे नेमिनाथ (अरिष्टनेमि) हैं।" ये नेमिनाथ ही स्केण्डीनेविया निवासियों के प्रथम 'ओडिन' देवता तथा चीनवासियों के प्रथम 'फो' देवता थे।

प्रसिद्ध कोषकार नगेन्द्रनाथ वसु, पुरातत्त्ववेत्ता डॉ. फ्यूहर, प्रोफेसर बारनेट, मिस्टर करवा, डॉ. हरिदत्त, डॉ. प्राणनाथ विद्यालंकर आदि मनीषी विद्वानों का स्पष्ट अभिमत है कि भगवान अरिष्टनेमि एक महान् प्रभावशाली युग-प्रवर्तक मेधावी पुरुष थे। वे ऐतिहासिक पुरुष थे, इसमें सन्देह को कोई अवकाश नहीं है।

अब तो समुद्र में निमग्न द्वारका के अवशेषों का पता भी पुरातत्त्ववेत्ताओं ने लगा लिया है। अतः भगवान अरिष्टनेमि की ऐतिहासिकता असंदिग्ध रूप से प्रमाणित हो गई है।

भगवान अरिष्टनेमि की चरित्रगत विशेषताएँ

भगवान अरिष्टनेमि आध्यात्मिक पुरुष थे, तीर्थंकर थे। स्वयं अपनी तथा अन्यों की आत्म-विशुद्धि, बन्धन-मुक्ति ही इनका लक्ष्य था, मोक्षमार्ग का प्रवर्तन ही उनका ध्येय था। जिन क्रियाओं, वृत्ति-प्रवृत्ति से कर्म-बन्धन सघन होते हैं, उनसे विरति ही इन्हें इष्ट थी। वे स्वयं संसार और सांसारिक भोगों से उपरत थे। उनकी एक मात्र यही इच्छा थी कि सभी मानव अहिंसक बनें, मदिरा आदि व्यसनों से दूर रहें।

श्रीकृष्ण और इनकी रानियों के अत्यधिक आग्रह को मान्य कर जब वे विवाह हेतु वर बनकर जूनागढ़ जाते हैं तो वहाँ बाड़े में बन्द पशुओं को देखकर करुणाद्रवित हो जाते हैं और वापस लौटकर दीक्षा स्वीकार कर लेते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनका यह कदम प्राणि-हिंसा और माँसाहार का अहिंसक प्रतिकार था। इसका यथेच्छ प्रभाव भी हुआ। आज भी गुजरात, सौराष्ट्र आदि प्रदेश माँसभक्षण से दूर हैं।

उनका मानस अहिंसा, करुणा, दया और सर्वजीव-समभाव से ओतप्रोत है। लोक-कल्याण इनके हृदय में गहरा पैठा हुआ है। स्वयं कैवल्य-प्राप्त होने पर भी सभी जग-जीवों के कल्याण के लिए प्रवचन देते हैं, मोक्षमार्ग का प्रणयन करते हैं। अनेक भव्य जीव उनकी देशना श्रवण करके, सद्धर्म का पालन करके तथा आत्म-विशुद्धि करके सिद्ध पद प्राप्त करते हैं।

उस युग में कौरव, जरासन्ध आदि ईर्ष्यालु और भोगाभिलाषी राजाओं का बाहुल्य था। यादव वंशी क्षत्रियों में भी अनेक कुरीतियाँ प्रचलित थीं; माँसभक्षण आदि का प्रचलन था। यथा राजा तथा प्रजा के अनुसार सामान्य जनों का लक्ष्य भी भोगाभिमुखी था। अधिकांश व्यक्ति आध्यात्मिकता से विमुख थे।

तीर्थंकर अरिष्टनेमि ने युग की इस संसाराभिमुखी वृत्ति-प्रवृत्ति में दिशा परिवर्तन करके उसे अध्यात्ममुखी बनाया। इसी कारण वे महान् युग-प्रवर्तक हैं।

अरिष्टनेमि और श्रीकृष्ण

तीर्थंकर अरिष्टनेमि और श्रीकृष्ण—दोनों ही महान् युग-प्रवर्तक हैं; किन्तु दोनों का क्षेत्र पृथक्-पृथक् है। अरिष्टनेमि का क्षेत्र आध्यात्मिक जगत् है तो श्रीकृष्ण का क्षेत्र व्यावहारिक संसार।

इन दोनों ने एक ही वंश—हरिवंश (यादव कुल अथवा वंश) में जन्म लिया। दोनों ही परस्पर चचेरे भाई थे। अरिष्टनेमि के पिता महाराज समुद्रविजय थे और श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव समुद्रविजय के सबसे छोटे भाई थे।

जन्म-स्थान और परिस्थितियों में अन्तर रहा, अरिष्टनेमि का जन्म शौर्यपुर (सोरियपुर—वर्तमान आगरा नगर के निकट) में हुआ। इनके जन्म के समय स्थितियाँ अनुकूल थीं, कोई समस्या नहीं थी।

लेकिन श्रीकृष्ण का जन्म विपरीत परिस्थितियों में हुआ। उस समय उनके माता-पिता—देवकी और वसुदेव मथुरा-नरेश कंस के बन्दी (नजरकैद) थे। शिशु कृष्ण के जीवन की रक्षा एक बहुत बड़ी समस्या थी। किसी प्रकार अनेक कठिनाइयों को झेलते हुए वसुदेव शिशु कृष्ण को नन्द गोप के घर पहुँचा आये। वहाँ इनका बाल्य-जीवन बीता। गाय चराते, ग्वाल-बालों के साथ क्रीड़ा करते हुए वे किशोर हुए।

श्रीकृष्ण का जन्म तो मथुरा में हुआ; किन्तु इनका पालन-पोषण गोकुल में नन्द-पत्नी यशोदा द्वारा हुआ।

श्रीकृष्ण बचपन से ही पराक्रमी थे। उनका बल-विक्रम, पुरुषार्थ और पराक्रम बचपन में ही प्रगट हो गया। इन्हीं के मामा मथुरा-नरेश क्रूर कंस द्वारा उनके वध के लिए भेजे गये कई राक्षसी-शक्ति-सम्पन्न आततायियों को उन्होंने धराशायी कर दिया। किशोर वय में ही क्रूर कंस को यमलोक पहुँचाकर जन-जन को उसके अत्याचारों से मुक्त किया।

इसके उपरान्त उनका संघर्षमय जीवन प्रारम्भ हुआ। उस समय के अनेक दुर्दान्त और आतंकवादी नरेशों से भारत-भूमि को मुक्त किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वे अतिशय पुण्यशाली, प्रभावशाली और बलवान थे। स्वस्थ समाज नीति, राजनीति आदि की उन्होंने स्थापना की। द्वारका-जैसी समृद्ध नगरी, जो अलकापुरी के समान सुन्दर थी, उसका निर्माण उन्हीं के पुण्य का फल था।

श्रीकृष्ण अत्यन्त विनयी और माता-पिता के भक्त थे। गुणों का आदर करना उनका सहज स्वभाव था। अवगुणों में गुण और अनेक बुराइयों में एक भलाई खोज ही लेते थे। सड़ी हुई कुतिया के शरीर से आती हुई दुर्गन्ध को नजरअन्दाज कर उनकी दृष्टि उसके मोती-जैसे चमकते हुए दाँतों पर ही टिकी।

उनके लिए डेल कारनेगी के ये शब्द सटीक हैं–

"Even the most wickeds are not so virtueless that we cannot find any good quality in them."

(ईविन दि मोस्ट विकेड्स आर नॉट सो वर्च्यूलैस दैट वी कैननॉट फाइण्ड एनी गुड क्वालिटी इन दैम)

–बुरे से बुरे प्राणी भी इतने गुणहीन नहीं होते कि हम इनमें कोई अच्छा गुण न खोज सकें।

अवश्य खोज सकते हैं, बस आवश्यकता है–गुणग्राहक दृष्टि की और यह दृष्टि श्रीकृष्ण के पास थी।

श्रीकृष्ण वचनवीर ही नहीं थे, निर्धनों–असहायों आदि के प्रति केवल शाब्दिक–मौखिक सहानुभूति ही प्रदर्शित नहीं करते थे; अपितु कार्यरूप में परिणत करके दिखाते थे, स्वयं आगे बढ़कर सहायता करते थे। त्रिखण्डाधीश होते हुए भी इन्होंने स्वयं अपने हाथ से जर्जर वृद्ध की ईंट उठाकर उसके घर में रखी। उनकी इस प्रक्रियात्मक सहायता के परिणामस्वरूप सारी ईंटें उस वृद्ध के मकान में पहुँच गईं।

गुणी व्यक्तियों के लिए उनका आदरभाव श्रद्धा-भक्ति से समन्वित था। इस विषय में आयु का विचार उनके लिये नगण्य था। यद्यपि तीर्थंकर अरिष्टनेमि आयु में इनसे छोटे थे; लेकिन जब उन्होंने कैवल्य प्राप्त कर लिया तो उनके समक्ष वे श्रद्धा से झुक गये, भक्तिपूर्वक उनकी पर्युपासना करने लगे। तीर्थंकर अरिष्टनेमि के वचनों पर उनका दृढ़ विश्वास था। उनकी स्पष्ट मान्यता थी–**"नान्यथावादिनो जिनाः।"** –जिन भगवान–तीर्थंकर अन्यथावादी नहीं होते, उनके वचन सत्य और सत्यपूत होते हैं।

श्रीकृष्ण का एक अन्यतम गुण धर्मवीरता है। वैदिक परम्परा में तो इनका जन्म ही **धर्मसंस्थापनार्थाय**–धर्म की स्थापना के लिए माना गया है। लेकिन जैनधर्म में उन्हें धर्म-सहायक स्वीकार किया गया है। कृतनिदान होने के कारण वे स्वयं तो संयम-चारित्र साधना नहीं कर पाते; किन्तु अन्य धार्मिक मानवों के लिए सहायक अवश्य बनते हैं।

उनकी उद्घोषणा से प्रेरित होकर अनेक व्यक्ति चारित्र-पथ पर आरूढ़ होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं।

प्रस्तुत अन्तकृद्दशासूत्र के प्रथम पाँच वर्गों में जिन ५१ अन्तकृत् केवलियों का वर्णन उपलब्ध होता है, उनमें इनके पुत्र भी हैं, भाई (गजसुकुमाल) भी हैं और उनकी रानियाँ तथा पटरानियाँ भी हैं।

इनके अतिरिक्त ढंढण मुनि, केतुमंजरी आदि ने भी दीक्षा ग्रहण करके मुक्ति पाई। थावच्चापुत्र की दीक्षा में तो श्रीकृष्ण का पूरा योगदान था।

इस प्रकार वासुदेव श्रीकृष्ण ने अपनी उद्घोषणाओं, प्रेरणाओं और सहयोग से धर्मशासन के प्रचार-प्रसार में सहायक बनकर तीर्थंकर नाम-गोत्र का उपार्जन करके महान् पुण्य का लाभ प्राप्त किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्यामवर्णी होने पर भी वे अत्यन्त सुन्दर और आकर्षक थे, अतिशय बल-वीर्य और पराक्रम से युक्त थे। ऐसे अनुपम योद्धा थे जो कभी भी किसी भी युद्ध में पराजित नहीं हुए। इनकी मेधा अनुपमेय थी और नीति सदाशयी तथा धर्म से अनुस्यूत थी। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि युद्ध न हो, सर्वत्र शांति रहे। इसीलिए उन्होंने दुर्योधन को समझाया–"**शान्तिहेतुर्भवेत् तात।**"–हे भाई ! शान्ति में ही भलाई है। लेकिन दुर्योधन की हठवादिता ही युद्ध का कारण बन गई और महाभारत युद्ध में कुरुवंश का विनाश हो गया।

तीर्थंकर और वासुदेव की कार्य-शैली

प्रस्तुत प्रसंग तीर्थंकर अरिष्टनेमि और वासुदेव श्रीकृष्ण तक ही सीमित है। अतः इन दोनों को ही केन्द्र-विन्दु में रखकर इनकी कार्य-शैली को विवेचित करना ही अपेक्षित है।

सभी तीर्थंकरों की (दीक्षा ग्रहण करने और कैवल्य-प्राप्ति के उपरान्त) कार्य-शैली पूर्ण अहिंसक होती है। वे दमन का मार्ग कभी नहीं अपनाते। मन और इन्द्रियों के भी दमन की बात नहीं कहते अपितु वृत्ति-प्रवृत्तियों में परिवर्तन करके मार्गान्तरीकरण की प्रक्रिया सुझाते हैं। संयम-साधना और ब्रह्मचर्य-पालन द्वारा साधक को ऊर्ध्वरेता बनने का प्रोत्साहन देते हैं। वे वीतराग हैं, अनाग्रही हैं। कोई व्यक्ति संयम-साधना की भावना व्यक्त करता है तो इतना ही कहते हैं–"**जहासुहं देवाणुप्पिया।**"–हे सरल हृदय और भद्र परिणामी ! जिसमें तुम्हें सुख हो वैसा ही करो।

तीर्थंकर दुष्ट व्यक्ति की भी आत्मा में भव्यता और भद्रता देखते हैं।

वैसे सत्य यह भी है कि तीर्थंकर अत्यन्त शांत परिणामी होते हैं। उनका शरीर अत्यन्त सुन्दर और शांत पुद्गल परमाणुओं से निर्मित होता है। उस शरीर की शान्त तरंगें इतनी प्रबल और वेगवती होती हैं कि उनकी धर्मसभा (समवसरण) में प्रविष्ट होते ही दुष्ट व्यक्तियों की दुष्प्रवृत्तियाँ पलायन कर जाती हैं, वैरभाव शांत हो जाता है, मैत्री की भावनाएँ तरंगित होने लगती हैं, सर्वत्र शांति का साम्राज्य छा जाता है।

इसमें वे स्वयं कुछ नहीं करते, उनकी उपस्थिति मात्र से यह सब-कुछ सहज ही घटित हो जाता है।

वे युग-प्रवर्तक हैं, मूल रूप से इस अर्थ में कि उनकी उपस्थिति से व्यक्तियों की प्रवृत्तियों का परिमार्जन तथा शुद्धीकरण होता है, उसकी आत्मा पतन से उत्थान के मार्ग पर चल पड़ती है।

इसे चाहे तीर्थंकर की कार्य-शैली कहें अथवा उनकी उपस्थिति का प्रभाव या अतिशय मानें।

लेकिन वासुदेव की कार्य-शैली इससे भिन्न होती है। वे शक्ति के बल पर समाज में सुव्यवस्था का संचार करते हैं। अपने वचन का आग्रह भी होता है। साम नीति द्वारा व्यक्ति को समझाते हैं लेकिन जब वह नहीं मानता तो दण्डनीति का आश्रय लेकर उसे दण्ड भी देते हैं।

दुष्कृतों का विनाश करने के लिए वे दमन का, हिंसा का, युद्ध का आश्रय भी लेते हैं। उनका उद्देश्य होता है–प्रत्येक क्षेत्र में सुव्यवस्था और संगठन। इसके लिए जो भी आवश्यक साधन होते हैं, उनके प्रयोग में हिचकिचाते नहीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वासुदेव अपने समय के सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्ति होते हैं। उनके विरोधी और दुष्कृत करने वाले सदा उनसे भयभीत रहते हैं। कभी-कभी तो इनकी उपस्थिति मात्र से ऐसे व्यक्तियों के प्राण भी निकल जाते हैं जैसे कि मुनि गजसुकुमाल को प्राणान्तक उपसर्ग देने वाले सोमिल ब्राह्मण के प्राण श्रीकृष्ण को देखते ही निकल गये थे।

वासुदेव निग्रह और अनुग्रह (bans and boons) में भी कुशल होते हैं। सज्जनों का त्राण करना और पापियों का विनाश करना उनका सहज स्वभाव होता है। उनके वचन अमोघ होते हैं। अपनी आज्ञा का पालन ही चाहते हैं, उल्लंघन इन्हें बर्दाश्त नहीं होता।

विभिन्न घटना प्रसंगों में श्रीकृष्ण वासुदेव की ये विशेषताएँ स्पष्ट परिलक्षित होती हैं। यही वासुदेव की कार्य-शैली है।

तीर्थंकर और वासुदेव की ये भिन्नताएँ ही उनके कार्य-क्षेत्र की स्पष्ट विभाजन रेखा खींचती हैं।

युग-प्रवर्तक दोनों ही होते हैं—तीर्थंकर भी और वासुदेव भी। अपने विशिष्ट गुणों से ये दोनों ही लोकमानस को प्रभावित करते हैं और युगों तक हजारों-लाखों वर्षों तक इनका प्रभाव बना रहता है; जन-जन के स्मृति कोष में ये सुरक्षित रहते हैं।

तीर्थंकर अरिष्टनेमि और वासुदेव श्रीकृष्ण ऐसे ही महान् युग-प्रवर्तक थे।

भगवान महावीर

अन्तकृद्दशांगसूत्र के छठवें से आठवें—तीन वर्गों में तीर्थंकर महावीर का उल्लेख प्राप्त होता है। ३९ साधक-साधिकाएँ इन्हीं के शासनकाल में अन्तकृत् केवली बनकर मुक्ति प्राप्त करते हैं।

यह भी सत्य है कि वर्तमान अंग साहित्य भगवान महावीर की देशना है। अतः प्रस्तुत आठवाँ अंग भी तीर्थंकर महावीर की देशना है।

जन्मकालीन परिस्थितियाँ

जिस समय भगवान महावीर का जन्म हुआ इस समय भारत में अराजकता छाई हुई थी। नैतिक और धार्मिक दृष्टि से अन्धकार व्याप्त था। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक दशा पतनोन्मुखी थी।

भगवान अरिष्टनेमि के मुक्ति-गमन के उपरान्त लम्बा काल व्यतीत हो चुका था। मध्य एशिया, एशिया माइनर, उत्तरी ध्रुव प्रदेश और अफ्रीका (उस समय तक यूरोप, अफ्रीका महाद्वीप एशिया से स्थल मार्ग से जुड़े हुए थे। स्वेज नहर बनने के बाद अफ्रीका महाद्वीप एशिया से अलग हुआ है) आदि दूरस्थ भू-प्रदेशों से अनेक जातियाँ भारत में प्रवेश कर चुकी थीं। सबके अपने-अपने रीति-रिवाज, टोम-टेबू, धार्मिक, सामाजिक तथा अन्य विचारधाराएँ अलग-अलग थीं।

तापस आदि पंचाग्नि तप में धर्म मानते थे तो याज्ञिक यज्ञ करने में। नरमेध, अश्वमेध आदि के रूप में यज्ञ हिंसक हो चुके थे। जाति-पाँति का बोलबाला था। नारी की स्थिति पशुओं से भी बदतर थी। पशुओं के समान स्त्री-पुरुषों की दास-दासियों के रूप में सरेआम नीलामी होती थी। ज्ञान के नाम पर अज्ञान का प्रचार हो रहा था। सभी दृष्टियों से भारत पतन की ओर अग्रसर हो रहा था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसा विषम और विकट पारिस्थितियों में भगवान महावीर का जन्म हुआ।

माता-पिता और जन्म

आधुनिक बिहार प्रान्त, उस समय वैशाली गणतंत्र के रूप में प्रसिद्ध था। उस गणतन्त्र में क्षत्रियकुण्ड ग्राम के नरेश थे सिद्धार्थ और इनकी रानी थीं त्रिशला। त्रिशलादेवी के अंगजात और राजा सिद्धार्थ के आत्मज के रूप में महावीर का जन्म हुआ। माता-पिता ने इन्हें वर्द्धमान नाम दिया।

युग-प्रवर्तक तीर्थंकर महावीर

महावीर बचपन से ही मेधावी थे। उन्होंने खुली आँखों से समाज की दशा देखी और समाज में फैले अज्ञानान्धकार, सामाजिक कुरीतियों, दास-प्रथा, हिंसक यज्ञ, स्त्री की हीन दशा आदि तत्कालीन सभी बुराइयों को दूर करने का निश्चय किया।

वे क्रान्त द्रष्टा थे। समत्व के साधक थे। किसी भी प्रकार की हिंसा उन्हें अरुचिकर थी। जाति-पाँति के भेद से मानव को अस्पर्श्य मानना उन्हें स्वीकार नहीं था। नारी-मुक्ति और उसे पुरुष के समान अधिकार वे देना चाहते थे। धार्मिक वाद-विवादों को वे व्यर्थ का वितण्डावाद मानते थे। उनकी इच्छा समन्वय और समता की थी। उनकी धारणा और विचारणा थी कि तत्त्व के सही स्वरूप को न जानने के कारण ही वितण्डावाद और सामाजिक बुराइयों का सृजन होता है।

उन्होंने अपने साढ़े बारह वर्ष के साधनाकाल में इन्हीं सब समस्याओं का चिन्तन किया और इनके समुचित निदान खोजे।

आपका साधनाकाल बड़ा ही कंटकाकीर्ण रहा। पग-पग पर उपसर्ग-परीषह और संकटों का सामना करना पड़ा। मनुष्य ही नहीं देवों और पशुओं ने भी कष्ट दिये।

लेकिन समत्व-साधना से सब पर विजय प्राप्त की। इनकी करुणा और कल्याण भावना की स्रोतस्विनी के समक्ष गरल भी अमृत बन गया, देव झुक गये और पापी मानवों के हृदय पश्चात्ताप से भर गये।

तीर्थ की स्थापना के साथ ही उन्होंने अपने धर्मसंघ में मानव-मात्र को स्थान दिया। ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय, शूद्र और यहाँ तक कि अनार्य को भी धर्म-साधना के योग्य बताया। वैचारिक मतभेद मिटाने के लिए स्याद्वाद का सिद्धान्त दिया, अहिंसा को प्रतिष्ठा दी और नारी की अस्मिता को उचित महत्त्व प्रदान किया।

प्रस्तुत सूत्र में अन्तकृत् केवली के रूप में २३ स्त्री साधिकाएँ थीं तो पुरुष साधक १६ थे, इनमें क्षत्रिय भी थे तो वैश्य भी थे।

तत्कालीन विषम परिस्थितियों और कुरीतियों का उन्मूलन कर तीर्थंकर महावीर ने समत्व, समन्वय, अहिंसापूर्ण नवयुग का प्रवर्तन किया, जिससे सिसकती मानवता और प्राणी मात्र ने सुख की साँस ली। उनके द्वारा प्रवर्तित सुख का राजमार्ग आज भी प्रचलित है और आगे भी रहेगा। यही युग-प्रवर्तक तीर्थंकर महावीर द्वारा बताये गये मार्ग की शाश्वतता तथा विशेषता है।

● ●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Chapter 3

Three Great Epoch-makers

1. Bhagavan Arishtanemi
2. Vaasudev Shrikrishna
3. Bhagavan Mahavir

The Meaning of Epoch-maker

An epoch-maker is that uniquely gifted, overpowering and extremely powerful person who gives a new direction to human society of his times. He has the capacity to reform the established traditions, remove the superstitions and inspire and rejuvenate masses of his generation and those to come.

In other words, an epoch-maker is a person who, through his ideas, conduct, behaviour and other activities, leaves so profound an impression and influence over masses that it is not obliterated even after tens, hundreds and thousands of years.

Every civilized society has two distinct branches of a periodic cultural stream. One is spiritual and the other is social and behavioural. The spiritual stream is related to development, purification and liberation of the self or soul. The behavioural stream is related to the socio-political world and acts like a barometer for its efficient control. These are gross and superficial divisions. In context of the Indian civilization and culture, even the epoch-makers of the social level have liberation as their ultimate goal. After embracing success at social level they accept liberation as the final goal of human life. They endeavour to inspire masses to pursue that goal only.

Great Epoch-makers mentioned in *Antakriddasha Sutra*

The eighth *Anga Sutra* of the *Dvadashangi, Antakriddasha Sutra* is a complete *Agam* in many respects. Although it is predominantly spiritual, it abounds in stories of lives of *Antakrit Kevalis*. Besides the description of spiritual leaders, epoch-makers and Tirthankars it also contains enough details about the epoch-makers of the social level.

Antakriddasha Sutra contains stories of three great epoch-makers. Of these, two are spiritual and one is social or worldly. Tirthankars Arishtanemi and Mahavir are epoch-makers of the spiritual level and Vaasudev Shrikrishna that of the social level. Thus the reader finds both spiritual and social streams.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

These two great epoch-makers were contemporaries with social ties. Arishtanemi was a cousin of Shrikrishna. These two have been revered and glorified in both Vedic as well as Shraman traditions. The difference being that the Vedic tradition writes in great details about Shrikrishna and comparatively very little about Tirthankar Arishtanemi. However, wherever Tirthankar Arishtanemi has been mentioned, it has been with great respect and reverence.

TIRTHANKAR AND VAASUDEV

Before knowing more about Tirthankar Arishtanemi and Vaasudev Shrikrishna it is necessary to know the meaning of the two terms Tirthankar and Vaasudev.

In the Vedic tradition there is total absence of the word Tirthankar. In *Rigveda*, *Yajurveda*, *Saamveda* and other Vedic works Arishtanemi is mentioned with the epithet *Tarkshya*. This word is very similar to Tirthankar, because in the 25th *mantra* of the 9th chapter of *Shukla Yajurveda*, offerings have been given to *Sarvajna* Neminath, describing him as the propagator of Spiritual *yajna*, the preacher of truth to all worldly beings and whose sermon strengthen soul.

In the same way in other Vedic works also, wherever the epithet *tarkshya* has been used before Arishtanemi, it conveys the meaning of respected or revered.

Still this is a fact that nowhere in Vedic scriptures Tirthankar word has been used.

The word Vaasudev has been used in *Mahabharat*, *Puranic* literature and other post Vedic works. It has been exclusively used for Shrikrishna and it means the son of Vasudev. Thus in the Vedic tradition we find only one Vaasudev.

Bhandarkar is of the view that there were two different Vaasudevs, one the propagator of the devotional sect and the other the preacher of Bhagvat religion. But Lokamanya Tilak, Hemchandra Roy Chowdhery, Keeth and other scholars reject this view and confirm that there was only one Vaasudev, the one who was popular as Shrikrishna.

According to the Jain tradition Tirthankar and Vaasudev are epithets indicating status. These are earned through austerities during earlier incarnations by a being. The difference between the two is that Vaasudev is a status acquired willfully and with desires (by means of austerities done with the desire of mundane attainments and happiness), whereas Tirthankar is a status acquired without any desire.

According to the Jain tradition, this regressive cycle of time had 9 Vaasudevs (who has acquired the status of Vaasudev and is master of the southern Bharat or half-*chakravarti*). Shrikrishna was the ninth or the last Vaasudev.

A Vaasudev acquires his status with the intention of worldly happiness, therefore he cannot indulge in ascetic practices. It appears that Jain and Vedic traditions have

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

unanimity over this point. In both, Shrikrishna does not indulge in any austerities. However, the reasons for this are different. Jain tradition attributes it to his intended acquisition and the Vedic tradition simply to his being the complete (having all the 16 virtues) incarnation of Vishnu or the God himself; thus having no need of any such endeavour.

In Jain tradition, a Tirthankar is not an incarnation of God. It is an atheist religion, where the supreme soul does not incarnate, but a soul becomes supreme through purification. A being, through increasing purity of his soul, austerities, spiritual practices and a feeling of universal well being, earns the Tirthankar *Naam-gotra karma* and becomes a Tirthankar.

A Tirthankar is, however, endowed and adorned with supernatural powers and signs. That is the difference between Tirthankar and a normal omniscient.

The Period of Tirthankar Arishtanemi and Shrikrishna

Some scholars have doubt about Tirthankar Arishtanemi and Shrikrishna being contemporaries. They are mistaken. Evidences of the two being contemporary are available both in Jain as well as Vedic traditions.

Maharshi Vedavyas, the author of 18 *Puranas*, has mentioned in his *Harivansh Purana* that Arishtanemi was a cousin of Shrikrishna. Roy Chowdhuri, a renowned modern historian has also established the same opinion in his work *'The Ancient History of Vaishnava Religion'*.

The question is that—are cousins not contemporaries? Everyone will answer this in affirmative. There is hardly a scope for any doubt.

According to the Jain tradition Tirthankar Arishtanemi was the son of Samudravijaya and Shrikrishna that of Vasudev, who was the youngest brother of Samudravijaya. According to the Vedic tradition the name of Shrikrishna's father is same but that of Arishtanemi is Chitrak, which may be just another name of Samudravijaya. But this variation in name has hardly any importance because of the fact that both the traditions accept Shrikrishna and Arishtanemi as cousins. This automatically proves that they were contemporaries.

The Historicity of Tirthankar Arishtanemi

In the past the historicity of Tirthankar Arishtanemi was in doubt. Indian as well as western scholars considered him to be a mythological figure rather than historic. The same was true of Shrikrishna as well.

But with progress in historical and archaeological research the dark veil of doubt was removed and the sun of truth dawned. It was accepted that Bhagavan Arishtanemi was a historical person.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

There are numerous ancient evidences of his historicity and now modern historians and scholars have also accepted that completely.

In Vedas, *Mahabharat*, *Puranas* and many other Vedic works panegyrics of Arishtanemi are found along with instances of making offerings to him in yajnas.

Jain scriptures have, of course, described Tirthankar Arishtanemi in details. The 20 of the 45 *Pratyekbuddhas* mentioned in *Rishibhashit* are from the period of influence of Bhagavan Arishtanemi.

In the first five sections of this *Antakriddasha Sutra* are included 51 *Antakrit Kevalis* belonging to the period of influence of Bhagavan Arishtanemi. This *Sutra* also contains a detailed description of Shrikrishna, the grandeur of his empire and the expanse and beauty of Dvarka.

Former president of India and a famous philosopher, late Sarvapalli Radhakrishnan has accepted that in *Yajurveda* mentions of Adinath, Ajitnath and Arishtanemi are found.

Col. Todd has expressed his views about Arishtanemi in the *Annals of Bhandarkar Research Institute* (Vol. 23, Page 128) in these words—"It appears to me that in ancient times there lived four great enlightened individuals. Of them one was Adinath and the second Neminath (Arishtanemi). This Neminath was also the primary deity *'Odin'* of the Scandinavians and also the principal deity *'Fo'* of the Chinese."

Famous lexicographer Nagendranath Basu, archaeologists Dr. Fueler, Prof. Buent, Mr. Karva, Dr. Haridatt, Dr. Pran Nath Vidyalankar and many other renowned scholars are of the opinion that Bhagavan Arishtanemi was a great and towering epoch-maker. Their remains no doubt about his historicity.

Now the archaeological remains of Dvarka, submerged in the Arabian sea have also been discovered. Therefore any remaining doubts about his historicity have also been removed.

The Qualities of Bhagavan Arishtanemi

Bhagavan Arishtanemi was a spiritualist, a Tirthankar. His only goals were purification of soul, freedom from bondage and showing the path of liberation. He liked to refrain from indulging in activities and attitudes that strengthened the bondage of *karma*. He himself was detached from this world and worldly pleasures. His only desire was that all human beings become non-violent and avoid habits like intoxication.

On being strongly persuaded by Shrikrishna and his queens, he went to Junagarh for marriage. When he saw numerous animals cordoned in large yards, he was filled with compassion and turned back to become an ascetic.

This step of Arishtanemi was a non-violent protest against killing of animals and non-vegetarianism. It was highly successful. Even today Gujarat and Saurashtra areas are predominantly vegetarian.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

His mind was filled with Ahimsa, compassion, clemency and equality of all beings. The feeling of universal well being was deeply rooted in his psyche. Even after attaining omniscience, he gave sermons for the benefit of all beings and showed the path of liberation. Humans listened to his preaching, accepted the true path, worked for the purification of their souls and attained the status of *Siddha*.

That was the age of kings seeking mundane pleasures and competing with each other, such as Kauravas and Jarasandh. Even the *kshatriyas* of the Yadav clan were infested with social evils like eating meat. As the king, so is the subject. Thus the common people were also seekers of mundane pleasures. Majority of people desisted spiritual pursuits.

Tirthankar Arishtanemi changed the direction of that age from mundane attitudes and attainments to the spiritual realm. That is why he is accepted as a great epoch-maker.

ARISHTANEMI AND SHRIKRISHNA

Tirthankar Arishtanemi and Shrikrishna were both great epoch-makers, but their fields were different. Arishtanemi's field was spiritual and that of Shrikrishna was social.

They both were born in the Harivansh or Yadav clan and were cousins. Arishtanemi's father was Samudravijaya and Shrikrishna's father was Vasudev, the youngest brother of Samudravijaya.

Their places and conditions of birth were different. Arishtanemi was born in Shauryapur (modern Soriyapur, near Agra). The conditions at the time of his birth were normal and without any problems.

But Shrikrishna was born in adverse conditions. At the time of his birth his parents—Vasudev and Devaki—were imprisoned by Kamsa, the king of Mathura. To save the life of infant Shrikrishna was a problem. Some how Vasudev, with great difficulty, managed to carry the child to a cowherd named Nand. Shrikrishna spent his childhood there and grew playing around with children of cowherds and taking cows for grazing.

Shrikrishna was born in Mathura but was brought up in Gokul under the care of Yashoda, wife of Nand.

Shrikrishna was valorous right from his childhood. His strength, courage, vigour and valour became evident when he was just a child; he defeated the oppressors equipped with demonic powers assigned by his maternal uncle Kamsa, the king of Mathura, to kill him. When he was only an adolescent he released masses from the torment of cruel Kamsa by killing him.

After that his life of struggles began and he freed the land from many powerful and terror striking rulers of those times.

He was extremely virtuous, over powering and powerful. He pioneered a healthy social and political tradition. Founding of Dvarka, a gorgeous city as beautiful as Alkapuri, the city of gods, was a result of his efforts only.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

A devoted child of his parents, Shrikrishna was very courteous. To honour virtues was his second nature. He could find virtue within vices and something good within a heap of bad things. Ignoring the stench emanating from the body of a decaying bitch, he appreciated its pearly white teeth.

For him Dale Carnegie's following statement is very appropriate—

"Even the most wickeds are not so virtueless that we cannot find any good quality in them."

Indeed, one can find. What is needed is an appreciating eye and Shrikrishna had that.

Shrikrishna was not just vocal; he did not just express his sympathy for helpless destitute in mere words. He went ahead and transformed his words into action to help them. Being the sovereign of three continents did not deter him from picking up a brick of an emaciated old man and carrying it to his house. This gesture of help from him transformed the whole lot of bricks into a house for the old man.

His respect for virtuous persons was mixed with faith and devotion. Age was never a consideration for him in this context. Although Tirthankar Arishtanemi was younger to him in age, Shrikrishna bowed before him and offered salutations with reverence when he became a *Kevali*. He had absolute faith in the words of Tirthankar Arishtanemi. He explicitly believed that a *Jina* is above ambiguity and his words are true and impregnated with truth only.

One of the unique qualities of Shrikrishna is pursuance of *dharma*. According to the belief of Vedic tradition, the purpose of his incarnation was the establishment of *dharma*. But in Jain tradition he has been accepted as a supporter of *dharma*. Because he incarnated as a result of his desire for mundane achievements, he could not lead an ascetic life, he could only assist and support others on the spiritual path.

Inspired by his speech, many individuals tread on the spiritual path and got liberated.

The 51 *Antakrit Kevalis* discussed in the first five sections of *Antakriddasha Sutra* include his sons, brother (Gajasukumal) and his queens.

Besides these, ascetic Dhandhan and Ketumanjari also got initiated and then liberated. Shrikrishna also played a major role in the initiating of Thavacchaputra.

Thus Vaasudev Shrikrishna, through his declarations, inspiration and active support helped in the spread of the order and as a result got the most meritorious benefit of earning the *Tirthankar naam-gotra karma*.

In spite of his dark complexion, he was very handsome and attractive. He was endowed with exemplary strength, vigour and valour. He was so unique a warrior that he never faced a defeat in his life. His intelligence was unparalleled and his policy was pregnant with clemency and religion. He earnestly desired that there is a total absence of

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

war and peace prevails everywhere. That is why he advised Duryodhan, "Brother, only peace is beneficial." But Duryodhan's adamant attitude caused the Mahabharat war that led to the destruction of Kuru clan.

Working Styles of Tirthankar and Vaasudev

As this theme is limited to Tirthankar Arishtanemi and Vaasudev Shrikrishna, it would be appropriate to evaluate the working style of the two positions in context of these two illustrious individuals.

The style of work of all Tirthankars, due to their ascetic life, is absolutely *ahimsa* based. They never resort to any form of oppression. They do not even talk of suppressing mind and senses. Instead, they suggest a change in path through altering of attitudes and activity. They encourage the seeker toward uplift through self-discipline and celibacy. They are detached and unbiased; if someone expresses his desire to embrace discipline, they just utter, "Beloved of gods, do as you please."

Tirthankars see worth and modesty even in the soul of a rascal.

The truth is that Tirthankars have a serene attitude. Their body is built of beautiful and serene particles. The waves of serenity emanating out of their body are so strong and forceful that the evil attitudes of the evil elope as soon as he enters the religious assembly. Feelings of animosity are pacified, a feeling of fraternity and goodwill prevails and peace spreads all around.

For this they do not make any conscious effort. It happens spontaneously.

They are epoch-makers basically in the sense that their presence is instrumental in cleansing and purification of attitudes of people and their consequent movement on the path of spiritual uplift.

This may be called the working style of a Tirthankar or the effect of his presence or his super human influence.

But the working style of a Vaasudev is different. He imposes order on the society with the help of his power; he uses the force of his words also. He persuades a person amicably but if he does not agree, he uses his power of punishment also.

To destroy evil he also resorts to punitive action. His goal is to organize and systematize every facet of society. He does not hesitate to use whatever means are needed.

Vaasudevs are the most influential individuals of their times. Their adversaries and evil people are always afraid of them. Some times it so happens that their mere presence proves fatal for evil people. Somil Brahmin, who tortured Gajasukumal, died as soon as he saw Shrikrishna.

Vaasudevs are experts at imposing curbs and distributing favours. To protect good and punish evil is their natural demeanour. Their words are irrefutable. They expect their orders to be complied with and never tolerated any refutation.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

In various incidents of Shrikrishna's life these qualities become clearly evident. This is the working style of a Vaasudev.

These differences in the working styles draw a clear dividing line between the fields of work of Tirthankar and Vaasudev.

Both are epoch-makers—Tirthankar as well as Vaasudev. With their unique qualities they influence masses and this influence continues for hundreds and thousands of years. their stories are embedded in the memories of masses.

Tirthankar Arishtanemi and Vaasudev Shrikrishna were two such great epoch-makers.

BHAGAVAN MAHAVIR

The sixth, seventh and eighth sections of *Antakriddasha Sutra* contain in formation about Tirthankar Mahavir. 39 seekers became *Antakrit Kevalis* during his period of influence.

This is also true that the available *Agam* literature is made up of the preaching of Bhagavan Mahavir. Therefore this eighth *Anga* is also credited to Bhagavan Mahavir.

The Circumstances at the Time of Birth

When Bhagavan Mahavir was born India was in a turmoil. From the moral and religious viewpoint it was a period of darkness. The social, political and economic conditions were passing through a period of depression.

A long span of time had elapsed since the nirvana of Bhagavan Arishtanemi. Numerous ethnic groups of people from Central Asia, Asia Minor and polar region in the north and Africa (at that time all these geographical areas formed a single land mass. Africa was separated from Asia when Suez Canal was dug) had entered India. They all had their own cultural, social and religious thinking, totems, tattoos and dogmas.

The *Tapas* (hermits) considered five types of tempering with heat as religious. The *Yajniks* considered performing yajnas as religious. In the form of human sacrifice and horse sacrifice the *yajnas* had become violent. Castes and clans had become the order of the day. The condition of women was worst than animals. Like animals women had become commodities of trade and were openly auctioned. Ignorance was being spread in the name of knowledge. From all angles India was undergoing a cultural downfall.

Bhagavan Mahavir was born in such adverse and complex circumstances.

Parents and Birth

The modern state of Bihar was then famous as Vaishali republic. In that republic the ruler of Kshatriyakund village was Siddharth; his queen was Trishla. Mahavir was born to this couple. Parents named him Vardhaman.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Epoc-maker Tirthankar Mahavir

Mahavir was a prodigal child. He observed the social conditions with open eyes and resolved to remove all prevailing evils including ignorance, social ills, slavery, animal sacrifice and deplorable condition of women.

He was a revolutionary visionary; he pursued equanimity. He was averse to any sort of violence. He deplored untouchability based on casteism. He supported liberation of women and advocated equal rights for them. He considered religious debates to be useless controversies. He professed assimilation and equality. He believed that such debates and social ills are born out of misunderstanding and misinterpreting of fundamentals.

During his twelve and a half years of spiritual practices he pondered over all these problems and found effective solutions.

The long period of his spiritual practices was infested with hurdles. At every step he faced grave afflictions and troubles. Not humans alone, even gods and animals caused him pain.

But he won over all these through his lofty practice of equanimity. The stream of his compassion and universal well being transformed all poison into ambrosia, gods bowed down and sinners were filled with repentance.

With the establishment of the religious ford, he opened the gates of his religious order to all human beings. He said that Brahmin, *kshatriya*, *vaishya* and *shudra* and even *anarya* (rustic aborigines) were worthy of doing spiritual practices. To remove intellectual differences he propounded the principle of *Syadvad*. He established the order of *ahimsa* and gave due importance to the status of women.

In this *Sutra* are mentioned 23 female and 16 male seekers; these include *kshatriyas* as well as *vaishyas*.

Vanquishing the prevailing complexities and social evils, Tirthankar Mahavir launched a new era based on equanimity, equality and *ahimsa*. The tormented humanity got a pleasurable relief. The lofty path of bliss propagated by him still prevails and will remain so in the future. This is the everlasting uniqueness of the path shown by Tirthankar Mahavir, the epoch-maker.

●●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विविध तप : विधि, विधान और उद्देश्य

तप क्या है ?

तप आत्म-शोधन की प्रक्रिया है। जिस प्रकार आयुर्वेद में अग्नि के संयोग से **पारा शुद्ध** करके रसायन बनाया जाता है, जो शरीर के लिए बल-वीर्य वृद्धिकारक होता है। उसी प्रकार अध्यात्म जगत् में तप की प्रक्रिया द्वारा आत्मा और आत्मा से संलग्न शरीर को शुद्ध किया जाता है। उत्तराध्ययनसूत्र में कहा गया है–**"तवेण परिसुज्झइ।"**–तप द्वारा आत्मा की विशुद्धि होती है।

शुद्धिकारक होने के साथ-साथ यह परम मंगल भी है। दशवैकालिकसूत्र (१/१) में कहा गया है–धर्म उत्कृष्ट मंगल है और वह अहिंसा, संयम तथा तप रूप है।

तप आत्मोत्थान का साधन है। शरीर और मन की शुद्धि करके यह आत्मा को उत्थान की ओर गतिशील बनाता है।

तप अनेक विशिष्ट शक्तियों का कारण भी है। तप-साधक को अनेक प्रकार की विशिष्ट उपलब्धियाँ होती हैं, जिन्हें लब्धि कहा जाता है।

'तप' का उलटा 'पत' है जिसका अर्थ है–"गिरना"। इसका संकेत यह है कि तप न करने वाले अथवा विपरीत रूप से तप करने वाले पतित हो जाते हैं, आत्मिक दृष्टि से नीचे गिर जाते हैं।

तप का उद्देश्य

यद्यपि यह सत्य है कि तप से अनेक विशिष्ट शक्तियों की प्राप्ति होती है; लेकिन तप का एक मात्र उद्देश्य कर्मनिर्जरा तथा आत्म-विशुद्धि है। किसी प्रकार की इच्छा या कामना से किया जाने वाला तप, तप नहीं अपितु ताप बन जाता है, जो आत्मा को जलाता रहता है। भिन्न-भिन्न प्रकार की योनियों में भटकाता रहता है और इसका अन्तिम परिणाम विध्वंसकारी एवं विनाशकारी होता है।

यही कारण है कि निष्काम अथवा आत्म-शुद्धि के लिए किये जाने वाले तप को श्रेयस्कर माना गया है।

तप के विभिन्न प्रकार

उत्तराध्ययनसूत्र आदि आगमों में तप के मुख्य भेद दो बताये गये हैं–(१) बाह्य तप, और (२) आभ्यन्तर तप।

बाह्य तप यद्यपि मुख्य रूप से बाह्य आवरण–शरीर की शुद्धि करता है, किन्तु साथ ही आत्मा की शुद्धि भी करता है। आभ्यन्तर तप साधना में सक्षम बनकर मुक्ति-प्राप्ति में भी हेतु बनता है जो आत्म-शुद्धि की सहज साधना है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुनः बाह्य और आभ्यन्तर

दोनों प्रकार के तपों के छह-छह भेद किये गये हैं–

बाह्य तप के छह भेद हैं–(१) अनशन, (२) ऊनोदरी, (३) भिक्षाचर्या, (४) रस-परित्याग, (५) कायक्लेश, और (६) प्रतिसंलीनता। इन सभी के उत्तरभेद भी हैं।

इसी प्रकार आभ्यन्तर तप के भी छह भेद हैं–(१) प्रायश्चित्त, (२) विनय, (३) वैयावृत्य, (४) स्वाध्याय, (५) ध्यान, और (६) व्युत्सर्ग। इन सभी के उत्तरभेद भी गिनाये गये हैं।

बाह्य तप के लाभ, भेद और विधि

बाह्य तप के छह भेद उपर्युक्त पंक्तियों में उल्लेखित किये जा चुके हैं। अब इनके संक्षिप्त लाभ, भेद और विधि आदि का वर्णन किया जाता है।

१. अनशन तप

अनशन बाह्य तप का प्रथम भेद है। इसे तप महल का प्रथम सोपान भी कहा जा सकता है। आत्मा के आवरणों–तैजस् और औदारिक अथवा सूक्ष्म और स्थूल शरीरों की शुद्धि अनशन तप से ही होती है।

अशन का अभिप्राय है आहार और अनशन का अभिप्राय है निराहारता–आहार ग्रहण न करना।

अनशन से शरीर को तो लाभ होता ही है, उसके विकार समाप्त हो जाते हैं, साथ ही आत्मा को भी लाभ होता है।

जिस प्रकार सप्ताह में एक दिन का अवकाश मिलता है तो उस दिन आराम करके व्यक्ति तरोताजा हो जाता है, मशीनरी भी विश्राम करके पुनः ठीक ढंग से चलने लगती है। पंखे, हीटर, जनरेटर आदि विद्युत् उपकरण भी आराम चाहते हैं, यदि लगातार चलाए जायें तो फुँक जाते हैं, इनको भी विश्राम देना आवश्यक है।

इसी प्रकार हमारे शरीर की मशीनरी है। आहार करने से शरीर के समस्त अवयवों को काम करना पड़ता है। पाचक यंत्र आहार का पाचन करते हैं, लिवर रक्त बनाता है आदि। लगातार आहार लेने से इन्हें विश्राम नहीं मिलता, अतः इनमें गड़बड़ी आने लगती है। परिणामस्वरूप अग्निमांद्य, कब्ज, गैस, अल्सर आदि अनेक रोग उभरने लगते हैं। इनके शमन का एक मात्र सरल उपाय है–अनशन। इसलिए आयुर्वेद में लंघन को परम औषध कहा गया है।

अनशन का यह लाभ तो स्थूल शरीर में स्पष्ट दिखाई देता है। लेकिन इसका आत्मिक लाभ भी है। उसका अनुभव तप साधक करता है।

मात्र अनशन–आहार ग्रहण करना, भूखा रहना अनशन तप नहीं है। अनशन तप तब बनता है जब इसका उद्देश्य आत्म-शोधन अथवा आत्मा से संपृक्त शरीर का शोधन हो।

आध्यात्मिक क्षेत्र में अनशन का दूसरा नाम उपवास भी है। उपवास का अभिप्राय है आत्मा के समीप रहना यानी भोजन आदि की क्रियाओं को त्यागकर संपूर्ण समय आत्मा के स्वरूप का चिन्तन करना।

अनशन तप, यदि गहराई और विस्तृत दृष्टिकोण से विचार किया जाय तो यह तपरूपी महल की आधारभूमि है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनशन तप के उपभेद–अनशन तप बहुत विस्तृत है, इसके अनेक उपभेद हैं लेकिन उन सब को काल की समय-सीमा की दृष्टि से दो उपभेदों में वर्गीकृत कर दिया गया है–

(१) **इत्वरिक**–यह तप एक निश्चित समय-सीमा निर्धारित करके किया जाता है। यह एक उपवास चतुर्थभक्त से लेकर छह मास तक का हो सकता है।

(२) **यावत्कथिक**–इसमें जीवनभर के लिए अन्तिम श्वासोच्छ्वास तक आहार ग्रहण करने का त्याग कर दिया जाता है। जीवन की अन्तिम वेला में यह तप संलेखना के साथ किया जाता है। इसी को संथारा भी कहा जाता है।

इत्वरिक तप के उपभेद–समय-सीमा निर्धारित करके आहार-त्याग रूप इत्वरिक तप के प्रमुखतया छह उपभेद हैं–

(i) **श्रेणी तप**–चतुर्थ भक्त (उपवास), वेला, तेला, चौला, पंचोला, अठाई, पाक्षिक, मासखमण आदि से लेकर छह मास तक का अनशन तप श्रेणी तप होता है।

(ii) **प्रतर तप**–अंकों के क्रम से अनशन करना प्रतर तप है; उदाहरणार्थ–१, २, ३, ४; २, ३, ४, १; ३, ४, १, २ आदि अंकों के आधार से तप करना।

(iii) **घन तप**–घन के कोष्ठों में आने वाले अंकों के आधार पर तप करना। यथा–८ × ८ = ६४ इस आधार पर तप करना।

(iv) **वर्ग तप**–यथा ६४ × ६४ = ४,०९६ इन अंकों के अनुसार तप करना।

(v) **वर्ग-वर्ग तप**–४,०९६ × ४,०९६ = १६,७७,२१६ इन अंकों के अनुसार तप करना।

(vi) **प्रकीर्णक तप**–इसे विविध (Miscellaneous) तप कहा जा सकता है। इसके उत्तरभेद भी अनेक हैं–कनकावली, मुक्तावली, एकावली, महासिंहनिष्क्रीड़ित, लघुसिंहनिष्क्रीड़ित, गुणरत्नसंवत्सर, वज्रमध्यप्रतिमा, यवमध्यप्रतिमा, भद्रप्रतिमा, महाभद्रप्रतिमा, सर्वतोभद्रप्रतिमा, आयंबिल वर्द्धमान आदि प्रकीर्णक तप के अनेक भेद हैं।

नवकारसी, पोरसी, पूर्वार्द्ध, एकासन, एकल ठाणा (एक स्थान), दिवस चरिम, रात्रि-भोजन त्याग, अभिग्रह, चतुर्थभक्त, आयंबिल–इन दस तपों की गणना भी प्रकीर्णक तप में की जाती है।

इस प्रकार अनशन तप बहुत व्यापक है और साधकों द्वारा अधिकांशतः इसकी साधना की जाती है। इसका महत्त्व यह है कि सभी मुक्तिगामी जीव, यहाँ तक तीर्थंकर भी मुक्तिगमन से कुछ दिन पहले ही इस तप की आराधना प्रारम्भ कर देते हैं। संक्षेप में सभी साधक अनशन तप (यावत्कथिक अनशन तप) से मुक्ति प्राप्त करते हैं। जिसे संथारा भी कहा जाता है।

२. ऊनोदरी तप

यह बाह्य तप का दूसरा भेद है। ऊनोदरी का अभिप्राय है–भूख से कम भोजन ग्रहण करना। वस्त्र आदि के सन्दर्भ में इसका अभिप्राय आवश्यकता से कम लेना–अपने पास रखना। कषाय के सन्दर्भ में इसका अभिप्राय है–कषायों को–क्रोध, मान आदि को कम करना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऊनोदरी तप के भी द्रव्य, भाव आदि की अपेक्षा से आगमों में कई भेद बताये गये हैं।

३. भिक्षाचरी तप

यह तप साधु और साध्वियों के लिए है; क्योंकि उनकी सभी आवश्यकताएँ याचना से ही पूर्ण होती हैं। भोजन, वस्त्र आदि सभी अनिवार्य आवश्यक वस्तुएँ वे सद्गृहस्थ से याचना करके लाते हैं।

इस तप को माधुकरी अथवा भ्रामरी वृत्ति एवं गोचरी भी कहा गया है। इसका भाव यह है कि जिस प्रकार मधुकर अथवा भ्रमर पुष्पों के अतिरिक्त रस को ही चूसते हैं, उन्हें कष्ट नहीं देते। इसी प्रकार श्रमण-श्रमणी भी कई घरों से थोड़ा-थोड़ा भोजन लेकर अपनी आवश्यकता पूरी कर लेते हैं। साथ ही जिस प्रकार गाय घास को जड़ से उखाड़कर नहीं खाती, ऊपर-ऊपर का भाग ही चरती है। उसी प्रकार साधु की भी वृत्ति होती है। गृहस्थ को कष्टित न कर साधु अपनी आवश्यकता की पूर्ति कर लेता है।

भिक्षाचरी तप के अनेक भेद और विधि-विधान आगमों में बताये गये हैं।

गृहस्थों के लिए भिक्षाचरी तप के बदले में वृत्ति परिसंख्यान या वृत्ति संक्षेप तप बताया गया है।

गृहस्थ साधक इस तप में अपनी मन-वचन-काया की, कषायों की वृत्ति आदि को संक्षिप्त/संकुचित करता है।

४. रस-परित्याग तप

यह तप अस्वाद-वृत्ति की साधना है। भगवान महावीर ने औपपातिकसूत्र में इस तप की दो भूमिकाएँ बताई हैं—(१) रस को ग्रहण ही न करना, और (२) अगृहीत रस पर राग न करना।

रस-परित्याग तप में विकृतियों—दूध, दही, तेल, घी, गुड़, मिष्टान्न आदि का यथाशक्ति त्याग किया जाता है और जो भी खाद्य-पदार्थ ग्रहण किये जाते हैं, साधक (श्रमण-श्रमणी) उनमें अस्वाद-वृत्ति रखते हैं, स्वाद-मुग्ध नहीं होते।

५. कायक्लेश तप

कायक्लेश का अभिप्राय व्यर्थ ही काया (शरीर) को कष्ट देना नहीं है अपितु विभिन्न आसनों से शरीर को अनुशासित करना है। इस तप का उद्देश्य है—शरीर इतना अनुशासित हो जाय कि एक आसन से स्थिर रह सके, जिससे ध्यान आदि में विघ्न न पड़े; क्योंकि आसन की अस्थिरता से ध्यान प्रवाह में विक्षेप पड़ता है।

इस तप में पद्मासन, अर्ध-पद्मासन, वीरासन आदि से शरीर को अनुशासित किया जाता है। साथ ही श्वासोच्छ्वास की गति को भी नियन्त्रित और नियमित किया जाता है। इस क्रिया को प्राणायाम भी कहा गया है। प्राणायाम से मन की चंचलता कम होती है और स्थिरता बढ़ती है।

अतः मन और शरीर की स्थिरता में सहायक होने से ध्यान की पूर्व भूमिका तैयार करने के रूप में कायक्लेश तप का महत्त्व है।

६. प्रतिसंलीनता तप

इस तप में श्रमण मन और इन्द्रियों की बहिर्मुखी वृत्तियों को मोड़कर अन्तर्मुखी बनाता है—आत्मा में लीन करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके चार उत्तरभेद हैं–

(१) **इन्द्रिय-प्रतिसंलीनता**–इन्द्रियों को अन्तर्मुखी बनाकर आत्मा में लगाना।

(२) **कषाय-प्रतिसंलीनता**–क्रोध, मान, माया, लोभ–इन चारों कषायों के प्रवाह में आत्मा को न बहने देना। इसे कषायविजय भी कहा जाता है।

(३) **योग-प्रतिसंलीनता**–मन-वचन-काय इन तीनों योगों का निरोध करना, अशुभ से रोककर शुभ में प्रवृत्त करना।

(४) **विविक्त शयनासन सेवना**–स्त्री, पशु, नपुंसक से रहित शय्या और आसन का उपयोग करना। ऐसे स्थान का त्याग करना जहाँ स्त्री, पशु, नपुंसक का निराबाध (frequently) आवागमन हो अथवा समीप ही उनका निवास हो। क्योंकि इनकी समीपता से श्रमण के मन में विकारी भावों के उत्पन्न होने की संभावना है।

आभ्यन्तर तप के लाभ, भेद और विधि

आभ्यन्तर तप का प्रमुख उद्देश्य कार्मण शरीर का शोधन और कर्मनिर्जरा है। कर्मनिर्जरा से आत्मा की विशुद्धि होती है और मोक्ष-प्राप्ति का पथ प्रशस्त होता है।

पूर्व वर्णित बाह्य तप औदारिक और तैजस् शरीरों की विशुद्धि करते हैं और आभ्यन्तर तप कार्मण शरीर की। यही आभ्यन्तर तप की विशेषता है।

आभ्यन्तर तप के छह भेद हैं। इनका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है–

१. प्रायश्चित्त तप

यह आभ्यन्तर का प्रथम भेद है। इसका उद्देश्य है–पाप अथवा स्खलनाओं का शोधन करना, भूल को सुधारना।

पाप अथवा अपराध या स्खलना के लिए उचित दण्ड भी प्रायश्चित्त तप के अन्तर्गत ही परिगृहीत किये जाते हैं।

इसके आलोचनार्ह आदि दस भेद हैं।

२. विनय तप

विनय का अभिप्राय विनम्रता तथा अनुशासन–दोनों ही है। विनय आठ कर्मों को नष्ट करने वाला है। सामान्य विनम्रता सिर्फ विनय है। विनय तप का रूप तब लेता है; जब श्रमण अपने अहं को छोड़कर आत्मा को विनम्र बनाता है। मान-अभिमान के विसर्जन से ही विनय तप का रूप लेता है। और आत्म-परिणामों की विनम्रता ही विनय तप है।

आगमों में विनय तप के चार, पाँच और सात भेद बताये गये हैं; किन्तु सात भेद अधिक प्रसिद्ध हैं।

३. वैयावृत्य तप

वैयावृत्य का साधारणतः अर्थ सेवा किया जाता है किन्तु सेवा और वैयावृत्य में अन्तर है। वैयावृत्य में समर्पण भाव की प्रमुखता है। जब साधक (श्रमण) निष्काम भाव से और इच्छारहित होकर किसी रोगी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अशक्त श्रमण, आचार्य आदि की तन-मन से सेवा करता है और वह भी अग्लान भाव से तब वह सेवा वैयावृत्य तप का रूप लेती है।

तपस्वी, ग्लान आदि के रूप में वैयावृत्य तप के दस भेद आगमों में बताये हैं।

४. स्वाध्याय तप

मनीषियों ने स्वाध्याय शब्द की अनेक व्युत्पत्तियाँ दी हैं। जैसे–**सुष्ठु**–भलीभाँति, **आङ्** मर्यादा सहित अध्ययन; स्वाध्याय है। (अभयदेव)। **श्रेष्ठ अध्ययन** स्वाध्याय (आवश्यक सूत्र) **स्वयमध्ययनं स्वाध्यायः**–अन्य किसी के सहयोग के बिना स्वयं ही अध्ययन करना। **स्वस्यात्मनोऽध्ययनम्**–अपनी आत्मा का अध्ययन करना। **स्वेन स्वस्य अध्ययनम्**–अपने द्वारा ही अपना अध्ययन करना।

इस प्रकार स्वाध्याय के अनेक लक्षण विद्वानों ने बताये हैं। लेकिन स्वाध्याय तप का सरल अर्थ है–धार्मिक पुस्तकों को पढ़ना, मनन और निदिध्यासन करके आत्मा और तत्त्व के स्वरूप को हृदयंगम करना।

गुरु से वाचना लेना, अपनी शंकाओं का निवारण करना, सीखे हुए ज्ञान की बार-बार परिवर्तना करना, उस पर चिन्तन-मनन करना और धर्म का कथन करके अन्य लोगों को धर्माभिमुख बनाना–ये स्वाध्याय तप के पाँच उत्तरभेद हैं।

स्वाध्याय तप से बुद्धि निर्मल होती है, ज्ञान स्थायी रहता है, तत्त्व-अतत्त्व का विवेक होता है और मन की चंचलता समाप्त होकर वह एकाग्र होता है। स्वाध्याय तप में लीन श्रमण शुभ और शुद्ध भावों में रमण करता है। उसे आत्मानुभूति और आत्म-साक्षात्कार भी होता है।

५. ध्यान तप

यद्यपि आगमों में चार प्रकार के ध्यान बताये हैं–आर्त्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल; लेकिन अशुभ होने से आर्त्त-रौद्रध्यान त्याज्य हैं। धर्मध्यान और शुक्लध्यान ही तप की श्रेणी में आते हैं; क्योंकि ये शुभ हैं, शुद्ध हैं और आत्मा की मुक्ति के साक्षात् कारण हैं। शुक्लध्यान तो समाधि की अवस्था है और उसका अगला चरण मुक्ति है। मानव जीवन्मुक्त, अरिहंत, केवली, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, लोक-अलोक का ज्ञाता तथा वीतरागी बन जाता है।

धर्मध्यान के चार उत्तरभेद हैं–

(१) **आज्ञा विचय**–वीतराग भगवान–तीर्थंकर की आज्ञा पालन करना।

(२) **अपाय विचय**–कषाय, प्रमाद आदि दोषों से बचने के उपायों का चिन्तन करना।

(३) **विपाक विचय**–कर्मफल पर मनन करना।

(४) **संस्थान विचय**–लोक-अलोक, चतुर्गतिक संसार, छह द्रव्य, नव तत्त्व आदि के स्वरूप का चिन्तन, मनन और साक्षात्कार करना।

इसी प्रकार शुक्लध्यान के भी चार उत्तरभेद हैं–

(१) **पृथक्त्व वितर्क सविचार**–इस ध्यान में साधक (श्रमण) की ध्यान-धारा द्रव्य-पर्यायों और योगों में भ्रमण करती रहती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२) **एकत्व वितर्क अविचार**—इसमें आत्मा के परिणाम एक ध्येय में स्थिर हो जाते हैं। इसकी परिणति केवलज्ञान की प्राप्ति में होती है।

(३) **सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाती**—यह ध्यान केवलज्ञानियों को होता है।

(४) **समुच्छिन्न क्रिया निवृत्ति**—अयोगी केवलियों को होने वाला ध्यान।

धर्मध्यान का प्रारम्भ सम्यक्त्व-प्राप्ति से हो जाता है अतः यह मोक्षमहल का प्रथम सोपान है और शुक्लध्यान है अन्तिम सोपान।

आगमों में इन ध्यानों की भावनाओं, अनुप्रेक्षाओं, लक्षण आदि का भी वर्णन किया गया है।

६. व्युत्सर्ग तप

व्युत्सर्ग का अभिप्राय है ममत्व-विसर्जन। इस ध्यान में काय, कषाय, उपधि, भक्त-प्रत्याख्यान आदि सभी के प्रति ममत्व का त्याग कर दिया जाता है।

यह तप निर्ममत्व भाव की साधना है।

इस प्रकार यह आभ्यन्तर तप कर्मनिर्जरा और आत्म-विशुद्धि के साधन हैं। इनकी आराधना से सिद्धि सुलभ हो जाती है।

बाह्य तप भी सिद्धि-प्राप्ति में सहायक होते हैं। उनकी आराधना से भी साधक मुक्ति का वरण कर लेता है।

प्रकीर्णक तप का विशेष विवेचन

अनशन तप का ही एक भेद है—प्रकीर्णक तप। यह तप अनेक प्रकार का है। इसके कई उत्तरभेद हैं। इनमें से कुछ प्रमुख तपों का यहाँ संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है—

१. गुणरत्नसंवत्सर तप

इस तप की व्याख्या इन शब्दों में की गई है—

जिस तप में गुण रूप रत्नों वाला संपूर्ण वर्ष बिताया जाय वह गुणरत्नसंवत्सर तप कहा जाता है। इस तप में ४८० दिन यानी १६ महीने लगते हैं; जिसमें ४०७ दिन तपस्या (अनशन तप) के हैं और ७३ दिन पारणे (आहार ग्रहण) करने के हैं।

आराधना विधि—उपर्युक्त १६ महीनों में से साधक प्रथम मास में एक दिन तप और दूसरे दिन पारणा (आहार ग्रहण) करता है। दूसरे महीने में बेला तप (दो दिन का उपवास) करके तीसरे दिन आहार लेता है। तीसरे मास में तीन दिन का उपवास और चौथे दिन पारणा। चौथे महीने में चार दिन की तपस्या और पाँचवें दिन पारणा। इसी प्रकार छठे महीने में छह दिन की तपस्या के बाद पारणा किया जाता है।

इस तरह प्रति माह तपस्या का एक-एक दिन बढ़ाते हुए पारणा किया जाता है और सोलहवें मास में १६ दिन की तपस्या के बाद पारणा किया जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस तप की आराधना के काल में तपस्वी दिन के समय उत्कटुक आसन से अवस्थित रहकर सूर्य की आतापना लेता है और रात्रि के समय वस्त्रहीन होकर तथा वीरासन से अवस्थित होकर ध्यान-साधना करता है।

इस प्रकार १६ महीने (४८० दिन) में सिर्फ ७३ दिन आहार लेना, दिन में सूर्य की आतापना, रात्रि में निर्वस्त्र होकर ध्यान-साधना तथा ४०७ दिन की तपस्या के कारण यह गुणरत्नसंवत्सर तप बहुत ही दुष्कर है।

अन्तकृद्दशासूत्र में यह तप गौतमकुमार आदि १८ साधकों तथा किंकम, मकाई, अतिमुक्त आदि ने किया था। इसकी फलश्रुतिरूप कर्मों की निर्जरा की और अन्तकृत केवली बनकर अपने जीवन के लक्ष्य–मुक्ति को प्राप्त किया था।

२. रत्नावली तप

रत्नावली गले में पहनने का हार (स्त्रियों का आभूषण विशेष) होता है। जिस प्रकार इस हार की रचना होती है, उसी क्रम से जो तपाराधना की जाती है, उसको रत्नावली तप कहा जाता है। रत्नावली हार प्रारम्भ में दोनों ओर से पतला (सूक्ष्म), फिर मोटा और बीच में अधिक मोटा तथा फिर क्रमशः सूक्ष्म आकार वाला होता है। इसी क्रम की तपाराधना रत्नावली तप है।

जिस प्रकार यह हार शरीर की शोभा बढ़ाता है, उसी प्रकार यह तप भी आत्मा की मलिनता नष्ट करके उसके सद्गुणों को दीपित करता है।

आराधना काल–रत्नावली तप की चार परिपाटियाँ होती हैं। प्रत्येक परिपाटी में १ वर्ष, ३ मास, २२ दिन लगते हैं। अतः चारों परिपाटियों के पूर्ण होने में ५ वर्ष २ मास २८ दिन का समय लगता है।

अन्तकृद्दशासूत्र में यह तप आर्या काली ने किया और अपनी आत्म-विशुद्धि की।

३. कनकावली तप

कनकावली भी एक आभूषण का नाम है। जिस प्रकार इस आभूषण की रचना होती है, उसी क्रम से जो तप किया जाता है, वह कनकावली तप कहलाता है।

रत्नावली और कनकावली तप में काफी समानता है लेकिन कुछ भिन्नताएँ भी हैं।

अन्तकृद्दशासूत्र में यह तप आर्या सुकाली ने किया और अपनी आत्म-विशुद्धि की।

४. लघुसिंहनिष्क्रीड़ित तप

जिस प्रकार चलता हुआ सिंह पीछे मुड़कर गमन किये हुए क्षेत्र को देखता है–सिंहावलोकन करता है। उसी प्रकार जिस तप में की हुई तपस्या को मुड़कर फिर तपस्या करके आगे बढ़ा जाय–तपस्या की जाय, उसे लघुसिंहनिष्क्रीड़ित तप की संज्ञा से अभिहित किया जाता है।

अन्तकृद्दशासूत्र में यह तप आर्या महाकाली ने किया था और अपनी आत्म-विशुद्धि की।

५. महासिंहनिष्क्रीड़ित तप

महासिंहनिष्क्रीड़ित तप उतार-चढ़ाववयुक्त है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधना विधि–इसमें एक अनशन–पारणा, दो अनशन–पारणा इस क्रम से सोलह अनशन तप तक चढ़ा जाता है और फिर इसी क्रम से उतरकर एक अनशन–पारणा तक आया जाता है।

अन्तकृद्दशासूत्र में यह तप आर्या कृष्णा ने किया और अपनी आत्म-विशुद्धि की।

६. मुक्तावली तप

मुक्तावली का शाब्दिक अर्थ है–मोतियों का हार अथवा मोतियों की माला। दूसरे शब्दों में इसे मुक्ताहार भी कहा जाता है। जिस प्रकार मुक्ताहार में मोती क्रम से छोटे-बड़े के रूप में पिरोये जाते हैं तथा अन्त में गुच्छक दिया जाता है, उसी प्रकार से जिस तप में उपवासों की अवस्थिति होती है, उसे मुक्तावली तप कहा जाता है।

अन्तकृद्दशासूत्र में यह तप पितृसेन कृष्णा ने किया और अपनी आत्म-विशुद्धि की।

७. आयम्बिल वर्द्धमान तप

इस तप में आयम्बिल की संख्या क्रमशः बढ़ाई जाती है, इस कारण इसका नाम आयम्बिल वर्द्धमान तप है।

अन्तकृद्दशासूत्र में यह तप महासेन कृष्णा ने किया और अपनी आत्म-विशुद्धि की।

उपसंहार

तपों का यह संक्षिप्त विवेचन है। अन्तकृद्दशासूत्र में राजा श्रेणिक की रानियों–साधिकाओं द्वारा आचरित तपों का वर्णन पढ़ते हैं तो शरीर रोमांच से भर जाता है। सुकुमार शरीर वाली साधिकाओं की ऐसी दुष्कर और कठोर तपोसाधना पर विचार करते हुए हृदय उनके प्रति श्रद्धा से तरंगित होने लगता है, मस्तक झुक जाता है, वाणी वीणा झंकृत हो उठती है–धन्य हैं ऐसी महान् तपोसाधिकाएँ।

● ●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Chapter 4

Various Austerities : Procedures, Codes and Purpose

What is *Tap* (Austerity) ?

Tap or austerity is a process of cleansing of the self or soul. In Ayurvedic medicine mercury is purified by heating (fire) and turned into a medicine that acts as a tonic to increase the strength and potency of the body. In the same way in the spiritual field the process of *Tap* is used to cleanse the soul and the body where the soul resides. It is mentioned in *Uttaradhyayan Sutra* that *Tap* purifies soul.

Besides being a cleansing process it is highly auspicious as well. According to *Dashavaikalik Sutra* (1/1)—*Dharma* is the best among propitious things. The attributes of *Dharma* are *Ahimsa*, Discipline and *Tap* (Austerities).

Tap is the instrument of uplift of soul. It purifies the body and the mind and boosts soul towards its lofty goal.

Tap is also the cause of acquiring many special powers. One who practices austerities gains numerous unique achievements which are called labdhi or special powers.

The reverse of '*Tap*' is '*Pat*' which means "to fall". This is an indication that he who does not do *Tap* or does *Tap* wrongly becomes defiled. In spiritual context, he falls.

The Purpose of *Tap*

Although it is true that *Tap* gives numerous special powers, but the basic and only purpose of *Tap* is shedding *karmas* and cleansing soul. Any *Tap* done for fulfillment of some wish or desire becomes heat or fire and scorches soul. It causes drifting in numerous dimensions in numerous births and its ultimate result is detrimental or destructive.

That is the reason that only the desireless *Tap* or the *Tap* done for purifying soul is considered to be beneficial.

Types of *Tap*

According to *Uttaradhyayan Sutra* and other *Agams* there are two broad classes of *Tap*—(1) Outer, and (2) Inner.

The outer *Tap* mainly purifies the outer mantle or the body, but at the same time it purifies the soul also. It becomes an instrument of liberation by imparting the capacity to indulge in inner *Tap*, which is the natural process of purifying soul.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Further Divisions

Both these classes of *Tap* have been further divided into six types each—

Outer *Tap*—(1) *Anshan* (fasting), (2) *Unodari* (diet restrictions or eating less than normal requirement), (3) *Bhiksha-charya* (alms collecting), (4) *Ras-Parityag* (abandoning tasty food), (5) *Kayaklesh* (hardships of the body), and (6) *Pratisanleenata* (introversion). All these have further divisions.

Inner *Tap*—(1) *Prayashchit* (atonement), (2) *Vinaya* (humbleness or modesty), (3) *Vaiyavratya* (service to others), (4) *Svadhyaya* (self-study), (5) *Dhyan* (meditation), and (6) *Vyutsarga* (detachment).

BENEFITS, TYPES AND PROCEDURES OF OUTER *TAP*

The six types of outer *Taps* have been mentioned above. Now we give brief information about their forms, benefits, and procedures, etc.

1. *Anshan* (Fasting)

This is the first type of the outer *Taps*. It may be called the first section of the palace of *Tap*. The purification of the physical covering of soul or the *Taijas* and *Audarik* bodies or subtle and gross bodies is achieved through fasting.

Ashan means food or to eat food, and *Anshan* means absence of food or not to eat food.

Fasting is beneficial for the body because it removes disorders. At the same time it benefits the soul also.

A weekly holiday provides rest to the body and the person gets refreshed. A machine runs better after a rest is given to it. Fan, heater, generator and other electrical appliances also need rest. If they are run continuously they will burn out, therefore it is essential to give them rest.

Similar is the functioning of the machine that is our body. With intake of food every part of the body has to function. The digestive system digests food and liver makes blood. When we eat continuously these parts do not get rest and they start malfunctioning. This causes many ailments like loss of appetite, constipation, flatulence, ulcer etc. The simplest cure for these is fasting. That is the reason that abstaining from food intake is termed as the ultimate medicine in Ayurveda.

This benefit of fasting is visible in the gross body. But it also has spiritual benefits that are only experienced by a seeker who indulges in austerities.

Simply fasting or not eating food or remaining hungry is not *Anshan Tap*. Fasting becomes *Tap* when its purpose is cleansing the soul or cleansing of the body that is attached to the soul.

In spiritual terms *Anshan* is also called *Upavaas*, which means to live near soul. In other words, to abandon all activities of the body, including food intake and all the time to contemplate about soul.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Considering from a more profound and wide angle, *Anshan* is the foundation of the palace that is *Tap*.

The sub-types of *Anshan*—The *Anshan Tap* is very wide and it has numerous sub-types. All these are broadly divided into two classes with reference to their periodicity—

(1) *Itvaric* (Limited Periodicity)—This type of *Tap* is observed by fixing a time limit to its duration. This includ s one day to six month long fasting.

(2) *Yavatkalik* (All Time)—This means fasting for life time or till the last breath. This is done during the last days of one's life with *Sanlekhana*. It is also called *Santhara*.

Types of *Itvaric Tap*—There are six main types of this *Tap* of abandoning food for a predetermined period—

(i) *Shreni Tap*—To observe fast for one day, two days, three days, four days, five days, eight days, a fortnight, a month and so on up to six months come under this class.

(ii) *Pratar Tap*—To observe *Tap* following a predetermined sequence of numbers (the number indicates number of fasting days separated by a day of eating): for example 1, 2, 3, 4; 2, 3, 4, 1; 3, 4, 1, 2.

(iii) *Ghan Tap*—To observe *Tap* following the sequence of numbers in square of 8 rows and 8 columns.

(iv) *Varg Tap*—To observe *Tap* following the sequence of numbers in square of 8 x 8 = 64 rows and 64 columns.

(v) *Varga-varga Tap*—To observe *Tap* following the sequence of numbers in square of 64 × 64 = 4,096 rows and 4,096 columns.

(vi) *Prakirnak Tap*—This class includes miscellaneous *Taps*. It has numerous types—*Kanakavali, Muktavali, Ekavali, Mahasimhanishkridit, Laghusimhanishkridit, Gunaratnasamvatsar, Vajramadhyapratima, Yavamadhyapratima, Bhadrapratima, Mahabhadrapratima, Sarvatobhadrapratima, Ayambil Vardhaman* etc.

Navakarsi, Porasi, Purvardha, Ekasan, Ekalthana, Divas Charim, Ratribhojan Tyag, Abhigraha, Chaturthabhakt, Ayambil—these ten Taps are also included in this class.

Thus the scope of *Anshan Tap* is very wide and the seekers mainly observe these *Taps*. Its importance lies in the fact that all the beings who get liberated start observing these *Taps* a few days before their liberation. In brief all seekers get liberated with the help of *Anshan Tap*. It is also called *Santhara*.

2. *Unodari Tap*

This is the second type of outer *Tap*. *Unodari* means to eat less than ones normal appetite. In context of apparels etc. it means to get and keep less than the need. In context of passions it means to reduce passions like anger, conceit etc.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Based on physical and mental parameters there are many sub-types of these *Unodari Tap* mentioned in the *Agams*.

3. *Bhiksha charya* (Alms Collecting)

This *Tap* is for *sadhus (shramans)* and *sadhvis (shramanis)* because all their needs are met through begging. They bring food, garbs and all other essential things by begging from religious citizens.

This *Tap* is also called *Madhukari* or *Bhramari* (bumble-bee-like) activity or *Gochari* (collecting from different spots like a cow). The idea behind this is that as a bumble-bee sucks only the extra pollen from numerous flowers without causing any damage, likewise *Shramans* and *Shramanis* also meet their needs by collecting small quantities of food from numerous houses. Also, a cow does not pluck out grass from its roots; it only grazes the top portion of grass. Ascetics have the same attitude. An ascetic meets his or her need without causing any inconvenience to a householder.

Numerous types of alms collecting and rules have been detailed in *Agams*.

For householders a parallel type of *Tap* has been defined. It is called limiting or reducing needs.

A householder observing this *Tap* limits or reduces the indulgences of mind, speech, and body as well as passions.

4. *Ras-Parityag* (Abandoning Tasty Food)

This *Tap* is the practice of controlling one's taste buds. Bhagavan Mahavir has divided it into two parts—(1) Total abstinence from accepting tasty food, and (2) Not to crave for a tasty food that is not available.

In this *Tap* the proscribed eatables are—milk, curd, oil, butter, jaggery, sweets etc. They are avoided as far as possible. The seeker (ascetic) refrains from enjoying their taste, they also discipline their desire for such food.

5. *Kayaklesh* (Hardships of the Body)

Hardship of the body does not mean causing discomfort or pain to the body aimlessly. It is to discipline the body with the help of various postures. The purpose of this *Tap* is that the body becomes so disciplined that it may remain in one posture for a long time. This is practiced in order to help remain in one posture during meditation without any disturbance from the body. Any discomfort in a posture causes distraction in meditation.

In this *Tap*, body is disciplined by practicing various yogic postures like lotus, half-lotus, brave and others. With this, the frequency and period of breathing is also controlled and regulated. This process is called pranayam and it helps reducing wandering of mind by stabilizing it.

Therefore the importance of this *Tap* lies in its being the instrument of perfecting the stability of the body and mind prior to indulging in meditation.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

6. *Pratisamleenata Tap* (Introversion)

In this *Tap* the ascetic turns the direction of senses and mind from outside to inside or towards the soul. From extrovert he becomes introvert.

It has four sub-classes—

(1) *Indriya-Pratisamleenata*—The turning of senses towards soul.

(2) *Kashaya-Pratisamleenata*—To stop the soul from drifting along the flow of four passions—anger, conceit, delusion and greed. This is also called winning over passions.

(3) *Yoga-Pratisamleenata*—To avoid indulgences of body, speech and mind, or to block their harmful indulgences and direct them towards spiritual indulgences.

(4) *Vivikta Shayanasan Sevana*—To use a bed or seat which is not already occupied by woman, animal or hermaphrodite. To avoid a place where these three freely come and go or live in proximity. This is because their proximity may cause perversions in the minds of ascetics.

BENEFITS, TYPES AND PROCEDURES OF INNER *TAP*

The principle goal of inner *Tap* is to cleanse the *karman* body by shedding *karmas*. Purity of soul is achieved through shedding of *karmas* and this opens the path of liberation.

The outer *Taps* detailed earlier help cleansing the *Audarik* and *Taijas* bodies and the inner *Taps* cleanse the *Karman* body. This is the speciality of inner *Tap*.

There are six types of inner *Tap*. Their brief description is as follows—

1. *Prayashchit Tap* (Atonement)

This is the first type of inner *Tap*. Its goal is to counter sins or mistakes and to correct faults.

An appropriate punishment for sin or misdeed or mistakes is part of this *Tap*.

It has ten sub-types including self-criticism.

2. *Vinaya Tap* (Humbleness or Modesty)

Vinaya means modesty as well as discipline. It is instrumental in destroying eight types of *karmas*. Normal modesty is just *vinaya*. It takes the form of *Tap* when the *Shraman* rids himself of his ego and makes his soul humble. *Vinaya* turns into *Tap* only with abandoning of conceit and pride. Modesty of attitudes is *Vinaya Tap*.

In *Agams* there are mentions of four, five, and seven types of *Vinaya*. The seven types of *Vinaya* are more popular.

3. *Vaiyavratya Tap* (Service to others)

The simple meaning of *Vaiyavratya* is service to others. But there is a difference between the two. In *Vaiyavratya* the feeling of submission is prominent. When a seeker

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

serves, with his body and mind, a sick or week *Shraman* or *Acharya* etc. without any expectation or desire, then only *Vaiyavratya* takes the form of *Tap*.

In *Agams* ten types of *Vaiyavratya* are mentioned on the basis of class of object—hermit, ailing etc.

4. *Svadhyaya Tap* (Self-study)

Scholars have enumerated various origins of the term *Svadhyaya*. For example—disciplined study (Abhayadev), good study *(Avashyak Sutra)*, self study or study without any help, to study one's soul, study of self by self etc.

Thus, scholars have given many hues to *Svadhyaya*. But the simple meaning of *Svadhyaya Tap* is to read religious books and to absorb or understand the true form of fundamentals and soul, with the help of contemplative analysis.

The five sub-types of *Svadhyaya* are—to take lessons from the guru, to remove one's doubts, to revise the acquired knowledge again and again, to ponder over it and to direct others toward religion by reciting religious texts.

Svadhyaya Tap purifies mind, knowledge becomes permanent, capacity to discern between true and false fundamentals develops, wavering of thoughts ends, concentration is gained. A *Shraman* indulging in *Svadhyaya Tap* always dwells in pious thoughts. He finally experiences and beholds self or soul.

5. *Dhyan Tap* (Meditation)

Although in the *Agams dhyan* or meditation is said to be of four types—*artta, raudra, dharma* and *shukla*, but as the first two are bad they are proscribed. Only *dharma dhyan* and *shukla dhyan* are considered as *Tap* because they are good, pure and are direct means of liberation.

Shukla dhyan is in fact the state of *samadhi* (deep meditation) and its next step is liberation. Through this man becomes free of the cycles of rebirth, *Arihant, Kevali*, omniscient, all perceiving, knower of lok and alok and absolutely detached.

Dharma dhyan is of four types—

(1) ***Ajna vichaya***—To follow the tenets of Tirthankar.

(2) ***Apaya vichaya***—To ponder over the means of avoiding passions, illusions and other vices.

(3) ***Vipak vichaya***—To ponder over the consequences of *karmas*.

(4) ***Sansthan vichaya***—To perceive, think and ponder about world and the space beyond, four dimensional world, six entities, nine fundamentals etc.

Similarly there are four types of *shukla dhyan*—

(1) ***Prithakatva vitark savichar***—The stream of contemplation moves around fundamental entities, their modes and combinations.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(2) ***Ekatva vitark savichar***—All thoughts, attitudes and feelings are focussed on one goal. This leads to *Keval-jnana*.

(3) ***Sukshma kriya apratipati***—This is possible only for those who have acquired *Keval-jnana* but are still left with life-span determining *karmas*.

(4) ***Samuchhinna kriya nivritti***—This is possible only for those who are *Ayogi Kevalis* or those who have no bonds of *karma* left.

The stage of *dharma dhyan* starts with gaining *samyaktva*, therefore it is the first step towards liberation. *shukla dhyan* is the last step.

In *Agams* various attitudes, directions and signs of all these types of meditations have been described.

6. *Vyutsarga Tap* (Detachment)

Vyutsarga means abandoning fondness. In this meditation fondness for everything including the body, passions, equipment and food is abandoned.

This *Tap* is the practice of non-fondness or total detachment.

Thus these inner *Taps* are the means of shedding *karmas* and consequent purity of soul. By practicing these liberation becomes easy.

Outer *Taps* are also helpful in attaining liberation. Their practice also leads to liberation.

ELABORATION OF *PRAKIRNAK TAP*

Prakirnak Tap is a type of the *Tap* of abstaining of food, in other words—fasting. This is of numerous types. It has many sub-categories. Brief description of some of these is given here—

1. *Gunaratnasamvatsar Tap*

This *Tap* has been defined in these words—

The *Tap* where one complete year is filled with gems of virtues is called *Gunaratnasamvatsar Tap*. Its duration is 480 days or sixteen months. Out of which 407 days are fasting days and 73 are eating days.

Procedure—During the first of the sixteen months the seeker fasts on alternative days. During the second month he fasts for two days and eats on the third day. During the third month he fasts for three days and eats on the fourth day. During the fourth month he fasts for four days and eats on the fifth day. During the fifth month he fasts for five days and eats on the sixth day. During the sixth month he fasts for six days and eats on the seventh day.

This way the number of fasting days keeps on increasing and during the sixteenth month he eats after fasting for 16 days.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Throughout the period of observing this Tap the seeker tolerates the heat of the sun sitting in *Utkata* posture during the day and during the night he undresses himself and sits in meditation in *Virasan*.

Because of eating only on 73 days out of 16 months (480 days), tolerating sun during the day, meditating naked during the night and fasting for a total of 407 days, *Gunaratnasamvatsar Tap* is a very difficult Tap.

As mentioned in *Antakriddasha Sutra* this *Tap* was practiced by the group of 18 ascetics including Gautam Kumar, Kimkam, Makai, Atimukta etc. As a result of it they shed their *karmas* and became *antakrit Kevalis* to attain liberation, the goal of their life.

2. *Ratnavali Tap*

Ratnavali means gem studded necklace or the ornament women wear around neck. The *Tap* based on the structure of a necklace is called *Ratnavali Tap*. This type of necklace is thin at both ends, then gradually becomes thicker reaching its maximum thickness at the center. The *Tap* that follows this sequence is called *Ratnavali Tap*.

Like a necklace enhances the beauty of the body, this *Tap* also destroys the vices of the soul and enhances its virtues.

The Period of Practice—This *Tap* has four sequences. One sequence is completed in 1 year, 3 months and 21 days. Therefore, to complete all the four sequences it takes 5 years, 2 months and 28 days.

In *Antakriddasha Sutra* it is mentioned that this *Tap* was practiced by Arya Kali for purifying her soul.

3. *Kanakavali Tap*

This is also the name of an ornament. The *Tap* is done according to the sequence followed in the design of this ornament, therefore it is called *Kanakavali Tap*.

It is similar to *Ratnavali Tap* but with some variations.

In *Antakriddasha Sutra* it is mentioned that this *Tap* was practiced by Arya Sukali for purifying her soul.

4. *Laghusimhanishkridit Tap*

A lion while walking looks back and inspects the area he has covered. In the same way the *Tap* in which the sequence of austerities is repeated before advancing further, is called *Laghusimhanishkridit Tap*.

In *Antakriddasha Sutra* it is mentioned that this *Tap* was practiced by Arya Mahakali for purifying her soul.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

5. *Mahasimhanishkridit Tap*

This *Tap* has many ups and downs.

Procedure—It starts with one day fast followed by a day of eating, then a two day fast followed by a day of eating. The number of fasting days is increased one by one and then reduced one by one to conclude by a one day fast.

In *Antakriddasha Sutra* it is mentioned that this *Tap* was practiced by Arya Krishna for purifying her soul.

6. *Muktavali Tap*

Muktavali means a necklace of pearls. In a pearl necklace the size of pearls gradually increases and it ends in a bunch of pearls. The *Tap* in which fasting days follow this sequence is called *Muktavali Tap*.

In *Antakriddasha Sutra* it is mentioned that this *Tap* was practiced by Pitrasen Krishna.

7. *Ayambil Vardhaman Tap*

In this *Tap* the number of *Ayambils* is gradually increased, therefore it is called *Ayambil Vardhaman* (increasing) *Tap*.

In *Antakriddasha Sutra* it is mentioned that this *Tap* was practiced by Mahasen Krishna.

Conclusion

This is a brief description of *Tap*. In *Antakriddasha Sutra* the description of *Taps* done by king Shrenik's queens, who got initiated, is inspiring and sensational. Such difficult and rigorous austerities done by delicate female ascetics fills one with respect when thought about. Heads are bowed with reverence. Words of respect are uttered—blessed are such great austere female ascetics.

●●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संलेखना-संथारा : एक पर्यालोचन

संलेखना-संथारा जैनधर्म के विशिष्ट शब्द हैं। संलेखना का अभिप्राय है–मृत्यु कला। वीरतापूर्वक, निर्भय होकर मृत्यु का स्वागत करना।

प्रस्तुत अन्तकृद्दशांगसूत्र में वर्णित सभी साधक (गजसुकुमाल मुनि के अतिरिक्त) अपने अन्तिम समय में संलेखना-संथारा की आराधना करते हुए देह का विसर्जन करके मुक्ति प्राप्त करते हैं। अतः यहाँ संलेखना-संथारा का संक्षिप्त विवेचन आवश्यक है।

संलेखना

पहले हम संलेखना को लेते हैं।

संलेखना का अभिप्राय

'संलेखना' शब्द शाब्दिक दृष्टि से दो शब्दों के सम्मिलन से निष्पन्न हुआ है–सत् + लेखना अथवा सं + लेखना। सन्धि नियम के अनुसार क्रमशः इनका रूप बनता है–सल्लेखना तथा संलेखना। लेकिन 'सत्' शब्द भी यहाँ सम्यक् के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। सत् अर्थात् सम्यक् रूप से तथा 'लेखना' अर्थात् कृश करना, क्षीण करना यानी सम्यक् प्रकार से काय और कषाय को क्षीण करना संलेखना है।

जैन दृष्टि से काय और कषाय को कर्मबन्धन का मूल कारण माना गया है। उपलक्षण से यहाँ काय में मन और वचन भी गर्भित है। कषाय के तो चार भेद हैं ही–क्रोध, मान, माया और लोभ। कर्मग्रन्थों में जो 'योग और कषाय' से कर्मबन्धन माना गया है, वही अभिप्राय यहाँ 'काय और कषाय' से है।

इसका फलित यह है कि संलेखना में जो काय और कषाय को कृश अथवा क्षीण किया जाता है, उससे कर्मबन्धन भी क्षीण होते हैं और क्षीण होते-होते क्षय भी हो जाते हैं। परिणामस्वरूप साधक कर्म-बन्धनों से मुक्त भी हो जाता है।

यही कारण है कि प्रत्येक धार्मिक व्यक्ति, चाहे वह श्रावक हो अथवा श्रमण हो, संलेखना-संथारापूर्वक अपनी इहलीला समाप्त करने की भावना रखता है।

संलेखना की भावना

संलेखना की भावना होते हुए भी अचानक ही संलेखना ग्रहण नहीं की जाती। इसके लिए साधक अपनी शारीरिक स्थिति पर विचार करता है, गुरु के समक्ष अपनी भावना प्रगट करता है, अनुभवी गुरु उचित समझते हैं तो संलेखना की आज्ञा देते हैं और गुरु की आज्ञा पाकर ही साधक संलेखना ग्रहण करता है।

आगमों के वर्णन के अनुसार साधक संलेखना ग्रहण करने से पूर्व अपने शरीर की स्थिति पर इस प्रकार विचार करता है–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब मेरा शरीर बहुत कृश हो चुका है, बल-वीर्य बहुत कम हो गये हैं। अपनी आत्म-शक्ति उत्थान-पराक्रम से ही उठने-बैठने, चलने-फिरने की क्रिया कर पाता हूँ। इन क्रियाओं में भी मुझे क्लेश का अनुभव होता है। इस जीर्ण शरीर से नित्य क्रियाएँ भी नहीं कर पाता हूँ। धर्म-साधना में यह शरीर साधक न होकर बाधक बनता जा रहा है। ऐसे शरीर को धारण करने से अब कोई लाभ नहीं है। इसे त्याग देना ही श्रेयस्कर है।

इस भावना को गुरु के सामने व्यक्त करने पर जब गुरु की आज्ञा प्राप्त हो जाये और वे संलेखना-संथारा करा दें, तब साधक संलेखना की प्रक्रिया अपनाते हुए विधिवत् उसकी आराधना करता है।

संलेखना की विधि

सर्वप्रथम साधक आहार की मात्रा क्रमशः अल्प करता हुआ शरीर को और भी कृश करता है। साथ ही कषायों को भी कृश-क्षीण करता जाता है।

आहार में यहाँ अशन, पान, खादिम, स्वादिम--चारों प्रकार का आहार सम्मिलित है। साधक अपनी शारीरिक स्थिति के अनुसार क्रमशः आहार आदि को कम करता हुआ, त्याग कर देता है और शांतिपूर्वक मृत्यु की प्रतीक्षा करता है तथा मृत्यु के समय समाधिपूर्वक उसका वरण करता है।

संलेखना का कालमान

यों तो संलेखना का कालमान निश्चित करना बहुत ही जटिल समस्या है। क्योंकि अन्तकृद्दशासूत्र में ही कुछ साधक एक मास की संलेखना द्वारा ही मुक्त होते हैं तो अर्जुनमाली अनगार १५ दिन की ही संलेखना के उपरान्त मुक्त हो जाते हैं। वर्तमान काल में भी कोई साधक ४० दिन की संलेखना से तो कोई चौथे दिन ही देह त्याग कर देते हैं।

फिर भी प्रवचनसारोद्धार आदि प्राचीन ग्रन्थों में संलेखना का उत्कृष्ट कालमान बारह वर्ष का बताया गया है, मध्यम १२ मास का और जघन्य ६ मास का कहा गया है। वहाँ विस्तारपूर्वक संलेखना विधि भी वर्णित की गई है।

इस संक्षिप्त लेख में उस समग्र विधि का वर्णन न तो संभव है और न इच्छित ही। लेकिन इतना यथार्थ है कि इस विस्तृत वर्णन से संलेखना की विशुद्धता और महत्त्व पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है।

साथ ही यह भी स्पष्ट होता है कि काय-कषाय को कृश करता हुआ तथा मनोनिग्रह के परिणामस्वरूप साधक परमहंस (विकारशून्यता) की स्थिति प्राप्त कर लेता है तथा समाधिपूर्वक--शांत परिणामों से शरीर का त्याग करता है।

संलेखना ग्रहण में सतर्कता

संलेखना की आराधना प्रारम्भ करने से पहले साधक को सतर्कता रखना आवश्यक है। यदि उसने संलेखना की आराधना प्रारम्भ कर दी, अनशन भी शुरू कर दिया, काय और कषाय को भी क्षीण कर दिया; किन्तु आयु-कर्म अभी प्रबल है, मृत्यु का समय सन्निकट नहीं है, आयु की डोरी निकट भविष्य में टूटने वाली नहीं है तो अनशन लम्बे समय तक चल सकता है। परिणामस्वरूप यह भी संभव है कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षुधा-पिपासा की तीव्र वेदना के कारण साधक के भाव कलुषित हो जायें, परिणाम मलिन हो जायें, भावों की उज्ज्वलता उच्च कोटि की न रहे।

इसलिए संलेखना ग्रहण के पूर्व साधक अपनी शारीरिक स्थिति का विचार तो करे ही साथ ही आयुष्य बल का विचार करना भी अति आवश्यक है।

संसारी व्यक्ति दस प्राणों से जीवित रहता है–वे हैं–इन्द्रिय-बल-प्राण (६–८) मन-वचन-काय-बल-प्राण, (९) श्वासोच्छ्वास, और (१०) आयु-बल-प्राण। इनमें आयु-बल सबसे प्रबल है। इन्द्रिय और योग-बल क्षीण हो सकते हैं, श्वास का आवागमन भी अवरुद्ध हो सकता है; लेकिन आयु शेष हो तो प्राणी पुनः जीवित हो सकता है और वर्षों तक जीवित रहता है।

आधुनिक युग में भी जब चिकित्सा विज्ञान (Medical Science) इतना उन्नत हो चुका है, ऐसी घटनाएँ घटित होती रहती हैं, जब डॉक्टरों ने किसी व्यक्ति को मृत घोषित कर दिया, जीवन का कोई लक्षण न रहा, परिवारीजन श्मशान ले गये; लेकिन वह चिता पर से उठ बैठा और वर्षों तक जीवित रहा।

उपरोक्त वर्णन का अभिप्राय यह है कि संलेखना ग्रहण करने से पूर्व आयु कर्म पर विचार करना आवश्यक है। इसीलिए जैन शास्त्रों में यह विधान किया गया है कि अनुभवी गुरु से आज्ञा लेकर ही संलेखना ग्रहण करनी चाहिए।

संलेखना और अनशन

प्रस्तुत अन्तकृद्दशांगसूत्र और अन्य आगमों में भी जब साधक संलेखना की आराधना करता है तब यही पाठ उपलब्ध होता है–"**मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता–जाव सिद्धे।**" प्रस्तुत पाठ से यह सिद्ध होता है कि संलेखना और अनशन साथ-साथ चलते हैं और इस सम्मिलित प्रयास से काय और कषाय की क्षीणता होती है तथा संलेखना और अनशन जीवन के अन्तिम समय तक चलते हैं और साधक सुगति अथवा मुक्ति का अधिकारी बन जाता है।

जीवन की अन्तिम साधना : संलेखना

जिस प्रकार परीक्षा विद्यार्थी के वर्षभर की शिक्षा की कसौटी है कि उसने कितना पढ़ा, कितना कंठस्थ किया; उसी प्रकार संलेखना साधक-जीवन की अन्तिम परीक्षा है कि उसने धर्म को जीवन में कितना उतारा है, व्रत-नियम-संयम आदि का कितना पालन किया है वह अनुभूति के स्तर पर कितनी डिग्री तक पहुँचा है।

संलेखना, साधक-जीवन की अन्तिम साधना है, इसके उपरान्त अन्य कोई साधना शेष नहीं रहती जैसा कि संलेखना के पाठ से स्पष्ट है–"**अपच्छिम मारणंतिय संलेहणा झूसणा आराहणा।**" यहाँ अपच्छिम और मारणंतिय–इन दो शब्दों से स्पष्ट है कि संलेखना साधक-जीवन की अन्तिम साधना है और जीवन के अस्त तक इसकी आराधना की जाती है।

संलेखना का महत्त्व एवं विशेषताएँ

संलेखना साधक-जीवन की महत्त्वपूर्ण आराधना है। इस साधना से साधक के सभी दुःखों और कष्टों का अन्त हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संलेखना ग्रहण करते समय साधक सभी जीवों से क्षमायाचना करके स्वयं को वैर-वैमनस्य और विरोध आदि हीन प्रवृत्तियों का त्याग करता हुआ समभावों में रमण करता है, विषम भाव अपने हृदय में नहीं आने देता। मैत्री भाव में रमण करता है।

वह न मृत्यु से भयभीत होता है और न मृत्यु की इच्छा ही करता है। जिस तरह उसने जीवन को उच्चतम ढंग से जीया है उसी तरह मृत्यु को भी कलात्मक रूप से अपनाता है। वह मृत्यु को भयोत्पादक नहीं अपितु महोत्सव मानता है।

वस्तुतः मृत्यु से वही भयभीत होते हैं जो मृत्यु का स्वरूप नहीं जानते। जिन्होंने इस जीवन में सत्कर्म न किये हों, पापकर्म किये हों--वे इस आशंका से भयभीत होते हैं कि आगामी जन्म हमारे लिए घोर दुःखपूर्ण होगा। ऐसे लोगों को ही मृत्यु अन्धकारपूर्ण और त्रासदायी दिखाई देती है। इसके विपरीत जो लोग धार्मिक जीवन जीते हैं, आशाओं-इच्छाओं-आकांक्षाओं के दास नहीं होते, तृष्णा नागिन जिन्हें नहीं डसती उनके लिए मृत्यु उतनी ही सहज होती है, जैसे--पुराने वस्त्र को उतारकर नया वस्त्र पहन लेना।

संलेखना की आराधना में दत्तचित्त साधक न जीने की इच्छा करता है, न मृत्यु की; न उस लोक में प्रशंसा-प्राप्ति की इच्छा होती है, न आगामी जीवन में सुख-प्राप्ति की तथा न किसी भी प्रकार के कामभोगों की आशंसा। वह इन सब से दूर रहकर शांतिपूर्वक समाधिमरण प्राप्त करता है।

मरण के प्रकार

प्रसंगोपात्त यहाँ मरण के प्रकारों को जानना आवश्यक है। इसके प्रमुख भेद दो हैं--(१) सकाममरण, और (२) अकाममरण; अथवा (१) अनैच्छिकमरण, और (२) स्वैच्छिकमरण; अथवा (१) बालमरण, और (२) पण्डितमरण। पण्डितमरण का ही दूसरा नाम समाधिमरण है।

बालमरण के अनेक प्रकार हैं और यह सामान्यतः सभी असंयमी और अज्ञानी प्राणियों को होता रहता है। भगवती आदि आगमों में बालमरण के १२ भेद बताये गये हैं। लेकिन आज के प्रगतिशील भौतिकवादी वैज्ञानिक चमत्कारों से भरे चकाचौंध युग में बालमरण के अनेक प्रकार प्रचलित हो गये हैं।

संक्षेप में बालमरण कषायों की तीव्रता के आवेश में, वर्तमान कष्टों से मुक्ति की आशा तथा आगामी जन्म में सुखोपभोगों की लालसा से बलात् प्राणों का त्याग करना है।

संलेखना न आत्महत्या है, न स्वेच्छा-मृत्यु

वर्तमान युग तर्कवादी और बुद्धिवादी है। साथ ही एक वस्तु, सिद्धान्त और प्रक्रिया से दूसरी वस्तु, सिद्धान्त अथवा प्रक्रिया की तुलना करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। प्राचीन आध्यात्मिक धार्मिक सिद्धान्तों, साधनाओं को भी आधुनिक भौतिकवादी सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में व्याख्यायित करने का प्रयास किया जा रहा है। यहाँ तक कि उन उच्चकोटि की साधनाओं पर आक्षेप भी लगाये जा रहे हैं।

कुछ अतिबुद्धिवादी संलेखना और समाधिमरण पर आत्महत्या का आक्षेप लगाते हैं। लेकिन संलेखना और आत्महत्या में आकाश-पाताल का अन्तर है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) आत्महत्या सदा क्रोध आदि कषायों के तीव्र आवेगों में की जाती है; जबकि संलेखना में कषाय अत्यंत क्षीण होते हैं।

(२) परिस्थितियों से उत्पीड़ित, उद्विग्न और जिनकी इच्छाएँ पूर्ण होने की आशा समाप्त हो चुकी हो, ऐसे व्यक्ति आत्महत्या करते हैं; जबकि संलेखना करके व्यक्ति न उद्विग्न होते हैं और न इनकी कोई इच्छाएँ ही होती हैं।

(३) आत्महत्या में बलात् मृत्यु का वरण होता है, मैं मरूँगा–ऐसी उत्कट इच्छा होती है; जबकि संलेखना में मृत्यु की इच्छा ही नहीं होती।

(४) आत्महत्या विषभक्षण, शस्त्रास्त्र के प्रयोग, बहुत ऊँचाई से गिरने, गला घोंटने आदि विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा होती है; जबकि संलेखना में ऐसी कोई प्रक्रिया नहीं अपनाई जाती।

(५) आत्महत्या करने वाले व्यक्ति के भाव निश्चित रूप से अशुभ तथा पापमय होते हैं; जबकि संलेखना में निश्चित रूप से शुभ भाव ही होते हैं।

इसी प्रकार और भी अन्तर हैं; जिससे आत्महत्या तथा संलेखना में अन्तर स्पष्ट हो जाता है।

आक्षेपक यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि आहार-त्याग से शरीर क्षीण होकर मृत्यु हो जाती है। यह मृत्यु की धीमी प्रक्रिया (slow process) है। अतः आत्मघात ही है।

लेकिन यह कथन सर्वथा भ्रान्त है। आहार कम लेने अथवा सर्वथा त्याग कर देने से शरीर दुर्बल तो हो सकता है; लेकिन आयुकर्म भी टूट जाय, यह आवश्यक नहीं है। फिर आत्महत्या कभी इस प्रकार की धीमी प्रक्रिया से नहीं की जाती। वर्तमान कष्टों से घबड़ाकर व्यक्ति तुरन्त ही आत्मघात कर लेता है, ठीक उसी प्रकार जैसे एक ही झटके में रस्सी तोड़ दी जाती है।

अतः यह निश्चित है कि संलेखना किसी भी प्रकार से आत्महत्या नहीं है।

पिछले ९-१० वर्ष से एक नया शब्द प्रचलित हो गया है–स्वेच्छा-मृत्यु। यह एकांगी शब्द है। वास्तविक शब्द है अंग्रेजी भाषा का शब्द–Mercy Killing (मर्सी किलिंग) अर्थात् दया-मृत्यु अथवा दया की भावना से मारना।

उदाहरणार्थ–कोई व्यक्ति घोर वेदना से तड़प रहा है। चिकित्सा की सीमाएँ समाप्त हो चुकी हैं। अच्छी से अच्छी औषध भी न तो उसके रोग का उपचार कर सकती है और न पीड़ा को ही शांत कर पाती है। तब वह व्यक्ति डॉक्टर से प्रार्थना करता है कि डॉक्टर साहब ! मुझे विष का ही इंजेक्शन दे दीजिए, इस घोर पीड़ा से त्राण दिलाइये। और अपनी विवशता से मजबूर होकर वह डॉक्टर विष-प्रयोग द्वारा उसका जीवन समाप्त कर देता है।

उस रोगी ने स्वयं मौत माँगी थी, इस अपेक्षा से ऐसे मरण को स्वेच्छा मृत्यु कहा जाता है। लेकिन डॉक्टर के दृष्टिकोण से यह दया-मृत्यु है कि डॉक्टर ने दया करके उसे पीड़ा से मुक्त करा दिया।

यद्यपि नीदरलैंड, स्वीडन आदि देशों की सरकारों ने इस दया-मृत्यु को स्वीकृति दे दी है लेकिन उसमें कानूनी जटिलताएँ इतनी ज्यादा हैं, जिन्हें पूरा करना बहुत मुश्किल है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेकिन विचार किया जाय तो यह हत्या का ही एक प्रकार है। विष-प्रयोग द्वारा डॉक्टर उस रोगी की हत्या कर रहा है और पीड़ा से घवड़ाकर मृत्यु की इच्छा करने वाला–स्वेच्छा-मृत्यु का वरण करने वाला रोगी अपनी आत्महत्या कर रहा है।

फिर इसे संलेखना कैसे कहा जा सकता है? संलेखना का साधक तो संकटों से घवड़ाकर मृत्यु की इच्छा करता ही नहीं, वह तो शांति और समाधिपूर्वक मृत्यु का स्वागत करता है, मृत्यु को महोत्सव मानता है।

अतः स्वेच्छा-मृत्यु को समाधिमरण मानना एक सर्वथा भ्रान्त धारणा है।

संथारा

'संलेखना' के साथ 'संथारा' शब्द का प्रयोग सामान्यतः प्रचलित है। आगमों के अनुसार 'संथारा' का शाब्दिक अर्थ–'संस्तारक अथवा विछौना' है। किन्तु संलेखना के प्रस्तुत सन्दर्भ में इसका अर्थ यहाँ 'अनशन' है। 'संलेखना-संथारा' यह सामूहिक प्रयोग अधिकांशतः प्राप्त होता है तथा यहाँ संथारा का अर्थ शरीर तथा संसार के प्रति आसक्ति का त्याग है।

संथारा क्या है?

संथारा एक विशिष्ट साधना पद्धति है। साधक जब संथारा स्वीकार करता है तब वह पूर्ण रूप से आसक्तिरहित होता है। अपने शरीर से सम्बन्धित वस्तुओं और संसार के प्रति वह विरक्त हो जाता है, आत्मिक भावों में रमण करता है। उस समय उसके मन में जीवन और मृत्यु का कोई विकल्प ही नहीं रहता। वह तो आत्मिक अनुभूति और आत्मानन्द में लीन रहता है। वह अनशन करता है, भोजन आदि नहीं लेता है–यह केवल शाब्दिक वर्णन है। वास्तविकता यह है उसे आहार-पानी की इच्छा ही नहीं होती, अठारह प्रकार के पापों की ओर उसका मन ही नहीं जाता, वह तो समरसी भाव में ही निमग्न रहता है; जहाँ न भूख-प्यास है, न विषय विकार हैं और न किसी प्रकार की इच्छा, आकांक्षा तथा अभिलाषा ही है एवं न किसी प्रकार का भय ही है–न जन्म का, न मृत्यु का और न उपसर्गों व परीषहों का।

संथारा मृत्यु का वरण नहीं अपितु संवरण है। जन्म-मृत्यु को निःशेष करने की एक प्रक्रिया है। यदि संथारा की उत्कृष्ट साधना हो जाय तो साधक आवागमन के चक्र से विमुक्त होकर मुक्ति का अव्याबाध अनन्त सुख प्राप्त कर लेता है। और यदि साधना में कुछ कमी रह गई तो सुगति तो निश्चित है ही।

लेकिन साधक सुगति आदि की इच्छा नहीं करता, उसका लक्ष्य तो पूर्ण आत्म-शुद्धि होता है। उसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वह साधना करता है।

संथारा के प्रकार

संथारा के मुख्य दो प्रकार हैं–(१) सागारी अथवा आगार सहित, और (२) सामान्य।

सागारी संथारा किसी विशेष आपत्ति, संकट आदि के समुपस्थित होने पर किया जाता है और संकट समाप्त होने पर संथारा भी समाप्त कर दिया जाता है। यह जीवनभर के लिए नहीं होता। संकट समाप्त होने पर इसकी मर्यादा पूर्ण हो जाती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुत अन्तकृद्दशांगसूत्र के छठे वर्ग के तीसरे मुद्गरपाणि यक्ष नाम के अध्ययन में सागारी संथारा की विधि मर्यादा आदि का उल्लेख हुआ है। वहाँ श्रेष्ठी सुदर्शन सागारी संथारा करता है।

भगवान महावीर राजग्रह नगर के बाहर पधारे। उस समय नगरी के बाहर यक्षाविष्ट अर्जुनमाली का आतंक छाया हुआ था। वह देखते ही मनुष्य को मुद्गर प्रहार से मार डालता था।

सुदर्शन इस आतंक की चिन्ता न करके भगवान के दर्शनों के लिए नगरी से बाहर निकलता है। यक्षाविष्ट अर्जुनमाली उसे देखते ही मुद्गर उठाकर उसे मारने के लिए आगे बढ़ता है तब श्रेष्ठी सुदर्शन सागारी संथारा ग्रहण करता है। सूत्र के मूल पाठ का संक्षिप्त सारांश यह है–

सुदर्शन श्रेष्ठी ने अपने ग्रहीत व्रतों को पुनः जीवनभर के लिए दृढ़ किया, अठारह पापों तथा चारों प्रकार के आहार का त्याग किया और प्रतिज्ञा ग्रहण की–"यदि मैं इस उपसर्ग (मुद्गरपाणि यक्ष से आविष्ट अर्जुनमाली के उपसर्ग) से मुक्त हो जाऊँगा तो मुझे इन (उपरोक्त) प्रत्याख्यानों को पारणा कल्पता है। यदि इस उपसर्ग से मुक्त न हो सकूँ तो (मेरे द्वारा ग्रहण किये गये) ये सभी प्रत्याख्यान शरीर में जब तक प्राण रहें तब तक के लिए हैं।"

इस प्रतिज्ञा के साथ सुदर्शन श्रेष्ठी ने भगवान महावीर की शरण ली और सागारी संथारा स्वीकार कर लिया और भगवान के ध्यान में लीन हो गया।

और जैसे ही वह उपसर्ग समाप्त हुआ, अर्जुनमाली के शरीर में से यक्ष निकल भागा, संकट समाप्त हुआ, इस सागारी संथारे की मर्यादा पूर्ण हो गई। श्रेष्ठी सुदर्शन ने ध्यान खोल लिया तथा अर्जुनमाली की प्रार्थना पर उसे साथ लेकर भगवान महावीर के समवसरण में जा पहुँचा।

यह सागारी संथारा श्रावक और साधु–दोनों ही आसन्न संकट उपस्थित होने पर कर सकते हैं। उदाहरणार्थ–कोई साधु एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र को विहार कर रहा है। बीच में वनमार्ग में डाकू आदि असामाजिक तत्त्वों का उपद्रव हो जाय, अथवा ब्रह्मचर्य महाव्रत भंग होने का प्रसंग या ऐसी ही कोई विषम प्रतिकूल परिस्थिति उत्पन्न हो जाय तो वह भी सागारी संथारा कर सकता है।

संथारा पोरसी

विवेकी और व्रतधारी श्रावक कभी भी असावधान नहीं रहते। लेकिन रात्रि को सोते समय चेतना धुँधली पड़ जाती है, जाग्रत अवस्था-जैसी सावधानी नहीं रह पाती। शरीर निश्चेष्ट हो जाता है। निद्रा एक प्रकार से व्यक्ति की अल्पकालीन मृत्यु ही है। अतः वह रात्रि को सोते समय सागारी संथारा ग्रहण करता है, जिसे संथारा पोरसी भी कहा जाता है।

सामान्यतः इस प्रकार के संथारे के लिए एक दोहा प्रसिद्ध है–

"आहार शरीर उपधि, पचखूँ पाप अठार।
मरण होवे तो वोसिरे, जीवूँ तो आगार॥"

प्रातः नींद खुलने तथा नौ बार णमोकार मंत्र गिनने पर इस संथारे की समय मर्यादा पूर्ण हो जाती है। इसका महत्त्व यह है कि धर्मध्यान की धारा अंतरंग में चलने से दुःस्वप्न भी नहीं आते। साधक के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तनाव मिट जाते हैं, चित्त शांत हो जाता है और वह शांतिपूर्वक प्रगाढ़ निद्रा लेता है। सुख की नींद लेने से प्रातः तरोताजा होकर उठता है। उसका दिन आलस्यरहित व्यतीत होता है।

सामान्य संथारा

यह यावज्जीवन संथारा होता है और अन्तिम साँस तक चलता है। संलेखना के साथ जहाँ-जहाँ संथारा शब्द प्रयुक्त होता है वहाँ यह शब्द यावज्जीवन संथारे को ही द्योतित करता है। इसे ग्रहण करने की विधि भी जो आज से २,५०० वर्ष पहले थी वही आज भी है।

साधक सर्वप्रथम किसी एकान्त-शांत स्थान की गवेषणा करता है। तदुपरान्त उस प्रासुक और निर्जन्तु स्थान पर दर्भ का बिछौना बिछाता है। उस पर पूर्वाभिमुख होकर अवस्थित होता है और फिर शरीर आदि से ममत्व तोड़ता है, पापस्थानों का त्याग करता है, भांड उपकरणों के प्रति आसक्ति का त्याग करके भक्त-प्रत्याख्यान–अनशन, संथारे की प्रतिज्ञा ग्रहण कर लेता है।

संथारे के लाभ

साधक (मानव) के लिए संथारा सदैव ही लाभप्रद होता है, हानि तो इससे कम होती ही नहीं। आत्मा के लिए संथारा उस रसायन के समान है जो रोग होता है तो शरीर के उस रोग को मिटाता है और यदि रोग नहीं होता तो शरीर को बलवान, वीर्ययुक्त और स्फूर्तिमय बनाता है। संथारा भी उसी प्रकार आत्म-शक्ति, आत्म-जागृति और आत्म-वीर्य को वृद्धिंगत करता है।

यह सत्य है कि संथारा में अनशन अवश्य होता है लेकिन वह भूखा रहकर मृत्यु की ओर गतिशील होना नहीं है अपितु कर्मनिर्जरा द्वारा आत्म-शुद्धि की एक सक्षम प्रक्रिया है।

जहाँ तक क्षुधा-पिपासा वेदना का प्रश्न है, इसके लिए योग की एक पद्धति समझ लेनी चाहिए। योग ग्रन्थों में वर्णित एक अनुभूत सत्य है कि कंठ कूप में ध्यान करने से क्षुधा-वेदना नहीं सताती। उसी प्रकार संथारा का साधक जब अहर्निश ध्यान-साधना करता है तब ध्यान की लगातार तीव्र धारा से उसकी क्षुधा-पिपासा स्वयमेव ही शांत हो जाती है, शरीर व्याधियों की उसे अनुभूति ही नहीं होती और यदि होती भी है तो इतनी अल्प मात्रा में कि उसे विचलित नहीं कर पाती।

संक्षेप में संथारा शांति और समाधिपूर्वक इस नश्वर शरीर का त्याग है। जिस प्रकार सर्प को अपनी केंचुली उतारने में अथवा मानव को अपने जीर्ण-शीर्ण फटे-पुराने वस्त्रों को उतारने में कष्ट नहीं होता अपितु सुख की अनुभूति ही होती है। उसी प्रकार संथारा की साधना से साधक को आनन्द की प्राप्ति होती है।

● ●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Chapter 5

Sanlekhana-Santhara : A Study

Sanlekhana and *Santhara* are Jain technical terms. *Sanlekhana* means the art of dying. To welcome death with courage and without fear.

All the ascetics described in *Antakriddasha Sutra* (except ascetic Gajasukumal) left their earthly bodies and got liberated while practicing *Sanlekhana-Santhara* during the last days of their life. Therefore it is necessary to briefly discuss *Sanlekhana-Santhara* here.

SANLEKHANA

We first take up *Sanlekhana*.

The Meaning of *Sanlekhana*

Etymologically *Sanlekhana* is made up of two words—*sat* + *lekhana*. Following the rules of word conjunction this takes two forms—*sallekhana* and *sanlekhana*. Here the term '*sat*' means right or correct and '*lekhana*' means to reduce, dilapidate, or emaciate. Thus the meaning of the formed word, *Sanlekhana*, is to properly or correctly reduce ones passions and body.

From Jain point of view passions and body are the fundamental causes of bonding of *karmas*. The secondary causes related to body are mind and speech. Passion has four types—anger, conceit, illusion and greed. The *karma* bondage caused by 'body and *kashaya* (passions)', as mentioned here, has the same meaning as that caused by 'yoga and passions' as mentioned in the *Karma Granthas*.

This conveys that the emaciating of body and passions done during *Sanlekhana* gradually weakens the bondage of *karmas* and finally sheds *karmas*. As a result the seeker is free of the bondage of *karmas*.

That is the reason that every religious person, whether he is a *Shravak* or *Shraman*, desires of ending his life doing *Sanlekhana-Santhara*.

The Desire of *Sanlekhana*

In spite of having a desire to observe *Sanlekhana* it cannot be suddenly commenced. The seeker first contemplates about his physical condition and then expresses his desire before his guru. If the experienced guru thinks it appropriate he grants permission. Then only the seeker accepts *Sanlekhana*.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

According to the descriptions in *Agams*, before accepting *Sanlekhana*, a seeker thinks about his physical condition thus—

Now my body is very weak and my strength and vigour have depleted. I am able to sit, stand or move only through the strength of my will. Even these activities cause discomfort to me. It is difficult to perform even the daily chores with this emaciated body. Instead of being helpful in religious activities, this body is becoming an impediment. There is no use maintaining such body. It is better to abandon it.

When this desire is expressed before the guru and he grants permission by formally consecrating the vow of *Sanlekhana-Santhara*, the seeker commences *Sanlekhana* following the proper procedure.

The Procedure of *Sanlekhana*

The seeker first of all gradually reduces the food intake and further emaciates his body. At the same time he also gradually weakens passions.

Food here includes *ashan* (staple food), *paan* (liquids), *khadya* (common food) and *svadya* (tasty food). Depending upon the condition of his body the seeker gradually reduces his food intake and finally stops it altogether to await death. At the moment of death he remains equanimous or in meditation.

The Period of *Sanlekhana*

To fix the duration of *Sanlekhana* is a difficult task. In *Antakriddasha Sutra* itself some seekers got liberated after a month long *Sanlekhana* whereas Arjunamali did so after 15 days long *Sanlekhana*. In modern times also some seekers abandon their earthly body after a 40 days long *Sanlekhana* and some after four days only.

However, in ancient scriptures like *Pravachanasaroddhar* it is mentioned that the maximum, medium and minimum duration of *Sanlekhana* are 12 years, 12 months and 6 months respectively. The procedure of *Sanlekhana* has also been given in greater detail.

In this short article it is neither desired nor possible to give complete details but it is true that a detailed description throws greater light on the purity and importance of *Sanlekhana*.

At the same time this is also revealed that through emaciating the body and passions and as a consequence of disciplining the mind, a seeker attains the state of purity or absence of perversion (vices) and abandons the body peacefully with equanimity.

Precautions in Accepting *Sanlekhana*

It is necessary for a seeker to observe some precautions before commencing the practice of *Sanlekhana*. If he has commenced the practice of *Sanlekhana*, started fasting and also weakened the body and passions, but the *karmas* determining life-span are still

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

strong, the moment of death is still distant, the string of age is still far from the breaking point, then the fasting could be prolonged indefinitely. In such case there are chances that the acute pain of hunger and thirst may pervert the feelings of the seeker; his attitudes may be tarnished, the purity of feelings may become foggy.

Therefore, before accepting *Sanlekhana* it is vital for the seeker to estimate his life-span besides examining his physical condition.

The life of a worldly person is dependent on ten prans (life energy). They are—*Indriya-bal-pran* (sources of strength of five sense organs; five in number), *Man-vachan-kaya-bal-pran* (sources of strength of mind, speech and body; three in number), *Shvasochhavas* (inhalation-exhalation), and *Ayu-bal-pran* (source of the strength of age; longevity). Of these *Ayu-bal-pran* is the strongest. The strength of sense organs may become weak, the strength of yoga or mind-speech-body may deplete, inhalation and exhalation may also be blocked but if the strength of age or life-span has not reached its end the person may still revive and remain alive for years.

In modern age also, even with the advancement of medical science, such incidents have been reported when a doctor has declared a person dead in absence of any signs of life, his relatives have taken the body for cremation and before lighting the funeral pyre the dead has come back to life and lived for many years.

The purpose of giving these details is that it is vital to think over the age determining *karmas* before accepting *Sanlekhana*. That is the reason that in Jain scriptures we find the rule that *Sanlekhana* should be accepted only after getting permission from an experienced guru.

Sanlekhana and Fasting

In *Antakriddasha Sutra* and other *Agams* where there is a mention of a seeker practicing *Sanlekhana* it is stated—emaciating himself by a month long *Sanlekhana*, cutting of or avoiding sixty meals, ... got liberated. This statement indicates that *Sanlekhana* and fasting go together and this combination affects the depletion of body and passions. The process continues till the end of life and the seeker earns a good reincarnation or liberation.

The Ultimate Practice of Life : *Sanlekhana*

As an examination is the yardstick of the education of a student, how much he has read and what he has retained in his memory; likewise *Sanlekhana* is the final test of the life of an ascetic or seeker, how much religion has been able to translate into activities of life, how far has he stuck to the vows, rules and discipline, what heights of experience he has attained.

Sanlekhana is the ultimate practice of ascetic life. After this there is no further practice remaining as is evident from the statement—the last. Life long emaciation is the practice

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

of *Sanlekhana*. Both the adjectives here indicate that *Sanlekhana* is the final practice of ascetic life and it is practiced till the end of life.

Importance and Qualities of *Sanlekhana*

Sanlekhana is an important practice of ascetic life. This practice ends all sorrows and troubles of the seeker.

At the time of accepting *Sanlekhana* vow the seeker begs forgiveness of all beings and abandoning base feelings like animosity, malice and hostility dwells in equanimity. He does not allow conflicting feelings to creep into his mind and dwells in feelings of fraternity.

He is neither afraid of death nor desires death. As he lived an ideal life so he embraces ideal death artfully. He considers death to be ceremonious not fearful.

In fact only those persons are afraid of death who are not aware of the meaning of death. Those who have not done meritorious deeds, have indulged only in sinful activities are afraid because of the apprehension that the next incarnation will bring grave sorrows to them. To such people death appears to be filled with darkness and tormenting. On the other hand those who lead a religious life, who are not slaves of hopes, desires and ambitions, who are not bitten by the serpent like craving, find death as normal an activity as changing old dress with new.

A seeker devoted to the practice of *Sanlekhana* desires neither life nor death, he neither desires appreciation in this life nor pleasures in the next. He has no craving for carnal pleasures as well. He remains aloof from all these and embraces a peaceful and serene death.

Types of Death

In this context it is necessary to know about the types of death. There are two main categories—(1) *Sakam-maran*, and (2) *Akam-maran*. In other words—(1) Undesired death, and (2) Desired death. Another name of these two are—(1) *Baal-maran* (ignorant's death), and (2) *Pundit-maran* (scholar's death). It is *Pundit-maran* that is popularly known as *Samadhi-maran* or meditative death.

There are numerous sub-categories of *Baal-maran* which is generally the fate of all undisciplined and ignorant beings. In *Bhagavati Sutra* and other *Agams* 12 types of *Baal-maran* have been mentioned. But in the modern progressive materialistic glamorous world, filled with miracles of science, the types of *Baal-maran* have multiplied.

In brief *Baal-maran* is embracing death under excitement of intense passions with a hope to be rid of the extant troubles and desire of pleasure in the next birth.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Sanlekhana : Neither Suicide nor Desired Death

The modern age is the age of rationalism and intellectualism. The tendency of comparing a thing, theory and process with another is increasing. Efforts are being made to redefine ancient philosophical principles and practices in the light of modern materialistic theories. It has gone to the extant of criticizing and belittling the higher spiritual practices.

Some extreme rationalists devalue *Sanlekhana* and meditative death by calling these suicide. But there is a sea difference between *Sanlekhana* and suicide.

(1) Suicide is committed under influence of intense stimulus of passions like anger, whereas in *Sanlekhana* the passions are of extremely low intensity.

(2) Only such people commit suicide who are tormented and agitated by circumstances and any hope of fulfillment of their desires is lost, whereas those who practice *Sanlekhana* are neither agitated nor have any desire.

(3) Suicide is embracing death by force with an intense desire of death, whereas in *Sanlekhana* their is no desire of death.

(4) Suicide is committed by consuming poison, using a weapon, falling from heights, strangulating and other such violent processes, whereas in *Sanlekhana* no such violent process is resorted to.

(5) The attitude of a person committing suicide are certainly base and sinful, whereas that of a person practicing *Sanlekhana* are certainly pious.

There are many such reasons that clearly show the difference between suicide and *Sanlekhana*.

The critics put forth the logic that stopping food intake emaciates the body and ultimately leads to death. This is a slow process adopted for willful death and so it is nothing but suicide.

But this is a misunderstanding. Reduction or total stoppage of food intake may cause weakness of the body but it is not necessary that the age determining *karmas* are shed. Moreover suicide is never done by so slow a process. Disturbed by prevailing torments a person commits suicide at the spur of the moment, exactly as a string is broken with a jerk.

Therefore this is certain that in no way *Sanlekhana* is suicide.

For last 9-10 years a new word has gained popularity—*Svechha-mrityu*. This is a single meaning word. The original word is the English term euthanasia which means to kill with a feeling of compassion or mercy killing.

Example—A person is suffering acute pain. He has gone beyond the scope of treatment. Even the best available medical means are unable to cure him or relieve his pain. Then that person requests his doctor to administer some poison and relieve the pain

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

through death. The doctor, under pressure and due to his inability to provide an alternate, administers poison and terminates the patient.

Because the patient himself desired of death, this type of death is called desired death. From the viewpoint of the doctor it is mercy killing because the doctor relieved the patient of his torment out of compassion.

Although Netherlands, Sweden and some other countries have given legal sanction to euthanasia, there still are legal problems which are hard to overcome.

If properly analyzed, euthanasia is a type of murder. The doctor is killing a person by administering poison. The individual himself, disturbed by pain, is committing suicide.

How than this can be called *Santekhana*? The seeker who accepts *Santekhana* does not desire death due to any disappointment caused by torments. He welcomes death peacefully and meditatively. He considers death to be ceremonious or festive.

Therefore to say that *Santekhana* is suicide is utter misunderstanding.

SANTHARA

Generally the term '*Santhara*' is in popular use along with '*Santekhana*'. According to the *Agam* literature the common meaning of '*Santhara*' is '*samastarak* or bed'. But in context of *Santekhana* it means '*anshan*' or fasting. Mostly these two words are used together (*Santekhana-Santhara*) and here it indicates abandoning fondness or attachment of world and body.

What is *Santhara* ?

Santhara is a specific process of spiritual practice. When a seeker accepts *Santhara* he is completely free of attachments. Detached from his body and things related to the body, he dwells in the self or soul. At that time he is free of the options of life and death. He is involved only with inner experiences and bliss. He observes fast or does not eat are just superficial descriptions. The reality is that he has no desire for food or water. He does not think about the eighteen types of sins and is in a state of equanimity. In that state there is no hunger or thirst, there is no wish, ambition or desire, and there is no fear whether of life and death or torments and afflictions.

Santhara is not embracing death but control over death. It is a process of ending life as well as death. If the practice of *Santhara* is perfect the seeker becomes free of the cycles of rebirth and enjoys the unending and infinite bliss of liberation. If that perfection is not attained he at least earns a good rebirth.

But the seeker does not wish for a better rebirth, his target is absolute purity of soul. He indulges in practices only to attain that goal.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Types of *Santha a*

The are two basic types of *Santhara*—(1) *Sagari* or for a specific purpose, and (2) *Samanya* or non-specific; this is also called *yavajjivan* or lifelong.

Sagari Santhara is practiced when someone faces some problem or trouble and is terminated when the problem is over. This is not lifelong. When the problem is over its period is over.

In the third chapter titled Mudgarpani of the sixth section of *Antakriddasha Sutra* are given details about the procedures and durations of *Sagari Santhara*. In that story merchant Sudarshan practices *Sagari Santhara*.

Bhagavan Mahavir arrived outside the city of Rajagriha. At that time terror of Arjunamali, who was possessed by a *yaksh*, reigned outside the city. He killed anyone he saw, with a mace.

Not at all worried of this, Sudarshan went out of the city to pay homage to Bhagavan. Arjunamali lifts his mace and rushes to kill Sudarshan, who at once accepts *Sagari Santhara*. The gist of the text in the *Sutra* is as follows—

Merchant Sudarshan re-strengthened the vows he had taken for life, abandoned the eighteen sources of sin and four types of food, and took an oath—"If I am freed of this affliction (of Arjunamali possessed by Mudgarpani *yaksh*) I would resume the abandoned activities (above said). If not, all the abstinences (accepted by me) will continue as long as I live."

With this oath merchant Sudarshan took refuge of (evoked) Bhagavan Mahavir, commenced the *Sagari Santhara*, and started his meditation of Bhagavan.

The affliction ended, as soon as the yaksh released Arjunamali the trouble ended and the duration of the *Sagari Santhara* came to an end. Merchant Sudarshan concluded his meditation and on request of Arjunamali took him along and arrived at Bhagavan Mahavir's *Samavasaran*.

This type of *Sagari Santhara* can be done by both *shravak* as well as *Shraman* when they face some trouble. An example—Some ascetic is moving from one place to another. On the way he is way laid by some bandits or other anti-social elements, or there are circumstances where his vow of celibacy is in danger, or there is other such adverse situation, he can resort to *Sagari Santhara*.

Santhara Porasi

Discerning and vow abiding *shravaks* are never negligent. However while sleeping during the night the degree of alertness is low, it is nor possible to be as alert as while awake. The body is numb. Sleep is a type of death-like state for a limited period. Therefore before going to sleep during the night one accepts *Sagari Santhara*. This is called *Santhara Porasi*.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Generally this is done with a vow expressed by a couplet meaning—I detach myself from eighteen sources of sin including food, body and possessions for the night. If I die I die as detached and if I live I resume my mundane life.

When after getting up in the morning *Namokar* mantra is chanted nine times the duration of this *Santhara* ends. The benefit of this *Santhara* is that while asleep the religious attitude is active in the subconscious and therefore one is free from bad dreams. All the stresses of the seeker are removed, the mind is tranquil and he gets a deep and peaceful sleep. Due to this peaceful sleep he finds himself refreshed when he gets up in the morning. He is free of any lethargy or fatigue during the day.

Non-specific or Normal *Santhara*

This is life long *Santhara* and its duration ends with the last breath. Wherever *Santhara* word has been used in conjunction with *Sanlekhana* it means life long *Santhara*. The procedure involved has remained unchanged for last 2,500 years.

The seeker first of all explores a solitary and peaceful place. After that he makes a bed of dry grass (hay) at that spot which is free of living organisms. Facing east he positions himself on the bed, breaks his fondness for his body and other mundane things, abandons the sources of sin, detaches himself from his equipment and other possessions, and takes a vow of fasting and *Santhara*.

The Benefits of *Santhara*

For a seeker (man) *Santhara* is always beneficial, there never is a chance of harm. For the soul *Santhara* is like a tonic that cures if one is ailing and gives strength, vigour and agility if not. *Santhara* enhances the strength, vigour and agility of soul.

It is true that fasting is an inherent part of *Santhara* but it is not a movement towards death by remaining hungry. It is a potent process of purifying soul through shedding of *karmas*.

As regards the pain of hunger and thirst one should understand a yogic process. In the yoga-scriptures there is a mention that if one meditates focussing attention on the base of the neck the pain of hunger does not torment. This is a fact proven by experience. In the same way when a seeker practicing *Santhara* indulges in unbroken meditation, the continuous stream of deep meditation quenches his hunger and thirst. He does not experience physical ailments. Even if he experiences these things it is so mild that he is not disturbed.

In brief, *Santhara* is abandoning the mortal earthly body with serenity and peace. As a snake while shedding his skin or a man shedding his old and tattered clothes does not feel pain; but feels pleasure instead, likewise the practice of *Santhara* is blissful for the seeker.

●●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिमा योग

भिक्षु (मुनि) की प्रतिमाएँ

प्रतिमा का अभिप्राय

'प्रतिमा' शब्द यहाँ किसी अनुकृति, आकृति अथवा आकार-विशेष की ओर इंगित नहीं करता, जैसा कि साधारणतः समझा जाता है, अपितु प्रस्तुत सन्दर्भ में यह एक विशिष्ट अभिप्राय लिए हुए है और साधना से सम्बन्धित है।

स्थानांग वृत्ति पत्र ६१ में कहा गया है–

"प्रतिमा प्रतिपत्तिः प्रतिज्ञेति यावत्।"

तथा

"प्रतिमा–प्रतिज्ञा अभिग्रह।" (स्थानांग वृत्ति पत्र १८४)

इन उपर्युक्त कथनों का आशय यह है कि प्रतिमा–एक विशेष प्रतिज्ञा है, व्रत विशेष है और दृढ़ संकल्प सहित (with firm resolution) एक साधना पद्धति है।

प्रतिमा है तो एक प्रकार का व्रत विशेष ही; किन्तु इसमें दृढ़ता का स्थान प्रमुख है।

साधक जब अपने स्वीकृत व्रत, नियमों, तपस्याओं में परिपक्व हो जाता है; अतिचार और स्खलनारहित व्रतों तथा तपस्याओं का पालन करने में पूर्णतः परिपक्व हो जाता है तब वह साधना के पथ पर अपने दृढ़ कदम आगे बढ़ाता है। दृढ़ संकल्पपूर्वक कुछ विशिष्ट साधनाएँ–तप आदि स्वीकार करता है, ये विशिष्ट साधनाएँ ही प्रतिमा कहलाती हैं और इन्हीं को समुच्चय रूप से प्रतिमा योग कहा जाता है।

प्रतिमाओं को धारण करने वाले साधक का संकल्प बहुत ही दृढ़ और मनोबल उच्चकोटि का होता है। वह भयंकरतम स्थिति और अति विपरीत परिस्थिति में भी विचलित नहीं होता। घोर कष्टप्रद उपसर्ग-परीषह में भी इसके शरीर का एक रोम भी कम्पित नहीं होता। वह अचल पर्वत के समान अपनी साधना में अडिग रहता है।

भिक्षु (मुनि) प्रतिमाएँ[1]

श्रमण (भिक्षु) विशिष्ट साधना के लिए दृढ़ संकल्पपूर्वक नियम और अभिग्रह ग्रहण करता है। इसमें

---

१. भिक्षु के समान गृहस्थ साधक भी प्रतिमाओं का दृढ़तापूर्वक आराधन करता है। उसकी प्रतिमाएँ श्रावक प्रतिमाएँ कहलाती हैं। शास्त्रों में ११ श्रावक प्रतिमाओं का वर्णन मिलता है। किन्तु यहाँ श्रमण साधकों का प्रसंग होने से श्रावक प्रतिमाओं का विवेचन नहीं किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह आहार, शरीर, मन, वाणी, आसन आदि का नियमन करके मन-वचन-काय योग को वश में करना है और दृढ़तापूर्वक प्रतिमाओं की साधना में प्रवृत्त होता है।

भिक्षु प्रतिमाओं की संख्या

भिक्षु (श्रमण मुनि) की प्रतिमाएँ संख्या में १२ हैं जिनकी वह साधना क्रमशः करता है। साथ ही यह भी आवश्यक नहीं है कि प्रथम प्रतिमा की सफलतापूर्वक आराधना करने के उपरान्त उससे अगली–दूसरी प्रतिमा की आराधना की ही जाय। यह तो साधक की शक्ति और दृढ़ता पर ही निर्भर है कि वह आगे की प्रतिमाओं की आराधना करे।

यद्यपि साधारणतः प्रतिमाओं की साधना एक के बाद दूसरी इस क्रम से की जाती हैं, किन्तु कुछ अत्यन्त दृढ़ मनोबली साधक प्रारम्भ की प्रतिमाओं को छोड़कर सीधी ही बारहवीं भिक्षु प्रतिमा की आराधना करते हैं। जैसा कि मुनि गजसुकुमाल ने किया। गजसुकुमाल मुनि का विस्तृत वर्णन अन्तकृद्दशासूत्र में है।

भिक्षु प्रतिमाओं का वर्णन दशाश्रुतस्कन्ध, दशा ७ में मिलता है। इसी के अनुसार यहाँ क्रमपूर्वक १२ भिक्षु प्रतिमाओं का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रतिमाधारी श्रमण की प्रवृत्तियाँ

प्रतिमाधारी श्रमण अपने शरीर के प्रति बहुत ही निरपेक्ष हो जाता है। जिस धर्म-स्थानक, उपाश्रय अथवा स्थान में ठहरा हो, यदि वहाँ किसी प्रकार से अग्नि, जल, असामाजिक तत्त्वों का उपद्रव हो जाय तो भी उस स्थान को नहीं छोड़ता।

वायु प्रकोप से यदि उसकी आँख में रजकण, तिनका आदि पड़ जाय तो उसकी पीड़ा सह लेता है किन्तु अपने हाथ से उसे नहीं निकालता। इस प्रकार गमन करते समय पैर में काँटा, काँच का टुकड़ा आदि चुभ जाय तो भी नहीं निकालता। कंकरीला मार्ग आ जाय तो उसे छोड़कर सुखद मार्ग पर जाने की इच्छा भी नहीं करता।

यदि सामने बाघ, सिंह आदि हिंसक पशु सामने से आ जाये तो वहीं खड़ा रह जाता है, एक कदम भी पीछे नहीं हटता और यदि गाय आदि आ जाये तो दयालुतावश पीछे हटकर मार्ग दे देता है।

इसी प्रकार कीड़ी नगरा (चींटियों का बिल और समूह) मार्ग में आ जाय और वह उसे उलाँघ न सके तो जीव-हिंसा से बचने के लिए वहीं खड़ा रह जाता है।

वह सचित्त भूमि पर न बैठता है, न गमन करता है और न खड़ा होता है।

शीत निवारण के लिए वह धूप में खड़े होने की तथा ग्रीष्म ऋतु में छाया में जाने की इच्छा भी नहीं करता; धूप अथवा छाया–जहाँ भी हो, वहीं अवस्थित रहता है।

जहाँ भी सूर्यास्त अथवा दिन का चौथा प्रहर समाप्त हो जाय, वह रात्रिभर के लिए अवस्थित हो चाहे वह स्थान नगर का मध्य भाग हो, राजमार्ग हो, ग्राम की सीमा हो, घोर जंगल हो अथवा वृक्ष का मूल हो। वह सिंह आदि हिंसक वन्य पशुओं की गर्जनाओं की तथा शीतकालीन बर्फीली बयारों की भी चिन्ता नहीं करता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्यों, देवों और पशु-पक्षियों द्वारा किये गये उपसर्गों तथा परीषहों को समभाव से सहन करता है।

वह वाणी का भी पूर्ण संयम-पालन करता है। सिर्फ चार कारणों से बोलता है--(१) अन्य साथी श्रमण से वस्त्र, पात्र आदि माँगना, (२) शंका समाधान के लिए गुरुदेव अथवा ज्येष्ठ ज्ञानी साधु से प्रश्न पूछना अथवा किसी सामान्य व्यक्ति से मार्ग पूछना, (३) गुरुदेव से गोचरी आदि की आज्ञा लेना अथवा शय्यातर (स्थान के स्वामी) से स्थान की आज्ञा लेना, (४) किसी व्यक्ति द्वारा किये गये जिज्ञासा वृत्ति से धार्मिक प्रश्न का उत्तर देना। इन चार कारणों के अतिरिक्त वह कुछ भी नहीं बोलता, सर्वथा मौन धारण किये रहता है।

वह एक ग्राम में दो रात्रि और एक दिवस से अधिक नहीं ठहरता।

भोजन की गवेषणा में भी वह कुछ कठोर नियमों का पालन करता है।

जहाँ एक व्यक्ति के लिए भोजन बना हो, वहाँ से न लेना; गर्भिणी अथवा शिशु की माता के लिए बनाये गये भोजन में से न लेना, शिशु को स्तनपान करती हुई स्त्री यदि उठकर आहार दे तो न लेना, आसन्न-प्रसवा स्त्री से भोजन न लेना; जिसके दोनों पैर देहली के बाहर या भीतर हों, उसके हाथों से आहार न लेना; परिचित कुल से आहार न लेना, अपरिचित कुल से आहार लेना आदि भोजन सम्बन्धी उसके नियम होते हैं।

वह दिन में एक ही बार विशिष्ट और कठोर नियमों के साथ भिक्षा के लिए जाता है।

१. प्रथम प्रतिमा

उपर्युक्त नियमों का पालन करते हुए श्रमण पहली प्रतिमा की आराधना करता है। इसका कालमान एक मास है। इसमें श्रमण एक दत्ती आहार की और एक दत्ती पानी की ग्रहण करता है। दत्ती का अभिप्राय है दाता द्वारा दिये जाने वाले भोजन और पानी की अखंड धारा।

२. दूसरी प्रतिमा

इसका कालमान दो मास है। उपर्युक्त सभी नियमों का पालन करते हुए इसकी आराधना की जाती है। इसमें साधक दो दत्ती आहार की और दो दत्ती पानी की ग्रहण करता है।

३. तीसरी प्रतिमा

इसका कालमान तीन मास है। इसमें साधक तीन दत्ती आहार की तथा तीन दत्ती पानी की ग्रहण करता है। साथ ही उपर्युक्त सभी नियमों का पालन करता है।

४. चौथी प्रतिमा

इसका कालमान चार मास है। इसमें साधक चार दत्ती आहार की और चार दत्ती पानी की ग्रहण करता है। उपर्युक्त नियमों का पालन इसमें भी होता है।

५. पाँचवीं प्रतिमा

इसका कालमान पाँच मास है। इसमें साधक पाँच दत्ती आहार की और पाँच दत्ती पानी की ग्रहण करने के साथ-साथ उपर्युक्त नियमों का भी पालन करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६-७ छठी-सातवीं प्रतिमा

छठी प्रतिमा का कालमान छह मास है और सातवीं का सात मास। इनमें क्रमशः छह-छह तथा सात-सात दत्तियाँ आहार तथा पानी की ग्रहण की जाती हैं।

८. आठवीं प्रतिमा

इस आठवीं प्रतिमा का समय एक सप्ताह सात दिन है।

इस प्रतिमा का साधक एक दिन-रात्रि का निर्जल उपवास (चौविहार) करके ग्राम अथवा नगर की सीमा के बाहर जाकर प्रासुक भूमि पर उत्तानासन, पार्श्वासन अथवा निषद्यासन से कायोत्सर्ग में लीन हो जाता है।

यदि मल-मूत्र की बाधा हो तो पहले से प्रतिलेखित-प्रमार्जित भूमि पर मल-मूत्र त्यागकर पुनः अपने स्थान पर आकर कायोत्सर्ग में लीन हो जाता है।

इस प्रकार सात दिन तक इस प्रतिमा की आराधना करता है।

९. नौवीं प्रतिमा

यह नौवीं प्रतिमा भी सात दिन-रात की है। इसकी आराधना भी आठवीं प्रतिमा के समान ही की जाती है। विशेष यह है कि साधक दण्डासन, लकुटासन अथवा उत्कटुकासन से जिनाज्ञानुसार ध्यान एवं कायोत्सर्ग में लीन रहता है।

१०. दसवीं प्रतिमा

इस दसवीं प्रतिमा का समय भी सात दिन-रात का है। आराधना विधि भी नौवीं प्रतिमा के समान है। विशेष यह है कि साधक गोदोहिकासन, वीरासन अथवा आम्रकुब्जासन से ध्यान-साधना में लीन रहता है।

११. ग्यारहवीं प्रतिमा

इस प्रतिमा का कालमान एक अहोरात्रि (प्रथम दिन के सूर्योदय से दूसरे दिन के सूर्योदय तक) है।

इस प्रतिमा की आराधना करने वाला साधक दो दिन का निर्जल उपवास (चौविहार)–बेला करके प्रतिमा की आराधना करता है।

ग्राम, नगर अथवा राजधानी की सीमा से बाहर जाकर प्रासुक भूमि में दोनों पैरों को संकुचित कर और दोनों भुजाओं को जानु पर्यन्त लम्बी करके साधक ध्यान-साधना–कायोत्सर्ग करता है।

१२. बारहवीं प्रतिमा

बारहवीं प्रतिमा का समय केवल एक रात्रि प्रमाण है। किन्तु आराधना अति कठिन है।

इसकी आराधना निर्जल तेला (अष्टम भक्त) की तपस्या से की जाती है। साधक ग्राम, नगर आदि के बाह्य भाग में जाकर प्रासुक भूमि में अवस्थित होता है। कोई-कोई दृढ़ मनोबली साधक श्मशान में भी चला जाता है; जैसे–गजसुकुमाल मुनि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वहाँ अवस्थित होकर दोनों पैरों को संकुचित करता है, भुजाओं को जंघापर्यन्त लम्बी करता है, इस मुद्रा में खड़ा होता है। फिर शरीर को थोड़ा आगे झुकाकर एक पुद्गल पर दृष्टि जमा देता है, निर्निमेष दृष्टि से अपलक देखता हुआ समस्त इन्द्रियों और मन को ध्येय में लीन करके एकाग्रचित्त से ध्यान-साधना में तल्लीन हो जाता है।

इस प्रकार साधना करते हुए संपूर्ण रात्रि व्यतीत करना है।

यदि इस प्रतिमा का पालन जिनेश्वर की आज्ञा के अनुरूप सही ढंग से न हो सके, साधक उपसर्ग-परीषह से विचलित हो जाय तो उसे तीन अनर्थकारी दुष्परिणाम भोगने पड़ते हैं-

(१) मानसिक उन्माद, पागलपन, विक्षिप्तता।

(२) अति दीर्घकालीन रोग और आतंक।

(३) केवली प्रज्ञप्त धर्म से भ्रष्ट हो जाना।

और इस प्रतिमा का सम्यक् प्रकार से पालन करने वाले को तीन विशेष फल प्राप्त होते हैं-

(१) अवधिज्ञान की प्राप्ति।

(२) मनःपर्यवज्ञान की प्राप्ति।

(३) केवलज्ञान का प्रगट होना।

इस प्रकार ये बारह भिक्षु प्रतिमाएँ साधक-जीवन की विशुद्धि के कारण और उसके दृढ़ मनोबल तथा संकल्प-शक्ति की परिचायक हैं।

इन प्रतिमाओं की आराधना गौतमकुमार मुनि ने की थी।

अन्य प्रतिमाएँ

उपर्युक्त बारह प्रतिमाओं का उल्लेख दशाश्रुतस्कन्ध में प्राप्त होता है। किन्तु इनके अतिरिक्त अन्य प्रतिमाओं का वर्णन अन्तकृद्दशासूत्र में प्राप्त होता है; जिनकी आराधना सुकृष्णा आदि श्रमणियों ने की थी। ये प्रतिमाएँ भी भिक्षु प्रतिमाएँ कहलाती हैं किन्तु इनकी आराधना विधि में अन्तर है।

१. सप्त-सप्तमिका प्रतिमा

इस प्रतिमा का आराधना समय सात सप्ताह अथवा ४९ दिन है।

आराधना विधि-इस प्रतिमा में प्रथम सप्ताह में प्रतिदिन एक दत्ती भोजन की और एक दत्ती पानी की ली जाती है। दूसरे सप्ताह में दो-दो दत्ती, तीसरे में तीन दत्ती। इसी प्रकार प्रति सप्ताह एक-एक दत्ती बढ़ाते हुए सातवें सप्ताह में प्रतिदिन आहार-पानी की सात-सात दत्तियाँ ली जाती हैं।

आहार और पानी की दत्तियों की सम्मिलित रूप से गणना करने पर इस सप्त-सप्तमिका प्रतिमा में ग्रहण की हुई आहार-पानी की कुल संख्या १९६ होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. अष्ट-अष्टामका प्रतिमा

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि आठ-आठवीं प्रतिमा की आराधना ८ × ८ = ६४ दिनों में होती है।

इसमें प्रथम आठ दिन तक प्रतिदिन एक दत्ती आहार की तथा एक दत्ती पानी की ली जाती है। अगले आठ दिनों में प्रतिदिन २ दत्तियाँ आहार की तथा दो दत्तियाँ पानी की। इसी प्रकार क्रमशः प्रत्येक आठ दिनों में दत्तियों की संख्या एक-एक बढ़ाते हुए अन्तिम आठ दिनों में आठ-आठ दत्तियाँ आहार और पानी की ली जाती हैं।

इस प्रतिमा में आहार और पानी की सम्मिलित रूप से दत्तियों की संख्या २८८ होती है।

३. नव-नवमिका प्रतिमा

इसकी आराधना में ९ × ९ = ८१ दिन लगते हैं। पहले नौ दिनों में एक दत्ती आहार की और एक दत्ती पानी की प्रतिदिन ली जाती है। फिर प्रत्येक नौ दिनों में आहार और पानी की एक-एक दत्ती बढ़ाते हुए अन्तिम नौ दिनों में नौ-नौ दत्तियाँ आहार और पानी की ग्रहण की जाती हैं।

आहार-पानी की सम्मिलित रूप से कुल दत्ती संख्या ४०५ होती है।

४. दश-दशमिका प्रतिमा

इसको पूर्ण करने में १० × १० = १०० दिन लगते हैं।

प्रथम दस दिनों में प्रतिदिन एक दत्ती आहार की और एक दत्ती पानी की। फिर क्रमशः प्रत्येक दस दिन में एक-एक दत्ती आहार-पानी की बढ़ाते हुए अन्तिम दस दिनों में दस-दस दत्तियाँ आहार और पानी की ली जाती हैं।

इस प्रतिमा में आहार-पानी की सम्मिलित रूप से कुल ५५० दत्तियाँ होती हैं।

इन चारों प्रतिमाओं की आराधना आर्या सुकृष्णा ने की थी।

५. लघु सर्वतोभद्र प्रतिमा

सर्वतोभद्र का अभिप्राय है–चारों ओर से समान। इस प्रतिमा में उपवास तपों को यंत्र में अंकों द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। इस यंत्र में एक से पाँच तक के अंक रखे जाते हैं; क्योंकि इस लघु सर्वतोभद्र प्रतिमा का आराधक एक उपवास से पाँच उपवास तक की ही तपस्या करता है।

यंत्र में स्थापित अंकों की यह विशेषता होती है कि ऊपर, नीचे, आड़े, तिरछे किसी भी पद्धति से अंकों को जोड़ा जाय, योगफल सदा ही समान होगा। इसमें एक से पाँच तक के अंक स्थापित होने से योगफल १५ होता है। इसी कारण इसे लघु सर्वतोभद्र प्रतिमा कहा जाता है।

आराधना विधि–उपवास–पारणा, बेला (दो दिवसीय उपवास)–पारणा, तेला–पारणा, चोला–पारणा, पचोला–पारणा; तेला–पारणा, चोला–पारणा, पचोला–पारणा, उपवास–पारणा, बेला–पारणा; पचोला–पारणा, उपवास–पारणा, बेला–पारणा, तेला–पारणा, चोला–पारणा; बेला–पारणा, तेला–पारणा, चोला–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पारणा, पचोला–पारणा, उपवास–पारणा; चोला–पारणा, पचोला–पारणा, उपवास–पारणा, वेला–पारणा, तेला–पारणा।

यह प्रस्तुत प्रतिमा की एक परिपाटी हुई और इसमें तीन माह और दस दिन लगे।

इसी प्रकार की कुल चार परिपाटियाँ होती हैं, उनको पूर्ण करने में १ वर्ष १ माह १० दिन लगते हैं। इनमें ३०० दिन तपस्या के और १०० दिन पारणे के होते हैं।

पारणे में जो आहार लिया जाता है उसके सम्बन्ध में यह नियम है कि प्रथम परिपाटी में विगय सहित (सर्व कामगुण युक्त) आहार; दूसरी परिपाटी में विगयरहित; तीसरी परिपाटी में लेपरहित आहार और चौथी परिपाटी में आयंबिल तप किया जाता है।

सर्वतोभद्र आनुपूर्वी

लघु सर्वतोभद्र प्रतिमा का यह १ से ५ तक के अंकों का यंत्र शांति यंत्र के नाम से भी सुविख्यात है। इस यंत्र के अंकों के अनुसार नवकार मंत्र के पाँच पदों का जाप करने से व्यक्ति को सुख-समृद्धि भी प्राप्त होती है।

इस प्रकार के २४ यंत्रों की शृंखला सर्वतोभद्र आनुपूर्वी के नाम से भी प्रसिद्ध है।

इस लघु सर्वतोभद्र यंत्र का विविध रूप से जैन संसार में काफी सम्मान है।

६. महत्सर्वतोभद्र प्रतिमा

पूर्व वर्णित लघु सर्वतोभद्र प्रतिमा और प्रस्तुत महत्सर्वतोभद्र प्रतिमा में अन्तर इतना है कि लघु सर्वतोभद्र में उपवास से लेकर पचोला तक की तपस्या की जाती है जबकि इसमें उपवास से लेकर सात उपवास तक की।

दूसरा अन्तर यह है कि लघु सर्वतोभद्र के यंत्र में स्थापित अंकों का योगफल १५ होता है; जबकि इसके अंकों का योगफल २८ होता है।

प्रस्तुत महत्सर्वतोभद्र प्रतिमा के यंत्र में ७ × ७ = ४९ कोष्ठक होते हैं और लघु सर्वतोभद्र प्रतिमा के यंत्र में ५ × ५ = २५ कोष्ठक।

समानता यह है कि अंकों को ऊपर से, नीचे से, आड़े, तिरछे किसी भी प्रकार से जोड़ने–योग करने से योगफल सदा ही समान रहता है।

आराधना विधि–प्रस्तुत महत्सर्वतोभद्र प्रतिमा की आराधना विधि इस प्रकार है–

उपवास–पारणा, वेला–पारणा, तेला–पारणा, चोला–पारणा, पचोला–पारणा, छह उपवास–पारणा, सात उपवास–पारणा। यह प्रथम लता कहलाती है।

चोला–पारणा, पचोला–पारणा, छह उपवास–पारणा, सात उपवास–पारणा, एक उपवास–पारणा, बेला–पारणा, तेला–पारणा। यह दूसरी लता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सात उपवास–पारणा, एक उपवास–पारणा, बेला–पारणा, तेला–पारणा, चोला–पारणा, पचोला–पारणा, छह उपवास–पारणा। यह तीसरी लता है।

तेला–पारणा, चोला–पारणा, पचोला–पारणा, छह उपवास–पारणा, सात उपवास–पारणा, एक उपवास–पारणा, बेला–पारणा। यह चौथी लता है।

छह उपवास–पारणा, सात उपवास–पारणा, एक उपवास–पारणा, बेला–पारणा, तेला–पारणा, चोला–पारणा, पचोला–पारणा। यह पाँचवीं लता है।

बेला–पारणा, तेला–पारणा, चोला–पारणा, पचोला–पारणा, छह उपवास–पारणा, सात उपवास–पारणा, एक उपवास–पारणा। यह छठी लता है।

पचोला–पारणा, छह उपवास–पारणा, सात उपवास–पारणा, एक उपवास–पारणा, बेला–पारणा, तेला–पारणा, चोला–पारणा। यह सातवीं लता है।

इन सातों लताओं की एक परिपाटी होती है जिसमें कुल २४५ दिन लगते हैं। इनमें १९६ दिन तपस्या के हैं और ४९ दिन पारणे के।

ऐसी ही चार परिपाटियाँ करने से इस प्रतिमा की आराधना पूर्ण होती है, जिसमें कुल ९८० दिन लगते हैं। इनमें ७८४ दिन तपस्या के और १९६ दिन पारणे के हैं।

पहली परिपाटी में पारणे के दिन विगय सहित आहार लिया जाता है; दूसरी परिपाटी में विगयरहित; तीसरी परिपाटी में लेपरहित और चौथी परिपाटी में पारणे के दिन आयंबिल तप किया जाता है।

इस विधि से इस महत्सर्वतोभद्र (महासर्वतोभद्र) प्रतिमा की आराधना विधि-विधान सहित पूर्ण की जाती है।

इस प्रतिमा की आराधना आर्या वीरकृष्णा ने की थी।

७. भद्रोत्तर प्रतिमा

'भद्रोत्तर' दो शब्दों से मिलकर बना है–भद्र और उत्तर। 'भद्र' का अर्थ है–कल्याणकारी, कल्याण को देने वाला, कल्याण करने वाला और 'उत्तर' का अभिप्राय यहाँ प्रधान अथवा मुख्य है। अतः भद्रोत्तर का अर्थ प्रधान अथवा सर्वोच्च कल्याणप्रद होता है। इस निर्वचन के अनुसार भद्रोत्तर प्रतिमा साधक के लिए सर्वोच्च कल्याणप्रद है।

इस प्रतिमा की आराधना पाँच दिन की तपस्या से प्रारम्भ होकर नौ दिन तक तपस्या तक चलती है।

इसी कारण इसके स्थापना यंत्र में ५ से ९ तक के अंक स्थापित किये जाते हैं। इस यंत्र में ५ × ५ = २५ कोष्ठक होते हैं तथा इन अंकों का योगफल ३५ होता है।

णमोकार मंत्र में भी ३५ अक्षर हैं और वह भी सभी प्रकार के तथा सर्वोच्च कल्याणप्रद हैं। इन दोनों में कितना अद्‌भुत साम्य है !

आराधना विधि–प्रस्तुत भद्रोत्तर प्रतिमा की आराधना विधि इस प्रकार है–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पचोला-पारणा, छह उपवास-पारणा, सात उपवास-पारणा, आठ उपवास (अठाई)-पारणा, नौ उपवास-पारणा। यह पहली लता है।

सात उपवास-पारणा, आठ उपवास-पारणा, नौ उपवास-पारणा, पाँच उपवास-पारणा, छह उपवास-पारणा। यह दूसरी लता है।

नौ उपवास-पारणा, पाँच उपवास-पारणा, छह उपवास-पारणा, सात उपवास-पारणा, आठ उपवास-पारणा। यह तीसरी लता है।

छह उपवास-पारणा, सात उपवास-पारणा, आठ उपवास-पारणा, नौ उपवास-पारणा, पाँच उपवास-पारणा। यह चौथी लता है।

आठ उपवास-पारणा, नौ उपवास-पारणा, पाँच उपवास-पारणा, छह उपवास-पारणा, सात उपवास-पारणा। यह पाँचवीं लता है।

इन पाँचों लताओं की एक परिपाटी होती है इसे पूर्ण करने में २०० दिन लगते हैं जिनमें १७५ दिन तपस्या के और २५ दिन पारणे के हैं।

प्रतिमा की सम्पूर्ण आराधना के लिए ऐसी ही चार परिपाटियाँ की जाती हैं जिनमें कुल ८०० दिन लगते हैं। इनमें से ७०० दिन तपस्या के और १०० दिन पारणे के होते हैं।

पहली परिपाटी में पारणे में लिया जाने वाला भोजन विगय सहित (सर्वकामगुणयुक्त) होता है; दूसरी परिपाटी में लिया जाने वाला भोजन विगयरहित; तीसरी परिपाटी में लेपरहित होता है तथा चौथी परिपाटी में पारणे के दिन आयंबिल तप किया जाता है।

इस प्रकार विधि-विधान सहित भद्रोत्तर प्रतिमा (तप) की आराधना सम्पूर्ण होती है।

इस प्रतिमा की आराधना आर्या रामकृष्णा ने की थी।

उपसंहार

दशाश्रुतस्कन्ध गत १२ भिक्षु प्रतिमाओं, अन्तकृद्दशासूत्र में वर्णित ७ भिक्षु प्रतिमाओं के अनुशीलन-परिशीलन और इन दोनों ग्रन्थों में वर्णित प्रतिमाओं की साधना पद्धति पर चिन्तन करने से यह तथ्य स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये दोनों प्रकार की प्रतिमाएँ अलग-अलग थीं, इनका परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं था।

दोनों ग्रन्थों में वर्णित प्रतिमाओं पर गहराई से चिन्तन-मनन करने से एक अवधारणा यह भी समुत्पन्न होती है कि संभवतः आगमकाल में और भी विशिष्ट एवं सामान्य साधनाएँ प्रचलित रही हैं। अन्य प्रकार की प्रतिमाएँ भी प्रचलित रही हैं जिनकी आराधना करके साधक सुगति के अधिकारी बनते रहे हैं।

किन्तु काल दोष से वे साधना-पद्धतियाँ विलुप्त हो गईं। स्पष्ट साक्ष्य के अभाव में कुछ निश्चित रूप से कहना असम्भव है। जो प्राप्त है, उसी से सन्तोष करना पड़ता है। ● ●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Chapter 6

Pratima Yoga

THE *PRATIMAS* OF A BHIKSHU

Meaning of *Pratima*

The word '*Pratima*' has not been used here to indicate some figure, shape or a specific form as it generally means. In the present context it carries a special meaning and is related to spiritual practice.

In the leaves 61 and 184 of *Sthananga Vritti* (commentary) it is stated that *pratima* is a specific resolution, a specific vow. It is a system of spiritual practices with a firm resolution.

Although a specific vow, *pratima* prominently incorporates firmness of resolution.

When a seeker or ascetic matures in the vows, codes and austerities accepted by him, and is able to observe the vows and austerities avoiding transgressions and laxness, then he moves ahead firmly on the path of spiritual practices. He accepts some special practices and austerities with a firm resolve. These special practices are called *pratima* and indulgence in them is called *pratima yoga*.

The resolution and determination of the ascetic who accepts *pratimas* is of a very high order. He does not waver even in the face of most difficult situations and adverse circumstances. Even under extremely painful afflictions not a single hair on his body trembles. He remains unmoving like a mountain in his practices.

Bhikshu Pratimas

A *Bhikshu (Shraman)* accepts codes and special resolutions for special practices with firm determination. In such practices he disciplines his food intake, body, mind, speech, postures etc. with the intention of controlling the combined activities of mind, speech and body and proceeds to practice *pratimas* with absolute firmness.

Like *Shramans* a householder also practices *pratimas* with determination. The *pratimas* meant for him are called *shravak pratimas*. In scriptures there is a mention about 11 *shravak pratimas*. As here only *pratimas* related to ascetics are relevant, the *shravak pratimas* have not been detailed.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

The Number of *Bhikshu Pratimas*

The number of *Bhikshu pratimas* is 12 and these are practiced in the prescribed sequences. However it is not necessary that after one *pratima* is successfully concluded the ascetic has to compulsorily observe the following *pratima*. It depends on the strength and determination of the ascetic to continue observing later *pratimas*.

Although the *pratimas* are generally practiced in the prescribed sequence, some extremely strong and determined ascetics skip the earlier *pratimas* and practice the twelfth *Bhikshu pratima*: as was done by ascetic Gajasukumal. The detailed story of Gajasukumal is available in *Antakriddasha Sutra*.

The description of *Bhikshu pratimas* is available in the 7th chapter of *Dashashrutaskandh*. Based on this, a brief description of the 12 *Bhikshu pratimas* in prescribed sequence is given here.

The Attitude and Activity of a *Pratimadhari Shraman*

A *Pratimadhari Shraman* (an ascetic observing *pratimas*) becomes extremely apathetic towards his body. Even if there are troubles caused by fire, water anti-social elements at the place of stay, he does not abandon that place.

If a piece of straw or sand particles fall into his eyes due to wind he refrains from removing it using his hand and tolerates the pain. In the same way if a thorn or a sliver of glass pieces his feet and sticks into it, he does not remove it. While walking if he comes on a difficult path with pebbles, he does not think of shifting to a comfortable path.

If ferocious animal like tiger, lion comes directly towards him, he does not even take one step back and just stands where he is. However, if a cow or other such harmless animal comes, he steps aside to give it way out of compassion.

If he happens to approach a colony of ants while walking and he is unable to cross over it, he just stands before it to avoid destruction of living beings.

He neither sits, walks or stands on *sachit* (infested with living organism) land.

In order to protect himself from cold he does not desire to stand in sun neither does he think of going into shade during summer; Sun or shade, he remains wherever he is.

During his movement at whatever spot the sun sets or the fourth quarter of the day ends, he stops there for the night may it be the center of a town, road, border of a village, dense forest or shade of a tree. He does not bother about the roar of a lion or other ferocious animals and icy winds of winter.

He tolerates with equanimity all the afflictions caused by human beings, divine beings, animals or birds.

He observes a complete discipline of speech. He speaks only for four reasons—(1) to seek clothes, utensils etc. from fellow *Shramans*, (2) to ask questions to guru or senior and scholarly *Shramans* in order to remove his doubts or to a lay person to find

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

way. (3) to seek permission from the guru to go to collect alms or from the owner of the abode to stay there, and (4) to answer religious questions done out of curiosity to understand. Besides these for reasons he dose not utter a word. He always remains silent.

He does not stay in a village for more than two nights and a day.

While alms-seeking also, he observes some strict rules.

He does not accept food from a place where the food is cooked only for one person; where it is cooked for a pregnant woman or the mother of an infant; where it is given by a pregnant woman or one who has been breast-feeding her baby; where both the feet of the person giving alms are either outside or inside the door sill; where the donor family is acquainted, in other words to accept food only from unknown families and follows other such numerous rules.

He goes out only once in a day to seek alms under such special and strict rules.

1. First *Pratima*

Sticking to the above rules a *Shraman* practices the first *pratima*. Its duration is one month. Under this *pratima* the *Shraman* accepts only one *datti* of food and one *datti* of water. *Datti* means unbroken flow of solid or liquid food.

2. Second *Pratima*

Sticking to the above rules a *Shraman* practices the second *pratima*. Its duration is two months. Under this *pratima* the *Shraman* accepts two *dattis* of food and two *dattis* of water.

3. Third *Pratima*

Sticking to the above rules a *Shraman* practices the third *pratima*. Its duration is three months. Under this *pratima* the *Shraman* accepts three *dattis* of food and three *dattis* of water.

4. Fourth Pratima

Sticking to the above rules a *Shraman* practices the fourth *pratima*. Its duration is four months. Under this *pratima* the *Shraman* accepts four *dattis* of food and four *dattis* of water.

5. Fifth *Pratima*

Sticking to the above rules a *Shraman* practices the fifth *pratima*. Its duration is five months. Under this *pratima* the *Shraman* accepts five *dattis* of food and five *dattis* of water.

6-7. Sixth and Seventh Pratimas

Sticking to the above rules a *Shraman* practices the sixth and seventh *pratimas*. Their duration is six and seven months respectively. Under these *pratimas* the *Shraman* accepts six and seven *dattis* of food and six and seven *dattis* of water respectively.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

8. Eighth *Pratima*

The duration of this *pratima* is one week or seven days.

Here, the *Shraman* observes a fast without even water for a day and night. After this he goes out of the city or the village selects a *prasuk* (free of living organism) place and starts *kayotsarg* (meditation taking away all attention from the body or forgetting the body altogether) in postures like *Uttanasan, Parshvasan* or *Nishadyasan.*

If he has any natural urge to relieve himself he moves to a spot selected, inspected, and prepared in advance, relieves himself, returns to the place of meditation and resumes his meditation.

This way he continues this practice for seven days.

9. Ninth *Pratima*

The duration of this *pratima* is also seven days and it is also practiced like the eighth *pratima.* The only difference being that the postures of meditation and *kayotsarg* according to the tenets of the *Jina* here are *Dandasan, Lakutasan* or *Utkatukasan.*

10. Tenth *Pratima*

The duration of this *pratima* is also seven days and it is also practiced like the eighth *pratima.* The only difference being that the postures of meditation and *kayotsarg* according to the tenets of the *Jina* here are *Godohikasan, Virasan* or *Amrakubjasan.*

11. Eleventh *Pratima*

The duration of this *pratima* is one day-night (from the dawn of the first day till the dawn of the second day).

Here the *Shraman* observes a fast without even water for two days before commencing the practice.

He goes out of the city or the village selects a *prasuk* spot and starts *kayotsarg* in a standing posture keeping the feet together and hands down touching the thighs.

12. Twelfth Pratima

The duration of the twelfth *pratima* is only one night but it is an extremely difficult practice.

Here the *Shraman* observes a fast without even water for three days (*Ashtam Bhakt*) before commencing the practice. He goes out of the city or the village selects a *prasuk* spot. Some strong willed ascetic may also go to a cremation ground as Gajasukumal did.

There he stands in a posture keeping the feet together and hands down, touching the thighs. Now he bends his torso slightly and looks at a particle of matter. He continues to stare at the particle without blinking, concentrates all his senses and mind on his goal, and goes into meditation with all his attention.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

He spends the whole night doing this practice.

If the practice of this *pratima* is not properly done according to the tenets of the *Jina* and the ascetic wavers under some affliction, he has to suffer three grave consequences—

(1) Mental disturbance, lunacy or insanity.

(2) Some chronic disease and phobia.

(3) Drifting away from the path shown by the omniscient.

However, if he concludes the practice by properly observing the rules he is blessed with three unique benefits—

(1) Acquires *Avadhi-jnana*.

(2) Acquires *Manahparyav-jnana*.

(3) Acquires *Keval-jnana*.

Thus these twelve *Bhikshu pratimas* are the means of purity of the ascetic life and are signs of strong will and power of determination of a *Shraman*.

Gautamkumar Muni practiced these *pratimas*.

OTHER *PRATIMAS*

The said twelve *pratimas* have been detailed in *Dashashrutaskandh*. Besides these, other *pratimas* that were practiced by Sukrishna and other *Shramanis* have been detailed in *Antakriddasha Sutra*. These *pratimas* are also called *Bhikshu pratimas* but their procedures are different.

1. *Sapta-saptamika Pratima*

The duration of this *pratima* is seven weeks or 49 days.

Procedure—Here during the first week every day one *datti* food and one *datti* water is taken. During the second week two *dattis* of each, during the third week three *dattis* of each is taken every day. This way every week one *datti* is increased so that during the seventh week seven *dattis* daily is taken.

The combined total of *dattis* of food and water consumed during this *sapta-saptamika pratima* is 196.

2. *Ashta-ashtamika Pratima*

As is evident from the name the duration of this pratima is 64 (8 × 8) days.

Procedure—Here during the first set of eight days every day one *datti* food and one *datti* water is taken. During the second set of eight days two *dattis* of each is taken every day. This way every eight days one *datti* is increased so that during the eighth set of eight days eight *dattis* daily is taken.

The combined total of *dattis* of food and water consumed during this *ashta-ashtamika pratima* is 288.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

3. *Nava-navamika Pratima*

The duration of this *pratima* is 81 (9 × 9) days.

Procedure—Here during the first set of nine days every day one *datti* food and one *datti* water is taken. During the second set of nine days two *dattis* of each is taken every day. This way every nine days one *datti* is increased so that during the ninth set of nine days nine *dattis* daily is taken.

The combined total of *dattis* of food and water consumed during this *nava-navamika pratima* is 405.

4. *Dash-dashamika Pratima*

The duration of this *pratima* is 100 (10 × 10) days.

Procedure—Here during the first set of ten days every day one *datti* food and one *datti* water is taken. During the second set of ten days two *dattis* of each is taken every day. This way every ten days one *datti* is increased so that during the tenth set of ten days ten *dattis* daily is taken.

The combined total of *dattis* of food and water consumed during this *dash-dashamika pratima* is 550.

Arya Sukrishna practiced these four *pratimas*.

5. *Laghu Sarvatobhadra Pratima*

Sarvatobhadra means same in all the four sides. In this *pratima* the numbers of continuous fasts are arranged in a chart. Numerals one to five are placed in a chart because in the practice of *Laghu Sarvatobhadra pratima* the maximum number of continuous fasts is five.

The numerals are so arranged in the chart that the total of numbers added horizontally, vertically or diagonally is always the same. As the numerals used are one to five the total is always 15. That is why it is called *Laghu Sarvatobhadra pratima*.

Procedure—One day fast and *parana* (break-fast or the day of eating after a set of fasts), two day fast and *parana*, three day fast and *parana*, four day fast and *parana*, five day fast and *parana*; three day fast and *parana*, four day fast and *parana*, five day fast and *parana*, one day fast and *parana*, two day fast and *parana*; five day fast and *parana*, one day fast and *parana*, two day fast and *parana*, three day fast and *parana*, four day fast and *parana*; two day fast and *parana*, three day fast and *parana*, four day fast and *parana*, five day fast and *parana*, one day fast and *parana*; four day fast and *parana*, five day fast and *parana*, one day fast and *parana*, two day fast and *parana*, three day fast and *parana*.

This is one sequence of this *pratima* and it lasts for three months and ten days.

In total there are four different sequences like this lasting for 1 year 1 month and 10 days. This included 300 fasting days and 100 eating days.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

The rule about the food to be taken on days of *parana* is that during the first sequence food including some stimulating things (*vigaya*) is allowed; during the second sequence food without any stimulating things is allowed; during the third sequence food without any oil is allowed and during the fourth sequence *ayambil-tap* (eating food cooked using a single ingredient even without any salt or other condiments. Such food is taken only once in a day) is observed on the eating days.

Sarvatobhadra Anupurvi

This table of *Laghu-sarvatobhadra pratima* using numerals from 1 to 5 is also popularly known as *Shanti-yantra*. Chanting the five stanzas of *Namokar* mantra according to sequence of numerals in this chart is said to bring happiness and prosperity to the chanter.

A set of such 24 tables is known as *Sarvatobhadra Anupurvi*.

This *Laghu sarvatobhadra* is a highly venerated table in the Jain tradition.

6. *Mahatsarvatobhadra Pratima*

The only difference between the said *Laghu sarvatobhadra pratima* and this *Mahatsarvatobhadra pratima* is that in the former the maximum number of continuous fasting days are five and in the later it is seven.

Accordingly the total of numbers in the table of this *pratima* is 28 instead of 15 of the *Laghu sarvatobhadra* table.

The number of squares in the *Mahatsarvatobhadra* table is 49 (7×7) instead of 25 (5×5) of the *Laghu sarvatobhadra* table.

Here also the numerals are so arranged in the table that the total of numbers added horizontally, vertically or diagonally is always the same.

Procedure—The procedure of practice of this *Mahatsarvatobhadra pratima* is as follows—

One day fast and *parana*, two day fast and *parana*, three day fast and *parana*, four day fast and *parana*, five day fast and *parana*, six day fast and *parana*, seven day fast and *parana*. This sequence is called the first string.

Four day fast and *parana*, five day fast and *parana*, six day fast and *parana*, seven day fast and *parana*, one day fast and *parana*, two day fast and *parana*, three day fast and *parana*. This is the second string.

Seven day fast and *parana*, one day fast and *parana*, two day fast and *parana*, three day fast and *parana*, four day fast and *parana*, five day fast and *parana*, six day fast and *parana*. This is the third string.

Three day fast and *parana*, four day fast and *parana*, five day fast and *parana*, six day fast and *parana*, seven day fast and *parana*, one day fast and *parana*, two day fast and *parana*. This is the fourth string.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Six day fast and *parana*, seven day fast and *parana*, one day fast and *parana*, two day fast and *parana*, three day fast and *parana*, four day fast and *parana*, five day fast and *parana*. This is the fifth string.

Two day fast and *parana*, three day fast and *parana*, four day fast and *parana*, five day fast and *parana*, six day fast and *parana*, seven day fast and *parana*, one day fast and *parana*. This is the sixth string.

Five day fast and *parana*, six day fast and *parana*, seven day fast and *parana*, one day fast and *parana*, two day fast and *parana*, three day fast and *parana*, four day fast and *parana*. This is the seventh string.

There is a complete sequence of all these seven strings which lasts for 245 days. It contains 196 fasting days and 49 eating days.

In total there are four different sequences like this lasting for 980 days. This includes 784 fasting days and 196 eating days.

The rule about food is that during the first sequence food including some stimulating things (*vigaya*) is allowed; during the second sequence food without any stimulating things is allowed; during the third sequence food without any oil is allowed and during the fourth sequence *ayambil-tap* is observed on the eating days.

Following this procedure and observing prescribed rules and rituals. *Mahatsarvatobhadra pratima* is concluded.

This *pratima* was practiced by Arya Virakrishna.

7. *Bhadrottar Pratima*

The word '*Bhadrottar*' is made up of two words—*Bhadra* and *uttar*. '*Bhadra*' means beneficent or that which gives or does benefit and '*Uttar*' here means most important or main. Therefore *Bhadrottar* means that which causes maximum benefit or the best of the beneficent. Thus *Bhadrottar pratima* endows maximum benefits to the seeker.

The practice of this *pratima* starts with five day fast and goes up to nine day fast.

Therefore the related tables of numerals have numbers from 5 to 9. The number of squares in a table are 25 (5 × 5) and the total of a column is 35.

Namokar mantra also has 35 letters and that also is believed to be the best of the beneficent. What a strange coincidence !

Procedure—The procedure of *Bhadrottar pratima* practice is as follows—

Five day fast and *parana*, six day fast and *parana*, seven day fast and *parana*, eight day fast and *parana*, nine day fast and *parana*. This sequence is called the first string.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Seven day fast and *parana*, eight day fast and *parana*, nine day fast and *parana*, five day fast and *parana*, six day fast and *parana*. This is the second string.

Nine day fast and *parana*, five day fast and *parana*, six day fast and *parana*, seven day fast and *parana*, eight day fast and *parana*. This is the third string.

Six day fast and *parana*, seven day fast and *parana*, eight day fast and *parana*, nine day fast and *parana*, five day fast and *parana*. This is the fourth string.

Eight day fast and *parana*, nine day fast and *parana*, five day fast and *parana*, six day fast and *parana*, seven day fast and *parana*. This is the fifth string.

There is a complete sequence of all these five strings which lasts for 200 days. It contains 175 fasting days and 25 eating days.

In total there are four different sequences like this lasting for 800 days. This includes 700 fasting days and 100 eating days.

The rule about food is that during the first sequence food including some stimulating things (*vigaya*) is allowed; during the second sequence food without any stimulating things is allowed; during the third sequence food without any oil is allowe and during the fourth sequence ayambil-tap is observed on the eating days.

Following this procedure and observing prescribed rules and rituals, *Bhadrottar pratima* is concluded.

This *pratima* was practiced by Arya Ramakrishna.

Conclusion

Studying these 12 *Bhikshu pratimas* mentioned in *Dashashrutaskandh* and the seven mentioned in *Antakriddasha Sutra* and analyzing the detailed procedures it becomes evident that both these sets of *pratimas* are separate and they had no inter-relation.

An in-depth study of the *pratimas* detailed in these two scriptures also indicates that there must have been numerous other spiritual practices, special and normal, prevalent during the *Agam*-period. Many other *pratimas* must have been used by seekers for purity and consequent uplift.

But the ravages of time made most of these procedures or systems of spiritual practices extinct. It is not possible to come to a definite conclusion about them in absence of clear evidences. One has to be content with what is available.

●●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निदान

'निदान' शब्द का आशय

'निदान' एक बहुआयामी और व्यापक अर्थ वाला शब्द है। भिन्न-भिन्न संदर्भों में इसके भिन्न-भिन्न अर्थ होते हैं। उदाहरणार्थ–वैद्यक शास्त्र में इसका अर्थ है–रोग के कारणों का निर्णय करना। इसे अंग्रेजी भाषा में diagnosis कहा जाता है।

साधारण भाषा में इस शब्द से दुःख या खेद प्रगट किया जाता है। जैसे–निदान, वह परीक्षा में उत्तीर्ण न हो सका।

कोष आदि में 'निदान' शब्द पवित्रता (purity), शुद्धिकरण (purification) आदि के लिए प्रयुक्त होता है। इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग उत्तराध्ययनसूत्र के १८वें अध्ययन की गाथा ५३ में निदाणखमा प्रयुक्त हुआ है।

जैनधर्म का पारिभाषिक शब्द

किन्तु अधिकांशतः 'निदान' शब्द जैन धर्मशास्त्रों में पारिभाषिक (technical) शब्द के रूप में प्रयुक्त हुआ है और इसका विशिष्ट अर्थ है भावी जीवन में किसी विशिष्ट लक्ष्य, उद्देश्य, पद आदि की प्राप्ति, किसी से बदला लेने की इच्छा, काम-भोग भोगने की अभिलाषा आदि का दृढ़ संकल्प।

लेकिन मात्र अभिलाषा, इच्छा या कामना ही निदान का रूप नहीं ले लेती, ऐसी इच्छाएँ तो शेखचिल्ली की कल्पनाएँ (fool's fancy or paradise) बनकर ही रह जाती हैं।

निदान एक दृढ़ संकल्प (firm volition) है। अपने मन-अभिलषित की प्राप्ति के लिए तपस्या को दाव पर लगाना पड़ता है। तपस्वी, श्रमण या श्रमणी इन शब्दों द्वारा निदान करता है-

"यदि मेरी तपस्या, साधना, ब्रह्मचर्य-पालन अथवा व्रत-नियमों का कुछ भी फल हो तो मेरी अमुक अभिलाषा पूर्ण हो।"

इसे तपस्या को बेचना अथवा क्षार करना भी साधारण भाषा में कहा जाता है।

निदान को तत्त्वार्थसूत्र आदि ग्रन्थों में आर्तध्यान का चौथा भेद कहा है।

निदान के कारण : राग-द्वेष दोनों ही

यह तथ्य है कि निदान की उत्पत्ति मोहनीय कर्म के कारण ही होती है। मोहनीय कर्म रागरूप भी है और द्वेषरूप भी। द्वेष से तपस्वी अपने किसी शत्रु, उत्पीड़क आदि के नाश का निदान करता है और राग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के प्रभाव से काम-भोगों की अभिलाषा करता है। लेकिन इसका उत्तेजक निमित्त कोई ऋद्धि-समृद्धि रूप ऐश्वर्य-सम्पन्न स्त्री-पुरुष, राजा-रानी आदि होते हैं। देवलोक का ऐश्वर्य और देव-देवियों के दिव्य काम-भोगों का वर्णन भी व्यक्ति को निदान के लिए उत्तेजित कर देता है।

साथ ही कुछ ईर्ष्या का भाव भी होता है कि जैसे यह पुण्यवान पुरुष उत्कृष्ट मानुषिक तथा देवदिव्य भोगों को भोग रहा है, वैसे ही भोग में भी भोगूँ।

निदान के प्रकार और फल

भगवान महावीर ने दशाश्रुतस्कन्ध, दसवीं दशा में निदान के नौ प्रकार अथवा भेद बताये हैं। इनका साररूप में संक्षिप्त वर्णन यहाँ किया जा रहा है।

पूर्व भूमिका

भगवान महावीर का समवसरण राजगृह नगर के बाह्य गुणशीलक उद्यान में लगा हुआ था। जन-परिषद् के साथ राजा श्रेणिक तथा रानी चेलना भी भगवान के दर्शन और देशना-श्रवण के लिए पूरे साज-शृंगार के साथ आये। उनके अति सुन्दर रूप, बहुमूल्य वस्त्रालंकार राज्य-समृद्धि आदि से प्रभावित होकर भगवान के कुछ श्रमण-श्रमणियों ने मन ही मन निदान कर लिया कि अपनी तपस्या के फलस्वरूप आगामी जन्म में हम भी ऐसे ही मनुष्य-संबंधी भोग भोगें। सर्वज्ञ भगवान से उनका यह निदान छिप न सका।

भगवान के दर्शन-वन्दन और देशना-श्रवण करने के पश्चात् परिषद् तथा राजा श्रेणिक और रानी चेलना भी चली गई।

तब भगवान ने निदान और उसका दुष्फल श्रमण-श्रमणियों को समझाया।

निदान के नौ भेद हैं।

पहला निदान

एक निर्ग्रन्थ (श्रमण), जो तप-साधना, व्रत-नियम का यथोचित पालन करता है, वह किसी समृद्धिशाली उच्च वंशीय राजा अथवा राजकुमार को तथा उसकी ऋद्धि-समृद्धि आदि को देखता है, तब वह काम-भोगों के प्रति आकर्षित होकर निदान करता है-"मेरे तप, नियम, ब्रह्मचर्य-पालन का फल हो तो मैं भी इस राजा अथवा राजकुमार के समान आगामी जन्म में मनुष्य-सम्बन्धी उत्तम सुख भोगूँ।"

ऐसा व्यक्ति यदि आलोचना-इस निदान की आलोचना किये बिना ही शरीर-त्याग करता है तो (तप तथा श्रमण-पर्याय का पालन करने के फलस्वरूप) वह देवलोक में देव बनता है। वहाँ का आयुष्य पूर्ण करके उच्च कुल में जन्म लेता है। उसे मनुष्य-संबंधी सुख-भोग के साधन प्राप्त होते हैं। वह उन सुखों को भोगता है।

यद्यपि उसे साधु, माता-पिता आदि सर्वज्ञ प्रणीत धर्म सुनाते हैं, लेकिन वह रुचिपूर्वक नहीं सुनता। दुर्लभबोधि हो जाता है और काम-भोगों में लिप्त रहकर आयु पूर्ण होने पर नरकगति को जाता है। वहाँ के घोर दुःखों से चिरकाल तक पीड़ित होता है।

यह निदान का ही फल विपाक है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूसरा निदान

कोई निर्ग्रन्थी (श्रमणी), जो तप, संयम, ब्रह्मचर्य और ध्यान-साधना सर्वज्ञ प्रणीत धर्म के अनुसार करती है।

वह किसी ऐसी स्त्री को देखती है जो बहुमूल्य रत्नाभूषणों से सुसज्जित है, मनुष्य-सम्बन्धी उत्तम भोग सामग्री उसे उपलब्ध है, अत्यन्त सुन्दरी है, अपने पति की एक मात्र प्राणप्रिया है।

उसे देखकर वह श्रमणी निदान करती है–"यदि सम्यक् प्रकार से आचरित मेरे तप, नियम, ब्रह्मचर्य-पालन का फल हो तो मैं भी आगामी जन्म में इस स्त्री के समान मनुष्य-संबंधी उत्तम काम-भोगों को भोगूँ।"

वह श्रमणी यदि इस निदान की आलोचना किये बिना ही देह-त्याग करती है तो (आचरित तपस्या के प्रभाव से) देवगति में उत्पन्न होती है। वहाँ का आयुष्य पूर्ण करके उच्च कुल में जन्म लेती है जहाँ उसे काम-भोगों के उत्तम साधन उपलब्ध होते हैं। उन सुखों को भोगती है।

यद्यपि श्रमण आदि उसे धर्म सुनाते हैं; लेकिन वह इच्छापूर्वक नहीं सुनती। वह दुर्लभबोधि होती है। काम-भोगों में लिप्त रहकर, वह महाआरम्भ, महापरिग्रह वाली बनकर आयु पूर्ण करके नरक को जाती है और वहाँ की घोर पीड़ा को सुदीर्घकाल तक भोगती है।

यह उस निदान शल्य का विपाक परिणाम है कि वह केवलिप्रज्ञप्त धर्म को सुनती भी नहीं।

तीसरा निदान

कोई निर्ग्रन्थ (श्रमण), जो तप, संयम, ब्रह्मचर्य-पालन, ध्यान-साधना में सर्वज्ञ प्रणीत धर्म श्रमणधर्म की अनुपालना करता है।

वह किसी अत्यन्त सुन्दरी उच्च कुलीन स्त्री को देखता है कि वह पति की प्राणप्रिया है तथा मनुष्य-संबंधी उत्तमोत्तम भोगों को भोग रही है।

तब वह निर्ग्रन्थ श्रमण मन में सोचता है–"पुरुष का जन्म तो दुःखों से भरा है। युद्ध में उसे अपने वक्ष-स्थल पर शत्रुओं के बाण, भाले, तलवार आदि के प्रहार झेलने पड़ते हैं और भी अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं। लेकिन स्त्री का जन्म सुखमय है, वह अपने भवन–महल में रहकर, दास-दासियों पर हुकुम चलाती है और स्वयं सुखमय जीवन व्यतीत करती है। उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता।"

वह श्रमण निदान (दृढ़ संकल्प) करता है–"यदि मेरे इस तपश्चरण का फल हो तो मैं आगामी जन्म में उच्च कुल वाली स्त्री बनूँ और मनुष्य-संबंधी उत्तमोत्तम सुख भोगूँ।"

यदि वह श्रमण इस निदान की आलोचना, प्रतिक्रमण किये बिना ही कालधर्म प्राप्त करता है तो (आचरित तपस्या के प्रभाव से) देवगति प्राप्त करता है और वहाँ का आयुष्य पूर्ण करके मनुष्यलोक में उच्च कुलीन स्त्री रूप में जन्म ग्रहण करके उत्तमोत्तम भोगों को भोगता है।

उसे धर्माचार्य, श्रमण आदि केवली प्ररूपित धर्म सुनाते हैं किन्तु वह रुचिपूर्वक नहीं सुनती, सुनी-अनसुनी कर देती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह स्त्री आयु पूर्ण कर नरक में उत्पन्न होती है और दारुण दुःखों को भोगती है। यह निदान का कटुफल है।

चौथा निदान

कोई निर्ग्रन्थी (श्रमणी) केवलिप्रज्ञप्त धर्म को ही सत्य-तथ्य, आत्म-कल्याणकारी मानकर तदनुसार तप, संयम, ब्रह्मचर्य-पालन की आराधना करती है।

वह किसी उच्च कुलीन (विशुद्ध मातृ-पितृ वाले उग्रवंशी या भोगवंशी), सुन्दर, स्वरूपवान, ऐश्वर्यशाली पुरुष को देखती है।

वह मन में सोचती है–"स्त्री का जीवन दुःखमय है क्योंकि वह स्वतंत्र रूप से अकेली एक गाँव से दूसरे गाँव तक भी नहीं जा सकती। क्योंकि जिस प्रकार आम, बिजोरा, इक्षु खण्ड आदि मनुष्यों को प्रिय और आस्वादनीय, इच्छनीय लगते हैं; इसी प्रकार स्त्री का शरीर भी पुरुषों को आस्वादनीय, प्राप्त करने योग्य, इच्छित और अभिलषित होता है। इस कारण स्त्री का जीवन दुःखमय और पुरुष का जीवन सुखमय है।"

तब वह निदान करती है–"यदि मेरे द्वारा आचरित तप का फल हो तो मैं आगामी जन्म में उच्च कुलीन पुरुष बनकर मनुष्य-संबंधी उत्तमोत्तम सुखों का भोग करूँ।"

इस निदान की आलोचना-प्रतिक्रमण न करके यदि वह श्रमणी देह-त्याग करती है तो देवगति को प्राप्त करती है। वहाँ का आयुष्य पूर्ण कर उच्च कुल में पुरुष रूप में उत्पन्न होती है और उत्तमोत्तम मनुष्य-संबंधी भोग उसे प्राप्त होते हैं।

धर्माचार्य आदि इसे (कृतनिदान) पुरुष को सर्वज्ञ प्रणीत धर्म सुनाते हैं; पर वह उसे सुना-अनसुना कर देता है।

वह दुर्लभबोधि होता है। आयु पूर्ण कर नरक में उत्पन्न होता है और दारुण दुःख भोगने को विवश होता है। यह निदान का कटुफल है।

पाँचवाँ निदान

कोई निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी (श्रमण या श्रमणी) केवली प्ररूपित धर्म के अनुसार तप, संयम, ब्रह्मचर्य आदि की आराधना करता है।

गुरु-मुख से सुनकर अथवा शास्त्रों में पढ़कर देवों के सुख के प्रति आकर्षित होता है।

तब वह मन में सोचता है–"यह मनुष्य-शरीर तो मल-मूत्र, श्लेष्म आदि से दुर्गन्धित है। देवों का शरीर इन मलों से रहित होने के कारण स्वच्छ और सुगन्धित है। साथ ही देव विभिन्न रूप विकुर्वित कर अपनी और अन्य देवियों के साथ मनमानी क्रीड़ा करते हैं। चिरकाल तक भाँति-भाँति के सुख भोगते हैं। उनका आयुष्य भी दीर्घ होता है।"

तब वह निदान करता है–"मेरी तपस्या का फल हो तो मैं देव-सम्बन्धी दिव्य भोग भोगूँ।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह यदि अपने निदान की आलोचना-प्रतिक्रमण करके शुद्ध न हो और देह-त्याग करे तो देवगति प्राप्त करके देव बनते हैं। वहाँ के सुख भोगते हैं। आयु पूर्ण होने पर उच्च कुलीन मानव बनते हैं। यहाँ भी सुख भोगते हैं।

लेकिन वे दुर्लभबोधि होते हैं। केवलिप्रज्ञप्त धर्म पर श्रद्धा-प्रतीति नहीं करते और दीर्घकाल तक संसार में परिभ्रमण करते रहते हैं। यह निदान का दुष्फल है।

छठा निदान

केवलिप्रज्ञप्त धर्म के अनुसार तप, संयम, ब्रह्मचर्य की परिपालना करता हुआ कोई श्रमण-श्रमणी, काम-भोगों से उद्दीप्त होकर यह सोचता है–"ऊपर देवलोक है, वहाँ देवगण मनमानी अनंग क्रीड़ाएँ करते हैं।"

ऐसा सोचकर कोई श्रमण-श्रमणी निदान करता है–"मैं देवरूप में उत्पन्न होकर अपनी एवं अन्य देवियों के साथ दिव्य भोग भोगूँ।"

इस निदान की आलोचना-प्रतिक्रमण किये बिना ही मृत्यु पाकर वह देव बनता है, स्वयं के विकुर्वित देव-देवियों और अपनी देवियों के साथ दिव्य सुख भोगता है। वहाँ का आयुष्य पूर्ण कर उच्च कुलीन मानव बनकर सुख भोगता है।

वह केवलिप्रज्ञप्त धर्म को सुनता है, समझता है; किन्तु उस पर श्रद्धा-प्रतीति नहीं करता। वह अन्य धर्मों, धर्माचार्यों में रुचि रखता है।

आयु पूर्ण कर वह किसी असुर स्थान में किल्विषिक देव बनता है। वहाँ का आयुष्य पूर्ण कर भेड़-बकरे के समान गूँगे-बहरे के रूप में जन्म धारण करता है। यह निदान का कटु परिणाम है।

सातवाँ निदान

केवलिप्रज्ञप्त धर्म के अनुसार कोई श्रमण-श्रमणी तप, संयम, ब्रह्मचर्य की आराधना करता है। वह दिव्य काम-भोगों का निदान करता है–"मेरे तप-संयम का फल हो तो मैं दिव्य सुख भोगूँ।"

निदान की आलोचना किये बिना वह देह-त्याग करके देवलोक में उत्पन्न होता है। स्वयं के विकुर्वित देव-देवियों के साथ अनंग क्रीड़ा करता है, अन्य देव-देवियों के साथ नहीं करता।

देवायु समाप्त होने पर वह उच्च कुल में जन्म लेता है, उत्तम सुख भोगता है, सर्वज्ञ प्रणीत धर्म पर श्रद्धा रखता है, लेकिन श्रावक व्रत ग्रहण नहीं कर सकता। वह सिर्फ दर्शन-श्रावक रहता है।

मनुष्यायु समाप्त होने पर वह किसी देवलोक में देव बनता है।

आठवाँ निदान

कोई श्रमण-श्रमणी केवलिप्रज्ञप्त धर्म के अनुसार तप-संयम की आराधना करता है।

उसे मनुष्य-संबंधी काम-भोगों से अरुचि हो जाती है। वह विचार करता है–"मनुष्य-संबंधी काम-भोग निस्सार हैं, क्षणिक हैं, त्याज्य हैं। दिव्य काम-भोग भी संसार बढ़ाने वाले हैं।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार की विरक्ति हृदय में धारण कर वह निदान करता है–"यदि मेरी तपस्या का फल हो तो आगामी जीवन में विशुद्ध मातृ-पितृ-पक्षीय उच्च कुल में जन्म लेकर श्रमणोपासक बनूँ, जीवाजीव विभक्ति का ज्ञान प्राप्त करूँ, पुण्य-पाप को पहचानूँ और श्रमण-श्रमणी को प्रासुक एषणीय भक्त-पान आदि दूँ।"

इस निदान की आलोचना किये बिना देह त्यागकर वह उच्च देवलोक में देवरूप में उत्पन्न होता है। वहाँ का आयुष्य पूर्ण करके उच्च कुलीन मानव बनता है। सर्वज्ञ प्रणीत धर्म सुनकर उस पर श्रद्धा करता है, श्रावक व्रतों का पालन करता है, अनशन-प्रत्याख्यान आदि भी करता है; किन्तु सकल संयम-श्रमण धर्म का पालन नहीं कर सकता।

आयु पूर्ण करके वह किसी देवलोक में देव बनता है।

सकल संयम-श्रमणत्व पालन करने की असमर्थता इस निदान का फल है।

नौवाँ निदान

कोई श्रमण-श्रमणी केवलिप्रज्ञप्त धर्म के अनुसार तप-संयम की यथावत् आराधना करता हुआ मनुष्य-संबंधी काम-भोगों से विरक्त हो जाता है, इन्हें निस्सार मानने लगता है।

तब वह इस प्रकार का निदान करता है–"मेरे तप का फल हो तो मैं ऐसे अन्त-प्रान्त-तुच्छ-भिक्षु कुल में जन्म लूँ, जहाँ लोगों में पारम्परिक मोह कम होता है। अतः मैं प्रव्रजित होने के लिए सुविधापूर्वक गृहस्थ जीवन का त्याग कर सकूँ।"

इस निदान की आलोचना किये बिना देह त्यागकर वह देव बनता है। वहाँ का आयुष्य पूर्ण कर ऐसे ही कुलों में जन्म लेता है। वह केवली प्ररूपित धर्म सुनता है, श्रद्धा करता है, श्रावक व्रतों का पालन करता है और श्रमण-दीक्षा ग्रहण करके तप भी करता है; किन्तु मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता; किसी देवलोक में ही उत्पन्न होता है।

मुक्ति-प्राप्ति में बाधक बनना–यह इस निदान का विपाक फल है।

उपर्युक्त कथित इन नौ प्रकार के निदानों का मूल कारण राग है। प्रारम्भ के छह निदानों में काम-भोग की अभिलाषा है–काम राग है तो अन्तिम तीन निदानों में धर्म का राग है।

लेकिन निदान केवल रागवश ही नहीं होता; द्वेष के वशीभूत होकर भी व्यक्ति निदान करता है।

द्वेषवश निदान

द्वेषवश निदान किसी आततायी अथवा उत्पीड़क के प्रति होता है।

जब कोई शक्तिशाली व्यक्ति किसी निर्बल की कोई अतिप्रिय वस्तु बलपूर्वक छीन लेता है, उसे प्रताड़ित करता है, निर्दयतापूर्वक मारता-पीटता है तब वह शक्तिहीन व्यक्ति इस शक्तिशाली को मारने अथवा विनाश करने का निदान कर लेता है और आगामी जीवन में उसका विनाश भी कर डालता है।

सभी वासुदेव इसी प्रकार के शत्रुभाव का निदान करते हैं।

शास्त्रों में द्वेष-निदान के काफी उदाहरण मिलते हैं। यथा–यादव कुमारों ने जब द्वैपायन तपस्वी को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहुत मार-पीटा, मरणासन्न कर दिया तो उसने द्वारका विनाश का निदान कर लिया। अग्निकुमार देव बनकर अग्निवर्षा करके उसने समृद्ध नगरी द्वारका को भस्म कर डाला।

ज्ञातव्य तथ्य

निदान करने वाले के लिए तपस्वी होना अनिवार्य है; चाहे वह बाल तप ही क्यों न हो। क्योंकि तप के फलस्वरूप ही उसे वह शक्ति प्राप्त होती है जिससे कि उसकी अभिलाषा पूर्ण हो सके।

उत्तराध्ययनसूत्र के चित्त-संभूतीय अध्ययन में सम्भूत मुनि चक्रवर्ती के भोगों की प्राप्ति का निदान करते हैं और अपनी उग्र तपस्या के फलस्वरूप ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती बनते हैं।

सामान्यतः मनुष्य-संबंधी भोगों का निदान करने वाला जीव इच्छित भोगों को भोगकर अन्त में नरक जाता है; जैसे ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती नरकगामी हुआ।

लेकिन द्रौपदी ने भी पूर्वभव में मनुष्य-संबंधी भोगों का निदान किया, पाँच पांडवों के साथ उसका विवाह हुआ। लेकिन स्वयंवर मंडप में ही आकाशचारी श्रमण ने उसके पिछले भव सुनाये तो उसे सद्बुद्धि आई, निदान का प्रायश्चित्त किया और अन्त में स्वर्ग प्राप्त किया।

निदान दृढ़ संकल्प है; अपनी तपस्या के फलस्वरूप अभिलाषा पूरी करना है।

लेकिन सामान्यतः सभी मानव अपनी उन्नति की, धन-शक्ति-पद-प्रतिष्ठा पाने की इच्छा करते हैं, योजनाएँ बनाते हैं, उचित दिशा में यथाशक्ति परिश्रम भी करते हैं, बुद्धि, कुशलता, चतुराई आदि का भरपूर प्रयोग भी करते हैं और भाग्य संयोग से अपनी महत्त्वाकांक्षा पूरी कर भी लेते हैं; लेकिन यह निदान नहीं है; क्योंकि निदान तो तपस्या को बेचना है। यह स्थिति यहाँ नहीं है। यहाँ तो केवल महत्त्वाकांक्षा है।

निदान, एक प्रकार से स्वयं को सीमा में, परकोटे में आबद्ध कर लेना है। जैसे—श्रमणोपासक बनने के निदान वाला जीव अनगार नहीं बन सकता और जिसने अनगार बनने का निदान किया है, वह मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता।

इसी भाव को व्यक्त करते हुए अभिधान राजेन्द्र कोष, पृष्ठ २०९४ में निदान शब्द का अर्थ बताया गया है—"जिस प्रकार परशु (फरसा) से लता का छेदन किया जाता है, उसी प्रकार दिव्य एवं मानुषिक काम-भोगों की कामनाओं से आनन्द रस तथा मोक्षरूप रत्नत्रय की लता का छेदन किया जाता है।"

निष्कर्ष

संक्षेप में तथ्य यह है कि काम-भोग तथा शत्रुतारूप निदान तो त्याज्य है और गर्हित है ही; किन्तु धर्मानुरागवश किया गया निदान भी अनुचित है, आत्मा की शुद्धि और मुक्ति में बाधक है।

अतः किसी भी प्रकार का निदान न करना ही श्रेयष्कर है।

● ●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Nidan (Volition)

Meaning of *'Nidan'*

'Nidan' is a word with numerous and wide ranging meanings. In different context it has different meanings. For example in the field of medicine it means to decide about the reasons of a disease, which in English is diagnosis.

In simple language it is used as an expletive to express sorrow or regret, such as—*Nidan* (How sad !), he could not pass the examination.

In dictionary and other such works this is used to indicate purity, purification etc. In this sense it has been used as *niyanakhama* in verse 53 of chapter 18th in *Uttaradhyayan Sutra.*

A Technical Jain Term

But mostly *'nidan'* word has been used in Jain scriptures as a technical term. Its specific meaning there is a firm volition of achieving acquiring or attaining some specific goal, purpose, status, revenge, desire of mundane pleasures or indulgence etc. during forthcoming incarnations.

However, a mere hope, wish or desire cannot take the form of *nidan*; they end up as a fool's fancy.

Nidan is a firm volition. To gain the desired one has to put once austerities at stake. A *Shraman* or *Shramani* observing austerities has to make a firm volition in these words—

"If I am to get any fruit of my austerities, practices, celibacy or observing of codes of conduct, may my such and such desire be fulfilled."

In layman's term it amounts to squander or sell ones austerities (*tap*).

In scriptures like *Tattvarth Sutra nidan* is said to be the fourth category of *arttadhyan* (distressed state of mind).

The Causes of *Nidan* : Attachment and Aversion both

This is a fact that *nidan* has its origin in *Mohaniya karma* (illusory *karma* or *karma* that tempts soul towards fondness for things). This *karma* manifests in form of attachment as well as aversion. When inspired by aversion, an ascetic makes a nidan of the

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

destruction of his enemy or a tormentor and when inspired by attachment he makes a *nidan* of enjoying mundane pleasures. But the inspiring factors of these are some richly endowed individuals like kings and queens. The description of the divine pleasures and grandeur of gods and goddesses also works as an inspiring factor.

It is also mixed with a feeling of emulation or jealousy, such as—may I also beget the human and divine pleasures this lucky person is enjoying.

The Types and Fruits of *Nidan*

In the tenth chapter of *Dashashrutskandh*, Bhagavan Mahavir has given nine categories of *nidan*. A brief description or gist of these is as follows—

The Context

The *samavasaran* of Bhagavan Mahavir was in Gunashil garden outside Rajagriha. King Shrenik and queen Chelna came there with their retinue and regalia. Impressed by their personality, rich apparels and grandeur some ascetics made *nidan* that they may also enjoy such human pleasures during their forthcoming incarnations as fruits of their austerities. These silent resolutions were at once revealed on Omniscient Bhagavan.

After paying homage and listening to the discourse the king, queen and their retinue left.

After that Bhagavan explained about *nidans* and their harmful consequences to the ascetics.

There are nine types of *nidans*.

First *Nidan*

An ascetic, who properly observes and follows austerities and codes, when sees the wealth and grandeur of a person of high status like a king or a prince, is attracted towards mundane pleasures. He then makes a *nidan*—"If I am to get any fruit of my austerities, practices, celibacy or observing of codes of conduct, may I also beget these mundane pleasures this king or prince is enjoying."

Such a person, if he dies before doing a critical review or atonement for this *nidan*, he reincarnates as a god (as a result of his austerities or following the ascetic conduct). Completing the life-span as a god he reincarnates as a human being in a family of high status. He is endowed with all the means of mundane pleasure and he enjoys them.

Although sages, parents and others acquaint him with the tenets of Tirthankar, he does not show any interest. He becomes non-receptive and continues to indulge in mundane pleasures till he dies. He then reincarnates as a hell being and suffers extreme afflictions for a long period.

This is the fruition of *nidan* only.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Second *Nidan*

A female ascetic properly observes and follows austerities and codes according to the religion propagated by Tirthankar.

She sees a woman who is adorned with invaluable gem studded ornaments, who has best means of mundane pleasures and comforts, who is extremely beautiful and the one and only beloved of her husband.

She then makes a *nidan*—"If I am to get any fruit of my austerities, practices, celibacy, or observing of codes of conduct, may I also beget these mundane pleasures this woman is enjoying."

Such a *Shramani*, if she dies before doing a critical review or atonement for this *nidan*, she reincarnates as a goddess (as a result of her austerities or following the ascetic conduct). Completing the life-span as a god she reincarnates as a human being in a family of high status. She is endowed with all the means of mundane pleasure and she enjoys them.

Although sages, parents and others acquaint her with the tenets of Tirthankar, she does not show any interest. She becomes non-receptive and having intense desires and covetousness, continues to indulge in mundane pleasures till she dies. She then reincarnates as a hell being and suffers extreme afflictions for a long period.

This the fruition of *nidan* only that this individual does not even listen to the tenets propagated by a *Kevali*.

Third *Nidan*

An ascetic properly observes and follows austerities and codes.

He sees a woman of high caste who is loved and cared by her husband and enjoys best of mundane pleasures.

He thinks—"The life of a male is filled with sorrows. He has to bear the blows of arrows, spears, swords etc. of an enemy in a battle besides many other hardships. But the life of a female is pleasant and joyous. She remains in her house or mansion and rules over her servants and maids. She spends her time indulging in pleasures and comforts. She is free of sorrows."

He then makes a *nidan*—"If I am to get any fruit of my austerities, practices, celibacy or observing of codes of conduct, may I reincarnate as a woman of high status and enjoy the best of such mundane pleasures."

Such a person, if he dies before doing a critical review or atonement for this *nidan*, he reincarnates as a god (as a result of his austerities or following the ascetic conduct). Completing the life-span as a god he reincarnates as a woman in a family of high status and enjoys the best of mundane pleasures.

Although sages, parents and others acquaint her with the tenets of Tirthankar, she does not show any interest. She becomes non-receptive and continues to indulge in mundane pleasures till she dies.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

She then reincarnates as a hell being and suffers extreme afflictions for a long period.

This is the bitter fruit of *nidan* only.

Fourth *Nidan*

A female ascetic, who properly observes and follows austerities and codes according to the religion propagated by Tirthankar.

She sees a handsome and prosperous man belonging to a high caste (of pure ancestry *Ugra* or *Bhog* clans).

She thinks—"The life of a female is filled with sorrows because she is not even free to go alone from one village to another. Also because like mango, orange, sugar-cane, and other such things the female body also appears likable, tasty and desirable and acuirable to males. Therefore the life of a female is miserable and that of a male joyous."

She then makes a *nidan*—"If I am to get any fruit of my austerities, practices, celibacy or observing of codes of conduct, may I reincarnate as a high born man of high status and enjoy the best of such mundane pleasures."

Such a *Shramani*, if she dies before doing a critical review or atonement for this *nidan*, she reincarnates as a goddess (as a result of her austerities or following the ascetic conduct). Completing the life-span as a god she reincarnates as a high born male. He is endowed with all the means of mundane pleasure and she enjoys them.

Although sages, parents and others acquaint her with the tenets of Tirthankar, he does not show any interest. He becomes non-receptive and having intense desires and covetousness, continues to indulge in mundane pleasures till he dies.

He then reincarnates as a hell being and suffers extreme afflictions for a long period.

This is the fruition of *nidan* only.

Fifth *Nidan*

An ascetic, who properly observes and follows austerities and codes.

He hears from gurus or reads about gods and is attracted towards divine pleasures.

He thinks—"This human body is obnoxious due to the excreta like stool, urine, phlegm etc. it contains. The divine body is clean and fragrant because it is free of this excreta. Moreover, the gods are able to take various forms and enjoy at their will the company of their consorts and other goddesses. For a long period they enjoy a variety of pleasures. Their life-span is also long."

Then he makes a *nidan*—"If I am to get any fruit of my austerities, practices, celibacy or observing of codes of conduct, may I also beget these divine pleasures the gods enjoy."

Such a person, if he dies before doing a critical review or atonement for this *nidan*, he reincarnates as a god (as a/result of his austerities or following the ascetic conduct) and enjoys divine pleasures. Completing the life-span as a god he reincarnates as a human being in a family of high status. He is endowed with all the means of mundane pleasure and he enjoys them.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Although sages, parents and others acquaint him with the tenets of Tirthankar, he does not show any interest. He becomes non-receptive and continues to indulge in mundane pleasures till he dies. He then drifts in the cycles of rebirth for a long period.

This is the fruition of *nidan* only.

Sixth *Nidan*

An ascetic, who properly observes and follows austerities and codes, when excited by carnal desires he thinks—"There is a dimension of gods above in the heavens and there the gods indulge at will in erotic activities."

He then makes a *nidan*—"If I am to get any fruit of my austerities, practices, celibacy or observing of codes of conduct, may I also reincarnate as a god and enjoy divine pleasures with my consorts and other goddesses."

Such a person, if he dies before doing a critical review or atonement for this *nidan*, he reincarnates as a god (as a result of his austerities or following the ascetic conduct) and enjoys divine pleasures with his consorts and divine beings created by him. Completing the life span as a god he reincarnates as a human being in a family of high status and enjoys mundane pleasures.

He listens to and understands the tenets propagated by the omniscient but does not have faith in or devotion for it. He pays attention to other religion and religious leaders.

He then reincarnates as a *Kilvishik* (evil) god in demonic abode. After completing the life-span he reincarnates as a dumb animal like lamb.

This is the fruition of *nidan* only.

Seventh *Nidan*

An ascetic, who properly observes and follows austerities and codes, when simply desires of divine pleasures and makes a *nidan*—"If I am to get any fruit of my austerities, practices, celibacy or observing of codes of conduct, may I also enjoy divine pleasures."

Such a person, if he dies before doing a critical review or atonement for this *nidan*, he reincarnates as a god (as a result of his austerities or following the ascetic conduct) and enjoys divine pleasures with divine beings created by him and not with other gods and goddesses.

Completing the life-span as a god he reincarnates as a human being in a family of high status and enjoys mundane pleasures. He has faith in the tenets propagated by the omniscient but cannot accept the *shravak*-vows. He just remains an apparent *Shravak*.

He then reincarnates as a god in some divine abode.

Eighth *Nidan*

An ascetic, who properly observes and follows austerities and codes, when averse to mundane pleasures he thinks—"Mundane pleasures are worthless, ephemeral and worth rejection. Even divine pleasures expand the cycles of rebirth."

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Inspired by this feeling of detachment he makes a *nidan*—"If I am to get any fruit of my austerities, practices, celibacy or observing of codes of conduct, may I also reincarnate in a family of high status and pure ancestry and become a *shramanopasak*, acquire the discerning knowledge about being and non-being, recognize sinful and meritorious attitudes, and give pure food and other prescribed things as alms to ascetics."

Such a person, if he dies before doing a critical review or atonement for this *nidan*, he reincarnates as a god (as a result of his austerities or following the ascetic conduct). Completing the life-span as a god he reincarnates as a human being in a family of high status. He listens to and develops faith in the tenets propagated by the omniscient. He observes the *shravak*-vows, and observes fasts, does critical review (*pratyakhyan*), and follows other codes. However, he is unable to accept the complete ascetic code of conduct to become an inducted *Shraman*.

He then reincarnates as a god in some divine abode.

This inability to become a *Shraman* is the fruit of this *nidan*.

Ninth *Nidan*

An ascetic, who properly observes and follows austerities and codes, when averse to mundane pleasures he considers mundane pleasures as worthless.

He then makes a *nidan*—"If I am to get any fruit of my austerities, practices, celibacy or observing of codes of conduct, may I reincarnate in a low, deprived, destitute and beggarly family where there is lack of mutual fondness, so that I may easily renounce the family to become an ascetic."

Such a person, if he dies before doing a critical review or atonement for this *nidan*, he reincarnates as a god (as a result of his austerities or following the ascetic conduct). Completing the life-span as a god he reincarnates as a human being in a family of the said type only. He listens to and develops faith in the tenets propagated by the omniscient. He observes the *shravak*-vows, gets initiated as an ascetic and indulges in austerities also. However he cannot attain liberation, he reincarnates as a god.

This inability to attain liberation is the fruit of this *nidan*.

The basic cause of the said nine types of nidan is attachment. The first six *nidans* are inspired by carnal desires or mundane attachments and the last three by religious attachment.

But attachment is not the only cause of *nidan*. Aversion or animosity also inspires making a *nidan*.

Nidan out of Aversion

Nidan out of aversion is directed at some tormentor or terrorist.

When some powerful individual snatches some dear thing from a weak, torments him or beats him cruelty, the weak makes a *nidan* to kill or destroy the strong and during the next incarnation does so.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

All the Vaasudevs make *nidans* inspired by animosity.

In scriptures there are numerous examples of such aversion-*nidans*. One such example is—Yadav princes thrashed hermit Dvaipayan almost to death. He then made a *nidan* to destroy Dvarka. When he reincarnated as Agnikumar god he burnt the grand city of Dvarka to ashes.

RELEVANT FACTS

It is essential to be an observer of austerities in order to make a *nidan*, it does not matter if these are done even out of ignorance. This is because it is through austerities that one acquires the power that fulfills a wish.

In the Chitta-sambhutiya chapter of *Uttaradhyayan Sutra*, Sambhut Muni makes a nidan of enjoying the power and pleasures due to a *Chakravarti*. Because of his harsh austerities he reincarnates as Brahmadatt Chakravarti.

Ordinarily, one who makes a *nidan* of human pleasures reincarnates as a hell being after he enjoys the desired pleasures; as Brahmadatt *Chakravarti* did.

However, in case of Draupadi, who married five Pandavas as the fruition of her *nidan* of earlier birth, at the time of her *svayamvar* (formal ceremony of bride-groom selection) an air-borne *Shraman* related the story of her past birth and she was disillusioned. She atoned for the *nidan* and in the end got liberated.

Nidan is a firm volition. It is to seek fulfillment of desire in exchange of one's austerities.

Generally every person desires of his progress, prosperity, position, status etc. He plans for it and does efforts in the right direction. He applies all his wisdom, ability, intelligence etc. and if luck also favours attains his ambitions. But this is not *nidan*. Because *nidan* is to sell austerities. Here the situation is different. Here it is only ambition.

Nidan, in one way, is to confine oneself within certain limits. For example the being who makes a *nidan* to become *shramanopasak* cannot become an ascetic. One who makes a *nidan* to become an ascetic cannot get liberated.

Conveying this meaning it is mentioned on page 2094 of *Abhidhan Rajendra Kosh*—"As a creeper is cut by an axe, likewise the desires of divine or mundane pleasures cuts the creeper of ultimate bliss and liberation in the form of three gems (*Ratnatraya*).

Conclusion

In brief the conclusion is that any *nidan*, inspired by desires of pleasure or aversion, is worth rejecting and despicable. Even a *nidan* inspired by fondness for religion is wrong and is an impediment to purification and liberation of soul.

Therefore it is good not to make any *nidan*.

●●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तकृद्दशासूत्र में वर्णित प्रसिद्ध नगर, उद्यान आदि

प्रस्तुत अन्तकृद्दशासूत्र में प्रसंगानुसार कई नगरों, उद्यानों, वनखंडों, वृक्षों, चैत्यों आदि का नामोल्लेख सहित वर्णन हुआ। किन्तु वह वर्णन वहाँ संक्षिप्त है। उसकी (उन सभी की) विशेषताएँ स्पष्ट और विशद रूप से वर्णित नहीं हुई हैं। अधिक जानने की इच्छा वाले पाठकों की जिज्ञासा अतृप्त रह जाती है। उनको तृप्त करने के लिए यहाँ अन्तकृद्दशासूत्र में उल्लिखित/संकेतित नगर, चैत्य, वनखंड आदि का वर्णन किया जा रहा है।

चम्पा नगरी

प्रस्तुत सूत्र में सर्वप्रथम चम्पा नगरी का नाम आया है। आर्य सुधर्मा स्वामी इसी नगरी के बाह्य भाग में अवस्थित पूर्णभद्र चैत्य में आर्य जम्बू स्वामी को अष्टम अंग (अन्तकृद्दशासूत्र) की वाचना देते हैं।

चम्पा नगरी पहले अंग देश की राजधानी थी। यह नगरी बहुत ही समृद्ध थी। वैभवशाली और सुरक्षित थी। यहाँ की आबादी घनी थी, विशाल जनसमूह निवास करता था। आमोद-प्रमोद के प्रचुर साधन थे। चोर, बटमार आदि का अभाव था, अतः जन-जीवन शांतिमय था।

यह नगरी स्वचक्र और परचक्र के भय से मुक्त थी। गोपुर, नगर के प्रवेश द्वार सुदृढ़ कपाटों से युक्त थे। अतः शत्रु और विरोधी राजाओं का नगर में प्रवेश करना लगभग असंभव था।

राज-शासन-व्यवस्था सुचारु थी। अतः वहाँ की जनता शासकीय कर्मचारियों के भय से मुक्त थी। सभी अपने धन और प्राणों की सुरक्षा के विषय में आश्वस्त थे।

नगरी के चारों ओर की भूमि उर्वरा थी। सभी प्रकार के धान्य और अन्न प्रचुर मात्रा में उत्पन्न होते थे। खेत फसलों से लहलहाते रहते थे।

संक्षेप में चम्पा नगरी सभी प्रकार से वैभवशाली, समृद्ध और सम्पन्न थी।

राजा श्रेणिक की दुःखद मृत्यु के उपरान्त मगधेश्वर कोणिक ने इसी नगरी को अपनी राजधानी बनाया और इस प्रकार यह मगध के विशाल साम्राज्य की राजधानी बन गई।

चम्पा की अवस्थिति—स्थानांगसूत्र में प्रसिद्ध और समृद्ध दस नगरियों में चम्पा का भी नामोल्लेख प्राप्त होता है।

किन्तु आधुनिक विचारकों की जिज्ञासा है कि ऐसी समृद्ध नगरी कहाँ अवस्थित थी?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चीनी यात्री फाह्यान ने चम्पा को पाटलिपुत्र (पटना) से १८ योजन पूर्व दिशा में गंगा के दक्षिणी तट पर स्थित बताया है।

मुनि कल्याणविजय जी का विचार है कि यह चम्पा पटना से पूर्व दिशा–कुछ दक्षिण की ओर लगभग १०० कोस पर थी। आजकल इसका नाम चम्पानाला है तथा यह भागलपुर से ३ मील दूर पश्चिम में है।

कनिंघम ने कहा है–भागलपुर से ठीक २४ मील पर पत्थर घाट है। इसके पास ही पश्चिम दिशा की ओर चंपानगर नाम का एक बड़ा गाँव है और एक छोटा गाँव है जिसे चंपापुर कहा जाता है।

उपर्युक्त विद्वानों के विचारों से यह निष्कर्ष निकाला जाना सहज संभव है कि उपरोक्त दोनों गाँव प्राचीनकाल की समृद्ध चम्पा नगरी के द्योतक अवशेष हैं और चम्पा नगरी यहीं अवस्थित थी।

पूर्णभद्र चैत्य

यह चैत्य चम्पानगरी के बाहर ईशानकोण (उत्तर-पूर्व दिशा का मध्य भाग) में अवस्थित था। इसमें पूर्णभद्र नाम के यक्ष की प्रतिमा थी। यह यक्षायतन था। यक्ष के नाम पर ही यह पूर्णभद्र चैत्य कहलाता था।

यक्षायतन की दीवारें चित्रों से अलंकृत थीं। यह काफी पुराना था। नगरवासी इसकी प्रशंसा करते थे। यह अपने प्रभाव से विख्यात था। न्यायशील था–लौकिक श्रद्धा वाले नागरिक वहाँ आकर न्याय प्राप्त करते थे। वह छत्र-पताका आदि से युक्त था। उसकी दीवारें गोरोचन तथा चन्दन की हथेलियों की छाप से युक्त थीं। मंगल-कलश रखे थे, ताजे पुष्पों के ढेर लगे रहते थे, अगर-कपूर आदि की सुगन्ध से महकता रहता था।

लोग उसका सम्मान, पूजा आदि करते और विभिन्न प्रकार की भेंटें चढ़ाते थे।

इन सब के कारण वह बहुत रमणीय प्रतीत होता था।

चैत्य शब्द का स्पष्टीकरण–चैत्य शब्द के अनेक अर्थ हैं जैसे–ज्ञान (तिक्खुत्तो सूत्र में चेइयं शब्द), भगवान, माननीय मानव, गुणग्राही, वृक्षमूल, समाधि-स्थल, देव इत्यादि।

अधिकांशतः चैत्य शब्द को चिता से संबंधित माना जाता है। प्राचीनकाल में परम्परा थी कि विशिष्ट पुरुष का जहाँ अग्नि-संस्कार किया जाता था, वहाँ उसकी स्मृतिस्वरूप एक वृक्ष आरोपित कर दिया जाता था, वह चैत्य-वृक्ष कहलाता था।

फिर समाधि-स्थल बनने लगे। साँची का सारनाथ स्तूप इसका प्रमाण है। समाधि-स्थलों की परम्परा अब भी चल रही है।

किन्तु प्रस्तुत प्रसंग में चैत्य शब्द का अर्थ देव (यक्ष) अधिक संगत प्रतीत होता है और चैत्यायतन का अर्थ लौकिक देवता का मन्दिर। शास्त्रों में अनेक स्थानों पर चैत्यायतनों का वर्णन मिलता है, जहाँ तपस्वी ध्यान-साधना करते थे। भगवान महावीर ने भी अनेक चैत्यों में साधना की थी।

प्रस्तुत प्रसंग में पूर्णभद्र चैत्य का महत्त्व यह है कि यहाँ गणधर सुधर्मा ने आर्य जम्बू को आठवें अंग की वाचना दी थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वनखण्ड

पूर्णभद्र चैत्य के चारों ओर सघन वनखण्ड था। उसमें विभिन्न प्रकार के फल-फूल और पत्तियों वाले छायादार वृक्ष थे। वृक्षावली इतनी सघन थी कि देखने पर काली, नीली, हरी छाया ही दृष्टिगत होती थी।

स्पष्टीकरण—वनखण्ड को आधुनिक भाषा में उद्यान अथवा पार्क (park) समझना अधिक उपयुक्त होगा। जिस प्रकार आधुनिक पार्कों में मनुष्यों के चलने के लिए मार्ग होते हैं, उसी प्रकार उस वनखण्ड में अचित्त मार्ग होना चाहिए, क्योंकि साधुजन सचित्त भूमि पर पैर नहीं रखते। अतः उस वनखण्ड में अचित्त मार्ग अवश्य होंगे, चाहे वे लोगों के आने-जाने से बने हों, अथवा रथों और बैलगाड़ियों द्वारा। उन्हीं पथों पर चलकर सुधर्मा स्वामी और आर्य जम्बू पूर्णभद्र चैत्य तक पहुँच सकते हैं।

अशोक-वृक्ष

उस वनखण्ड के बीचोंबीच—ठीक मध्य भाग में अशोक-वृक्ष था। वह अनेक प्रकार के फल-फूलों और पत्तियों से सुशोभित था। उसकी सुगन्ध दूर तक फैली हुई थी। उसके चारों ओर अन्य विविध प्रकार के पुष्प-पादप थे।

शिलापट्टक

उस अशोक-वृक्ष के नीचे एक शिलापट्टक था। वह लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई में प्रमाणोपेत (उचित प्रमाण वाला) और चिकना था। वह अष्टकोण आकार वाला था और उसका स्पर्श कोमल था।

इस प्रकार वह दर्शनीय और वर्णनीय था।

द्वारका नगरी

इस नगरी का विस्तृत वर्णन अन्तकृद्दशासूत्र में किया जा चुका है।

इसका निर्माण वासुदेव श्रीकृष्ण के लिए वैश्रमण देव ने किया था। यह सभी प्रकार से समृद्ध, संपन्न, वैभवशाली थी। इसकी रचना अति सुन्दर और परकोटे बहुत सुदृढ़ थे। यह पश्चिमी समुद्र तट पर बसी हुई थी। यह उत्तर-दक्षिण में १२ योजन लम्बी और पूर्व-पश्चिम में ९ योजन चौड़ी थी। वैश्रमण देव ने समुद्र से भूमि लेकर इसका निर्माण किया था।

'द्वार' शब्द गुजराती भाषा में बन्दरगाह (port) को भी कहते हैं। इस अर्थ में द्वारका बन्दरगाहों की नगरी थी।

इन बन्दरगाहों से पश्चिमी अरब और मध्य एशिया के देशों से अबाध समुद्री व्यापार भी द्वारका की समृद्धि का एक कारण माना जा सकता है। कृष्ण कथा के अनुसार कुछ व्यापारी समुद्र-मार्ग से रत्नकंबल लेकर द्वारका आये भी थे जो बाद में स्थल-मार्ग से राजगृह पहुँचे थे।

यही कारण था कि द्वारका के सभी नागरिक समृद्ध थे, निर्धन—भाग्यहीन कोई न था।

वर्तमान में सौराष्ट्र प्रान्त में द्वारका नाम का एक कस्बा है। उससे २० मील दूर कच्छ की खाड़ी में एक टापू (भूमि का वह उठा हुआ भाग, जिसके चारों ओर जल हो) है। वहाँ एक दूसरी द्वारका है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो बेंट द्वारका कहलाती है। यहाँ भी कृष्ण, रुक्मिणी आदि के मन्दिर हैं। श्रद्धालु भक्त वहाँ भी दर्शनार्थ जाते हैं।

आधुनिक सागर-गर्भ वेत्ताओं ने पुरानी द्वारका की समुद्र-गर्भ के इसी (सौराष्ट्र-द्वारका और बेंट द्वारका के मध्यवर्ती) क्षेत्र में खोज की तो उन्हें पुरानी द्वारका के ध्वंसावशेष–महल, कंगूरे आदि प्राप्त हुए हैं। अब वे समुद्र-तल से द्वारका के अवशेषों को निकालने के लिए प्रयत्नशील हैं।

जैन ग्रन्थों के अनुसार द्वारका के उत्तर-पूर्व में रैवतक पर्वत था और वह समुद्र-तट पर बसी हुई थी।

उपर्युक्त तथ्यों का अनुशीलन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि द्वारका नगरी के तीन ओर समुद्र था। जैसी स्थिति आज बम्बई महानगर की है, लगभग वैसी स्थिति द्वारका नगरी की रही होगी।

ऐसी समृद्ध नगरी के विध्वंस के विषय में जैन मान्यता है कि वह अग्नि प्रकोप से ध्वस्त हुई और वैदिक मान्यता के अनुसार सागर में डूब गई।

कुछ लेखकों ने इन दोनों का समन्वय करते हुए कहा है–द्वारका पहले अग्नि की भेंट चढ़ी, ध्वस्त हुई और फिर सागर में समा गई।

आधुनिक प्रमाणों के अनुसार यह मत समीचीन प्रतीत होता है क्योंकि द्वारका के ध्वंसावशेष सागर में मिलते हैं। अधिकांश द्वारका डूब गई, उसका कुछ भाग टापू के रूप में शेष रह गया जिसे आज बेंट द्वारका कहा जाता है।

साथ ही जैन अंग आगमों ज्ञाताधर्मकथा तथा अन्तकृद्दशा में द्वारका की अवस्थिति जो सौराष्ट्र में बताई गई है, यह तथ्य भी पूर्णतः प्रमाणित हो जाता है।

रैवतक पर्वत

रैवतक पर्वत आज भी सौराष्ट्र में विद्यमान है। गिरनार पर्वत के नाम से यह आज अधिक विख्यात है। शास्त्रों एवं पुराणों में इसके उज्जयंत, उर्ज्जवल, गिरिणाल आदि नाम भी मिलते हैं। प्राचीन समय में इसी की तलहटी में द्वारका नगरी बसी हुई थी। आज जूनागढ़ नगर बसा हुआ है।

प्राचीनकाल में इस पर्वत पर नन्दनवन था और इस वन में सुरप्रिय चैत्य था। जहाँ भगवान ठहरते थे।

नन्दनवन और सुरप्रिय चैत्य का वर्णन पूर्णभद्र चैत्य के लगभग समान है।

काकन्दी नगरी

भगवान महावीर के समय में काकन्दी नगरी बहुत समृद्ध थी। इसकी उस समय अवस्थिति उत्तर भारत में थी। उस समय यहाँ राजा जितशत्रु राज्य करते थे। नगर के बाहर एक सहस्राम्र वन था।

इसी नगरी की भद्रा सार्थवाही के पुत्र धन्य आदि अनेक साधकों ने भगवान महावीर के चरणों में दीक्षा ग्रहण की।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्तमान में इसकी अवस्थिति विवादित और अनिश्चित है। मुनि श्री कल्याणविजय जी लछुआड से पूर्व में जो काकन्दी तीर्थ है, उसे प्राचीन काकन्दी नगरी नहीं मानते अपितु उनकी धारणा है कि दिगम्बर जैनों का किष्किंधा तीर्थ ही प्राचीन काकन्दी नगरी होना चाहिए।

लेकिन इस नगरी की अवस्थिति के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता; क्योंकि उस समय के अनेक नगर विनष्ट हो गये हैं। काकन्दी की भी यही स्थिति है।

पोलासपुर

अन्तकृद्दशासूत्र में पोलासपुर नगर का उल्लेख हुआ है। नगर में श्रीवन नाम का उद्यान था। वहाँ राजा विजय राज्य करते थे। उनकी महारानी का नाम श्रीदेवी था। राजकुमार अतिमुक्तक ने बालवय में भगवान महावीर के पास दीक्षा ग्रहण की और मुक्ति प्राप्त की।

भद्दिलपुर

भद्दिलपुर उस समय एक समृद्ध नगरी थी। यह तत्कालीन मलय देश की राजधानी थी और इसकी गणना अतिशय क्षेत्रों में की जाती थी।

अन्तकृद्दशासूत्र में उल्लिखित भद्दिलपुर नगरी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। हरिणगमैषी देव देवकी के जीवित पुत्रों को भद्दिलपुर निवासी नाग गाथापति की पत्नी सुलसा को दे देता है और सुलसा के मृत पुत्रों को देवकी के पार्श्व में रख देता है। इस तरह वह छह शिशुओं की अदला-बदली करता है।

यह नगरी कहाँ अवस्थित थी, इस विषय में विभिन्न विचारकों के भिन्न मत हैं। मुनि कल्याणविजय जी का मत है कि आधुनिक पटना से दक्षिण में १०० मील दूर और गया से नैऋत्य कोण में २८ मील दूर, गया जिले में हरिया और दन्तारा गाँव हैं; उनके पास भद्दिलपुर नगरी थी।

डॉ. जगदीशचन्द्र जैन हजारीगाँव जिले में भदिया नामक गाँव को प्राचीन भद्दिलपुर मानते हैं।

इन दोनों विद्वानों की मान्यताओं का आधार यह है कि भगवान महावीर ने एक चातुर्मास भद्दिलपुर में किया था।

किन्तु यहाँ एक प्रश्न उठता है कि क्या भगवान अरिष्टनेमि के युग में भी यही भद्दिलपुर नगरी थी जो भगवान महावीर के युग में थी; क्योंकि दोनों तीर्थंकरों के मध्यवर्ती काल में समय का बहुत लम्बा अन्तर रहा है। भगवान अरिष्टनेमि एक लाख वर्ष पहले हुए हैं और भगवान महावीर २५०० वर्ष पहले।

अन्तकृद्दशासूत्र में भगवान अरिष्टनेमि के युग के भद्दिलपुर नगर का उल्लेख आया है।

इन सब बातों का विचार करके भद्दिलपुर नगर की अवस्थिति निर्धारित की जानी चाहिए।

राजगृह

राजगृह अति प्राचीनकाल से ही समृद्ध और प्रसिद्ध नगरी रही है।

इसकी प्राचीनता के जैनशास्त्रों में कई प्रमाण मिलते हैं। बीसवें तीर्थंकर भगवान मुनिसुव्रत का जन्म यहीं हुआ था। इन्हीं के शासनकाल में रामायण की घटना हुई थी। महाभारत काल में प्रतिवासुदेव जरासन्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की भी राजधानी राजगृह ही थी। भगवान महावीर के युग में राजा प्रसेनजित और सम्राट् श्रेणिक की राजनगरी का गौरव इसे प्राप्त था।

राजगृह नगर विशाल मगध साम्राज्य की राजधानी थी। मगध का साम्राज्य शक्ति, संपन्नता, समृद्धि और जनसंख्या तथा सैन्य-बल आदि की दृष्टि से प्राचीनकाल से ही वैभवपूर्ण रहा है।

विश्व-विजय का आकांक्षी यूनानी सम्राट् सिकन्दर ने जब मगध की विशाल वाहिनी के विषय में सुना तो भारत-विजय की आशा छोड़कर पंचनद (पंजाब) से ही वापस लौट गया।

राजगृह नगर के अन्य नाम भी हैं, यथा–मगधपुर, क्षितिप्रतिष्ठित नगर, चणकपुर, ऋषभपुर, कुशाग्रपुर आदि।

इनमें से कुशाग्रपुर और राजगृह अधिक प्रसिद्ध रहे हैं।

कुशाग्रपुर में बार-बार अग्नि प्रकोप हो जाता था, अतः सम्राट् श्रेणिक के पिता नरेश प्रसेनजित ने कुशाग्रपुर से २ कोस दूर इस नगर को अपनी राजधानी बनाया।

राजगृह नगर पंच पहाड़ियों से सुरक्षित है अतः इसे गिरिव्रज भी कहा गया है।

यह नगर आज भी मौजूद है और राजगिरि के नाम से प्रसिद्ध है। जैनधर्मानुयायियों का श्रद्धा-केन्द्र है।

यहाँ भगवान महावीर ने २० वर्षावास किये। मगधेश श्रेणिक, उनका पुत्र अभयकुमार, कोणिक, चेलना आदि रानियाँ भगवान की परम भक्त थीं।

तथागत गौतम बुद्ध ने भी यहाँ विचरण किया था।

यद्यपि प्राचीन राजगृह नगर का वैभव अब नहीं रहा; फिर भी धार्मिक दृष्टि से इसका अब भी महत्त्वपूर्ण स्थान है।

● ●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Famous Cities, Gardens etc. Described in Antakriddasha Sutra

In *Antakriddasha Sutra*, in different contexts many cities, gardens, forests, trees and *chaityas* (religious complexes) bearing specific names have been described. But the description is very brief. Their uniqueness has not been mentioned clearly and with details. The readers who want to know more get disappointed. For their benefit descriptions of cities, gardens, forests, trees and *chaityas* mentioned in *Antakriddasha Sutra* are given here.

Champa City

In *Antakriddasha Sutra* the first city mentioned is Champa. Arya Sudharma Swami recited the eighth *Anga* (*Antakriddasha Sutra*) for the benefit of Arya Jambu Swami in the Purnabhadra *chaitya* outside this city.

Champa was earlier the capital city of Anga state. It was a very prosperous, grand and secure city. It was highly and densely populated. There were enough facilities of entertainment. As it was free of thieves and other anti-social elements, life was peaceful.

It was free of internal and external conspiracies. The entrances were fitted with strong gates making it almost impossible for attacking enemies to enter the city.

The city administration was efficient. Therefore the populace was free of any fear of government employees. All were assured of the security of their life and wealth.

The land around the city was fertile. Every type of crop and grains were produced in abundance. The farms were rich in their crops.

In brief Champa city was grand, rich and prosperous in all respects.

After the sad demise of king Shrenik, Konik made Champa his capital city and thus it became the capital of the large Magadh empire.

The Location of Champa—In the list of ten famous and prosperous cities given in *Sthananga Sutra* Champa also finds a place.

But modern scholars are curious about the location of such a grand city.

Chinese traveller Fahyan has indicated that Champa was located on the southern bank of the Ganges about 18 yojan east of Pataliputra (modern Patna).

Muni Kalyan Vijaya Ji is of the opinion that this Champa was located east of Patna in a little southerly direction at distance of 100 Kos (200 miles). Today its name is Champanala and it is 3 miles west of Bhagalpur.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Cunningham says that exactly 24 miles from Bhagalpur is Patthar Ghat. Near it, towards west there is a large village named Champa Nagar and a small village named Champapur.

Based on the views of these scholars it can be easily inferred that the said two villages are the remains of the ancient Champa city and Champa city was situated here only.

Purnabhadra *Chaitya*

This *chaitya* was located outside Champa city in the north-east direction. It had an image of Purnabhadra *yaksha*. It was a *yaksh*-temple and was named on the ruling deity.

The walls of the temple were decorated with frescoes. It was very old. The city people praised it. It was famous for its miraculous effects. The devotees of the *yaksha* found justice here. It had a dome and a flag. Its walls were also decorated with palm prints made of *gorochan* and sandal pastes. Inside it were placed auspicious urns. Heaps of fresh flowers could always be found there. It was always filled with the fragrance of *Agar, Kapur* etc.

People respected and worshiped the deity and made a variety of offerings.

All this made it very attractive.

Explanation of the Meaning of the word *Chaitya*—This term has numerous meanings like knowledge (as *cheiam* in *tikkhutto sutra*); Bhagavan; a respected person; appreciater of virtues; trunk of a tree; a memorial raised at the place of cremation; deity etc.

Generally the term *chaitya* is believed to be related with *chita* or funeral pyre. In ancient times it was a tradition to plant a tree at the place of cremation of a prominent person in his memory. It was called *chaitya*-tree.

Later constructed memorials became a fashion. The Sarnath Stupa of Sanchi is one such evidence. This tradition still prevails.

But in present context god or *yaksha* appears to be the appropriate meaning and *Chaityayatan* means a temple of *yaksha*. Details of numerous *chaityayatans*, where ascetics indulged in meditational practices, is available in scriptures. Bhagavan Mahavir also did his spiritual practices in a number of *chaityas*.

The importance of the Purnabhadra *chaitya* here is because Ganadhar Sudharma recited the 8th *Anga* here for Arya Jambu.

Vanakhand

Around Purnabhadra *chaitya* was a dense *vanakhand* (jungle). It had numerous dense trees filled with a variety of flowers, fruits and leaves. The thickets of trees were so close that only black, blue and green hue was visible.

Explanation—In modern terminology it would be better to call *vanakhand* a garden

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

or a park. As in modern parks there are man made paths for pedestrians, there should be *achitta* (devoid of life or man made) paths in *vanakhands*. This is because the ascetics do not step on paths infested with living organisms including plants. Therefore those *vanakhands* must have had *achitta* paths, whether they were made by pedestrians or by passing chariots and bullock carts. Sudharma Swami and Jambu Swami could reach Purnabhadra *chaitya* only through such paths.

Ashoka-tree

In the middle of that *vanakhand* at its exact center there was an Ashoka-tree. It was heavy with a variety of fruits, flowers and leaves. Its fragrance filled a wide area. Around it were many other varieties of flowering plants.

Shilapattak

Under that Ashoka-tree there was a flat rock. It had standard length, breadth and thickness and it was smooth. It was octagonal in shape and soft to touch.

Thus it was worth looking at and describable.

Dvarka City

Detailed description of this city has been mentioned in *Antakriddasha Sutra*.

It was constructed by Vaishraman god for Shrikrishna. It was grand, rich, and prosperous in all respects. Its design was beautiful and it had very strong city walls. It was located on the western sea shore. It measured 12 *yojans* in north-south and 9 *yojans* in east-west directions. Vaishraman god had constructed it by reclaiming land from the sea.

'Dvar' in Gujarati language also means port. In this context Dvarka was a city of ports.

Continued naval trade with western Arabia and Central Asia through these ports could be one of the reasons of prosperity of Dvarka. According to the story of Shrikrishna, some seafaring merchants had brought gem imbedded blankets to Dvarka which later reached Rajagriha through the land route.

That is the reason that all the citizens of Dvarka were wealthy. There was no poor or unlucky person.

At present there is a village named Dvarka in Saurashtra area. Twenty miles from this village there is an island in the gulf of Kuchha. There is another Dvarka on the island which is called Bent Dvarka. Here also there are temples of Shrikrishna, Rukmini and others. Devotees visit these temples also for worship.

Modern marine archaeologists have found ruins of palaces arches etc. of ancient Dvarka when they explored for the ancient city in the area between Saurashtra Dvarka and Bent Dvarka. Now they are busy searching other remains.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

According to Jain scriptures Dvarka was situated on sea shore and in north-east of it was Raivatak mountain.

Considering the aforesaid evidences it appears that on three sides Dvarka was bound by sea. The location and surroundings of Dvarka must have been similar to those of the present Mumbai city.

The Jain belief about the destruction of such a prosperous city is that it was consumed by a conflagration and the Vedic belief is that it was inundated by the sea.

Some scholars assimilate these two views and propose that Dvarka was first consumed by a conflagration and then inundated by the sea.

According to latest evidences the modern view appears to be correct because some remains of Dvarka have been found within the sea. A major part of Dvarka went into the sea; a very small part remained above the sea which is today known as Bent Dvarka.

At the same time the statements, in *Anga Agams* like *Jnatadharmakatha* and *Antakriddasha Sutras*, about the location of Dvarka being in Saurashtra is also conclusively proved.

Raivatak Mountain

Even today this mountain exists in Saurashtra and is now more famous as Girnar hills. In *Puranas* and other scriptures one can find numerous other names of this mountain—Ujjayant, Ujjval, Girinal etc. In the ancient times Dvarka was located at its base. Today the city of Junagarh is at its base.

In ancient times there was a garden named Nandanavan on this mountain where there was Surapriya *chaitya*. Bhagavan used to stay there.

The description of Nandanavan and Surapriya *chaitya* is almost similar to that of Purnabhadra *chaitya*.

Kakandi City

During the times of Bhagavan Mahavir Kakandi was a very prosperous city. It was at that time located in northern India and was ruled by king Jitshatru. Outside the city there was a garden named Sahasramravan.

It was in this city that Dhanya, the son of Bhadra Sarthvah and many other seekers got initiated at the feet of Bhagavan Mahavir.

In modern times its location is doubtful and disputed. Muni Shri Kalyan Vijaya Ji does not accept the modern Kakandi Tirth, near Lachhuwad, as ancient Kakandi. He is of the opinion that the modern Kishkindha Tirth of Digambars should be ancient Kakandi.

However, about the location of this city nothing can be said with certainty because many cities of that period have been destroyed. Kakandi appears to be one of them.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Polaspur

In *Antakriddasha Sutra* there is a mention of Polaspur city. In this city was a garden named Shrivan. King Vijay was the ruler of this city. The name of his queen was Shridevi. In his childhood prince Atimuktak got initiated by Bhagavan Mahavir and ultimately got liberated.

Bhaddilapur

During those days Bhaddilpur was a prosperous city. It was the capital city of Malay Desh during these days and it was counted among the miraculous pilgrimage centers.

In *Antakriddasha Sutra* Bhaddilpur occupies an important place. Harinagameshi god gives the living sons of Devaki to Sulasa, the wife of Naag Gathapati of Bhaddilpur and transfers the dead sons of Sulasa to the side of Devaki. This way he exchanges six newborn babies.

About the location of this city different scholars have different opinions. Muni Kalyan Vijaya Ji says that 100 miles south of Patna and 28 miles south-west of Gaya, in Gaya district there are two villages named Harariya and Dantara; Bhaddilapur was located somewhere-near these villages.

Dr. Jagadish Chandra Jain believes that modern Bhadia village in Hazarigaon district is ancient Bhaddilpur.

The basis of the belief of these two scholars is that Bhagavan Mahavir spent one monsoon stay in Bhaddilpur.

But the question is that during the times of Bhagavan Arishtanemi did the Bhaddilpur city of the times of Bhagavan Mahavir exist? A great time span spirited these two Tirthankars. The period of Bhagavan Mahavir is about 2500 years back whereas that of Bhagavan Arishtanemi is about a hundred thousand years back.

In *Antakriddasha Sutra* the Bhaddilpur described is that of Bhagavan Arishtanemi's period.

The location of Bhaddilapur should be decided only after considering all these facts.

Rajagriha

Rajagriha has been a very prosperous and famous city since ancient times.

In Jain scriptures many evidences of its antiquity are available. The twentieth Tirthankar Bhagavan Munisuvrat was born here only. It was during his times that the incidents making the story of *Ramayan* occurred. During the *Mahabharat* period this was the capital of Prati Vaasudev Jarasandh. It was the glorious capital city of king Prasenjit and emperor Shrenik during Bhagavan Mahavir's period.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Rajagriha was the capital of the great Magadh empire. Magadh empire has been a great empire, in terms of power, grandeur, prosperity, population and the size of its armed forces, since ancient times.

When the Greek emperor Alexander, who was ambitious of conquering the world, heard of the great armies of Magadh, he lost hopes of conquering India and returned from Punjab.

Rajagriha city has other names also—Magadhpur, Kshitipratishthita Nagar, Chanakpur, Rishabhpur, Kushagrapur etc.

Of these Kushagrapur and Rajagriha have been more popular.

Kushagrapur faced frequent fire hazards, therefore king Prasenjit, father of emperor Shrenik, founded a new city about 2 *Kos* (4 miles) away from Kushagrapur and named it Rajagriha.

Rajagriha city is surrounded and protected by five hills, therefore it is also called Girivraj.

This city exists even today and is popularly known as Rajagiri. It is a popular pilgrimage centre of Jains.

Bhagavan Mahavir spent 20 monsoon stays here. Emperor Shrenik, his sons Abhaya Kumar and Konik, and his queens including Chelna were devout followers of Bhagavan.

Tathagat Gautam Buddha also frequented this city.

Although the old glory of Rajagriha city has vanished, it still has its religious importance.

●●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तकृद्दशासूत्र में संकेतित/सन्दर्भित प्रसिद्ध व्यक्तित्व

अन्तकृद्दशासूत्र में अनेक प्रसिद्ध व्यक्तियों का उल्लेख हुआ है। जो साधक भगवान अरिष्टनेमि और भगवान महावीर के युग में अन्तकृत् हुए, जिन्होंने उत्कृष्ट साधना द्वारा उसी भव में भवान्त करके जन्म-मरणरूपी संसार का अन्त करके सिद्धि प्राप्त की, उनका तो लगभग पूर्ण वर्णन किया गया है लेकिन कुछ प्रसिद्ध व्यक्तियों के विषय में सिर्फ संकेत ही किया गया है। यथा–**जहा दढपइन्ने**–दृढ़ प्रतिज्ञ के समान, **जहा मेहे**–मेघकुमार के समान।

इनके अतिरिक्त सुधर्मा स्वामी, जंबू स्वामी का उल्लेख अनेक स्थलों पर है, गणधर गौतम का भी नाम आया है, श्रेणिक और कोणिक आदि का नाम भी। लेकिन सिर्फ नामोल्लेख ही है, उनका परिचय (जीवन-परिचय) नहीं दिया गया है।

इस अध्याय में हम अन्तकृद्दशासूत्र में संदर्भित/संकेतित कुछ विशिष्ट, महत्त्वपूर्ण एवं प्रसिद्ध व्यक्तियों का संक्षिप्त परिचय देने का प्रयास कर रहे हैं।

१. गौतम गणधर (इन्द्रभूति)

इन्द्रभूति गौतम, भगवान महावीर के ज्येष्ठ शिष्य और प्रथम गणधर थे।

इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

मगध की राजधानी राजगृह के समीप ही गोबर नाम का एक ग्राम था। वहाँ गौतमगोत्रीय ब्राह्मण वसुभूति निवास करता था। उसकी पत्नी का नाम पृथ्वी था। वसुभूति के तीन पुत्र थे–(१) इन्द्रभूति, (२) अग्निभूति, और (३) वायुभूति। ये तीनों ही चारों वेद-वेदांगों, चौदह विद्याओं में निष्णात और प्रसिद्ध याज्ञिक थे।

इन तीनों भाइयों में इन्द्रभूति ज्येष्ठ (सबसे बड़े भाई) थे। ये अनेक विषय के धुरन्धर ज्ञाता और यज्ञ कराने में अत्यधिक निपुण थे। इनकी ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। ख्याति के कारण इन्हें अपने ऊपर कुछ अभिमान भी था। कर्मकांडी ब्राह्मण के रूप में ये विख्यात थे। साथ ही अपने समाज में सम्पन्न और अग्रगण्य थे।

अपापा नगरी के सम्पन्न सोमिल ब्राह्मण ने यज्ञ करने का विचार किया। उसने अनेक विद्वान् ब्राह्मण बुलवाये तथा इन्द्रभूति गौतम को भी बुलवाया तथा यज्ञाचार्य के पद पर इन्हें अधिष्ठित किया। यज्ञ प्रारम्भ हो गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसी समय अपापा नगरी के बाह्य भाग में देवों ने तीर्थंकर भगवान महावीर के समवसरण की रचना की। भगवान के समवसरण में सम्मिलित होने के लिए अनेक देव अपने विमानों मे बैठकर आकाश-मार्ग से आने लगे।

उन विमानों को देखकर याज्ञिकगण बहुत प्रसन्न हुए। वे समझे कि ये देवगण हमारे यज्ञ से आकर्षित होकर आ रहे हैं। लेकिन जब देवविमान आगे निकल गये तो सभी बहुत निराश हुए।

इन्द्रभूति गौतम को अपने ज्ञान का दंभ तो था ही। अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ चल दिये शास्त्रार्थ द्वारा भगवान को पराजित करने।

संपूर्ण ज्ञान कभी भी किसी छद्मस्थ को नहीं हो सकता। ज्ञानी पुरुषों के मन में भी कोई न कोई शंका रह ही जाती है जिसे वे कभी प्रगट नहीं करते।

गौतम के मन में भी एक शंका थी—आत्मा है या नहीं?

भगवान ने उनके बिना पूछे ही वह शंका प्रगट कर दी और साथ ही समाधान भी कर दिया।

इन्द्रभूति गौतम भगवान की सर्वज्ञता के समक्ष विनत हो गये और उनका शिष्यत्व ग्रहण करके श्रमण दीक्षा स्वीकार कर ली। साथ ही उनके ५०० शिष्य भी श्रमण बन गये।

भगवान ने त्रिपदी[1] का ज्ञान दिया तो उनके ज्ञान-नेत्र खुल गये। उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ और प्रभु के प्रथम गणधर कहलाये।

इन्द्रभूति गौतम प्रबल जिज्ञासु थे। उन्होंने भगवान से अनेक प्रश्न किये और उनका समाधान पाया। भगवती जैसा विशाल आगम इस बात का साक्षी है।

वे घोर तपस्वी थे, बेले-बेले पारणा करते थे। उनके लिए **घोर तवे, गुत्ते, गुत्तिन्दिये, गुत्त बंभयारी** आदि विशेषण जैन सूत्रों में मिलते हैं। उन्हें अक्खीण महानस आदि अनेक लब्धियाँ प्राप्त थीं। वे अपनी तेजोलेश्या को गुप्त रखते थे, कभी प्रगट नहीं होने देते थे।

उन्होंने अपनी आत्मा का उपकार तो किया ही, धर्म का प्रसार करके लोकोपकार भी बहुत किया। अनेक भव्य पुरुषों को धर्म-साधना की ओर उन्मुख किया। उनके निमित्त से अनेक भव्य मानव केवली बनकर मुक्त हुए।

भगवान महावीर के प्रति उनकी गहरी श्रद्धा-भक्ति और अनुराग था। यह अनुराग ही उनकी कैवल्य-प्राप्ति में बाधक हो रहा था। जिस रात्रि को भगवान मोक्ष पधारे उसी रात्रि को उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई।

गणधर गौतम ने ५० वर्ष की आयु में भगवान महावीर से श्रमण दीक्षा ली, ३० वर्ष तक छद्मस्थ रहे और १२ वर्ष तक केवली-पर्याय का पालन कर ९२ वर्ष की आयु में मुक्त हो गये।

---

१. उप्पन्ने इ वा, विगमे इ वा, धुवे इ वा—पदार्थ उत्पन्न होता है, व्यय होता है तथा ध्रुव (मूल तत्त्व रूप में) पर्याय रूप में रहता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन संसार में वे अपने गोत्र गौतम नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं। जैनाचार्यों ने गौतम शब्द का अनेक प्रकार से निर्वचन करके कई अर्थ बताए हैं; उदाहरणार्थ–गो (बुद्धि). तम (अन्धकार) जिसकी बुद्धि अथवा ज्ञान का अन्धकार समाप्त हो गया है।

अक्खीण महानस लब्धि की अपेक्षा से श्रध्दालुओं की मान्यता है कि गौतम स्वामी के प्रभाव और उनका नाम स्मरण करने से भंडार कभी खाली नहीं होता।

इस प्रकार की और भी मान्यताएँ हैं।

इन सब का सार–संक्षेप यह है कि गौतम स्वामी और उनके नाम के प्रति जैन संसार में बहुत श्रद्धा है।

यह सब गौतम स्वामी की विशिष्टता का द्योतक है।

अन्तकृद्दशांगसूत्र में अनेक स्थानों पर गौतम गणधर का उल्लेख हुआ है। साधकों की भिक्षाचर्या के वर्णन में **'जहा गोयम सामी'** शब्दों का बार-बार उल्लेख आया। उदाहरणार्थ–तीसरे वर्ग के आठवें अध्ययन में जब छह सहोदर भाई अणगार (सुलसा गाथापत्नी द्वारा पालित, देवकी के पुत्र) भिक्षार्थ द्वारका नगरी में जाने को प्रस्तुत होते हैं तो वहाँ उल्लेख है–**'जहा गोयम सामी'**–गौतम स्वामी के समान।

इन शब्दों से यह ध्वनित होता है कि जैन संसार में गौतम स्वामी की भिक्षाचर्या आदर्श मानी गई है।

गौतम स्वामी की भिक्षाचर्या विशिष्ट थी अथवा उन्होंने जैन श्रमणों के लिए भिक्षाचर्या का एक आदर्श स्थापित किया था।

उनकी भिक्षाचर्या की विधि इस प्रकार थी–जिस दिन उन्हें पारणा करना होता था उस दिन के प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करते, दूसरे प्रहर में ध्यान करते, तीसरे प्रहर में मानसिक और कायिक चंचलता से रहित होकर मुख-वस्त्रिका, वस्त्रों तथा भाजन (पात्रों) की प्रतिलेखना करते–झोली में रखते; फिर भगवान महावीर के पास आते और उन्हें वन्दना नमस्कार करके भिक्षार्थ जाने की आज्ञा माँगते।

भगवान की आज्ञा पाकर वे नगरी में जाते। उच्च-नीच-मध्यम कुलों में भिक्षा की गवेषणा करते। प्रासुक, शुद्ध, एषणीय भिक्षा लाते, वह भिक्षा भगवान महावीर को दिखाते और फिर जिस तरह बिल में सर्प प्रवेश करता है, उसी तरह उस आहार-पानी को अस्वाद वृत्ति से उदरस्थ कर लेते।

भिक्षा लाने और उदरस्थ करने की यह विधि जैन संसार में साधु भिक्षाचर्या और भोजनचर्या–एषणा समिति की आधारभूत बन गई। आज तक भी यह परम्परा प्रचलित है। अब भी साधु अपने धर्मगुरु, आचार्य अथवा ज्येष्ठ साधुओं को दिखाकर और उनकी आज्ञा पाकर ही लाये हुए आहार-पानी का उपयोग/उपभोग करते हैं।

छठे वर्ग के अतिमुक्तकुमार नामक अध्ययन में गौतम स्वामी का विस्तृत उल्लेख हुआ है। भिक्षाचर्या के साथ उनके सहानुभूति, सरलता, बाल मनोविज्ञान ज्ञाता आदि अनेक गुण उजागर हुए हैं।

अपने अनेक गुणों, दिव्य लब्धियों, आध्यात्मिक सर्वोत्कृष्ट पद-प्राप्ति, अक्षय-निधि प्रदाता आदि के कारण गौतम गणधर जैन संसार के जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. सुधर्मा स्वामी

श्री सुधर्मा स्वामी भगवान महावीर के पंचम गणधर हैं जबकि गौतम स्वामी प्रथम गणधर थे।

प्रत्येक साधक गणधर नहीं बन सकता; क्योंकि गणधर एक लब्धि (occult power) होती है। इस लब्धि का प्रगटीकरण तीर्थंकर के पादमूल में श्रमण-दीक्षा ग्रहण करते ही हो जाता है, इससे पहले नहीं। इस लब्धि के प्रगटीकरण होते ही, अन्तर के मानसिक और बौद्धिक बन्द कपाट उद्घाटित हो जाते हैं। तभी तो तीर्थंकर के श्रीमुख से त्रिपदी (उववन्नेइ वा, विगमेइ वा, धुवेइ वा) को सुनकर, गणधर द्वादशांगी की रचना में, समस्त श्रुत को हृदयंगम करने में सक्षम हो जाते हैं।

आर्य सुधर्मा ऐसे ही गणधर थे।

आर्य सुधर्मा का जन्म कोल्लाक सन्निवेश में हुआ। इनका गोत्र वैश्यायन था। इनके पिता धनमित्र और माता भद्दिला थीं। इनका जन्म नक्षत्र उत्तरा-फाल्गुनी था। वर्ण से ब्राह्मण थे।

ये अद्भुत प्रतिभा-संपन्न, चौदह विद्याओं में पारंगत और कर्मकांडी विद्वान् थे। इनके ५०० शिष्य थे।

इनके हृदय में एक संशय था। प्राणी जैसा इस जन्म में होता है, क्या अगले जन्म में भी वैसा ही होता है अथवा उसके रूप, स्वरूप आदि में परिवर्तन हो जाता है।

इस संशय को भगवान महावीर ने मिटाया तो उसी समय इन्होंने अपने शिष्यों सहित भगवान के पाद-मूल में श्रमण-दीक्षा धारण कर ली। तत्काल ही इन्हें गणधर लब्धि प्राप्त हो गई।

इन्होंने ५० वर्ष की आयु में भगवान महावीर से श्रमण संयम ग्रहण किया। ४२ वर्ष तक छद्मस्थ रहे। ३० वर्ष तक तो भगवान महावीर की सेवा में रहे और १२ वर्ष तक भगवान के निर्वाण के बाद भी छद्मावस्था में व्यतीत किये। तदुपरान्त ९२ वर्ष की आयु में इन्हें कैवल्य की उपलब्धि हुई। आठ वर्ष केवली-पर्याय का पालन कर तथा पूरे १०० वर्ष की आयु भोगकर निर्वाण प्राप्त किया।

इस प्रकार भगवान महावीर के निर्वाण के २० वर्ष पश्चात् गणधर सुधर्मा मुक्त हुए।

सुधर्मा स्वामी का सर्वाधिक महत्त्व इस बात में है कि इन्होंने जम्बू स्वामी को द्वादशांगी की वाचना दी। आज जो ११ अंग उपलब्ध हैं, वे सभी गणधर सुधर्मा की वाचना के हैं, इसीलिए वे सभी गणधर सुधर्मा प्रणीत कहलाते हैं।

गणधर सुधर्मा की शरीर-सम्पदा और गुण-सम्पदा का ग्रन्थों में बड़ा ही विशद और रुचिकर वर्णन हुआ है।

शरीर की दृष्टि से आपकी ऊँचाई ७ हाथ की थी। आपके शरीर का संहनन प्रथम-वज्रऋषभनाराच संहनन और समचतुरस्र संस्थान था। शरीर आकार-प्रकार से सुगठित था और संतप्त स्वर्ण के समान देह की कांति थी यानी आपके शरीर की आभा अथवा वर्ण लाल रंग (सिन्दूर) मिश्रित दूध के समान था।

आपके गुणों का वर्णन ज्ञाताधर्मकथासूत्र के प्रथम अध्ययन, सूत्र ४ में इन शब्दों द्वारा किया गया है–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

....अज्ज सुहम्मे नामं थेरे जाइसंपन्ने, कुलसंपन्ने बल-रूप-विणय-नाण-दंसण-चरित्तलाघव संपन्ने, ओयंसी, तेयंसी, वच्चंसी, जसंसी, .जियकोहे, जियमाणे, जियमाये, जियलोहे, जियइंदिए, जियनिद्दे, जियपरिसहे, जीवियास-मरण-भय विप्पमुक्के, तवप्पहाणे, गुणप्पहाणे, एवं करण-चरण-निग्गह-निच्छय-अज्जव-मद्दय-लाघव-खंति-गुत्ति-मुत्ति-विज्जा-मंत-बंभ-वेय-नय-नियम-सच्च-सोय-णाण-दंसण-चरित्त प्पहाणे, ओराले, घोरे, घोरव्वये, घोर तवस्सी, घोरबंभचेरवासी, उच्छूढ सरीरे, संखित्त-विउल तेउलेस्से, चोद्दस पुव्वी, चउनाणोवगए।

अर्थात् सुधर्मा नाम के स्थविर–जाति-संपन्न–उत्तम (उच्च कोटि के) मातृपक्ष वाले, कुल-संपन्न–निर्दोष पितृपक्ष वाले (यानी सुधर्मा के मातृ और पितृपक्ष दोनों ही उत्तम) थे, बल (मानसिक, वाचिक, कायिक शक्ति), रूप (अनुत्तर विमानवासी देवों से भी अधिक रूपवान), विनय, ज्ञान (सम्यग्ज्ञान), दर्शन (सम्यग्दर्शन), चारित्र (सम्यक्चारित्र), लाघव (द्रव्य से अल्प उपधि वाले और भाव से रस, ऋद्धि, साता–इन तीन गारवों से रहित) से संपन्न थे।

वे ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी और यशस्वी थे। वे क्रोध, मान, माया, लोभ–चारों कषायों को जीतने वाले थे तथा निद्रा, परीषह पर उन्होंने विजय प्राप्त कर ली थी। जीवन की आशा और मरण के भय से मुक्त हो चुके थे। तपों और गुणों में अर्थात् अन्य तपस्वियों तथा गुणी जनों की अपेक्षा अधिक तप करने वाले तथा गुणों को धारण करने वाले होने से, प्रधान थे। करण सत्तरी, चरण सत्तरी में प्रधान, अनाचार में प्रवृत्ति न करने से निग्रह-प्रधान–उत्तम निग्रही, तत्त्व का निश्चय करने में निपुण, आर्जव-मार्दव-लाघव व कुशल, क्षमा-गुप्ति (मन-वचन-काय को गुप्त रखना)–मुक्ति (लोभरहितता) में प्रधान, विद्या (देव अधिष्ठित रोहिणी आदि विद्या), मंत्र (विभिन्न प्रकार के मंत्र), ब्रह्मचर्य, वेद (लौकिक और लोकोत्तर आगमों) में निष्णात थे। नय (विविध प्रकार के नयों के ज्ञाता), नियम (अनेक प्रकार के अभिग्रह धारण करने वाले) थे। सत्य-शौच के विशिष्ट ज्ञाता, उत्कृष्ट ज्ञानी-दर्शनी-चारित्री और उदार थे। परीषहों, इन्द्रियों और कषायों आदि के प्रति कठोर, महाव्रतों का कठोरतापूर्वक पालन करने वाले, कठिन तपस्या करने वाले, उत्कृष्ट ब्रह्मचर्य-पालक, शरीर-संस्कार न करने वाले, विपुल तेजोलेश्या को अपने अन्दर संक्षिप्त करके रखने वाले, चौदह पूर्वों के ज्ञाता, चार ज्ञान (मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव) को धारण करने वाले थे।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि आर्य सुधर्मा कितने विशिष्ट गुणों को अपने अन्दर समाविष्ट किये हुए थे।

इस शारीरिक और गुण-संपदा के कारण उनका व्यक्तित्व भव्य और प्रभावशाली था। उनका प्रवचन जन-जन को मोहित करने वाला होता था, श्रोता श्रद्धा-भक्ति से विभोर हो जाता था।

मगधेश कोणिक के उनके प्रति श्रद्धा-भक्ति विभोर शब्द साक्षी दे रहे हैं–

सुयक्खाए ते भंते ! निग्गंथे पावयणे।

सुपण्णत्ते ते भंते ! निग्गंथे पावयणे।

सुभासिए ते भंते ! निग्गंथे पावयणे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुवेणीय ते भंते ! निग्गंथे पावयणे।

सुभाविए ते भंते ! निग्गंथे पावयणे।

अणुत्तरे ते भंते ! निग्गंथे पावयणे।

धम्मं णं आइक्खमाणा, उवसमं आइक्खइ।

उवसमं आइक्खमाणा, विवेगं आइक्खइ।

विवेगं आइक्खमाणा, वेरमणं आइक्खइ।

वेरमणं आइक्खमाणा, अकरणं पावाणं आइक्खइ।

णत्थि णं अण्णे केइ समणं वा माहणे वा,

जे एरिसं धम्ममाइक्खित्तए।

अर्थात् भगवन् ! आपका निर्ग्रन्थ प्रवचन सुआख्यात है, सुप्रज्ञप्त है, सुभाषित है, शिष्यों (विनीतों) से भलीभाँति सुनियोजित है, सुभाषित है, अनुत्तर है।

आपने अपने धर्म-प्रवचन से उपशम भाव के साथ विवेक, विरति और निवृत्ति धर्म का सम्यक् प्रतिपादन किया है। कोई भी अन्य श्रमण और ब्राह्मण इस प्रकार धर्म की व्याख्या करने में समर्थ नहीं है।[1]

अन्तकृद्दशांगसूत्र में स्थान-स्थान पर सुधर्मा स्वामी का नामोल्लेख हुआ है। प्रत्येक वर्ग और सभी अध्ययन उनकी वाचना से प्रारम्भ होते हैं और अन्त भी उन्हीं के द्वारा होता है।

जम्बू उनसे जिज्ञासा करते हैं कि अमुक वर्ग अथवा अध्ययन में भगवान महावीर ने क्या भाव फरमाये हैं और उनकी जिज्ञासा को शांत करते हुए सुधर्मा स्वामी वर्ग अथवा अध्ययन का भाव (subject matter) का वर्णन करते हैं और अन्त में कहते हैं—भगवान महावीर ने अमुक अध्ययन के यह भाव फरमाये हैं, जैसे मैंने भगवान के श्रीमुख से स्वयं सुने हैं; वही तुम्हें बताये हैं।

इससे सुधर्मा की वचन-प्रामाणिकता भी सिद्ध होती है।

अन्तकृद्दशांगसूत्र में सुधर्मा स्वामी के नाम के साथ कहीं 'अज्ज' विशेषण लगाया गया है तो कहीं 'थेरे'। जैसे—'अज्ज सुहम्मा', 'सुहम्मा थेरे'।

ये विशेषण उनकी चारित्रिक निर्मलता और ज्ञान-गरिमा को प्रकट करते हैं। साथ ही उनके प्रति पूज्य भाव भी प्रदर्शित करते हैं।

वास्तव में सुधर्मा स्वामी प्रत्येक जैन साधक के लिए पूजनीय हैं।

३. जम्बू स्वामी

आर्य जम्बू प्रस्तुत अन्तकृद्दशांगसूत्र की रीढ़ और केन्द्र-बिन्दु (back bone and instigating centre) हैं। इस सम्पूर्ण अंग आगम की रचना का प्रमुख आधार उनकी जिज्ञासा है, ज्ञान-प्राप्ति की अनबुझ पिपासा

---

१. साध्वी संघमित्रा : जैन धर्म के प्रभावक आचार्य, पृष्ठ ५८-५९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। यदि वे अपने गुरु के समक्ष जिज्ञासा प्रगट न करते तो शायद इस अंग का निर्माण न होता और हम तक न पहुँचता।

जम्बू स्वामी ज्योति-पुँज थे, ज्ञान-पिपासु थे, गुरु प्रदत्त द्वादशांगी तथा चौदह पूर्वों के ज्ञान–समस्त श्रुत को पी गए, पचा गये। अपनी मेधा में उस विशाल ज्ञान संसार को रत्नमंजूषा के समान सुरक्षित कर लिया।

ऐसे मेधावी जम्बू स्वामी का जन्म राजगृह नगर में एक अति धनाढ्य वैश्य परिवार में, भगवान महावीर के निर्वाण से १६ वर्ष पूर्व (विक्रम पूर्व ४८६, ई. सन् ५११) में हुआ। इनके पिता का नाम श्रेष्ठी ऋषभदत्त और माता का नाम धारिणी था। माता द्वारा स्वप्न में जम्बू-वृक्ष देखने अथवा जंबू द्वीपाधिपति देव की १०८ आयंबिल तप द्वारा आराधना के कारण इनका नाम जम्बूकुमार रखा गया। वे क्रमशः आयु के सोपान चढ़ते हुए सोलह वर्ष के और साथ ही समस्त पुरुषोचित कलाओं और विद्याओं में निपुण हो गए। पुत्र को सभी प्रकार योग्य देखकर माता-पिता ने इनका संबंध आठ श्रेष्ठि-कन्याओं के साथ निश्चित कर दिया।

उसी अवसर पर गणधर सुधर्मा स्वामी अपने ५०० शिष्यों सहित राजगृह पधारे। सोलह वर्षीय युवक जम्बू ने उनका धर्मोपदेश सुना तो उसका हृदय वैराग्य से भर गया। घर आकर माता-पिता को श्रमण-दीक्षा लेने का निर्णय बताया तो माता-पिता बहुत निराश हुए। भाँति-भाँति से समझाया लेकिन जब जम्बू अविचलित रहे तो अन्त में माता-पिता ने कहा–

"हम आठ श्रेष्ठियों को तुम्हारे विवाह का वचन दे चुके हैं। हमारे वचन की लाज रखकर विवाह तो अवश्य ही कर लो।"

जम्बूकुमार ने कहा–

"आपके वचन की रक्षा करने को मैं तैयार हूँ, लेकिन पहले आप उन श्रेष्ठियों को मेरे दीक्षा-निर्णय की सूचना अवश्य दे दें। यदि वे कन्याएँ तथा माता-पिता फिर भी विवाह के लिए तत्पर हों तो मुझे कोई ऐतराज नहीं; किन्तु विवाह के दूसरे दिन मैं दीक्षा अवश्य ले लूँगा।"

माता-पिता और विशेष रूप से माता ने मन में सोचा–'कामिनी के स्नेह-जाल में उलझकर कौन निकला है? जम्बू भी उलझ जायेगा।'

जम्बूकुमार की दीक्षा ग्रहण करने की सूचना कन्याओं के माता-पिताओं को भेज दी गई। उन सब की चिन्तनधारा जम्बूकुमार की माता के समान ही प्रवाहित हुई और शुभ लग्न में आठ श्रेष्ठि-कन्याओं का विवाह जम्बूकुमार के साथ हो गया। ९९ करोड़ सोनैया का दहेज मिला। दहेज से श्रेष्ठि का घर भर गया।

उस समय राजगृह की पहाड़ियों में प्रभव नाम का एक दुर्द्धर्ष तस्कर था। उसके ५०० साथी तस्कर थे। प्रभव के पास दो विशेष विद्याएँ थीं–(१) अवस्वापिनी–लोगों को निद्राधीन करने वाली, और (२) तालोद्घाटिनी–ताले खोलने वाली। इन दो विद्याओं के प्रभाव से प्रभव राजगृह नगर में सफलतापूर्वक चोरियाँ करता था और कभी पकड़ा नहीं जाता था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभव ने जब सुना कि जम्बूकुमार को ९९ करोड़ सोनैया का दहेज मिला है तो वह ललचा गया। अपने ५०० साथियों के साथ श्रेष्ठि ऋषभदत्त के घर जा पहुँचा। अपनी दोनों विद्याओं का प्रयोग किया और निश्चिन्ततापूर्वक उसके साथियों ने धन की पोटें (पोटलियाँ) बाँध लीं।

तभी चमत्कार-सा हुआ। ५०० चोरों के पैर जमीन से चिपक गये। इस चमत्कार से चिन्तित होकर प्रभव इधर-उधर देखने लगा। उसने देखा—एक कक्ष में से मन्द प्रकाश आ रहा है साथ ही उसे वार्त्तालाप का धीमा स्वर भी सुनाई दिया। वह उस कक्ष के पास पहुँचा और कान लगा दिये।

विवाह की पहली रजनी। जम्बूकुमार की नव-विवाहिता पत्नियाँ विभिन्न दृष्टान्त देकर उन्हें संसारी जीवन की ओर मोड़ने का प्रयास कर रही थीं और जम्बूकुमार भी दृष्टान्तों द्वारा ही उनके प्रयास को असफल करके संयम की सार्थकता को दृढ़ कर रहे थे।

उनका वार्त्तालाप सुनकर प्रभव को अपने तस्कर जीवन के प्रति घृणा उत्पन्न हुई, हृदय वैराग्य से भर गया। उसके ५०० तस्कर साथियों की भी यही दशा हुई।

जम्बूकुमार १, प्रभव १, उसके तस्कर साथी ५००, जम्बूकुमार के माता-पिता २, श्रेष्ठि-कन्याएँ और उनके माता-पिता २४, इस प्रकार दूसरे दिन प्रातः ५२८ व्यक्तियों ने सुधर्मा स्वामी के सान्निध्य में श्रामणी दीक्षा ग्रहण कर ली और तप-संयम की साधना करके आत्म-शुद्धि करने लगे। इनमें जम्बूकुमार प्रमुख थे।

श्री जम्बू स्वामी ने १६ वर्ष की आयु में दीक्षा ली, २० वर्ष तक ज्ञान-ध्यान-तप-संयम की आराधना करते हुए श्रमण-पर्याय का पालन करते रहे। ३६ वर्ष की आयु में कैवल्य प्राप्त हुआ। ४४ वर्ष तक कैवल्य-पर्याय में व्यतीत किये और कुल ८० वर्ष की आयु पूर्ण कर मुक्त हो गये।

वर्तमान अवसर्पिणी काल के आप अन्तिम केवली थे।

इनकी मुक्ति के उपरान्त दस बातों का विच्छेद हो गया—(१) केवलज्ञान, (२) मनःपर्यवज्ञान, (३) परमावधिज्ञान, (४) पुलाक लब्धि, (५) आहारक शरीर, (६) क्षायिक सम्यक्त्व, (७) जिनकल्प, (८) परिहार विशुद्धचारित्र, (९) सूक्ष्मसंपराय चारित्र, और (१०) यथाख्यात चारित्र।

पूर्वभव

'जंबूसामी चरित्र' आदि कथा ग्रंथों में सुधर्मा स्वामी और जंबू स्वामी के पूर्व पाँच भवों का वर्णन करके उनका पारम्परिक संबंध दर्शाया गया है।

(वर्तमान जन्म से पूर्व पाँचवें जन्म) प्रथम भव में सुधर्मा का नाम भवदत्त और जंबू का नाम भावदेव था। दोनों परस्पर भाई थे। भवदत्त बड़े और भावदेव छोटे। उस जन्म में भी भवदत्त ने भावदेव को धर्म का उपदेश दिया था।

इसी प्रकार यह परम्परा आगामी जन्मों में भी चलती रही और इस अन्तिम भव में सुधर्मा तथा जम्बू के रूप में प्रगट हुई तथा दोनों की मुक्ति के रूप में परिणत होकर वह प्रेम-संबंध समाप्त हुए।

पूर्वजन्मों से चले आये संबंधों के कारण जम्बू स्वामी की सुधर्मा स्वामी के प्रति अटूट श्रद्धा-भक्ति रही। सुधर्मा के भी जंबू स्वामी अन्तेवासी (अतिप्रिय और सदा साथ रहने वाले शिष्य) रहे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन साहित्य और धर्म में जम्बू स्वामी का जीवन चरित्र अत्यधिक प्रेरक और रोचक रहा है। उनका त्याग श्लाघनीय है। अतुल वैभव और आठ नव-विवाहिता अतिशय रूपवती, समर्पिता स्त्रियों का त्याग जन-मानस में उनके त्याग की प्रेरणा भर देता है।

द्वादशांगी की रचना के निमित्त रूप में उनका नाम जैन संसार में अमर है। अन्तकृद्दशा सूत्र भी उनकी जिज्ञासा का फल है।

युग-युग से जम्बूकुमार का नाम और यश अमर है तथा युग-युग तक अमर रहेगा।

४. मेघकुमार

मेघकुमार का संकेत अन्तकृद्दशासूत्र में प्रमुख रूप से प्रथम अध्ययन के आठवें सूत्र में जब गौतमकुमार भगवान अरिष्टनेमि की वन्दना करने जाते हैं तो वहाँ उनके गमन सम्बन्धी वर्णन के संबंध में संकेत किया गया है–"**एवं जहा मेघे।**"–मेघकुमार के समान, यानी जिस प्रकार मेघकुमार भगवान महावीर के वन्दन के लिए निकले, इसी प्रकार गौतमकुमार भगवान अरिष्टनेमि के दर्शन के लिए निकले। दर्शन-वन्दन करके धर्म-श्रवण किया। मेघकुमार का विस्तृत वर्णन ज्ञातासूत्र १/१ में मिलता है।

ये मगध-नरेश राजा श्रेणिक के पुत्र थे। इनकी माता धारिणी थी। धारिणी को दोहद हुआ कि मैं पति के साथ गजारूढ़ होकर वर्षा ऋतु के मेघमय वातावरण में वनश्री का आनन्द लूँ।

इस दोहद की पूर्ति अभयकुमार (राजा श्रेणिक के प्रथम पुत्र) ने अपने एक मित्र देव के सहयोग से की थी।

शिशु का जन्म हुआ। दोहद के आधार पर उसका नाम मेघकुमार रखा गया। वह पुरुषोचित कलाओं में निपुण बना। योग्य वय होने पर उसका विवाह आठ गजकन्याओं के साथ हुआ।

एक बार भगवान महावीर अपने धर्म-परिवार के साथ राजगृह पधारे और गुणशील उद्यान में विराजे। मेघकुमार उनके दर्शन-वन्दन, धर्मदेशना श्रवणार्थ गये। भगवान की देशना सुनकर प्रतिबुद्ध हुए। श्रमण-दीक्षा ग्रहण करने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

माता-पिता से आज्ञा लेकर दीक्षित हुए।

संयम ग्रहण की पहली रात्रि। वरिष्ठ-कनिष्ठ के क्रम से रात्रि-विश्राम के लिए मुनि मेघकुमार को दरवाजे के पास स्थान मिला। सन्तों के आने-जाने के कारण रात्रि के अन्धकार में मेघ मुनि को ठोकरें लगती रहीं। उन्होंने इसे अपमान समझा, रात्रिभर सो नहीं सके। खिन्न होकर संयम-पर्याय का त्याग करने का ही निर्णय कर लिया।

प्रातः संयम उपकरण प्रभु महावीर को लौटाने गये तो प्रभु ने इन्हें, इनके दो पूर्व-जन्मों का वृत्तान्त सुनाया। इन्हें भी जातिस्मरण (पूर्व-जन्मों का) ज्ञान हो गया।

पुनः प्रतिबुद्ध हुए। सन्तों के प्रति सेवाभाव से भर गये, तप-संयम की उत्कृष्ट साधना की और कालधर्म पाकर सर्वार्थसिद्ध विमान में देव बने।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह है मघ मुनि का संपूर्ण जीवनवृत्त।

किन्तु प्रस्तुत अंग आगम अन्तकृद्दशासूत्र (१/१८) में जहाँ-जहाँ इनका नाम संकेत किया गया है, वह इनके भगवान महावीर के दर्शन से संबंधित है। उसका वर्णन इस प्रकार है–

भगवान के आगमन को सुनकर (मेघकुमार के समान) गौतमकुमार हृष्ट-तुष्ट हुए। कौटुम्बिक पुरुषों को चार घंटों वाले धर्मरथ को लाने की आज्ञा देते हैं। उस आज्ञा का पालन कौटुम्बिक पुरुष करते हैं।

तत्पश्चात् उस मेघकुमार अथवा गौतमकुमार ने स्नान तथा कौतुक मंगल, प्रायश्चित्त आदि किया। फिर चार घंटों वाले धर्मरथ पर आरूढ़ हुआ। कोरंट वृक्ष के श्वेत फूलों की माला को धारण किया। सुभटों के विपुल समूह वाले परिवार से घिरा हुआ, नगर के बीचों-बीच होकर निकला। निकलकर उद्यान में आया, भगवान महावीर के दिव्यपताका, छत्र आदि अतिशयों को देखा, साथ ही विद्याधरों, चारण मुनियों और जृम्भक देवों को नीचे उतरते तथा ऊपर चढ़ते देखा। यह सब देखकर वह अपने धर्मरथ से उतरा। उतरकर निम्न पाँच अभिगम किये–

(१) पुष्प, पान आदि सचित्त वस्तुओं का त्याग किया।

(२) वस्त्र आदि अचित्त वस्तुओं का त्याग नहीं किया।

(३) एक शाटिका (दुपट्टे) का उत्तरासंग किया।

(४) भगवान पर दृष्टि पड़ते ही दोनों हाथ जोड़े।

(५) मन को एकाग्र किया।

यह अभिगम करके भगवान महावीर के पास आया। दाहिनी ओर से प्रारम्भ करके उनकी तीन प्रदक्षिणाएँ कीं, स्तुति-वन्दन-नमस्कार किया। फिर भगवान से न अति समीप, न अति दूर समुचित स्थान पर बैठकर, धर्मोपदेश सुनने की इच्छा करता हुआ, नमस्कार करता हुआ, दोनों हाथ जोड़े, सन्मुख रहकर, विनयपूर्वक प्रभु की उपासना करने लगा।

अन्तकृद्दशासूत्र में **'एव जहा मेहे वि'** संकेत से इतना वर्णन अभीष्ट है। अभिप्राय यह है कि गौतमकुमार भी इसी प्रकार अपने महल से निकले, द्वारका नगरी के मध्य होते हुए भगवान अरिष्टनेमि के पास पहुँचे और उनकी पर्युपासना की।

५. अभयकुमार

अभयकुमार मगधेश श्रेणिक का प्रथम पुत्र था। इसकी माता का नाम नन्दा था।

अभयकुमार अत्यन्त मेधावी, बुद्धि का बृहस्पति और कुशल तंत्री था। राजा श्रेणिक का दायाँ हाथ और मगध का महामंत्री भी था। इसी की बुद्धि-कुशलता से मगध-जैसे विशाल साम्राज्य का सुशासन सफलतापूर्वक चलता रहा।

राजा श्रेणिक को यह अत्यधिक प्रिय था। इसी की योजना से श्रेणिक को चेलना-जैसी जैनधर्मानुरागिणी और अत्यन्त रूपवती नारी प्राप्त हुई थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राज्य और रनिवास की प्रत्येक समस्या का समाधान अभयकुमार ने किया। रानी चेलना के दोहद की पूर्ति भी इसी ने की तो रानी धारिणी का दोहद भी इसी ने पूरा किया।

अन्तकृद्दशासूत्र के वर्ग ३, अ. ८, सूत्र १८ में जो इसके नाम का संकेत **'जहा अभओ'** अभयकुमार के समान इन शब्दों द्वारा किया गया है, वह रानी धारिणी की दोहद पूर्ति से ही सम्बन्धित है।

रानी धारिणी को जब अकाल में वर्षा ऋतु और मेघाच्छन्न वातावरण का दोहद हुआ तो उसकी पूर्ति के लिए पौषधशाला में गया, अष्टम भक्त तप (तेला) करके अपने मित्र देव की आराधना की और देव के सहयोग से रानी धारिणी का दोहद पूरा किया।

इसी प्रकार अन्तकृद्दशासूत्र में श्रीकृष्ण वासुदेव, अपनी माता रानी देवकी की पुत्र-प्राप्ति की इच्छा पूरी करने के लिए पौषधशाला में गये और तेला तप करके हरिणगमैषी देव की आराधना की, देव प्रगट हुआ और रानी देवकी को गजसुकुमाल नाम के पुत्र की प्राप्ति हुई।

दोनों घटनाएँ लगभग समान होने के कारण अन्तकृद्दशा के सूत्रकार ने अभयकुमार का नाम संकेतित किया है।

अभयकुमार ने संसार से विरक्त होकर प्रभु महावीर के चरणों में दीक्षा ग्रहण की, ५ वर्ष तक संयम का पालन किया, विविध प्रकार के तप किये और आयु पूर्ण कर विजय नाम के अनुत्तर विमान में देव बना।

६. अतिमुक्तकुमार श्रमण

(उग्रसेन-पुत्र—कंस के लघु भ्राता)

अन्तकृद्दशासूत्र के वर्ग ३, सूत्र १० में अतिमुक्तकुमार श्रमण का उल्लेख प्राप्त होता है।

सन्दर्भ यह है कि जब दो-दो के संघाड़े में तीन बार छह मुनि देवकी के महल में आहार के लिए आते हैं तब उन सब के समान वय रूप को देखकर देवकी संशय में पड़ जाती है और मुनियों के यह बताने पर कि हम छह सहोदर भाई हैं तथा भद्दिलपुर निवासी नाग गाथापति की पत्नी सुलसा के पुत्र हैं।

यह सुनकर देवकी का संशय और भी गहरा हो जाता है। उसे अपने बचपन की घटना याद आ जाती है—"जब मैं पोलासपुर में थी तो अतिमुक्तकुमार श्रमण ने कहा था—हे देवकी ! तुम आठ पुत्रों को जन्म दोगी जो नलकूबेर के समान सुन्दर होंगे तथा रंग-रूप-वय आदि में एक-से होंगे। इस भरत-क्षेत्र में ऐसे पुत्रों को कोई अन्य माता जन्म नहीं देगी।"

देवकी के बारे में ऐसी भविष्यवाणी करने वाले मुनि अतिमुक्तकुमार श्रमण राजा उग्रसेन के पुत्र तथा कंस के छोटे भाई थे।

वसुदेव जी की कृपा से जब कंस को मथुरा का राज्य प्राप्त हुआ, उस समय उसके पिता उग्रसेन मथुरा के शासक थे। कंस ने पूर्ववद्ध वैर के कारण अपने पिता उग्रसेन को ही बन्दी बना लिया और स्वयं मथुरा-नरेश बन बैठा। कंस की क्रूर विषयानुगामी प्रवृत्तियों के कारण राजमहल का वातावरण भी विषमय हो गया। माँस-मदिरा आदि का सेवन तथा अनार्य वृत्तियाँ निर्बाध चलने लगीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कंस के छोटे भाई अतिमुक्तकुमार प्रारम्भ से वैरागी स्वभाव के थे। धार्मिक आस्था उनके मन में गहरी समाई हुई थी। राजमहल के इस दूषित वातावरण से उन्हें वितृष्णा हो गई। उन्होंने एक श्रमण से जैन भागवती दीक्षा ग्रहण कर ली और ज्ञान, ध्यान, तप, संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे।

तपस्या के फलस्वरूप उन्हें अनेक लब्धियाँ भी प्राप्त हो गईं।

अन्तकृद्दशासूत्र के तृतीय वर्ग में संकेतित यही अतिमुक्तकुमार श्रमण हैं।

इनके जीवन का एक और प्रसंग त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र में मिलता है। वह भी देवकी के जीवन से संबंधित है।

वसुदेव-देवकी के विवाह के उपलक्ष्य में कंस एक बड़ा हर्षोत्सव मना रहा था। प्रत्येक व्यक्ति हर्षोत्सव अपनी रुचि-प्रवृत्ति के अनुकूल मनाता है। कंस और उसकी पत्नी जीवयशा माँस-मदिरासेवी तथा विषयी थे तथा राजमहल में भी मदिरा की सरिता बह रही थी।

ऐसे समय में मुनि अतिमुक्तकुमार श्रमण भिक्षा के लिए राजमहल में पहुँचे और वहाँ का वातावरण देखकर लौटने लगे तभी नशे में बेभान जीवयशा ने मुनि का मार्ग रोक लिया और कहने लगी-

"अरे देवर ! (संसारी दृष्टि से कंस के छोटे भाई होने के नाते) इस अवसर पर तुम भी पीओ और मस्त होकर हमारे साथ राग-रंग-क्रीड़ा करो।"

मुनि ने बहुत प्रयास किया कि जीवयशा द्वार से हट जाये, उन्हें बाहर जाने का मार्ग दे दे, लेकिन जब जीवयशा द्वार पर ही अड़ी रही तो आखिर मुनि के मुँह से निकल ही गया-

"जीवयशा ! जिस देवकी के विवाहोत्सव में तू मदोन्मत्त बनी हुई है, उसी का सातवाँ पुत्र तेरे पति का काल होगा।"

मुनि के ये वचन सुनते ही जीवयशा का नशा उड़ गया, वह द्वार से हट गयी। मुनि राजमहल के उस दूषित वातावरण से बाहर निकल गये।

इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि कंस ने कुटिलतापूर्वक अपने उपकारी वासुदेव तथा देवकी को कैद (नजरकैद) कर लिया।

ये अतिमुक्तकुमार श्रमण अरिहंत अरिष्टनेमि के युग में हुए हैं।

७. श्रेणिक राजा

जैन साहित्य में श्रेणिक राजा का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह मगध के विशाल साम्राज्य का स्वामी और भगवान महावीर का समकालीन था। भगवान महावीर के प्रति इसकी असीम आस्था थी। उनका दृढ़ श्रद्धालु भक्त था। आचार्यों ने इसके जीवन की विभिन्न घटनाओं को गुम्फित करके श्रेणिक चरित्र की रचना की है तथा इसके विषय में अनेक प्रकीर्णक रचनाएँ भी मिलती हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुत अन्तकृद्दशासूत्र के सातवें और आठवें वर्ग में जिन २३ नारी साधिकाओं की लोमहर्षक तपोसाधना का वर्णन हुआ है, वे सब इसी राजा श्रेणिक की रानियाँ थीं।

राजा श्रेणिक का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

कुशाग्रपुर-नरेश प्रसेनजित के सौ पुत्र थे, जिनमें श्रेणिक सबसे ज्येष्ठ और मेधावी था।

राजा प्रसेनजित ने एक भील-पुत्री के साथ विवाह इस शर्त पर किया था कि इससे उत्पन्न पुत्र ही राज्य का अधिकारी होगा। भील-कन्या से चिलातीकुमार नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ।

राजा वचनबद्ध थे। चिलातीकुमार को राज्यासीन करना ही था। उन्होंने कुमारों की बुद्धि-परीक्षाएँ लीं। यद्यपि श्रेणिक सभी में सफल रहा, फिर भी उसे देश-निष्कासन का दण्ड दिया।

यह सब-कुछ चिलातीकुमार को राजा बनाने के लिए किया गया। श्रेणिक के जाते ही इसे राज्यासीन कर भी दिया गया।

नगर से चलकर श्रेणिक एक बौद्ध-मठ में रुका। बौद्धाचार्य ने मीठे वचनों और आहार-पानी से उसका सत्कार किया। बौद्धाचार्य की इस उदारता से श्रेणिक प्रभावित हुआ।

आगे चला तो वेनातट नगर जा पहुँचा। उसके पुण्य प्रभाव, बुद्धि कुशलता से एक सेठ ने अपनी विदुषी और बुद्धिमती पुत्री नन्दा का विवाह उसके साथ कर दिया। नन्दा इस प्रकार श्रेणिक की प्रथम पत्नी थी जिसने अभयकुमार-जैसे मेधावी पुत्र को जन्म दिया।

चिलातीकुमार के कुशासन में प्रजा बहुत दुःखी हो गई, शासन-व्यवस्था बिगड़ गई, आर्थिक स्थिति रसातल को पहुँच गई, प्रजा के दुःख से दुःखी राजा प्रसेनजित मृत्यु-शय्या पर पड़ गये। तब मंत्रियों के बुलावे पर गर्भवती नन्दा को वेनातट पिता के घर छोड़कर ही श्रेणिक को अपने रुग्ण पिता के पास आना पड़ा।

श्रेणिक ने शासन-भार सँभाला और अपनी नीति कुशलता से सभी को प्रसन्न करके राज्य को समृद्ध किया। उसका यश दूर-दूर तक फैल गया। ५०० राज-कन्याओं के साथ उसका विवाह हो गया जिसमें धारिणी आदि प्रमुख थीं।

कुछ वर्ष बाद अभयकुमार की बुद्धिमत्ता से श्रेणिक और उसकी प्रथम पत्नी नन्दा का भी मिलाप हो गया।

राजा श्रेणिक के अभयकुमार, कोणिक, मेघकुमार, कालकुमार, हल्लकुमार, विहल्लकुमार आदि कई पुत्र थे।

देश निष्कासन के समय बौद्धाचार्य ने जो उदारता दिखाई थी उसके कारण श्रेणिक बौद्धधर्मानुयायी हो गया था। अनाथी मुनि के संपर्क और चेलना रानी की प्रेरणा से उसे यथार्थ तत्त्व का ज्ञान हुआ और वह भगवान महावीर का दृढ़ श्रद्धालु, परम भक्त तथा सम्यक्त्वी बन गया। वह संयम तो न ले सका लेकिन जो श्रमण दीक्षा लेना चाहते थे उन्हें भरपूर सहयोग देकर धर्म प्रचार-प्रसार में सहायक बना, तीर्थंकर नाम-गोत्र का बंध किया। आगामी चौबीसी में वह पद्म नाम का प्रथम तीर्थंकर होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रेणिक की मृत्यु बड़ी विषम परिस्थितियों में हुई। उसी के पुत्र और चेलना के आत्मज कोणिक ने षड्यन्त्र करके उसे बन्दी बनाया और पिंजरे में डाल दिया। वहाँ उसने अपनी अँगूठी में जड़े हीरे को चबाकर प्राणोत्सर्ग कर दिया।

एक उल्लेख के अनुसार श्रेणिक का जन्म भगवान महावीर के जन्म से १५ वर्ष पूर्व (ई. पू. ६१४) में तथा देहावसान भी भगवान महावीर के निर्वाण से १५ वर्ष पूर्व (ई. पू. ५५२) में हुआ था।

८. रानी चेलना

चेलना राजा श्रेणिक की पटरानी थी, श्रेणिक इससे अत्यधिक प्रेम करता था, प्राणों से भी अधिक चाहता था। चेलना की प्रेरणा से ही राजा श्रेणिक जैनधर्मानुयायी और भगवान महावीर का भक्त बना।

चेलना वैशाली-नरेश राजा चेटक की सबसे छोटी और सातवीं पुत्री थी। इससे बड़ी छह बहनें और थीं, जिनमें से पाँच के विवाह तो तत्कालीन प्रसिद्ध राजाओं के साथ हो गये थे, छठवीं पुत्री सुज्येष्ठा ने संयम धारण कर लिया था तथा सातवीं पुत्री चेलना का विवाह मगध-सम्राट् श्रेणिक के साथ हुआ।

यह विवाह भी बड़े रोमांचक ढंग से हुआ।

सुज्येष्ठा (तब तक सुज्येष्ठा कुँवारी थी, उसने संयम ग्रहण नहीं किया था) की सुन्दरता से आकर्षित होकर मगधेश श्रेणिक ने अपना दूत वैशाली-नरेश चेटक की राजसभा में भेजकर सुज्येष्ठा की याचना की।

किन्तु राजा चेटक ने स्पष्ट इन्कार कर दिया। कारण यह बताया कि श्रेणिक हीन कुल का है। एक कारण और भी हो सकता है कि चेटक राजा पक्के जैनधर्मानुयायी थे, जबकि उस समय तक श्रेणिक बौद्ध मतावलम्बी था। इस कारण चेटक अपनी पुत्री का विवाह श्रेणिक के साथ न करना चाहते हों।

राजा चेटक का इन्कार सुनकर कुशल तंत्री अभयकुमार की योजना से श्रेणिक ने काम किया। मगध राज्य की सीमा से वैशाली तक एक लंबी सुरंग खुदवाई। अभयकुमार के तंत्र से सुज्येष्ठा और चेलना दोनों ही राजा श्रेणिक के प्रति आकर्षित होकर उसके साथ भागने को उतावली हो गई।

निश्चित दिन और समय पर सुज्येष्ठा और चेलना दोनों बहनें सुरंग-द्वार पर जा पहुँचीं। राजा श्रेणिक का रथ आने में देर थी। सुज्येष्ठा अपने जेवरों का डिब्बा भूल आई थी। उसने चेलना से कहा–"मैं अपने जेवरों का डिब्बा कक्ष में भूल आई हूँ। अभी लेकर आती हूँ। यदि मगधेश आ जायें तो तू उन्हें रोक लेना।" इतना कहकर सुज्येष्ठा चली गई।

श्रेणिक का रथ सुरंग-द्वार पर आया। चेलना तुरन्त रथ में बैठ गई। श्रेणिक जल्दी में थे। रथवान ने रथ हाँक दिया। चेलना चुपचाप सिकुड़ी-सिमटी बैठी रही। सुरंग पार होने के बाद चेलना ने रहस्य खोला– मैं सुज्येष्ठा नहीं, चेलना हूँ।"

राजा श्रेणिक ने चेलना को ही हृदयेश्वरी मान लिया।

इधर सुज्येष्ठा जेवरों का डिब्बा लेकर सुरंग-द्वार पर आई तो उसने देखा कि चेलना चली गई है। खेल खत्म हो चुका है। निराश होकर उसने श्रमणी-दीक्षा ग्रहण की और भगवान महावीर के साध्वी संघ में सम्मिलित होकर तप-संयम की आराधना में दत्तचित्त हो गई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चेलना दृढ़ सम्यक्त्वी और भगवान महावीर की परम भक्त थी जबकि श्रेणिक बौद्ध गुरुओं का अनुयायी था। चेलना ने बड़ी कुशलता और बुद्धिमत्ता से यह धार्मिक भेद मिटाकर श्रेणिक को जिनधर्मानुयायी और भगवान महावीर का श्रद्धालु भक्त बना दिया।

यद्यपि श्रेणिक रानी चेलना को अपने प्राणों से भी अधिक प्रेम करते थे, फिर भी एक बार उनके हृदय में चेलना के सतीत्व के प्रति संशय का नाग फुँकार उठा।

घटना इस प्रकार हुई–

एक बार राजगृह में बहुत तेज शीत लहर चल रही थी। भगवान महावीर वहाँ पधारे। राजा श्रेणिक और रानी चेलना भगवान के दर्शन-वन्दन के लिए रथ में बैठकर गये। लौटते समय उन्होंने देखा कि एक जिनकल्पी मुनि तालाब की पाल पर खड़े कायोत्सर्ग में लीन हैं। राजा-रानी ने उनको वन्दन किया और भाव-विभोर शब्दों में उनकी उत्कृष्ट साधना की प्रशंसा करते हुए महल में आ गये।

तेज शीत लहर तो चल ही रही थी। राजा-रानी शयन-कक्ष में अपने-अपने पलँगों पर रत्नकंबलों में लिपटे पड़े थे। शयन-कक्ष के वातायानों पर मोटे ऊनी कंबल पड़े थे। दीपकों के प्रकाश से कक्ष गरम भी था। फिर भी शीत इतना था कि रत्नकंबल से शरीर का जो भी अंग बाहर रह जाता वही सुन्न पड़ जाता, अकड़ जाता।

रानी चेलना का भी एक हाथ नींद में रत्नकंबल से बाहर रह गया, अकड़ गया। रानी ने किसी तरह वह हाथ कंबल के अन्दर किया; किन्तु उसके मुख से यह शब्द निकल गये–

"ऐसे शीत में उनकी क्या दशा होगी?"

राजा श्रेणिक जाग रहा था। ये शब्द कान में पड़ते ही शंका का नाग उसके मन-मस्तिष्क में फन उठाने लगा। चेलना के सतीत्व के प्रति वह संशय से भर गया। बेचैनी तनाव के कारण रात करवटें बदलते बीती।

प्रातः भगवान महावीर के समवसरण में पहुँचा। वन्दन नमस्कार करके पूछा–

"भगवन् ! मेरी रानी चेलना सती है या गुप्ता?"

भगवान महावीर ने कहा–

"श्रेणिक ! राजा चेटक की सातों पुत्रियाँ सती हैं। तुम्हारी रानी चेलना भी सती है। उसके सतीत्व के प्रति संदेह करना भ्रम मात्र है।"

फिर भगवान महावीर ने श्रेणिक की शंका निवारण करने हेतु कहा–

"श्रेणिक ! जब तुम और रानी चेलना मेरे समवसरण से लौट रहे थे तो तुमने एक जिनकल्पी श्रमण को सरोवर की पाल पर ध्यानस्थ देखा। उन्हीं को लक्ष्य कर चेलना के मुख से ये शब्द निकले–'ऐसे शीत में उनकी क्या दशा होगी?' जिसका तुमने गलत अर्थ लिया और चेलना को गुप्ता समझ बैठे। वास्तव में चेलना परम श्रमणोपासिका और सती है।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान महावीर के इन शब्दों से श्रेणिक का भ्रम मिट गया और चेलना का सतीत्व कुन्दन-सा दमक उठा।

अन्तकृद्दशासूत्र में चेलना का नामोल्लेख छठे वर्ग के दूसरे अध्ययन में हुआ है।

राजा श्रेणिक के समान रानी चेलना का भी जैन-साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

९. माता देवानन्दा

देवानन्दा का उल्लेख अन्तकृद्दशासूत्र के तीसरे वर्ग के आठवें अध्ययन (गजसुकुमाल) में आया। जब देवकी समान रूप-वय वाले छह अनगारों के मातृत्व के विषय में शंका निवारणार्थ जाती है तब वहाँ पाठ आता है–"**जहा देवाणंदाए।**" अर्थात् जिस प्रकार देवानंदा भगवान महावीर के दर्शनार्थ गई उसी प्रकार देवकी भी भगवान अरिष्टनेमि के दर्शनार्थ जाती है।

देवानन्दा ब्राह्मणी थी। उसके पति का नाम ऋषभदत्त ब्राह्मण था। वे ब्राह्मण कुण्ड नगर में निवास करते थे।

दसवें प्राणत स्वर्ग से अपना आयुष्य पूर्ण कर भगवान महावीर का जीव देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ में अवस्थित हुआ। तीर्थंकरों की माताओं द्वारा देखे जाने वाले चौदह महास्वप्न देवानन्दा ब्राह्मणी ने देखे। उसके हर्ष का पार न रहा।

उसी समय रानी त्रिशला के गर्भ में एक पुत्री भी अवस्थित हुई।

शक्रेन्द्र ने अवधिज्ञान से जाना कि भगवान महावीर का जीव देवानन्दा के गर्भ में अवस्थित हो चुका है तो उसने विचार किया कि तीर्थंकर का जन्म सदा ही क्षत्रिय-कुल में होता है।

उसने तुरन्त हरिणगमैषी देव को गर्भ संहरण की आज्ञा देते हुए कहा–"देवानन्दा का गर्भ त्रिशला रानी की कुक्षि में और त्रिशलादेवी का गर्भ ब्राह्मणी देवानन्दा की कुक्षि में स्थानान्तरित कर दो।"

हरिणगमैषी देव ने ऐसा ही किया। त्रिशलादेवी और ब्राह्मणी देवानन्दा के गर्भ परस्पर बदल दिये inter-transfer कर दिये।

यह घटना भगवान महावीर के गर्भ में स्थित होने की ८२वीं रात्रि को हुई। भगवान महावीर ८२ रात्रि तक देवानन्दा के गर्भ में रहे। इस अपेक्षा से देवानन्दा भगवान महावीर की माता थीं।

गर्भ-संहरण के बाद देवानन्दा को ऐसा प्रतीत हुआ कि उसके महास्वप्न लौट रहे हैं। वह बहुत दुःखी हुई। लेकिन जब उसी रात्रि को त्रिशलादेवी ने महास्वप्न देखे तो वह खुशियों से भर गई।

लेकिन गर्भ-संहरण की यह घटना अप्रकट ही रही। किसी को भी ज्ञात न हो सकी।

केवलज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् एक बार श्रमण भगवान महावीर ब्राह्मणकुण्डग्राम में पधारे। उनके दर्शनों की जिज्ञासा ऋषभदत्त ब्राह्मण और देवानन्दा ब्राह्मणी को भी हुई।

उन्होंने कौटुम्बिक बुलाया। स्नान आदि से निवृत्त होकर बहुमूल्य वस्त्र अलंकार धारण किये, धर्मरथ पर सवार हुए, भगवान को दूर से ही देखकर पाँच अभिगम किये और भगवान से न दूर और न अति समीप जाकर उनकी प्रदक्षिणा, वन्दना-नमस्कार किया और उपासना करने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवानन्दा भगवान महावीर को अपलक दृष्टि से देखने लगी। उसका रोम-रोम प्रफुल्लित हो उठा। भगवान के प्रति वात्सल्य के कारण उसके स्तनों से दूध की धारा बहने लगी।

देवानन्दा की यह दशा देखकर गौतम स्वामी ने भगवान से जिज्ञासा की–

"प्रभु ! इस देवानन्दा ब्राह्मणी की ऐसी दशा क्यों हो रही है?"

तब भगवान महावीर ने संपूर्ण रहस्य उद्घाटित करके कहा–

"हे गौतम ! इस प्रकार देवानन्दा ब्राह्मणी मेरी माता है। मैं इसके गर्भ में ८२ रात्रियों (दिन) तक रहा हूँ। मेरे प्रति वात्सल्य भाव के कारण ही देवानन्दा ब्राह्मणी की यह दशा हो रही है।"

सम्पूर्ण रहस्य को जानकर देवानन्दा और ऋषभदत्त के हर्ष का ठिकाना न रहा। दोनों ने भगवान महावीर के पाद-पद्मों में दीक्षा ग्रहण की और तप-संयम की उत्कृष्ट आराधना कर मुक्त हुए।

१०. महाबलकुमार

महाबलकुमार का नाम संकेत अन्तकृद्दशासूत्र के प्रथम वर्ग गौतमकुमार नामक प्रथम अध्ययन, सूत्र १७ में आया है। वहाँ राजा अन्धकवृष्णि की रानी धारिणी गर्भ धारण करते समय सिंह का स्वप्न देखती है, उस सन्दर्भ में कहा गया है–

स्वप्न-दर्शन, पुत्र-जन्म, उसकी बाल-क्रीड़ाएँ, कला ज्ञान, यौवन, पाणिग्रहण, रम्य प्रासाद, भोग आदि सब महाबलकुमार के समान समझना चाहिए।

हस्तिनापुर नगर का राजा बल था। उसकी रानी का नाम था–प्रभावती।

एक रात्रि अपनी सुख शय्या पर सोई हुई थी। उसने स्वप्न में श्वेत सिंह देखा। उसकी नींद खुल गई। पति को अपना स्वप्न सुनाया।

राजा बल ने स्वप्न-पाठकों को बुलाकर स्वप्न का फल पूछा। स्वप्न-पाठकों ने विभिन्न प्रकार के ७२ स्वप्नों के फल की विवेचना करके रानी के स्वप्न का फल बताया–इसके फलस्वरूप अर्थ-लाभ, भोग-लाभ, राज्य-लाभ और पुत्र-लाभ होगा।

यथेष्ट पुरस्कार देकर राजा ने स्वप्न-पाठकों को विदा कर दिया।

गर्भकाल पूरा होने पर रानी प्रभावती ने एक सुन्दर, सुकुमाल, सर्वांगपूर्ण पुत्र को जन्म दिया। महोत्सवपूर्वक राजा बल ने अपने पुत्र का नाम महाबल रखा।

पाँच धात्रियों द्वारा महाबलकुमार का पालन-पोषण होने लगा।

बाल-क्रीड़ाओं से सबको प्रमुदित करता हुआ महाबलकुमार बढ़ने लगा। योग्य वय होने पर उसने कलाचार्य से कला-ज्ञान प्राप्त किया, युवा हुआ, पिता ने आठ राजकन्याओं के साथ उसका पाणिग्रहण कर दिया, मांता-पिता की ओर से उसे (उसकी वधुओं को) आठ कोटि हिरण्य, आठ कोटि रजत आदि अनेक प्रकार की वस्तुओं का प्रीतिदान मिला और वह अपने लिए निर्मित भवन में अपनी आठों पत्नियों के साथ सुखपूर्वक भोग भोगने लगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हस्तिनापुर नगर में तीर्थंकर विमलनाथ के प्रशिष्य (शिष्यानुशिष्य) धर्मघोष अनगार पधारे। उनका धर्मोपदेश सुनकर महाबलकुमार के हृदय में वैराग्य जाग्रत हुआ। माता-पिता के समक्ष अपनी इच्छा प्रगट की। माता-पिता ने बहुत समझाया लेकिन जब ये संसाराभिमुख न हुए तो उन्होंने कहा–

"हम एक दिन के लिए तुम्हें राजा के रूप में देखना चाहते हैं।"

इस पर महाबलकुमार मौन हो गये। धूमधाम से उनका राज्याभिषेक हुआ। राज-सिंहासन पर बैठते ही दीक्षा की इच्छा प्रगट की।

आखिर इन्होंने विधिपूर्वक धर्मघोष अनगार के समक्ष श्रामणी-दीक्षा ग्रहण कर ली। सामायिक आदि १४ पूर्वों का अध्ययन किया। उपवास, बेला, तेला आदि अनेक तप करते हुए बारह वर्ष तक श्रमण-पर्याय का पालन करते रहे। अन्त में संलेखना-संथारापूर्वक देहत्याग किया और ब्रह्मलोक कल्प में दस सागरोपम की आयु वाले देव बने।

देवलोक का आयुष्य पूर्ण करके भगवान महावीर के शासनकाल में, सुदर्शन श्रेष्ठी के रूप में वाणिज्यग्राम में जन्म लिया।

सुदर्शन श्रेष्ठी श्रमणोपासक और जीवाजीव का ज्ञाता था। भगवान महावीर के पादमूल में इसने श्रमण-दीक्षा ग्रहण की, चौदह पूर्वों का अध्ययन किया, बारह वर्ष तक श्रमण-पर्याय का पालन किया और अन्त में मुक्त हो गये।

(भगवतीसूत्र ११)

११. आर्य स्कन्दक (खंधक)

अन्तकृद्दशासूत्र में स्कन्दक मुनि का उल्लेख तीन बार आया है–(१) प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन के सूत्र ९ में जब गौतमकुमार १२ भिक्षु प्रतिमाओं की आराधना करते हैं। (२) छठे वर्ग के प्रथम सूत्र (सूत्र १) में जब मंकाई (गाथापति) मुनि गुणरत्नसंवत्सर तप करते हैं। (३) वर्ग ८ के सूत्र १४ में जब साध्वी महासेनकृष्णा धर्मचिन्तन और धर्मजागरणा करती हुई संलेखना-संथारा का निश्चय करती हैं।

इन तीनों सन्दर्भों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि आर्य स्कन्दक ने १२ भिक्षु प्रतिमाओं, गुणरत्नसंवत्सर तप और संलेखना-संथारा की विधिवत् आराधना की थी। इसी कारण अन्तकृद्दशासूत्र के तीन स्थलों पर उनकी उपमा दी गई है।

स्कन्दक जी का जीवनवृत्त इस प्रकार है–

राजगृह नगर के पश्चिमोत्तर भू-भाग में कृतंगला नाम की नगरी थी। उसी के सन्निकट श्रावस्ती नगर था। वहाँ कात्यायन परिव्राजक का शिष्य स्कन्दक परिव्राजक निवास करता था। वह समस्त वेद-वेदांगों, इतिहास, नीति व अन्य दर्शनों में पारंगत था।

श्रावस्ती में ही पिंगल नाम का निर्ग्रन्थ वैसालीय श्रावक निवास करता था। वह निर्ग्रन्थ प्रवचन के रहस्य का ज्ञाता था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक बार पिंगल और स्कन्दक दोनों मिले। पिंगल ने स्कन्दक से पूछा–

"स्कन्दक ! यह लोक सान्त है या अनन्त है?"

"जीव सान्त है या अनन्त है?"

"सिद्धि सान्त है या अनन्त है?"

"सिद्ध सान्त है या अनन्त है?"

"किस प्रकार का मरण पाकर जीव संसार को घटाता या बढ़ाता है?"

इन द्विधात्मक प्रश्नों को सुनकर स्कन्दक असमंजस में पड़ गया। एकान्त भाषा में कोई उत्तर संभव नहीं था। वह विचार-मग्न हो गया। कुछ भी न कह सका। उसके दिल में हलचल मच गई। अपने ज्ञान के प्रति शंकाशील हो उठा।

उसी समय उसने लोगों के मुख से सुना कि भगवान महावीर समीप ही कृतंगला नगरी में पधारे हैं। इन प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए स्कन्दक भी भगवान महावीर के पास कृतंगला नगरी की ओर चल पड़ा।

उसके पहुँचने से पहले ही भगवान महावीर ने गौतम गणधर से कहा–

"गौतम ! आज तुमसे तुम्हारा पूर्व स्नेही मिलेगा।"

गौतम ने पूछा–

"कौन? भगवन् !"

"स्कन्दक परिव्राजक।"

"वह यहाँ किसलिये आ रहा है?"

"पिंगल श्रावक ने लोक आदि की सान्तता-अनन्तता के विषय में उससे कुछ प्रश्न किये थे, जिनके उत्तर वह न दे सका। उन्हीं के समाधान के लिए वह मेरे पास आ रहा है।"

भगवान इतना कह पाये थे कि गौतम को दूर से आता हुआ स्कन्दक परिव्राजक दिखाई दिया। गौतम ने आगे बढ़कर उसका स्वागत किया। स्कन्दक प्रसन्न हो गया।

फिर उसने वन्दना-नमस्कार करके भगवान के समक्ष अपनी जिज्ञासाएँ रखीं। भगवान ने स्याद्वाद शैली से उनका समाधान कर दिया।

अपने सभी प्रश्नों का समुचित समाधान पाकर स्कन्दक बहुत प्रभावित हुआ। उसने भगवान से श्रामणी-दीक्षा ग्रहण कर ली। १२ भिक्षु प्रतिमाओं और गुणरत्नसंवत्सर तप की आराधना की। बारह वर्ष तक निरंतर साधना और श्रमण-पर्याय का पालन करते रहे। आयु के अन्त में विपुलाचल पर्वत पर संलेखना-संथारा करके शरीर का त्याग किया और अच्युत कल्प में देव बने।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२. चन्दनबाला

अन्तकृद्दशासूत्र के वर्ग ७ और ८ के प्रत्येक अध्ययन में आर्या चन्दनबाला के नाम का उल्लेख प्राप्त होता है। यह भगवान महावीर के श्रमणी-संघ की नायिका और ३६,००० श्रमणियों में प्रमुखा थी।

दीक्षा-पूर्व तक का चन्दनबाला का जीवन बड़ा ही रोमांचक और कष्टों की जीवन्त गाथा इसका माता-पिता द्वारा दिया गया नाम तो वसुमती था। चन्दनबाला नाम तो इसके चन्दन-जैसे शीतल स्वभाव के कारण पड़ा। जैसे—काटने, छीलने, घिसने पर भी चन्दन शीतलता ही प्रदान करता है, उसी प्रकार घोर कष्टों, दुःखों, अपमानपूर्ण स्थितियों में भी उसने कभी क्रोध नहीं किया, किसी अन्य पर आरोप—आक्षेप नहीं लगाया; सदा चन्दन के समान ही शीतल रही। इस कारण उसका गुण-निष्पन्न नाम चन्दनबाला सार्थक और जैन-संसार में प्रसिद्ध रहा।

चम्पा-नरेश राजा दधिवाहन और उनकी रानी धारिणी की पुत्री थी—वसुमती। उसका स्वभाव बहुत ही गंभीर और विचारशील था।

उस युग में राज्य-विस्तार की लिप्सा अत्यधिक तीव्र थी। राजा लोग कारण हो या न हो एक-दूसरे पर आक्रमण करते ही रहते थे।

कौशाम्बी-नरेश शतानीक ने चम्पा पर आक्रमण कर दिया। राजा दधिवाहन पलायन कर गये। कौशाम्बी के सैनिकों को लूट की खुली छूट मिल गई।

एक सारथी ने रानी धारिणी और वसुमती का अपहरण किया। रथ में बिठाकर ले चला। बीच जंगल में रथ रोककर उसने रानी धारिणी के समक्ष अपनी कामेच्छा प्रगट की तो अपने शील की रक्षार्थ रानी ने अपनी जीभ खींचकर प्राणोत्सर्ग कर दिया। रथी हतप्रभ और निराश हो गया। वसुमती को धर्म-पुत्री बना लिया।

वसुमती को साथ लेकर अपने घर कौशाम्बी पहुँचा तो उसकी पत्नी वसुमती के प्रति सशंकित हो गई। उसने घर में क्लेश मचा दिया।

विवश होकर रथी ने वसुमती को कौशाम्बी के उस चौराहे पर लाकर खड़ा किया, जहाँ दास-दासी खरीदे-बेचे जाते थे। धनावा नाम के सेठ ने वसुमती को खरीदा और अपने घर ले आया।

धनावा धार्मिक व्यक्ति था, द्वादशव्रती श्रावक था। लेकिन उसकी पत्नी मूला शंकालु स्वभाव की थी। उसके मन में यह शंका घर कर गई कि इस रूपवती को सेठ अपनी पत्नी बना लेगा; फिर मेरी कितनी बुरी दशा होगी। किसी तरह इस लावण्यमयी युवती से पीछा छुड़ाना चाहिए। बड़ी बेताबी से वह अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करने लगी। वह अवसर भी उसे शीघ्र मिल गया।

सेठ धनावा एक बार आसपास के गाँवों में कार्यवश चला गया। जाते समय सेठानी मूला से कह गया कि तीन दिन बाद लौटूँगा।

सेठानी को मौका मिल गया। उसने सब दास-दासियों को अवकाश दे दिया, सभी अपने-अपने घर चले गये। एकान्त पाकर सेठानी मूला ने वसुमती के बाल काट दिये, वस्त्र उतार लिए, सिर्फ लज्जावसन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहने दिये। हाथों में हथकड़ी और पाँवों में बेड़ी डालकर तहखाने (भौंयरे) में बन्द किया और घर को ताला लगाकर तथा चाबी अपने साथ लेकर पीहर चली गई।

तीसरे दिन धनावा वापस आया तो घर का ताला लगा देखकर चकित हुआ। किसी तरह मूला से चाबियाँ मँगवाईं। लेकिन वसुमती (चन्दना) उसे कहीं दिखाई न दी। उच्च स्वर से पुकारने पर तलघर से चन्दना का क्षीण स्वर सुनाई पड़ा। धनावा ने उसे निकाला तो उसकी दुर्दशा देखकर रो पड़ा। तीन दिन भूखी चन्दना को एक सूप के कौने में रखकर उड़द के बाकुले खाने को दिये और हथकड़ी-बेड़ी काटने के लिए किसी लुहार को बुलाने चला गया।

तीन दिन भूखी-प्यासी कमजोर चन्दना उस सूप को लेकर वहीं देहली पर बैठ गई और मन में विचार करने लगी–'यदि कोई त्यागी-तपस्वी श्रमण-सन्त आ जायें तो उन्हें यह बाकुले देकर अपना जीवन धन्य बनाऊँ।'

इधर भगवान महावीर ने १३ बोलों का एक कठिन अभिग्रह ले लिया था–

(१) राजकन्या हो, (२) बेची गई हो, (३) मुण्डित केश हो, (४) हाथों में हथकड़ी, (५) पैरों में बेड़ी, (६) तीन दिन की भूखी, (७) सिर में घाव, (८) आँखों में आँसू, (९) दिन के दो पहर बीत चुके हों, (१०-११) एक पैर देहली के अन्दर और एक पैर बाहर हो, (१२) छाज (सूप) में, (१३) वासी उड़द के बाकुले लिए खड़ी हो तो उससे भिक्षा ग्रहण करना अन्यथा छह महीने तक उपवास (अनशन) करना।

भगवान कौशाम्बी में प्रतिदिन आहार के लिए भ्रमण करते; किन्तु उनका यह १३ बोलों का अभिग्रह पूरा न होता तो वापस लौट जाते। इस तरह ५ माह २५ दिन व्यतीत हो गये।

आखिर उनका अभिग्रह चन्दनबाला के हाथों पूर्ण हुआ। भगवान ने भिक्षा ग्रहण की। तत्काल 'अहोदानं अहोदानं' की देव-ध्वनि गूँज उठी। देवताओं ने पाँच दिव्यों की वृष्टि की। साढ़े बारह करोड़ सोनैया की वर्षा हुई। धनावा सेठ का घर-आँगन सोनैया से भर गया।

चन्दनबाला की हथकड़ियाँ-बेड़ियाँ टूट गईं। उसके केश पुनः उग आये। पहले से भी कई गुना रूप निखर उठा।

इस चमत्कार को देखकर धनावा के हर्ष का ठिकाना न रहा और मूला हतप्रभ रह गई।

नगर-निवासी खुशी से झूम उठे। भगवान के पारणे की बात जानकर सभी ने चन्दना की प्रशंसा की।

राजा शतानीक को जब चन्दनबाला का वास्तविक परिचय ज्ञात हुआ तो उन्हें अपनी राज्य-लिप्सा पर बहुत पश्चात्ताप हुआ। भविष्य में व्यर्थ ही किसी देश पर आक्रमण न करने का निर्णय कर लिया।

चन्दनबाला विरक्त-सी रहने लगी। कुछ समय बाद जब उसे ज्ञात हुआ कि भगवान महावीर को कैवल्य प्राप्त हो चुका है और वे धर्मतीर्थ की स्थापना करने वाले हैं, तो वह उनके समवसरण में पहुँची और दीक्षा अंगीकार कर ली।

चन्दनबाला भगवान महावीर की प्रथम शिष्या साध्वी और ३६,००० साध्वी-संघ की प्रमुखा थी। केवलज्ञान प्राप्त कर वह मुक्त हो गई।

● ●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

The Famous Characters Mentioned in Antakriddasha Sutra

Many famous persons find mention in *Antakriddasha Sutra*. There are all details about the seekers who lived during the times of Bhagavan Mahavir and Bhagavan Arishtanemi, ended all *karmas* through their lofty spiritual practices and got liberated. But some other famous persons find just a passing mention as reference, viz., *jaha dadhapainne* (like Dridha Pratijna) and *jaha mehe* (like Megh Kumar).

Besides this names of Sudharma Swami and Jambu Swami have been mentioned at many places. Ganadhar Gautam, Shrenik and Konik also find a mention. Only names of these individuals have been mentioned without any details about their life.

In this chapter we are trying to include brief sketches of some unique and important individuals who find just a mention in *Antakriddasha Sutra*.

1. GAUTAM GANADHAR (INDRABHUTI)

Ganadhar Indrabhuti Gautam was the first and the principal disciple of Bhagavan Mahavir.

The brief sketch of his life is as follows—

Near Rajagriha, the capital of Magadh, there was a village named Gobbar. There lived Vasubhuti, a Brahmin of Gautam *gotra* (clan). His wife was Prithvi. They had three sons—(1) Indrabhuti, (2) Agnibhuti and (3) Vayubhuti. All the three were experts of four Vedas and fourteen other subjects. They were famous *Yajniks* (conductors of yajna ceremonies).

Of the three brothers, Indrabhuti was the eldest. He was a great scholar of many subjects and an expert conductor of *yajna*. His fame had spread far and wide. Because of his fame he became a little conceited. He was famous as a ritualistic Brahmin. At the same time he also enjoyed respect as the leader of his society.

Once a rich Brahmin, of Apapa city, named Somil thought of organizing a great *yajna*. He invited many prominent scholars including Indrabhuti Gautam. To Indrabhuti he conferred the position of the presiding scholar to conduct the *yajna*. The *yajna* started.

Around the same time outside Apapa city, Gods erected a large *Samavasaran* (divine pavilion for a Tirthankar) for Tirthankar Bhagavan Mahavir. Many gods in their celestial vehicles started arriving to join the congregation.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

The organizers of the *yajna* were pleased to see the celestial vehicles as they thought that the gods have been attracted by the *yajna*. But when the divine vehicles crossed over they were very disappointed.

Indrabhuti was proud of his knowledge. He decided to go to Bhagavan Mahavir with his 500 disciples and defeat him in a debate.

A *chhadmasth* (a person having a finite cognition, not omniscience) can never acquire all knowledge. Even a great scholar has some doubt in his mind which he never reveals.

Indrabhuti also had a doubt—Soul exists or not?

Without his asking, Bhagavan Mahavir revealed his doubt and at the same time removed it also.

Indrabhuti bowed before Bhagavan's omniscience and became his disciple by getting initiated into the order. With him his 500 disciples also became *Shramans*.

Bhagavan gave him the knowledge of *Tripadi* (three limbs—genesis, destruction and permanence). The doors of his mind opened. He acquired all knowledge and became the first principle disciple, *Ganadhar*, of Bhagavan Mahavir.

Indrabhuti Gautam had tremendous curiosity. He asked numerous questions from Bhagavan Mahavir and got answers. The voluminous *Bhagavati Sutra* is evidence of this.

He observed rigorous austerities. He took food only after fasting for two days and this he did continuously. In Jain scriptures one finds epithets like *ghor* (extreme, observer of—) *tave* (austerities), *gutte* (restraints), *guttindie* (restraints of sense organs), *gutta bambhayari* (restraints of sexual activities including thoughts). He had acquired special powers like *akkheen mahanas* (by his mere touch any thing became endless or non-depletable). He contained his *tejoleshya* (fire power) and never revealed it.

He did good to his soul and at the same time indulged in promoting well being of others by working for the spread of religion. He inspired many worthy people towards religious practices. Through his guidance many worthies became omniscient and got liberated.

He had deep faith, devotion and fondness for Bhagavan Mahavir. This fondness was the only hurdle in the path of omniscience. The night Bhagavan Mahavir got his nirvana, Gautam attained omniscience.

Ganadhar Gautam was initiated at the age of 50 years. He remained a *chhadmasth* for 30 years and an omniscient for 12 years before getting liberated at the age of 92 years.

In the Jain world he is more famous by his clan name Gautam. Jain *acharyas* have given many etymological meanings to the word Gautam. An example is—*Gau* means wisdom or knowledge; *tam* means darkness; so the person who has removed the darkness within his knowledge (the darkness of ignorance) is called Gautam.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Because of his *akkheen mahanas* power, his devotees believe that under his influence obtained through chanting his name or otherwise, stocks never deplete.

These are many other such popular beliefs.

Briefly speaking the name of Gautam Swami enjoys the place of extreme faith and belief in the Jain world.

All this is evidence of the uniqueness of Gautam Swami.

In *Antakriddasha Sutra* the name of Gautam Ganadhar finds mention at many places. In context of the codes of alms-seeking of ascetics *'jaha goyam sami'* (like Gautam Swami) has been mentioned frequently. For example—In the eighth chapter of the third section when six brother ascetics (the sons of Devaki, brought up by Sulasa Gathapatni) get ready to go into Dvarka for alms-seeking it is mentioned *'jaha goyam sami'* (like Gautam Swami).

This indicates that the procedure followed by Gautam Swami for alms-seeking is considered ideal in Jain tradition.

The alms-seeking of Gautam Swami was unique. In other words he had set an ideal for Jain *Shramans* seeking alms.

The procedure he followed was like this—The day he had to break his fast he would indulge in studies during the first quarter of the day, meditation during the second quarter, and during the third quarter he would carefully inspect his dress, *Mukh-vastrika* (a strip of cloth to cover mouth) and alms-pots. He would then put the pots in a *jholi* (carrying bag made of a square piece of cloth) and go to Bhagavan Mahavir. He would pay homage and seek Bhagavan's permission to go out for alms-seeking.

He would go into the city after getting the permission. Seek alms from high, medium and low status families. Collect prescribed, pure and suitable food, bring and show it to Bhagavan Mahavir and with his permission swallow the food and water without any attention to its taste. The food went into this stomach as a snake enters its hole.

This procedure of alms seeking has become the basis of the codes of alms-seeking followed by Jain *Shramans* and continues even today. Even today a *Shraman* takes his food only after showing it to his *acharya*, guru or senior *Shramans* and seeking permission.

In the sixth section, in the chapter titled Atimuktak Kumar more details have been given about Gautam Swami. Besides his alms-seeking many other virtues like empathy, simplicity, knowledge of child psychology etc. have been mentioned there.

For his virtues, divine powers, attaining the highest spiritual status, power of endowing endless riches etc., Gautam Ganadhar is considered to be the brightest star of the Jain world.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

2. SUDHARMA SWAMI

Shri Sudharma Swami was the fifth *Ganadhar* of Bhagavan Mahavir, whereas Gautam Swami was the first.

Every ascetic cannot become *Ganadhar* because this is a special power which appears only by getting initiated by the Tirthankar himself, not before that. As soon as this power is gained all the closed gates of mind and wisdom open. Because of this only the *Ganadhars* are able to absorb all the *Shrut* knowledge and create the *Dvadashangi* just by hearing the *tripadi* from the Tirthankar.

Arya Sudharma was one such *Ganadhar*.

Arya Sudharma was born in the Kollak village. His clan was Vaishyayan. His father was Dhanamitra and mother Bhaddila. He was born in the *Uttara-Phalguni* constellation. He was a Brahmin.

He was an exceptionally talented and ritualistic Brahmin and a proficient scholar of fourteen subjects. He had 500 disciples.

He had a doubt in his mind. A being remains same as he is now, in his next incarnation or his attributes like form etc. undergo a change.

When Bhagavan Mahavir removed his doubt, he also got initiated at once along with his disciples. Immediately on initiation he acquired the *Ganadhar* power.

He was initiated into the *Shraman* organization of Bhagavan Mahavir at the age of 50 years. He remained a *chhadmasth* for 42 years. For 30 years he served Bhagavan Mahavir as a *chhadmasth* and for another 12 years he still remained so. He became an omniscient at the age of 92 years. He spent 8 years as an omniscient before getting liberated at the age of 100 years.

Thus Ganadhar Sudharma got liberated after 20 years of the nirvana of Bhagavan Mahavir.

The importance of Sudharma Swami lies in the fact that he recited (taught) *Dvadashangi* to Jambu Swami. The 11 *Angas* available today were recited by Ganadhar Sudharma. That is why they carry the subtitle—compiled by Ganadhar Sudharma.

The wealth of physical and spiritual virtues of Ganadhar Sudharma has been eloquently narrated in the scriptures.

He was about 7 feet tall. He constitution was of the best category or *Vajrarishabhanarach Samhanan* (best firmness of joints) and *Samchaturasra Samsathan* (best symmetry of the body). The body was well constituted in terms of size and shape. His body had a glow like molten gold which means that his complexion was like milk mixed with vermilion colour.

The description of his virtues has been given in para 4 of the first chapter of *Jnatadharma katha Sutra* in these words—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

There was a monk named Arya Sudharma. He belonged to a prominent family and caste. Besides being strong, handsome and humble he was also endowed with right-knowledge, right-perception and right-conduct. In spite of having all these rare virtues he was free of conceit and greed; in other words, he had the virtue termed as *Laghav* or extreme brevity of ego and desire for possessions.

He was rich in qualities like power, aura, eloquence and the resultant fame. He had conquered anger, conceit, illusion and greed, and at the same time, he had also won over the senses, sleep and afflictions. The desire to live and the fear of death, both had no place in his mind. Penance and virtues occupied most prominent place in his life. He had profound knowledge of the rules of ascetic conduct *(Karan-sattari)* and at the same time he also immaculately followed those rules (*Charan-sattari*). He was ideally endowed with virtues like *Nigraha* (self-control), *Nishchaya* (determination), *Arjava* (simplicity), *Mardava* (humility), *Laghav* (extreme brevity of ego and desire for possessions), *Kshama* (forgiveness), *Gupti* (discipline of attitude and behaviour), *Mukti* (freedom), *Vidya* (esoteric skills), Mantra, *Brahmacharya* (celibacy), *Veda* (scriptures), *Naya* (logic), *Niyam* (discipline), *Satya* (truth), *Shauch* (cleansing), *Jnana* (knowledge), *Darshan* (perception) and *Charitra* (conduct). He was benevolent as well as strict adherent of right conduct. He was extremely resolute in observation of vows, penance and celibacy. He had no attachment for his body. He had acquired the hyper-potent Tejoleshya (fire power). He had the complete knowledge of all the fourteen *Purvas* (sublime scriptures). And finally, he possessed all the four branches of knowledge.

This description reveals that Arya Sudharma was endowed with how many unique virtues.

Due to this wealth of virtues he had a grand and imposing personality. His discourse was almost mesmerizing and listeners were filled with reverence and devotion.

King Konik of Magadh expressed his reverence and devotion in these words—

Bhagavan, your discourse is well spoken, well propagated, well worded, well compiled, well thought and unparalleled.

With the help of your religious discourse you have properly propagated with the feeling of discipline the religion of discerning attitude, renouncing and detachment. No other *Shraman* or Brahmin is capable of explaining the religion so vividly. (from *Jain Dharma ke Prabhavak Acharya* by Sadhvi Sanghamitra, page 58-59)

In *Antakriddasha Sutra* the name of Sudharma Swami has been mentioned frequently. Every section and all chapters start and end with his address.

Jambu puts up a question that in that particular section or chapter what subject has been discussed by Bhagavan Mahavir. In answer Sudharma Swami details that section or chapter concluding with the sentence—Jambu, this is the text and meaning of this chapter according to Bhagavan Mahavir. This is what I have listened and so I confirm.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

This is also the evidence of authenticity of Sudharma's words.

In *Antakriddasha Sutra* at some places the epithet *'Ajja'* has been used with the name of Sudharma Swami and at others 'There'. For example—*'Ajja Suhamma'* and *'Suhamma* There'.

These epithets convey the purity of his conduct and the depth of his knowledge. They are also expressions of reverence sincere reverence for him.

Indeed, Sudharma Swami is the object of reverence and worship for every Jain seeker.

3. JAMBU SWAMI

Arya Jambu is the pivot as well as the spine around which this *Antakriddasha Sutra* revolves. The basis of the creation of this *Anga Agam* is his curiosity and non-quenchable thirst for knowledge. Had he not expressed his curiosity before his guru this *Agam* would not have been created and we would have been a deprived lot.

Jambu Swami was a cluster of light. He was ever thirsty for knowledge. He devoured and digested all the *Shrut*-knowledge, the *Dvadashangi* and the fourteen *Purvas*. He made this vast store of knowledge secure in his mind like a jewel-box.

Such talented Jambu Swami was born in an effluent merchant family of Rajagriha 16 years before the nirvana of Bhagavan Mahavir (486 B.V., 511 B.C.). The name of his father was merchant Rishabhdatta and that of his mother was Dharini. He was given the name Jambu Kumar because his mother saw a *Jambu*-tree in her dream or because of the worship of the ruling deity of Jambu Dveep by observing 108 *Ayambil Tap* (a austere practice where food prepared by a single type of flour or grains is eaten only once a day). By the time he reached the age of 16 years he had acquired all manly skills and knowledge. When the parents found their son mature in all respects they finalized his marriage with eight suitable merchant-daughters.

Around that time Ganadhar Sudharma Swami came to Rajagriha with his 500 disciples. When sixteen year old Jambu listened to his sermon he was filled with a feeling of detachment. On returning home he informed his parents about his decision to get initiated into the *Shraman* order. The parents became sad. The tried to dissuade Jambu in vain. Finally they said—

"We have promised eight merchants for marrying their daughters to you. Just to keep hour honour, at least marry those girls."

Jambu Kumar said—

"I am prepared to save your honour but you should inform those merchants in advance about my decision to get initiated. If the girls and parents are ready for marriage in spite of that, I have no objection. But I am sure to get initiated the day after the marriage."

The parents, specially the mother, thought—'Who has been able to breakout of the trap of a woman's love, once caught? Jambu will also be entrapped.'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

The parents of the girls were informed about the intention of Jambu to get initiated. They all thought as Jambu's mother did. At an auspicious time Jambu was married to eight girls. As dowry he got nine hundred and ninety million gold coins. The house of the merchant was filled with this dowry.

During that time a fierce brigand named Prabhav roamed in the hills near Rajagriha. He had 500 bandits in his group. Prabhav had two special skills—(1) *Avasvapini*, through which he could people to sleep, and (2) *Talodghatini*, through which he could open any lock. Equipped with these two skills he successfully raided citizens of Rajagriha and was never caught.

When Prabhav came to know that Jambu had got nine hundred and ninety million gold coins in dowry, his greed took over him. With his 500 companions he came to merchant Rishabhdatta's house. He used both his skills and his band collected all the wealth in bundles without any interference.

Suddenly a miraculous thing happened. The 500 bandits were immobilized, they found that their feet were stuck to the ground they were standing on. Worried by this, Prabhav looked around. He saw a dimly lighted room and heard weak sound of conversation. He stealthily approached the room and put his ears to the gate.

It was the first night of marriage. The newly wedded wives of Jambu were trying to push him towards mundane life with numerous arguments and examples. And Jambu was also refuting with counter examples and establishing the importance of discipline.

When Prabhav carefully listened to this conversation he started despising the life he led. His mind was filled with feelings of detachment. His 500 companions also underwent the same change.

Next morning 528 individuals got initiated as ascetics by Sudharma Swami and commenced their disciplined ascetic life with austerities to gain purity of soul. Jambu was the leader of the group—Prabhav, his 500 bandits, his parents, the eight wives and their parents.

Jambu Swami got initiated at the age of 16 years. He remained a normal ascetic devoting all his time to studies, meditation, austerities and discipline. He acquired omniscience at the age of 36, lived as an omniscient for 44 years and got liberated at the age of 80 years.

He was the last omniscient of the current regressive cycle of time.

After his liberation ten things became extinct—(1) *Kewal-jnana*, (2) *Manahparyav-jnana*, (3) *Paramavadhi-jnana*, (4) *Pulak Labdhi*, (5) *Aharak Sharir*, (6) *Kshayik Samyaktva*, (7) *Jinakalp*, (8) *Parihar Vishuddha Charitra*, (9) *Sukshma Samparaya Charitra*, and (10) *Yathakhyat Charitra*.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Earlier Births

In narrative works like *Jambusami Charitra* five earlier incarnations of Sudharma Swami and Jambu Swami have been described highlighting their mutual relationship.

The first incarnation mentioned (fifth from that as Jambu), Sudharma was born as Bhavadatt and Jambu as Bhavadev. They were brothers. Bhavadatt was elder and during that birth also he taught religion to Bhavadev.

This norm of giving sermon continued during later births, when finally they were born as Sudharma and Jambu. The close relationship was terminated only when they both got liberated.

Because of these ties from earlier births Jambu Swami had unwavering faith in Sudharma Swami. To Sudharma also Jambu was the most favourite disciple who always accompanied him.

In Jain literature the story of the life of Jambu Swami is one of the most interesting and inspiring stories. His sacrifice is worth emulating. Renouncing immense wealth and eight extremely beautiful and devoted wives provides great inspiration to masses.

As the inspiring cause of the creation of *Dvadashang* his name has become immortal in the Jain tradition. *Antakriddasha Sutra* is also a fruit of his curiosity.

The name and fame of Jambu Kumar has existed for ages and will remain so till ages.

4. MEGH KUMAR

The name of Megh Kumar finds mention mainly in the eighth para of the first chapter, when Gautam Kumar goes to pay homage to Bhagavan Arishtanemi. In order to provide details about this activity it has been indicated—*"eva jaha Mehe"* (just like Megh). In other words—Gautam Kumar set out to pay homage to Bhagavan Arishtanemi just like Megh Kumar had set out to pay homage to Bhagavan Mahavir. After beholding him and paying homage he listened the sermon. Detailed story of Megh Kumar is available in *Jnata Sutra* (1/1).

He was the son of king Shrenik of Magadh. His mother was Dharini. Dharini had a dohad (pregnancy-desire) that she ride an elephant with her husband and go around enjoying nature in cloudy weather like during the monsoon season.

Abhaya Kumar, king Shrenik's eldest son, got this desire fulfilled with the help of a friendly god.

The boy was born and based on the dohad he was named Megh (cloud) Kumar. As he grew he acquired all manly skills and knowledge and was married to eight princesses.

Once Bhagavan Mahavir came with his disciples to Rajagriha and stayed at Gunasheel garden. Megh Kumar went to behold and pay homage to Bhagavan Mahavir and to listen

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

to his sermon. After hearing the discourse he was enlightened and resolved to get initiated as a *Shraman*.

He took permission from his parents and got initiated.

It was the first night after becoming an ascetic. According to the ascetic protocol Megh Kumar was allotted a place to sleep near the gate. Due to the frequent movement of other ascetics Megh Kumar got kicked inadvertently throughout the night. He considered it to be an insult and could not sleep a wink throughout the night. This irritation made him decide to abandon the acetic life.

In the morning when he went to Bhagavan Mahavir to return his ascetic equipment, *Prabhu* told him in details about his two earlier births. This made him acquire *Jati-smaran-jnana* (the knowledge about earlier births).

He was enlightened once again and was filled with a desire to serve ascetics. He indulged in lofty austerities and spiritual practices and after death reincarnated as a god in the *Sarvarthasiddha* celestial vehicle.

This is the complete story of ascetic Megh.

But in this *Anga Agam*, *Antakriddasha Sutra* (1/18) wherever his name has been mentioned it is with reference his paying homage to Bhagavan Mahavir. That description is as follows—

Gautam Kumar (like Megh Kumar) was pleased to get this information from the attendant. He called his staff and said—"Beloved of gods ! Prepare a four horse chariot and bring it here immediately." The servants executed the order without delay.

Gautam Kumar (like Megh Kumar) got ready after his bath, propitious rituals and putting on his royal dress and ornaments. After adorning himself with white garlands of *Korant* flowers he ascended the chariot and with regalia and guards passed through the town and arrived at the Gunasheel temple. There he saw the miraculous things like canopy over a canopy, flag over a flag, and ascending and descending of a variety of gods including *Vidyadhars, Charans* and *Jambhriks* around Shraman Bhagavan Mahavir. He got down from his chariot and made five resolutions before proceeding to greet the Bhagavan. These resolutions were—

(1) not to accept anything with any trace of life,

(2) only to accept a thing without any trace of life,

(3) to wear a jointless upper garment,

(4) to join palms the moment the lord is seen, and

(5) to focus thoughts over him.

When he reached near Shraman Bhagavan Mahavir, Megh Kumar circum-ambulated him three times in anti-clockwise direction and then bowed in reverence. Megh Kumar took an appropriate seat in front of the Bhagavan and joining both palms started worshiping him with a desire to listen to his preaching.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

In *Antakriddasha Sutra 'eva jaha mehe vi'* means only this description. It conveys that Gautam Kumar also came out of his palace, crossed the city of Dvarka, came near Bhagavan Arishtanemi and paid homage to him.

5. ABHAYA KUMAR

Abhaya Kumar was the first son of king Shrenik of Magadh. The name of his mother was Nanda.

Abhaya Kumar was very talented, wise like Vrihaspati (the guru of gods) and an able administrator. He was the right hand man of king Shrenik and the prime minister of Magadh. It was his wisdom that made Magadh a well run and organized empire.

He was the most favoured son of king Shrenik. It was through his plan that Shrenik married a beautiful woman like Chelna, a devout follower of Jain religion.

Abhaya Kumar solved all the problems of the state as well as the royal palace. It was he who arranged to fulfill the dohads of queen Chelna as well as queen Dharini.

In para 18, chapter 8, section 3 of *Antakriddasha Sutra* his name is mentioned as—*'jaha Abhao'*. This is with reference to the fulfilling of the *dohad* of queen Dharini.

When queen Dharini had a *dohad* of untimely enjoying cloudy weather and rains, he went to the *paushadhshala* (place for meditation), observed a three day fast to evoke a friendly god and with the help of that god fulfilled the *dohad*.

In the same way, according to *Antakriddasha Sutra*, Shrikrishna Vaasudev, went to the *paushadhshala* (place for meditation), observed a three day fast to evoke a Harinaigameshi god and with the help of that god mother Devaki got a son, Gajasukumal.

As both the incidents are same the author of *Antakriddasha Sutra* has indicated the name of Abhaya Kumar.

Abhaya Kumar finally renounced the world and got initiated by Bhagavan Mahavir. He remained an ascetic for five years during which he observed various austerities and after death reincarnated as a god in the *Anuttar* class of celestial vehicle named *Vijaya*.

6. ATIMUKTA KUMAR SHRAMAN

(The Younger Brother of Kamsa and Son of Ugrasen)

Atimukta Kumar finds mention in para 10 of the 3rd section of *Antakriddasha Sutra*.

The context is that when six ascetics go to Devaki's palace three times in pairs, finding them to be of same age and appearance she gets confused. The ascetics inform her that they are six brothers and are sons of Sulasa, the wife of Naag Gathapati of Bhaddilpur.

This information adds to her confusion. She remembers an incident of her childhood—"When I was in Polaspur Atimukta Kumar Shraman had predicted—O Devaki, you will give birth to eight sons who will be as handsome as Nalkuber and will be almost same in complexion, appearance and age. In this Bharat area no other mother will give birth to such sons."

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Ascetic Atimukta Kumar Shraman, who thus predicted about Devaki was the son of king Ugrasen and younger brother of Kamsa.

When Kamsa ascended the throne of Mathura, with the help of Vasudev, his father Ugrasen ruled over the kingdom. Inspired by the animosity of earlier birth Kamsa imprisoned his own father and took over the reigns of Mathura. Cruel attitude and lascivious activities of Kamsa poisoned the atmosphere of the palace. Wine and meat and other non-Arya activities became the order of the day.

Atimukta Kumar, the younger brother of Kamsa had spiritual inclinations since his early age. He was a devout religionist. He became averse to the evil atmosphere of the palace. He got initiated by a Jain *Shraman* into the ascetic order and commenced an itinerant life purifying his soul through indulgence in studies, meditation, austerities and discipline.

Due to his rigorous austerities he acquired many special powers.

This is the Atimukta Kumar Shraman who finds mention in the third section of *Antakriddasha Sutra*.

Another incident from his life is available in *Trishashti Shalaka Purush Charitra*. That too is related to Devaki's life.

Kamsa was celebrating the marriage of Vasudev and Devaki with great fan fare. Every individual celebrates according to his interest and likings. Kamsa and his wife Jivayasha both consumed alcohol and meat, therefore the palace abounded in non-vegetarian dishes and wines during the celebrations.

At that time ascetic *Atimukta Kumar* Shraman arrived at the palace to seek alms. When he saw the evil atmosphere of the palace turned to go back. Intoxicated Jivayasha saw him and blocked his way. She said—

"O *Devar* (husband's younger brother), on this occasion you should also drink, get intoxicated and enjoy yourself playing around with me."

The ascetic tried hard to persuade her not to block his way and allow him to go. But Jivayasha did not shift from the door. At last the ascetic inadvertently uttered—

"Jivayasha ! The seventh son of the same Devaki, in whose marriage celebration you got yourself inebriated, will slay your husband."

These words of the ascetic brought Jivayasha to her senses. She left the gate and the ascetic left the evil environs of the palace.

Consequently Kamsa craftily placed his benefactor, Vasudev and Devaki into confinement.

This Atimukta Kumar Shraman was a contemporary of Bhagavan Arishtanemi.

7. KING SHRENIK

King Shrenik occupies a very important position in Jain literature. He was the sovereign of the great Magadh empire and a contemporary of Bhagavan Mahavir. He had great faith in Bhagavan Mahavir and was his devout follower. *Acharyas* have compiled

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

various incidents from his life and wrote his biography. Many stray works are also available about him.

The 23 female ascetics, the hair raising descriptions of whose austerities are mentioned in seventh and eighth sections of *Antakriddasha Sutra* were all queens of this same king Shrenik.

Brief details about king Shrenik are as follows—

King Prasenjit of Kushagrapur had one hundred sons of whom Shrenik was the eldest and ablest.

King Prasenjit had married a *Bhil* (an aborigine) girl on the condition that only her son will inherit his kingdom. The *Bhil* girl gave birth to a son who was named Chilati Kumar.

The king was bound by his word to give the throne to Chilati Kumar. He tested the wisdom of all the princes. Although Shrenik passed all the tests he was exiled.

All this was done to give the throne to Chilati Kumar. And as soon as Shrenik left he was crowned.

Leaving the city, Shrenik stayed in a Buddhist shrine. The Buddhist *acharya* welcomed him cordially and offered him food. Shrenik was impressed by this warmth of the *acharya*.

He proceeded ahead and arrived at Venatat city. Due to his meritorious *karmas* and wisdom a rich merchant married his wise and educated daughter Nanda to Shrenik. Thus Nanda was Shrenik's first wife and she gave birth to a talented son like Abhaya Kumar.

Under the bad rule of Chilati Kumar the public suffered gravely. The administration was loose and the economic condition miserable. This told upon the health of king Prasenjit who fell ill. In this situation, on the call of the ministers, Shrenik had to come to his ailing father, leaving his pregnant wife at Venatat with her father.

Shrenik took over the reigns of the empire and made everyone happy with his policies and governance besides enriching the kingdom. His fame spread far and near. He married 500 princesses. Dharini was his principle queen.

Some years later with the help of Abhayakumar's wisdom king Shrenik also met his first wife Nanda.

King Shrenik had numerous sons including Abhaya Kumar, Konik, Megh Kumar, Kaal Kumar, Halla Kumar, Vihalla Kumar and others.

The warmth shown by the Buddhist *acharya* during Shrenik's exile inspired him to accept Buddhist faith. When he came in contact with Anathi Muni and was inspired by queen Chelna he acquired the knowledge of true fundamentals. He became a devout follower of Bhagavan Mahavir. He had strong faith in Bhagavan Mahavir and it lead to his becoming *samyaktvi* (Samyaktva is a specific state of righteousness where right perception and right knowledge start translating into right conduct. Although he could

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

not become an ascetic but he extended all inspiration and help to those who desired to get initiated. This tremendous contribution towards the spread of religion resulted in his acquiring *Tirthankar naam-gotra karma.* He is destined to become the first Tirthankar, Padma, during the coming cycle of time.

King Shrenik died in extremely adverse circumstances. His and Chelna's son, Konik, conspired to arrest him and put him in a cage, where he swallowed poison hidden in his ring and died.

According to scriptural mentions king Shrenik was born in 614 B.C., 15 years before the birth of Bhagavan Mahavir and died in 552 B.C., also 15 years before Bhagavan Mahavir's nirvana.

8. QUEEN CHELNA

Chelna was the principal queen of king Shrenik, who was madly in love with her. It was Chelna who inspired king Shrenik to accept Jain religion and he became a devotee of Bhagavan Mahavir.

Chelna was the seventh and the youngest daughter of king Chetak of Vaishali. She had six elder sisters, of which five were married to famous kings of that period and the sixth, Sujyeshtha became a Shramani. The seventh daughter Chelna was married to king Shrenik.

This marriage was performed in unusual and sensational circumstances.

Attracted by the beauty of Sujyeshtha (till that time she had not got initiated and was unmarried), king Shrenik sent his emissary to king Chetak of Vaishali and sought the hand of Sujyeshtha in marriage.

But king Chetak refused point blank. The reason given was that king Shrenik belonged to a family of lower status. Another reason might be that king Chetak was a staunch Jain whereas, till that time king Shrenik was a Buddhist. It is possible that king Chetak did not want to marry his daughter to king Shrenik for this reason.

After getting this refusal from king Chetak, king Shrenik followed the advise of crafty Abhaya Kumar. From the border of the Magadh empire a long tunnel was dug up to Vaishali. With the help of Abhaya Kumar's intrigues both Sujyeshtha and Chelna got attracted to king Shrenik and were ready to elope with him.

On the appointed day and time both the sisters, Sujyeshtha and Chelna, arrived at the gate of the tunnel. There was still some time left when king Shrenik's chariot was to arrive, when Sujyeshtha realized that she had left her box of jewellery in her room. She told Chelna—"She had forgotten to bring her box of jewellery and shall fetch it soon. In the mean time if Magadh emperor comes he should wait for her." Saying thus she left.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

When Shrenik's chariot arrived at the gate, Chelna at once boarded it. King Shrenik was in a hurry. The driver moved the chariot. Chelna sat in a corner bashfully. When they crossed the tunnel she revealed that she was Chelna and not Sujyeshtha.

King Shrenik accepted her fondly as his queen.

At the other end, when Sujyeshtha arrived at the gate of the tunnel she found that Chelna had lest. The game was over. She was disappointed and got initiated as a *Shramani*. She joined the religious organization of Bhagavan Mahavir and devoted her time to spiritual practices.

Chelna was a staunch Jain and devout follower of Bhagavan Mahavir and king Shrenik was a follower of Buddhist gurus. With her ability and wisdom Chelna removed the religious differences and made Shrenik a follower of Jainism and a devout disciple of Bhagavan Mahavir.

Although king Shrenik loved queen Chelna more than his own life, there came an occasion when a spark of doubt about her fidelity erupted in his mind.

The incident was as follows—

Once Rajagriha was hit by an intense cold wave. Bhagavan Mahavir arrived there. King Shrenik and queen Chelna drove in a chariot to pay homage to Bhagavan. On the way back they saw that a *Jinakalpi* ascetic was standing in *kayotsarg* (meditation devoid of any awareness of the body) on the bank of a pond. The king and the queen bowed before him and praising his lofty practices in sentimental terms they returned to their palace.

The intense cold was oppressive. The king and the queen were lying in their beds wrapped in gem imbedded blankets. The windows and balconies of the palace were covered with woolen curtains. The heat of the lamps was also adding some warmth to the room. But still the cold was so intense that any part of the body left uncovered became stiff with cold and lost any sensation.

One hand of queen Chelna got exposed and it became stiff. She some how drew it inside the blanket and uttered—

"In this temperature what will be his condition?"

King Shrenik was awake. The moment these words entered his ears the snake of doubt raised its hood in his mind. He was filled with a nagging doubt about Chelna's fidelity. He turned in his bed with unease and tension throughout the night.

In the morning he went to the *samavasaran* of Bhagavan Mahavir. After paying homage he asked—

"Bhagavan ! My queen Chelna is chaste or infidel?"

Bhagavan Mahavir replied—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"Shrenik, all the seven daughters of king Chetak are *satis* (chaste and faithful women). Your queen Chelna is also a *sati*. To doubt her chastity is a figment of imagination."

In order to remove Shrenik's doubt Bhagavan Mahavir added—

"Shrenik ! When you and Chelna were returning from the *samavasaran* you saw a *Jinakalpi Shraman* standing in meditation on the bank of a pond. Chelna's words—'In this temperature what will be his condition?' were directed at him. You misunderstood this statement and thought Chelna to be infidel. In fact Chelna is a devoted *Shramanopasika* (Jain) and a *sati*."

These words of Bhagavan Mahavir disillusioned Shrenik and the glow of the chastity of Chelna got enhanced.

The name of Chelna finds mention in the second chapter of the sixth section of *Antakriddasha Sutra*.

Like king Shrenik, queen Chelna also has an important place in Jain literature.

9. MOTHER DEVANANDA

The name of Devananda has been mentioned in the eighth chapter of the third section (Gajasukumal) of *Antakriddasha Sutra*. When Devaki goes to remove her doubt about the mother of six ascetics of the same appearance and age, it is mentioned that—"*jaha Devanandae.*"—just like Devananda went to behold Bhagavan Mahavir, Devaki went to behold Bhagavan Arishtanemi.

Devananda was a *Brahmini* (a Brahmin woman). The name of her husband was Rishabhadatta. They lived in Brahmin Kundagram.

Completing his life-span in the tenth *Pranat Swarg* (a dimension of gods) the being that was to be Bhagavan Mahavir descended into the womb of Devananda Brahmini. She saw the fourteen great dreams that the mothers of Tirthankars see. Her joy saw no bounds.

At the same time queen Trishla conceived a female child.

Shakrendra (king of gods) through his *Avadhi-jnana* saw that the being to be Bhagavan Mahavir has descended into the womb of Devananda. He realized that as a rule a Tirthankar is born in the *kshatriya* clan.

He at once ordered Harinaigameshi god to transfer the embryo and said—"Transfer the embryo in Devananda's into Trishla's and that in Trishla's womb to Devananda's womb.

Harinaigameshi god did accordingly and exchanged the embryos of Trishla and Devananda.

This activity was performed on the 82nd night after the night of conception. Bhagavan Mahavir remained in the womb of Devananda for 82 days. In this context Devananda was the mother of Bhagavan Mahavir.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

After this embryo transplant Devananda saw the dreams in the reverse sequence (as we see a rewinding video tape). She became sad. And the same night when Trishla saw the dreams she was exhilarated.

However, this incident of embryo exchange remained a secret. No one knew about this.

After attaining *Keval-jnana*, Bhagavan Mahavir once came to Brahmankundagram. Brahmin Rishabhadatta and Brahmini Devananda were filled with the desire to behold him.

They called a servant. Got ready after taking bath and dressing richly; boarded a chariot; made five resolutions from a distance; went neither too near nor too far from him and went around him and sat down with devotion after paying him homage.

Devananda looked at Bhagavan Mahavir without blinking. Every pore of her body exhilarated with joy. The feeling of motherly affection made her breasts ooze a stream of milk.

Seeing this condition of Devananda, Gautam Swami asked Bhagavan—

"Prabhu ! Why this Devananda Brahmini is in this strange condition?"

Bhagavan Mahavir then revealed the secret and said—

"Gautam ! Thus Devananda Brahmini is my mother. I have spent 82 days and nights in her womb. Her motherly affection has brought her to this condition."

Knowing about this secret, the joy of Devananda and Rishabhdatta saw no bounds. They both got initiated by Bhagavan Mahavir and got liberated after doing lofty practices of austerities and discipline.

10. MAHABAL KUMAR

The name of Mahabal Kumar appears in the 17th para of the first chapter of the first section (Gautam Kumar) of *Antakriddasha Sutra*. King Andhakavrishni's wife queen Dharini dreams of a lion when she is pregnant. Describing this it is added—

Seeing of the dream, birth of a son, his childhood, education, youth, marriage, beautiful mansion, pleasures etc. should be taken exactly same as those of Mahabal Kumar.

The king of Hastinapur city was Bal. His wife was named Prabhavati.

She was sleeping in her comfortable bed when she saw a white lion in her dream. She woke up and told about the auspicious dream to her husband.

King Bal called dream diviners and asked them the meaning of the dream. The dream diviners described 72 dreams of different types and told the meaning of queens dream—the dream augurs benefits in terms of wealth, pleasures, kingdom and son.

The king dismissed the dream diviners after amply rewarding them.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

In due course the queen gave birth to a son who was beautiful, delicate and perfect in all respects. With due ceremonies king Bal named him Mahabal.

Five nursemaids were appointed to take care of the child.

Entertaining everyone with his playful activities prince Mahabal continued to grow. At proper age he started his studies and acquired knowledge and skills from his teacher. He became a youth. His mother married him to eight princesses. His parents gave him (to his eight brides) eighty million gold coins, eighty million silver coins and numerous other things as pritidan. He shifted to his newly built mansion and started enjoying life with his eight wives.

Ascetic Dharmaghosh, a disciple of a disciple of Bhagavan Vimalnath, arrived in Hastinapur city. When he heard his sermon, Mahabal Kumar was filled with a feeling of detachment. He expressed his desire before his parents. The parents tried to dissuade him in vain and finally said—

"We want to see you as a king just for a day."

Mahabal Kumar gave his silent consent. He was crowned with grand celebrations. As soon as he ascended the throne he again expressed his desire to get initiated.

Finally he formally got initiated by ascetic Dharmaghosh following the prescribed procedure. He studied 14 *purvas* including *samayik*. He lead the ascetic life indulging in various austerities including fasting for one, two and three days. At last he took the ultimate vow and died to reincarnate as a god in Brahmalok kalp with a life-span of 10 *sagaropam*.

Completing his life-span as a god he reincarnated as merchant Sudarshan in Vanijyagram during the period of influence of Bhagavan Mahavir.

Sudarshan merchant was a *shramanopasak* and had knowledge of beings and non-beings. He got initiated at the feet of Bhagavan Mahavir, studied 14 *purvas* and after being an ascetic for 12 years got liberated.

(*Bhagavati Sutra 11*)

11. ARYA SKANDAK (KHANDHAK)

In *Antakriddasha Sutra* the name of ascetic Skandak appears thrice—(1) Para 9 of first chapter of the first section where the practice of 12 *Bhikshu Pratima* done by Gautam Kumar is described. (2) In the first para of the sixth section where the *Gunasamvatsar Tap* of Mankai (gaathapati) is mentioned. (3) Para 14 of the eighth section where *sadhvi* (female ascetic) Mahasenkrishna after pondering over religion and evoking religious sentiments decides to take the ultimate vow.

These three references indicate that Arya Skandak had observed with due procedure all these three austerities of 12 *Bhikshu Pratima*, *Gunasamvatsar Tap* and ultimate vow. That is why his example has been quoted at three places in *Antakriddasha Sutra*.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

The story of life of Skandak is as follows—

To the north-east of Rajagriha city was Kritangala city. Very near to that was a town named Shravasti. There lived *Parivrajak* Skandak, a disciple of Katyayan *Parivrajak*. He was a scholar of Vedas, *Vedangas*, history, ethics and other philosophies.

In Shravasti also lived Pingal, a *Nirgranth Shravak* (Jain) who was an expert of *Nirgranth* scriptures.

Once Pingal and Skandak met. Pingal asked Skandak—

"Skandak ! Is this *Lok* (universe) with an end or it is endless?"

"Being is with an end or endless?"

"State of liberation is with an end or endless?"

"Status of the liberated soul, *Siddha*, is with an end or endless?"

"With what type of death a being increases or reduces the worldly life?"

Hearing these ambiguous questions Skandak was puzzled. It was impossible to provide conclusive answers. He was lost into his thoughts and could not utter a word. His mind was in a turmoil and he became doubtful about his great knowledge.

Just then he heard from people that Bhagavan Mahavir has come to the nearby town of Kritangala. To get answers of these questions form Bhagavan Mahavir he proceeded towards that town.

Before he reached their Bhagavan Mahavir said to Gautam Ganadhar—

"Gautam ! Today you will meet an old friend."

Gautam asked—

"Who ? Bhagavan !"

"Skandak *Parivrajak*."

"Why is he coming here?"

"Pingala *Shravak* had asked him questions about the end and endlessness of the universe and other things. He could not provide any answer. He is coming to me to seek answers."

Before Bhagavan Mahavir could add more Gautam saw Skandak approaching. Gautam stepped ahead to welcome him. Skandak was very happy.

Later, after paying due courtesies he placed his questions before Bhagavan. In his *Syadvad* style Bhagavan provided all the answers.

Getting answers to all his questions, Skandak was highly impressed. He got initiated by Bhagavan. He sincerely observed 12 *Bhikshu Pratimas* and the *Gunaratnasamvatsar* tap. He resolutely lead an austere ascetic life for 12 years. During the last days of his life

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

he went to Vipulachal hill and left his mundane body after observing the ultimate vow. He reincarnated as a god in the *Achyut kalp*.

12. CHANDANBALA

In every chapter of 7th and 8th sections of *Antakriddasha Sutra* there are mentions of Arya Chandanbala. She was the head of the organization of 36,000 female ascetics of Bhagavan Mahavir's order.

The pre-initiation period of Chandanbala's life is a sensational and poignant story of grave afflictions. The name her parent gave to her was Vasumati. She got the name Chandanbala because of her disposition was as cool as sandalwood (*chandan*). Sandalwood is always soothing irrespective of its being cut, chiseled or ground. In the same way, in face of grave afflictions, sorrows and insults Chandanbala never became angry, neither did she blame anyone. She always remained cool like *chandan*. That is why the name inspired by her virtues became popular in Jain tradition.

Vasumati was the daughter of king Dadhivahan and queen Dharini of Champa. By nature she was very sober and thoughtful.

That was a period when territorial ambitions were at its peak. Kings attacked each other for no rhyme or reason.

Shatanik, the king of Kaushambi, attacked Champa. King Dadhivahan eloped. The soldiers of Kaushambi were free to raid the city of Champa.

A charioteer kidnapped queen Dharini and Vasumati. Taking them in his chariot he came into a jungle and stopped at a forlorn place. When he approached queen Dharini with his pervert desires, the queen, in order to save her honour, committed suicide by pulling out her tongue. The charioteer was dumb struck and disappointed. He took Vasumati as his foster daughter.

With Vasumati he returned home to Kaushambi. When his wife saw Vasumati she was filled with jealousy and doubt. She started quarrels and altercations in the household.

Forced to take some action, the charioteer brought Vasumati to the crossing in Kaushambi where slaves were auctioned. Merchant Dhanava bought Vasumati and brought her home.

Dhanava was a religious man and observer of twelve *shravak* vows. But his wife Mula was of suspicious nature. She was filled with the doubt that the merchant will make the beautiful girl his wife and consequently her own condition will become miserable. She decided to somehow get rid of the girl. She eagerly awaited an opportunity and soon she got one.

Merchant Dhanava went to nearby villages on some work. He told Mula that he will return after three days.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Mula got the opportunity. She gave leave to all the household servants and sent them away. When they were alone, Mula shaved Vasumati's head, exchanged her good dress with tattered cloths, shackled her hands and feet, put her into a cellar, locked the house and went to her parents place with the keys.

On the third day when Dhanava returned home he was surprised to find the house locked. Somehow he got the keys from Mula. When he did not find Vasumati he shouted her name. At this he heard Chandana's weak voice. Dhanva brought her out from the cellar. Seeing her pitiable condition Dhanava started weeping. He took a little dried pulse-bran, meant for cow, in a basket and gave it to Chandana to eat. He himself went out to fetch a blacksmith to cut the shackles.

Hungry and thirsty for last three days, Chandan sat on the threshold of the house with the basket of pulse balls and thought, "If some detached ascetic or a sage or *Shraman* comes I will give this pulse-bran as alms and feel honoured."

Around that time Bhagavan Mahavir had made an almost impossible resolution—

I will accept alms only from—(1) a princess, (2) who has been sold and (3) is with a shaven head, (4) who is handcuffed and (5) shackled, (6) is hungry for three days, (7) has wounds on the head and (8) tears in her eyes, (9) it is past two quarters of the day, (10, 11) one of her legs is outside the threshold and the other is inside, (12) she has a basket in her hands with, (13) stale pulse-bran in it—otherwise I will observe fast for six months.

Bhagavan moved around Kaushambi to seek alms but as his 13 point resolution was not met he returned without alms every day. 5 months and 25 days passed.

At last the conditions were fulfilled by Chandanbala and Bhagavan accepted alms. Sky was filled with divine applaud—Great alms giving. . . . . The gods showered five divine things and 125 million gold coins. The courtyard of Dhanava merchant was filled with gold coins.

The shackles of Chandanbala were broken and her hair grew again. Her beauty enhanced manifold.

Seeing this miracle Dhanava merchant was filled with joy and Mula was dumbfounded.

The townspeople danced with joy. Knowing about Bhagavan breaking his fast, everyone praised Chandanbala.

When king Shatanik got to know the real identity of Chandanbala he repented for his territorial ambitions. He resolved not to attack any kingdom in future.

Chandanbala lead a austere and detached life. Later, when she heard that Bhagavan Mahavir has acquired omniscience and was going to establish the religious ford, she went to his Samavasaran and got initiated.

She was the first female ascetic disciple of Bhagavan Mahavir and the head of the organization of 36,000 female ascetics. She acquired *Keval-jnana* and got liberated.

●●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्याय १०

विविध प्रसंग

अन्तकृद्दशासूत्र में विविध विषयों का वर्णन भी हुआ है तो अनेक विषयों का प्रसंगानुसार संकेत भी किया गया है। उदाहरणार्थ स्वप्न-दर्शन आदि के लिए महाबल कुमार का **'जाव महब्बले'** शब्दों से संकेत किया गया है तो नगर वर्णन के लिए **'जाव उवाइये'** शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

इन विविध प्रसंगों का स्पष्ट वर्णन आवश्यक है। यहाँ हम कुछ विशिष्ट प्रसंगों को स्पष्ट रूप से देने/वर्णित करने का प्रयास कर रहे हैं।

१. स्वप्न-वर्णन

स्वप्न अथवा dreams ऐसे चलचित्र के समान मानसिक (mental) और चैतसिक तथा अवचेतन मन (subconscious mind) के विकार तथा कल्पनाएँ हैं, जिन्हें सभी संज्ञी पंचेन्द्रिय प्राणी–मनुष्य और तिर्यंच देखते हैं।

स्वप्नों का संसार भी बहुत ही विचित्र और अनोखा है। ऐसे-ऐसे दृश्य अर्ध-निद्रित अवस्था में दिखाई देते हैं, जिनकी कल्पना भी जागृत अवस्था में नहीं की जा सकती।

स्वप्नावस्था में कभी मानव स्वयं को पर्वत-शिखर पर देखता है तो दूसरे ही क्षण पर्वत की तलहटी में। कभी पक्षियों के समान व्योम विहार करता है तो कभी सागर की उत्ताल तरंगों में मछलियों के समान तैरता हुआ उमंगों से भर जाता है। कभी राजसिंहासन पर तो कभी स्वयं को भिक्षुक बना देखता है। स्वप्न-संसार में राजा से रंक और रंक से राजा बन जाना क्षणभर का खेल है।

स्वप्न एक ऐसा कल्पना लोक है, जहाँ स्वप्नद्रष्टा स्वच्छन्द विचरण करता है।

स्वप्न कब दिखाई देते हैं ?

सामान्य धारणा यह है कि नींद में स्वप्न दिखाई देते हैं। जब व्यक्ति निद्राधीन होता है तब वह स्वप्न देखता है किन्तु यह धारणा सत्य नहीं है।

जब व्यक्ति विश्राम करता है, अपनी थकान मिटाने के लिए शय्या पर लेटता है तब उसे नींद आती है। नींद में शरीर निश्चल और निश्चेष्ट हो जाता है, थकान दूर करने का प्रयास करता है। मस्तिष्क की भी लगभग यही दशा होती है। लेकिन अवचेतन मन विश्राम नहीं करता, चंचल रहता है। मस्तिष्क के सुसुप्ति दशा में जाने पर वह बंधनमुक्त होकर सक्रिय हो जाता है।

तब ऐसी स्थिति आती है कि व्यक्ति अर्ध-निद्रित दशा में आ जाता है–यानी न वह पूर्ण रूप से जागृत होता है और न घोर निद्रा में निमग्न ही रहता है। इस स्थिति में व्यक्ति स्वप्न देखता है।

यह अर्ध-निद्रित–अर्ध-जागृत दशा रात्रि के प्रथम प्रहर में भी हो सकती है, दूसरे, तीसरे और चौथे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रहर में भी। और यदि व्यक्ति दिन में सो जाये तो वह दिन के समय भी स्वप्न देख सकता है। कभी-कभी तो बैठे-बैठे झपकियाँ लेते हुए भी स्वप्न-दर्शन कर लेता है।

किन्तु सामान्यतया रात्रि का समय ही निद्रा का समय माना जाता है, इसलिए स्वप्नशास्त्र में रात्रि के प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ प्रहर में दिखाई देने वाले स्वप्नों के प्रकार, शुभाशुभ फल आदि का विवेचन किया गया है।

अन्तकृद्दशासूत्र में देवकी आदि जितनी भी रानियों और माताओं के स्वप्न-दर्शन का उल्लेख हुआ है, वे सभी रात्रि के चतुर्थ प्रहर में ही स्वप्न देखती हैं। उन्हें उत्तम प्रकार के स्वप्न आते हैं।

स्वप्नों के प्रकार

व्यक्ति की कल्पनाओं, इच्छाओं, भावना और कामनाओं के असंख्य प्रकार होते हैं। उसी तरह स्वप्नों के भी असंख्य भेद होते हैं। स्वप्नों के प्रकारों की गणना करना भी कल्पना से परे है।

फिर भी स्वप्नशास्त्रों में स्वप्नों का वर्गीकरण किया गया है। भगवती और औपपातिकसूत्र में स्वप्नों के ७२ प्रकार बताए हैं जिनमें से ४२ सामान्य स्वप्न हैं और ३० महान् स्वप्न कहलाते हैं। इन ३० में भी १४ अत्यन्त शुभ और महास्वप्न हैं, जिन्हें तीर्थंकरों और चक्रवर्तियों की माताएँ उस समय देखती हैं जब तीर्थंकर और चक्रवर्ती इनके गर्भ में आते हैं।

स्वप्नों का वर्गीकरण

भगवतीसूत्र में स्वप्नों का वर्गीकरण ५ प्रकार से किया गया है–

(१) **यथातथ्य स्वप्न-दर्शन**–यह स्वप्न सत्य होते हैं, भविष्य के शुभाशुभ का स्पष्ट संकेत देते हैं। इनके दो उत्तरभेद हैं–(अ) **दृष्टार्थाविसंवादी**–स्वप्न में जो कुछ दिखाई दिया हो, जागने पर उसी रूप में घटित हो। यथा–कोई व्यक्ति स्वप्न में देखे कि उसको किसी व्यक्ति ने सुगंधित पुष्प भेंट किया है तो जागने पर भी उसे सुगंधित पुष्प भेंट में प्राप्त हों। (ब) **फलाविसंवादी**–जिस स्वप्न का फल तो अवश्य मिले, किन्तु उस रूप में प्राप्त न होकर अन्य रूप में प्राप्त हो। यथा–किसी व्यक्ति ने देखा कि 'मैं हाथी पर आरूढ़ हूँ' लेकिन जागृत होने के बाद उसे कुछ समय में धन-संपत्ति की प्राप्ति हो जाय, व्यापार आदि में लक्ष्मी की प्राप्ति हो जाय।

(२) **प्रतान स्वप्न**–प्रतान का अर्थ विस्तार है। विस्तार पूर्ण या लम्बा स्वप्न देखना, जिसमें एक-दूसरी से सम्बन्धित अनेक घटनाओं का क्रम चलता रहे, ऐसे स्वप्न प्रतान स्वप्न कहलाते हैं। ऐसा स्वप्न सत्य भी हो सकता है और असत्य भी। यदि स्वप्न में देखी गई घटनाएँ भयोत्पादक हों तो यह जीवन में आने वाली कठिनाइयों की सूचक भी हो सकती हैं और शुभ घटनाएँ जीवन में उन्नति का संकेत देती हैं।

(३) **चिन्ता स्वप्न**–ये स्वप्न व्यर्थ होते हैं। दिन में किसी बात का, समस्या और उलझन का चिन्तन किया हो, उनका विचार किया हो, उन्हीं का स्वप्न में दिखाई देना; चिन्ता स्वप्न कहलाता है।

लेकिन कभी-कभी ऐसा भी होता है कि जिस समस्या का समाधान सोचने पर भी न मिला हो, स्वप्न में अनायास ही उसका समाधान मिल जाय। ऐसी दशा में ये स्वप्न सार्थक भी होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आधुनिक काल में कई प्रसिद्ध वैज्ञानिकों और गणितज्ञों के जीवन का ऐसा ही अनुभव है। जिन वैज्ञानिक सिद्धान्तों तथा गणित के क्लिष्ट प्रश्नों को जाग्रत दशा में हल न कर सके, स्वप्न में अनायास उन्हें उन पेचीदे सिद्धान्तों और गणित के सूक्ष्म प्रश्नों का हल मिल गया। समस्या सुलझ गई।

(४) **तद्विपरीत स्वप्न**—स्वप्न में जैसा देखा हो, उसके विपरीत फल प्राप्त होना। यथा—किसी पुरुष ने स्वप्न में देखा कि उसके हाथों में काँटे भरे हुए हैं, हथेलियाँ छलनी हो गई हैं और जागृत होने पर दूसरे दिन कोई व्यक्ति उसे फूलों का गुलदस्ता भेंट करे।

(५) **अव्यक्त स्वप्न**—स्वप्न में देखी हुई वस्तु आदि का स्पष्ट ज्ञान न होना अथवा जागने पर स्वप्न को भूल जाना, उसकी स्मृति न रहना।

इनके अतिरिक्त स्वप्नशास्त्र में स्वप्नों का वर्गीकरण अन्य दृष्टियों से किया गया है। यथा—प्रतीकात्मक, संकेतात्मक, दैहिक, भौतिक, दैविक, आध्यात्मिक, शुभ-अशुभ आदि।

प्रतीकात्मक स्वप्न वह होते हैं, जो किसी दुःखद या सुखद घटना का सूचन करते हैं। यथा—किसी ने स्वप्न में देखा कि आकाश से एक तारा टूटकर गिर गया। दो-चार दिन में उसके किसी प्रियजन की मृत्यु हो गई। तारे का टूटना किसी प्रियजन की मृत्यु का प्रतीक था। इसी प्रकार किसी तारे की चमक बढ़ जाना, रत्नराशि आदि देखना सुखद घटनाओं का प्रतीक है।

कुछ स्वप्न संकेतात्मक होते हैं। वे केवल संकेत देते हैं। उन संकेतों को समझने के लिए विशेष ज्ञान की आवश्यकता होती है। जैसे स्वप्न में किसी व्यक्ति ने जम्बू-वृक्ष या आम्र-वृक्ष देखा। ये स्वप्न किसी शुभ घटना के संकेतक होते हैं, जैसे—धन, यश, पुत्र आदि की प्राप्ति।

इसके विपरीत शव यात्रा, कँटीली झाड़ियाँ आदि स्वप्न में दिखाई पड़ें तो भविष्य में अशुभ घटनाओं की सूचक होती हैं।

दैहिक स्वप्न देही (प्राणियों—पशु-पक्षी) से संबंधित होते हैं। स्वप्न में यदि सात्विक पक्षी राजहंस आदि हाथी, सिंह, वृषभ आदि धर्म, शौर्य और धैर्य के प्रतीक रूप पशु-पक्षी दिखाई दें तो मंगल सूचक और वायस (कौआ), चील आदि क्रूर कुटिल पशु आदि दिखाई दें तो भावी अमंगल की सूचना देते हैं।

भौतिक स्वप्न वे होते हैं, जिनमें प्राकृतिक दृश्य उद्यान, सरोवर, पर्वत, सागर आदि दिखाई देते हैं अथवा मनुष्य स्वयं को पर्वत शिखर पर चढ़ता हुआ, शान्त सागर अथवा सरोवर में शांतिपूर्वक तैरता हुआ देखता है।

इन स्वप्नों का फल स्वप्न में दृष्ट वस्तुओं की स्थिति पर निर्भर होता है। यदि सागर में मानव सुखपूर्वक तैरता हुआ देखे तो मंगलसूचक और यदि लहरों के थपेड़ों से खिन्न हुआ देखें तो भावी आपत्तियों का सूचक समझा जाता है। इसी प्रकार सुख से पर्वत शिखर पर पहुँच जाय तो सफलता और सुख तथा उन्नति और यदि श्रमित होकर खेदखिन्न हुआ बीच में बैठ जाय तो असफलता का सूचक होता है।

दैविक स्वप्न वे कहलाते हैं, जो या तो प्रीतिवश कोई देव-स्वप्न देखता है, अथवा मनुष्य स्वयं ही अपने को देव के रूप में देखता है। ये शुभ स्वप्न हैं। किन्तु निम्न कोटि के देव, भूत, प्रेत आदि अथवा इनके भयोत्पादक रूप, रोमांचकारी नाच-गान को देखना—आसन्न घोर संकट को सूचित करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आध्यात्मिक स्वप्न सदैव ही आत्मोन्नति को द्योतित करते हैं। स्वप्न में त्यागी, तपस्वी, संत, मुनियों के दर्शन-वन्दन, स्वयं को धर्मस्थान में बैठा देखना, संतों के प्रवचन सुनना, सामायिक आदि करते हुए देखना– यह सब आध्यात्मिक स्वप्न हैं तथा स्वप्नद्रष्टा की आध्यात्मिक रुचि, प्रगति और आत्मा की उन्नति के स्पष्ट संकेत हैं।

इस तरह स्वप्नों का वर्गीकरण कई दृष्टियों मे किया गया है। सभी की अपनी-अपनी विशेषता और महत्त्व है।

किन्तु तीर्थंकरों, चक्रवर्तियों तथा अन्य महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावशाली पुरुषों के गर्भ में आते समय उनकी माताएँ जो महास्वप्न देखती हैं। उनकी जैन संसार में बहुत चर्चा होती है तथा उनका महत्त्व भी अत्यधिक माना गया है।

चौदह महास्वप्न

माता के गर्भ में जब तीर्थंकर या चक्रवर्ती का जीव अवतरित होता है तब माता १४ महास्वप्न देखती है। ये स्वप्न निम्न हैं–

(१) **चार दाँत वाला पर्वताकार श्वेत वर्ण का हाथी**–इसका फल है–वह जीव चार प्रकार के धर्म (श्रमण-श्रमणी, श्रावक-श्राविका) का प्रतिपादन करने वाला होना।

(२) **वृषभ**–संसार में बोधि बीज का वपन करने वाला।

(३) **सिंह**–काम आदि विकारों को नष्ट करके धर्म का प्रसार करेगा। सिंह शौर्य, निर्भीकता आदि का प्रतीक है, अतः वह स्वयं अभय रहना तथा संसार के सभी प्राणियों को अभय देने वाला है।

(४) **लक्ष्मी**–वर्षीदान देकर संसार-त्याग करेगा और कैवल्य लक्ष्मी प्राप्त करने वाला।

(५) **माला**–त्रिलोक पूज्य होना।

(६) **चन्द्र**–चन्द्रमा की शीतल ज्योत्स्ना के समान सभी प्राणियों को सुखदायी होना।

(७) **सूर्य**–अज्ञानरूपी अन्धकार को नष्ट करके शुद्ध धर्म का उद्योत करने वाला।

(८) **ध्वजा**–धर्म की ध्वजा को विश्व क्षितिज पर फहराने वाला।

(९) **कलश**–धर्मरूपी प्रासाद पर वह स्वर्ण-कलश के समान शोभित।

(१०) **पद्म-सरोवर**–देव-निर्मित स्वर्ण-कमल पर विराजित होने वाला।

(११) **समुद्र**–सागर के समान गंभीर तथा केवल-ज्ञान-दर्शन आदि अनन्त गुण रूप मणि-रत्नों का धारक होना।

(१२) **विमान**–वैमानिक देवों द्वारा पूज्य।

(१३) **रत्न-राशि**–जिस प्रकार रत्न-राशि अप्रतिहत प्रभा से प्रभास्वर होती है उसी प्रकार उसका ज्ञान-दर्शन अप्रतिहत होगा, ज्ञान-दर्शन की ज्योति से उद्योतित-प्रकाशित।

(१४) **निर्धूम अग्नि**–विशुद्ध एवं निर्मल धर्म का प्रतिपादन करने वाला होना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वप्नों के ये फल तीर्थंकर की अपेक्षा से बताये गये हैं। यद्यपि यही स्वप्न चक्रवर्ती की माताएँ भी देखती हैं किन्तु अन्तर इतना है कि तीर्थंकर की माताएँ इन स्वप्नों को स्पष्ट तथा चमकीला देखती हैं; जबकि चक्रवर्ती की माता अपेक्षाकृत कम स्पष्ट और कम चमकीला।

वासुदेव (अर्ध-चक्रवर्ती) की माताएँ इन १४ महास्वप्नों में से सात स्वप्न देखती हैं। यथा–(१) सिंह, (२) सूर्य, (३) कुम्भ, (४) समुद्र, (५) लक्ष्मी, (६) रत्न-राशि, और (७) अग्नि।

वलदेव की माताएँ–(१) हाथी, (२) पद्म सरोवर, (३) चन्द्र, और (४) वृषभ–ये चार स्वप्न देखती हैं तथा प्रतिवासुदेव की माताएँ तीन स्वप्न देखती हैं।

प्रस्तुत अन्तकृद्दशासूत्र में गौतमकुमार, गजसुकुमाल कुमार आदि साधकों की माताएँ गर्भ धारण करते समय सिंह का स्वप्न देखती हैं। सिंह शौर्य, पराक्रम, निडरता, अभयता आदि का प्रतीक है। गौतमकुमार आदि के जीवन में ये गुण स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। इस रूप में माताओं द्वारा देखा गया सिंह का स्वप्न पुत्रों के जीवन में सार्थक हुआ।

भगवान महावीर के दस स्वप्न

अपने साधनाकाल में भगवान महावीर ने दस स्वप्न देखे थे। ये स्वप्न भी आध्यात्मिक स्वप्नों की कोटि में परिगणित किये जा सकते हैं। वे स्वप्न और उनका फल इस प्रकार है–

(१) **स्वप्न**–भयंकर ताड़ पिशाच को मारना।
फल–मोहनीय कर्म को नष्ट करना।

(२) **स्वप्न**–एक श्वेत पुंस्कोकिल का उपस्थित होना।
फल–सदा-सर्वदा शुक्लध्यान में रहना।

(३) **स्वप्न**–एक रंग-बिरंगे पुंस्कोकिल को देखना।
फल–विविध ज्ञान-विज्ञानमय द्वादशांग श्रुत की प्ररूपणा।

(४) **स्वप्न**–दो रत्नमालाएँ देखना।
फल–सर्वविरति और देशविरति–दो प्रकार के धर्म की प्ररूपणा।

(५) **स्वप्न**–श्वेत गोकुल देखना।
फल–चतुर्विध संघ का सेवा में उपस्थित रहना।

(६) **स्वप्न**–विकसित पद्म सरोवर देखना।
फल–चारों प्रकार के देवों का सेवा में रहना।

(७) **स्वप्न**–तरंगाकुल सागर को भुजाओं से तैरकर पार करना।
फल–संसार-सागर को पार कर लेना।

(८) **स्वप्न**–विश्व को आलोकित करता हुआ जाज्वल्यमान सूर्य।
फल–केवलज्ञान-दर्शन की प्राप्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(९) **स्वप्न**–वैडूर्यवर्णी आँतों से मानुषोत्तर पर्वत को आवेष्टित करना।

फल–सर्वत्र कीर्ति कौमुदी प्रसारित होना।

(१०) **स्वप्न**–मेरु पर्वत पर चढ़ना।

फल–समवसरण में सिंहासन पर विराजमान होकर धर्म की संस्थापना करना।

उपसंहार

निष्कर्षतः स्वप्न असंख्य प्रकार के होते हैं। वे शुभ भी होते हैं और अशुभ भी। कुछ स्वप्न आगामी शुभाशुभ घटनाओं का संकेत देते हैं तो कुछ स्वप्न निष्फल भी होते हैं। दैहिक, दैविक, भौतिक, आध्यात्मिक आदि कई प्रकार से इनका वर्गीकरण किया जाता है। रात्रिकाल में भी व्यक्ति स्वप्न देखता है और दिन में सो जाये तो भी स्वप्न देख सकता है। यह भी अनिवार्य नहीं है कि प्रति रात्रि व्यक्ति स्वप्न देखे ही; कभी वह स्वप्न देखता है और कभी नहीं भी देखता है।

स्वप्नशास्त्रों में यह भी कहा गया है कि रात्रि के प्रथम प्रहर में देखा गया शुभाशुभ सूचक स्वप्न एक वर्ष में फल देता है, द्वितीय प्रहर में देखा गया स्वप्न छह महीने में, तीसरे प्रहर में देखा गया तीन महीने में और अन्तिम प्रहर में देखा गया स्वप्न ७-८ दिन में फल देता है।

संक्षेप में स्वप्नों का संसार बड़ा ही अद्भुत और विचित्र है।

२. विवाह-वर्णन

अनिवार्य परम्परा

विवाह मानव समाज की एक अनिवार्य और आवश्यक परम्परा है। अति प्राचीनकाल से यह परम्परा चली आ रही है। सभ्य समाज में तो यह प्रचलित है ही, असभ्य समाजों में भी इसका प्रचलन है।

महत्त्व

विवाह का महत्त्व समाजशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और धार्मिक (व्यवहार धर्म) सभी दृष्टियों से है।

समाजशास्त्रीय विचारकों के मतानुसार विवाह समाज को संगठित और उन्नतिशील बनाने में उपयोगी है। विवाह के कारण परिवारों का निर्माण होता है। उनमें पति-पत्नी, चाचा-चाची, वृद्ध पुरुष और स्त्रियाँ सभी मिल-जुलकर रहते हैं, परस्पर प्रेम-भाव बँटता है तथा शिशुओं का पालन-पोषण उचित ढंग से होता है, इन्हें उत्तम संस्कार दिये जा सकते हैं।

सामाजिक दृष्टिकोण भी लगभग यही उपयोगिताएँ विवाह की बताता है। साथ ही वह समाज का विस्तार ग्राम, नगर, प्रान्त, राष्ट्र तक करता है। उनका तर्क है कि सुसंगठित और उत्तम संस्कारों से सम्पन्न विश्व-शान्ति की स्थापना में सहायक बन सकता है। दूसरे शब्दों में विश्व-शांति की आधारशिला उत्तम संस्कारों से युक्त सुसंगठित समाज है।

मनोविज्ञान मानव के मन को केन्द्र मानकर विवाह संस्था की उपयोगिता प्रतिपादित करते हैं। इनका दृष्टिकोण व्यक्तिवादी है। इनका कथन है कि पुरुष और स्त्री दोनों में ही काम अथवा प्रजनन की मूल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रवृत्ति होती है। इस प्रवृत्ति को सन्तुष्ट करना अनिवार्य है, अन्यथा मानव के शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना रहती है; और इस मूल प्रवृत्ति–काम प्रवृत्ति को संतुष्ट करने का सबसे सरल और उत्तम उपाय विवाह है।

धार्मिक और नैतिक दृष्टि-बिन्दु भी विवाह की उपयोगिता स्वीकार करता है। नैतिक दृष्टि के अनुसार विवाह उच्छृंखलता और अराजकता को रोकता है। यदि स्वच्छन्द यौनाचार को स्वीकृति दे दी गई तो नैतिकता का ह्रास तो होगा ही, साथ ही मानव ऐड्स आदि अनेक बीमारियों का शिकार हो जायेगा। उपदंश (Venereal diseases) आदि जैसी भयंकर बीमारियाँ फैल जायेंगी, मानवता रुग्ण हो जायेगी। इसलिए विवाह आवश्यक है।

धार्मिक दृष्टि और विशेष रूप से जैनधर्म संपूर्ण ब्रह्मचर्य को श्रेष्ठ मानता है। लेकिन सभी स्त्री-पुरुष तो पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकते। काम के आवेग को अवरुद्ध करना सभी के लिए संभव नहीं है।

इस स्थिति पर विचार करके मेधावी आचार्यों ने काम को मर्यादित करने की दृष्टि से विवाह का सामाजिक महत्त्व स्वीकार किया है। काम की भावना अथवा कामाचार को अनेक स्त्रियों से हटाकर एक परिणीता स्त्री में केन्द्रित कर देना और उस विवाहित स्त्री के साथ भी मर्यादापूर्वक जीवन बिताना।

यही मत वैदिक धर्म परम्परा का भी है।

विवाहित जीवन में भी स्त्री-पुरुषों दोनों को जितना संभव हो सके अधिक से अधिक ब्रह्मचर्य-पालन का प्रयास करना चाहिए; भोगी भँवरा बनकर काम-भोगों में न डूब जाये, स्त्री के प्रति–भोगों के प्रति गूढ़ आसक्ति न रखे।

विवाह : दो दिलों का सम्बन्ध

विवाह के विषय में अधिकांश धारणा है कि यह दो दिलों का मिलन है। यह कथन पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित है। भारत में भी प्राचीनकाल में गांधर्व विवाह होते थे। ऐसे विवाहों में युवक-युवती परस्पर विवाह कर लेते थे।

लेकिन विवाह दो परिवारों का मिलन भी होता है। विवाह के माध्यम से दो परिवार एकता के सूत्र में बँध जाते हैं। ऐसे विवाह बड़ी धूमधाम से होते हैं, बारातें सजती हैं, वर-पक्ष, कन्या-पक्ष के घर जाता है और बड़े समारोह के साथ वर-वधू का विवाह होता है, वे परस्पर विवाह के बन्धन सूत्र में बँधते हैं।

वर-पक्ष और कन्या-पक्ष वर-वधू को प्रीतिदान और दात (दहेज) देते हैं। कन्या-पक्ष की ओर से वर पक्ष को दिया गया धन, वैभव आदि दात (दहेज) कहलाता है और वर-पक्ष अपने पुत्र तथा पुत्र-वधुओं को जो कुछ देता है, वह प्रातिदान कहा जाता है।

अन्तकृद्दशासूत्र में ऐसे ही विवाहों का वर्णन है। वर का जितनी कन्याओं से विवाह होता है उसे उतने ही दात (दहेज–कन्या के पिता द्वारा दिया गया धन आदि) मिलते हैं और वर का पिता भी अपनी पुत्र-वधुओं को धन आदि का प्रीतिदान देता है।

यथा–अन्तकृद्दशासूत्र के पहले वर्ग के पहले अध्ययन में गौतमकुमार का विवाह ८ राजकन्याओं के साथ हुआ था। वहाँ दात (दहेज) में प्राप्त तथा नववधुओं को प्रीतिदान में दी गई वस्तुओं के नाम इस प्रकार गिनाए गये हैं–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आठों पुत्र-वधुओं को इस प्रकार प्रीतिदान दिया–आठ करोड़ चाँदी के सिक्के, आठ करोड़ सोने के सिक्के, आठ श्रेष्ठ मुकुट, आठ श्रेष्ठ कुण्डल युगल, आठ उत्तम हार, आठ बाजूबन्दों की जोड़ी आदि अनेक प्रकार के आभूषण तथा इसी प्रकार उत्तम वस्त्र आदि अनेक प्रकार की वस्तुएँ दीं।

इसी प्रकार वधुओं को अपने पिताओं से भी विपुल (दात) दहेज मिला।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि दहेज का प्रचलन अति प्राचीनकाल से है। राजा, धनी और निर्धन सभी अपनी हैसियत के अनुसार दहेज देते थे, साथ ही पितृ-पक्ष भी नववधुओं को प्रीतिदान देता था। किन्तु स्मरण रखना चाहिए कि दहेज अनिवार्य नहीं है। इसका नाम 'प्रीतिदान' है, अर्थात् कन्या के माता-पिता प्रेम और वत्सलतापूर्वक अपनी पुत्री को बिना किसी दबाव के अपनी सामाजिक मान-मर्यादा के अनुसार जो धन आदि सामग्री देते थे उसको ही प्रीतिदान कहा गया है।

उस युग में नारी का स्थान सम्मानित था। विवाह एक महोत्सव था और हर्षोल्लासपूर्वक मनाया जाता था।

वैदिकधर्म में विवाह को संस्कार कहा गया है। संस्कार का अर्थ है जीवन को सुसंस्कृत करना, सुधारना, नया और इच्छित एवं उन्नतिशील रूप देना। इसी कारण विवाह के समय इतना आयोजन किया जाता है।

जैनधर्म में स्त्री और पुरुष समान माने गये हैं। गृहस्थ जीवन में भी इनके अधिकार समान माने गये हैं। इसीलिए दहेज के साथ प्रीतिदान की प्रथा भी प्रचलित थी।

यों देखा जाय तो यह दोनों प्रथाएँ आज भी प्रचलित हैं। कन्या के माता-पिता दहेज देते हैं तो वर-पक्ष भी वधू को आभूषण, वस्त्र आदि देता है।

दूसरी बात भारतीय संस्कृति में विवाह सामाजिक, पारिवारिक संबंध तो है ही; धार्मिक और नैतिक संबंध भी है तथा जीवनभर के लिए होता है। जैन आगमों में पत्नी को '**धम्मसहाया**' कहकर विवाह का महत्त्व दिखाया है और उसे धर्म-पत्नी कहकर विवाह को धर्म और आध्यात्मिकता से संलग्न किया गया है।

३. दीक्षा-वर्णन

दीक्षा, विशेष रूप से जैन श्रामणी दीक्षा व्यक्ति का नया जीवन है। व्यक्ति माता के गर्भ से निकलकर संसारी जीवन में प्रवेश करता है और दीक्षा ग्रहण करके संसार का त्याग करता हुआ धार्मिक जीवन में प्रवेश करता है। संसार की ओर से पीठ मोड़ लेता है, संसार और सांसारिक जीवन तथा काम-भोगों से विरक्त होता है। स्व-पर-कल्याण, कर्म-निर्जरा और मोक्ष-प्राप्ति ही उसका एक मात्र लक्ष्य हो जाता है।

किसी तीर्थंकर, केवली, धर्माचार्य अथवा देव की प्रेरणा से जब व्यक्ति को संसार त्याग लगने लगता है तब वह अपने माता-पिता आदि से दीक्षा की अनुमति माँगता है। मोहवश माता-पिता उसे रोकने का प्रयास करते हैं, किन्तु दीक्षार्थी के दृढ़ निश्चय के समक्ष उन्हें झुकना पड़ता है, वे अनुमति देते हैं और उसका अभिनिष्क्रमण उत्सव मनाते हैं।

अन्तकृद्दशासूत्र में गौतमकुमार की दीक्षा (अभिनिष्क्रमण) महोत्सव का वर्णन कुछ विस्तार से आया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कभी ऐसा भी होता है कि माता-पिता अपने दीक्षार्थी पुत्र को एक दिन के लिए राजा बना देते हैं, जैसा कि अन्तकृद्दशासूत्र के गजसुकुमाल और अतिमुक्तकुमार (ऐवन्ताकुमार) के अध्ययन में हुआ है। तब वह दीक्षार्थी राजा बनकर दीक्षा की अभिलाषा प्रगट करता है। तदनन्तर उसका दीक्षा महोत्सव होता है।

दीक्षार्थी को ऊँचे पाट पर बिठाया जाता है, गंध द्रव्यों से उसके शरीर का उबटन किया जाता है, शतपाक सहस्रपाक तेल की मालिश की जाती है। अनेक औषधियों से मिश्रित जल के घड़ों से स्नान कराया जाता है। उसे उत्तम वस्त्रालंकारों से सुसज्जित किया जाता है। १,००० पुरुष उठा सकें, ऐसी शिविका में उसे बिठाकर नगर के मध्यवर्ती भागों में होकर दीक्षा-स्थल पर ले जाया जाता है। वहाँ दीक्षार्थी गुरुदेव को नमन करके ईशानकोण में जाता है, बहुमूल्य वस्त्राभूषण उतारकर साधु वेश धारण करता है और गुरुदेव के समक्ष आकर उन्हें नमन-वन्दन करके दीक्षा की प्रार्थना करता है।

यहाँ एक प्रश्न उठता है कि धर्म तो आडम्बरहीन होता है, फिर दीक्षा विधि में अभ्यंगन, उत्तम वस्त्रालंकार आदि धारण करने की आवश्यकता ही क्या है?

इसका उत्तर यह है कि दीक्षार्थी तो विरागी ही होता है, लेकिन इस आडम्बरपूर्ण लम्बे विधि-विधान से जनता–साधारणजन भी धर्म से प्रभावित होता है। उन्हें धर्म-पालन और दीक्षा-ग्रहण करने की प्रेरणा मिलती है।

साधक अपने सिर के बालों का लोंच करता है, जिन्हें माता अपने आँचल में ग्रहण करती है। माता-पिता गुरुदेव से प्रार्थना करते हैं–हे भगवन्! हम आपको शिष्य-भिक्षा दे रहे हैं। यह हमारा अति प्रिय पुत्र है। इसका कल्याण करिए।

तब गुरुदेव रात्रि-भोजन त्याग के साथ त्रिकरण-त्रियोग (करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से, वचन से, काया से–इस प्रकार नव कोटि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह–इन पाँच महाव्रतों का यावज्जीवन प्रत्याख्यान कराके उसे दीक्षित कर लेते हैं।

इस प्रकार दीक्षा-विधि पूर्ण होती है।

महत्त्व

दीक्षा-विधि की इस लम्बी प्रक्रिया का प्रमुख महत्त्व यह है कि दीक्षार्थी अनेक लोगों की भीड़ के सामने दीक्षा ग्रहण करता है तो वह अपने व्रत-नियम, महाव्रत-पालन, मूल-गुण, उत्तर-गुणों में अधिक सजग और सावधान रहता है, शिथिलाचार और स्खलनाओं से यथासंभव बचता रहता है।

दूसरा महत्त्व यह है कि अन्य उपस्थित जन भी जैन श्रमण की दीक्षा-विधि से परिचित हो जाते हैं। साथ ही वे जैनधर्म और दीक्षार्थी के जय उद्घोषों से साधक का मनोबल बढ़ाते हैं। दीक्षार्थी भी दीक्षा के गौरव से मंडित हो जाता है।

नवदीक्षित साधु के मन-मस्तिष्क में यह भावोर्मियाँ उठने लगती हैं। जैनधर्म और जैन श्रमण-दीक्षा कितनी महान् है कि सर्वसाधारण जन भी इसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हैं। मैं अपनी संयम-साधना से इसे और भी चमकाऊँ, जिससे धर्म का प्रचार-प्रसार बढ़े, लोगों की श्रद्धा और भी दृढ़ हो।

जैन श्रामणी दीक्षा के वर्णन से विविध प्रकार के लाभ हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. नगर-वर्णन

प्राचीन भारत में अयोध्या, काशी, चम्पा, राजगृह, द्वारका आदि कई महानगरियाँ थीं, जो सभी प्रकार से समृद्ध और शोभा-संपन्न थीं।

प्रस्तुत अन्तकृद्दशासूत्र में द्वारका का वर्णन तो कुछ विस्तार से हुआ है। लेकिन शेष नगरियों के लिए **'जहा उववाइये'** संकेत कर दिया गया है। औपपातिकसूत्र में महान् नगरियों का संपूर्ण विवरण प्राप्त होता है।

हम उस विवरण का संक्षिप्त सार यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं–

महान् नगरियाँ वैभवशाली, सुरक्षित और समृद्ध होती थीं। उनमें आमोद-प्रमोद के प्रचुर साधन होते थे अतः वहाँ के निवासी तथा अन्य देशों से आने वाले व्यक्ति प्रसन्न रहते थे। आबादी घनी होती थी तथा मुर्गों एवं साँड़ों की बहुतायत तथा गायों एवं भेड़ों की प्रचुरता होती थी। कृषि बहुत उत्तम और नगरी के आसपास की भूमि उपजाऊ होती थी।

असामाजिक तत्त्व चोर, पाकेटमार, उपद्रवी जन वहाँ नहीं रह पाते थे। जनता का जीवन सुखी और शांतिमय होता था।

नगरी में नागरिकों के मनोरंजन के साधन भरपूर होते थे। नट, नर्तक, कलाबाज, मल्ल, मसखरे, कथा कहने वाले, रास गाने वाले, तन्तु नाद बजाने वाले आदि बहुत संख्या में होते थे, जिनकी कला से जनता का मनोरंजन होता था।

ऊँचे-ऊँचे महल और भवन होते थे, जिनके स्वर्णिम कँगूरे सूर्य रश्मियों के पड़ने पर अत्यधिक चमकते थे। सात-सात और नौ-नौ मंजिल के भवन थे, जिनके फर्श मणिखचित होते थे, दीवारें भिन्न-भिन्न प्रकार के चित्रों से सुशोभित होती थीं और ऐश्वर्य अठखेलियाँ करता था।

वहाँ के नागरिक उदार होते थे। अतः भिक्षुकों को दान सरलता से मिल जाता था। कोई भी भूखा नहीं रहता था।

अनेक प्रकार के कौटुम्बिक, पारिवारिक जनों की घनी बस्ती होते हुए भी शान्ति-व्यवस्था रहती थी।

नगरी के राजपथ, रथ्या आदि चौड़े होते थे, जिनसे नागरिकों को गमनागमन में सुविधा रहती थी। विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के बाजार अलग-अलग होते थे, जहाँ वस्तुएँ सजी रहती थीं।

नगरी की सुरक्षा का प्रबन्ध सुदृढ़ था। आठ हाथ चौड़ा और काफी ऊँचा परकोटा होता था। द्वार (किवाड़ों) की बाहरी ओर नुकीले भाले जैसी कीलें लगी रहती थीं। द्वार बहुत मजबूत होते थे। परकोटे के सहारे आश्रय-स्थल बने रहते थे, जिनमें रक्षकगण विश्राम कर सकते थे।

नगर में स्थान-स्थान पर उद्यान रहते थे, जिनमें सरोवर और बावड़ियाँ तथा उनमें कमल-पुष्प खिले रहते थे। वे चित्त को प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय, मनोज्ञ और मन में बस जाने वाले थे।

लगभग ऐसा ही वर्णन अन्तकृद्दशासूत्र में द्वारका नगरी का किया गया है।

इससे स्पष्ट है कि प्राचीनकाल की महानगरियों का ऐसा ही रूप, बसावट, सौन्दर्य और शोभा होती थी। ● ●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Miscellaneous Topics

In *Antakriddasha Sutra* there are detailed discussions on numerous topics and many others have been just mentioned in some contexts. For example *'Java Mahabbale'* (like Mahabal Kumar) words have been used to point at dream divining and *'Java Uvaiye'* (like in *Aupapatik*) has been used to point at descriptions of cities.

It would be useful to give some details about these topics. Here we are trying to elaborate some important topics.

1. DESCRIPTION OF DREAMS

Dreams are those aberrations and imaginations of the conscious or subconscious mind that are experienced by all the sentient five sensed beings including humans and animals.

The world of dreams is very strange and surprising. In the state of slumber one sees such astonishing scenes which are impossible even to imagine when he is awake.

In dreams sometimes a person finds himself on the peak of a mountain and the next moment at the base. Sometimes he flies like birds in the sky and sometimes enjoys swimming like fish in high waves in the sea. Sometimes he finds himself on a throne and at others he is a beggar. To turn a beggar from a king or vice versa is a matter of a moment in the land of dreams.

Dream is a realm of imagination where the dreamer is free to do anything.

When are Dreams Seen ?

It is a general belief that dreams are seen when one is asleep. When a man is in a state of slumber he sees dreams, but this is not true.

When a man takes rest, to recover from fatigue he lies down on the bed, he goes to sleep. While sleeping, his body goes limp and inactive and is in the process of regaining its normal strength. The mind is also almost in the same state. But the subconscious does not rest, it remains active. When the mind is resting the subconscious becomes active and roams around free.

Then a state comes when the person becomes drowsy, he is neither completely awake nor is he in deep sleep. This is the state when he dreams.

This half asleep—half awake state can occur during the first, second, third or fourth quarters of the night. Also, if a man sleeps during the day, he can see dreams during the day as well. Sometimes he sees dreams even while he is sitting and dozing.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

But generally the night is taken to be the time to sleep. Therefore, in the works of dream-divining the good or bad indications of only those dreams have been detailed which are seen during the first, second, third or fourth quarters of night.

In *Antakriddasha Sutra* the mention of dreams seen by Devaki and other queens and mothers relates only to those dreams which were seen during the fourth quarter of night. They saw good dreams.

Types of Dreams

There are innumerable types of human imaginations, desires, feelings and wishes. In the same way there are innumerable types of dreams. To count the types of dreams is beyond imagination.

Still in the works of dream-divining, dreams have been classified. In *Bhagavati* and *Aupapatik Sutras* there is a mention of 72 types of dreams, of which 42 are normal dreams and 30 are great dreams. Out of these 30 there are 14 highly propitious and lofty dreams which the mothers of Tirthankars and *chakravartis* see when a Tirthankar or *chakravarti* descends into the womb (conceived).

Classification of Dreams

In *Bhagàvati Sutra,* dreams are divided into 5 classes—

(1) ***Yathatathya Svapna Darshan***—These dreams come true and give clear indication of good or bad future. They have two subdivisions—*(a) Drishtarthavisamvadi*—The activity seen in the dreams comes true exactly as it occurred in the dream. For example—A person dreams of someone offering him a flower and when he wakes up he is actually offered a flower by someone. *(b) Phalavisamvadi*—The dream which comes true but not as actually seen or the dream which offers indications of a coming event. For example—A person dreams that he is riding an elephant and when he awakes he gets unexpected wealth or profit in business.

(2) ***Pratan Svapna***—*Pratan* means expanse. To see a detailed dream or a sequence of numerous incidents is called *Pratan svapna.* Such dreams may or may not come true. If the incidents are fearsome they may indicate problems in the future and if they are pleasant they may indicate progress.

(3) ***Chintan Svapna***—These are worthless dreams. To see in dream the problems, worries and other such things over which one was thinking during the day is called *Chintan svapna.*

But sometimes it so happens that the problem that could not be solved during the day, even after a lot of thinking, gets solved in the dream. In such cases these dreams become meaningful.

In modern times many mathematicians and scientists have experienced this. The complex scientific postulations or subtle mathematical problems which they could not resolve while awake were resolved in their dreams effortlessly. The problems got solved.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(4) ***Tadvipareet Svapna***—To get results opposite to what was seen in a dream. For example—A person dreams that his hands are filled with thorns and his palms have been pierced, but when he awakes someone presents him a bouquet of flowers.

(5) ***Avyakt Svapna***—Not to have vivid dreams or to forget what was seen in the dream is called *Avyakt svapna*.

Besides these, dreams have been classified from different angles also in works on dream-divining. For example—Symbolic, indicative, physical, material, divine, spiritual, auspicious, inauspicious etc.

The symbolic dreams are those which give indication about some happy or painful incident. For example—Someone saw a falling star in the sky. A few days later someone close and beloved to him died. The falling of a star was symbolic of the death of a loved one. Similarly to dream about increase in intensity of a star or a heap of gems indicates happy incidents in the future.

Some dreams are indicative only. They only provide some indications. A special expertise is required to decipher these indications. For example—Someone sees a *Jambu* or mango-tree in his dream; it augurs some auspicious happening like gaining wealth, fame or son etc.

On the contrary, if a funeral procession or thorny bush is seen in a dream it augurs unhappy incidents in the future.

The physical dreams are related to animals and birds. If peaceful, auspicious animals or those which are considered symbols of piety, valour and patience like swan, elephant, lion, bull etc. are seen, they herald good tidings. One the contrary if inauspicious or evil animals like crow, vulture etc. are seen they forebode harm.

The material dreams are those where one sees natural vistas like gardens, lakes, mountains, sea etc. or where the dreamer is himself involved in some activity in the background of the scene like climbing a mountain or swimming.

The foreboding of these dreams depend on the situation. If a man is swimming peacefully in a sea it is auspicious but if he is tormented by waves its is inauspicious. Similarly if he is climbing happily, it indicates success but if gets tired and sits down to rest, it indicates failure.

Divine dreams are those where either some deity out of affection, appears in dream or the dreamer sees himself as a god. Such dreams are auspicious. But seeing evil gods or their fearsome forms or their horrifying activities indicates terrible predicaments.

Spiritual dreams are invariably harbingers of spiritual uplift. To see and pay homage to some ascetic, sage and other such pious persons, to find oneself sitting in religious congregation and listening to the discourses, to see oneself indulging in *samayik* or other religious activities, are some of these spiritual dreams and clearly indicate about the spiritual attitude and progress of the dreamer.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Thus dreams have been classified in many ways. Each one of these have its own importance.

However, the dreams that are seen by the mothers of Tirthankars, *chakravartis* and other such towering persons when they are conceived have been widely talked about in the Jain tradition and special importance has been attributed to them.

Fourteen Great Dreams

When the being that is to be a Tirthankar or a *chakravarti* descends into the womb of his mother, she sees fourteen great dreams. They are as follows—

1. A giant white elephant having four tusks—This indicates that the person to be born will be the propagator of the four limbed religious order.

2. Bull—He will be sower of the seed of enlightenment in this world.

3. Lion—He will destroy perversions like lust and spread religion. Lion is the symbol of valour and courage, therefore the person will be fearless and filled with a feeling of amnesty for all beings.

4. Lakshmi (the goddess of wealth)—He will perform the year long charity and renounce the world to gain the wealth of omniscience.

5. The garland—He will be worshipped in the three realms.

6. The moon—Like the soothing moonlight, he will be the source of happiness for all beings.

7. The sun—Like the sun he will remove the darkness of ignorance with glow of pure religion.

8. The flag—He will furl the flag of religion on the horizon.

9. The urn—He will be resplendent like a golden urn on the mansion of religion.

10. Lotus-pond—He will sit on the divine golden lotus.

11. The sea—He will be as serene as the calm see and will possess gems in the form of infinite virtues including right perception, knowledge and conduct.

12. Celestial vehicle—He will be worshiped by the gods of celestial vehicles.

13. A heap of gems—Like the un-diffused shine of a heap of gems his perception and knowledge will be ever un-diffused, it will be ever scintillating.

14. Smokeless fire—He will be the propagator of pure and unblemished religion.

These indications of the dreams have been defined with reference to a Tirthankar. Although the mothers of *chakravartis* also see the same dreams but the difference is that to Tirthankar's mother these are extremely sharp and clear and to *chakravarti's* mother these are comparatively less sharp and clear.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

The mothers of *Vaasudev* (half-*chakravarti*) see seven out of these 14 great dreams—(1) Lion, (2) The sun, (3) The urn, (4) The sea, (5) Lakshmi, (6) Heap of gems, and (7) Smokeless fire.

The mothers of *Baldev* see four these great dreams—(1) Elephant, (2) Lotus-pond, (3) the moon, and (4) Bull. The mothers of prati-*Vaasudev* sees only three of these great dreams.

In this *Antakriddasha Sutra* is mentioned that the mothers of Gautam Kumar, Gajasukumal and other seekers saw lion in their dream when they were pregnant. Lion is the symbol of valour, bravery, fearlessness etc. These virtues are found in these seekers. This way the dreams seen by mothers came true in the lives of their sons.

The Ten Dreams of Bhagavan Mahavir

During his period of practices Bhagavan Mahavir saw ten dreams. These dreams can also be defined as spiritual dreams. The dreams and their indications are as follows—

1. **Dream**—Defeating a *Tal demon*.
   Meaning—He will destroy the *Mohaniya* (illusory) *karma*.
2. **Dream**—A bird with white feathers is in attendance.
   Meaning—He will always have purest attitude or feelings.
3. **Dream**—A bird with multi-coloured feathers is around.
   Meaning—He will propagate multifaceted knowledge through the 12 *Angas*.
4. **Dream**—Two gem strings appear in front.
   Meaning—He will preach two way religion as conducts of ascetics and laity.
5. **Dream**—A herd of white cows is in front.
   Meaning—The four pronged religious organization will serve him.
6. **Dream**—A pond with open lotuses.
   Meaning—Gods from four dimensions will serve him.
7. **Dream**—Crossed a wavy ocean swimming.
   Meaning—He will cross the ocean of rebirths.
8. **Dream**—Sun rays are spreading in all directions.
   Meaning—He will get enlightenment or omniscience.
9. **Dream**—Encircling the Manushottar mountain with his bluish intestines.
   Meaning—He will pervade the universe with his pure glory.
10. **Dream**—Sitting on a throne on placed on the summit of Meru mountain.
    Meaning—He will give religious discourse sitting on a high throne in *Samavasaran*.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Conclusion

In conclusion : Dreams are of infinite types. They are auspicious as well as inauspicious. Some dreams forebode the good or bad incidents of future and others are without any such indications. They have been classified as physical, divine, material, spiritual and other many types. A man can see dreams during the night and also during the day if he sleeps. It is not necessary that he dreams every night. Some night he dreams and on others he does not.

It is also mentioned in the works on dream-divining that a dream seen during the first quarter of night gives result of its indications in one year. One seen during the second quarter does so within six months. One seen during the third quarter does so within three months. And the one seen during the last quarter does so within 7-8 days.

In brief the world of dreams is very strange and astonishing.

2. DESCRIPTION OF MARRIAGE

An Essential Tradition

Marriage-is a necessary and essential human tradition. It has its beginnings in remote ancient times. It is prevalent in civilized as well as uncivilized societies.

Importance

Marriage is important from all angles including sociological, psychological, social, as well as religious (the social religion).

According to sociologists, the institution of marriage is helpful in the organization and development of a society. It is the cause of formation of a family. In their joint form, in families live together many married couples, uncles, aunts and elders sharing love and affection. Children are brought up properly with comparative ease and discipline and good habits can be imparted to them.

The social viewpoint also spells out almost the same utilities of marriage. However, it expands its field of influence to village, city, state and nation. The justification being that a well knit world society impregnated with virtues can help attain the goal of world peace. In other words a well organized and virtuous society is the foundation of world peace.

Psychologists explain the utility of the institution of marriage keeping human mind as the focal point. Their viewpoint is individualistic. They say that sex and reproduction are basic instincts of both man and woman. It is essential to satisfy this natural urge otherwise there are chances of adverse effects on the normal physical, mental and psychological development of human beings. And the best and simplest method of satisfying this urge is marriage.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

The religious and moral fields also accept the importance of the institution of marriage. From the moral viewpoint, marriage checks disorder and anarchy. If unrestrained sex is allowed morality will suffer and man will be plagued with diseases like aids. Contagious epidemics like venereal diseases will spread resulting in an ailing humanity. That is why marriage is essential.

Religious viewpoint, specially Jain, considers complete abstinence or celibacy as the best. But it is impossible for every man and woman to observe celibacy. To suppress the urge of sex is beyond the capacity of every individual.

Considering this, the sagacious *acharyas* accepted the importance of marriage as the means to discipline the sexual urge. It shifts the flow of sexual desire and indulgence from many to one woman, whom one marries. There also, it is advised to discipline once indulgence.

The Vedic tradition is also of the same view.

Even in their married life man and woman both should follow the norms of celibacy as far as possible. They should not be drawn into lascivious ways of over indulgence in sex and should avoid over infatuation with each other.

Marriage : A Union of Two Hearts

It is a general belief that marriage is a union of two hearts. This belief is due to the western influence. Even in ancient India there was a tradition of *Gandharva Vivah*. Such marriages were like modern love marriages where man and woman married without any participation from the families.

Marriage is also a union of two families. Through marriage two families are joined into one. Such marriages are ceremoniously organized with great pomp and show. Grand marriage processions are taken out, the bride-groom goes to the bride's place and they are tied into the knot of marriage.

The families of the boy and the girl give *Pritidan* and *Daat* to the wedded couple. The wealth given by the girls family to the boys family is called *Daat*. The wealth given to the bride by the couple is called *Pritidan*.

In Antakriddasha Sutra there are details about such marriages. A boy gets *Daat* (dowry or the wealth given by the bride's father) from the families of all the girls he marries. The boy's father also gives a lot of wealth to his daughter-in-law.

Some examples—In the first chapter of the first section of *Antakriddasha Sutra* is the mention of the marriage of Gautam Kumar with eight princesses. The list of *Daat* and *Pritidan* these brides got is as follows—

The *Pritidan* given to the eight brides—eighty million silver coins, eighty million gold coins, eight best quality crowns, eight best quality earrings, eight necklaces, eight bracelets and numerous other ornaments and dresses besides other things.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Similarly they also got ample dowry (*Daat*) from their fathers.

This description indicates that the system of dowry has its origin in ancient times. The kings, rich and poor gave dowry according to their capacity. The boys side also gave in the form of *Pritidan*. But it should be remembered that dowry is not compulsory. Its name is *Pritidan* which means the wealth or other things given by parents of the bride as a token of their love and affection and according to their status in the society, without any pressure.

In that age the status of woman was highly respectable. Marriage was a festive occasion and was celebrated with happiness and joy.

In the Vedic religion marriage is called *samskar* (consecration) which means to refine or to improve life or give it a new, desired and progressive form. That is the reason for performing many ceremonies at the time of a marriage.

In Jain religion man and woman are considered equal. In the social life also they have equal rights. That is why with dowry their was also the system of *Pritidan*.

Truly speaking both these systems are prevalent now also. The parents of the bride give dowry and the boys family also gives ornaments, dresses etc. to the bride.

Another point is that in the Indian society marriage, besides being a family and social tie, is also a religious and moral relationship and is lifelong. In the Jain *Agams* the importance of marriage is expressed by calling a wife *'dhammashaya'* or partner in religion. Calling a wife *Dharma-patni* (wife according to religion) the institution of marriage has been enjoined with religion and spirituality.

3. DESCRIPTION OF DIKSHA (INITIATION)

Diksha, specially the initiation as a Jain *Shraman* is the person's new life. Being born out of the womb of the mother a man starts his worldly life and by getting initiated he renounces the world and enters his religious life. He turns his back towards the world and gets detached from the mundane activities and indulgences. Well being of the self and others, shedding of *karmas* and getting liberated become his prime and only goals.

Inspired by a Tirthankar, *Kevali, acharya* or a god, when a man finds the world bitter, he seeks permission from his parents and others to get initiated. Out of fondness the parents try to stop him but they have to yield to the strong resolve of the seeker. They give him permission and celebrate the renunciation ceremony.

In *Antakriddasha Sutra* the initiation ceremony of Gautam Kumar has been described in slightly greater details.

It so happens that sometimes the parents make their initiation seeking son a king for a day, as has been described in the chapters of *Antakriddasha Sutra* containing the stories of Gajasukumal and Atimuktak Kumar (Evanta Kumar). After becoming a king the

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

subject formally expresses his desire for initiation and then the initiation ceremony commences.

The candidate is put on a high platform. His body is cleaned using fragrant pastes and is given a massage of medicated oils. He is then given a bath with specially medicated water. After this he is adorned with rich dress and ornaments. He is now taken to the place of initiation sitting in a palanquin that is carried by 1,000 persons and passing through the central parts of the city. When he arrives there the candidate pays homage to the guru and proceeds in the north-east direction. After going a little distance he changes into the ascetic dress, returns to the guru, once again pays homage and requests him for initiation.

Here a question arises that religion is free of any pomp and show; then where is the need of this cleansing of the body and donning rich dress and ornaments?

The answer is that, indeed, the candidate is a detached one but this display of grandeur and long process involved is intended to impress the masses with the religiousness. They are also inspired to follow the religious path and get initiated.

The candidate pulls out his hair, which his mother accepts in the extended end of her dress. The parents beseech the guru—O Bhagavan ! We are giving a disciple-donation. This is our beloved son, please lead him to his well being (salvation).

Now the guru initiates him into the order by formally making the candidate accept for life the five great vows of *ahimsa*, truth, non-stealing, celibacy and non-possession with nine limbed discipline, a combination of three means (mind, speech and body) and three methods (doing, inducing and approving), along with the vow of refraining from eating after sunset.

Thus the process of initiation is concluded.

Importance

The main importance of this long process of initiation is that when the candidate accepts initiation in presence of a large mass of people he is more cautious and alert in following the disciplines of ascetic conduct, observing the great vows, the primary and secondary virtues and avoids laxness and fall from grace as far as possible.

The second importance is that the people in the audience also become acquainted with the process of initiation of a Jain *shraman*. At the same time they encourage the candidate with their applauds. The candidate also feels elevated with the glory of initiation.

The newly initiated ascetic is filled with such lofty feelings like—How great is the Jain religion and the Shraman initiation that even the common masses heartily praise it. I will enhance its glory by my ascetic practices so that a wider spread of religion is achieved and the faith of people is strengthened.

There are numerous benefits of describing of the Jain *shraman* initiation.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

4. DESCRIPTION OF CITIES

In ancient India there were many great cities like Ayodhya, Kashi, Champa, Rajagriha, Dvarka etc. which were rich and beautiful from all angles.

In *Antakriddasha Sutra* Dvarka has been described in details but other cities have just been mentioned with a comment *'Jaha Uvavaie'* (as mentioned in *Aupapatik Sutra*) where detailed descriptions of all the great cities are available.

We give here brief details of the description of cities.

The great cities were grand, secure and rich. They had ample facilities for entertainment making the inhabitants and visitors happy. They were densely populated. They abounded in domesticated animals like hen, bulls, cows and sheep. The surrounding areas were fertile and efficiently cultivated.

Anti social elements like thieves, pickpockets, vagabonds could not live there. The normal life was pleasant and peaceful.

The city was filled with means of entertainment. Acrobats, dancers, gymnasts, wrestlers, clowns, story tellers, singers, musicians etc. were in great number. They entertained the masses with their performances.

There were tall buildings and palaces with golden cornices shining in sunlight. There were seven storied mansions with gem embedded floorings and walls with frescoes. It was like a dance of grandeur.

The citizens of these cities were charitable making it easy for mendicants to get alms. No one remained hungry.

In spite of its dense population of families and clans they were peaceful and law and order prevailed.

The roads and streets were wide to facilitate easy commuting of citizens. The markets were arranged commoditywise with attractive displays.

The security arrangements were good and efficient. The parapet walls were very high and about eight feet thick. The strong city gates had sharp and pointed nails projecting outside like spear-heads. Adjacent to the parapet walls were made bunkers where guards rested.

There were gardens at numerous locations within the city with ponds and pools filled with lotuses. They were pleasant, attractive, beautiful and enchanting.

The description of Dvarka city in *Antakriddasha Sutra* follows the same pattern.

This informs about the form, town planning, beauty and grandeur of great cities of the remote past.

●●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org